# मोक्षमार्ग प्रकाशक प्रवचन
## भाग – १

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा रचित
मोक्षमार्ग प्रकाशक पर

अध्यात्मयुगप्रवर्तक
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
द्वारा हुए विभिन्न प्रवचन

प्रकाशक : श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़, सौराष्ट्र
सह–प्रकाशक : श्री कुंदकुंद–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ले, मुंबई

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

# मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन

(भाग--१)

(आचार्यकल्प श्री टोडरमल्लजी द्वारा रचित
मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
द्वारा हुए विभिन्न प्रवचन)

प्रकाशक

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़-३६४२५० (सौराष्ट्र)

सह-प्रकाशक

श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुंबई

विक्रम संवत
२०७६

वीर संवत
२५४६

सन्
२०२०

प्रकाशन
दि. ३-९-२०२०, भादो कृष्ण-१
उत्तम क्षमावणी पर्व

प्राप्ति स्थान
१. श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)-३६४२५०. फोन-०२८४६-२४४३३४
२. श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
३०२, कृष्ण कुंज, प्लोट नं. ३०, वी.एल. महेता मार्ग,
विले पार्ला (वेस्ट), मुंबई-४०००५६
फोन-(०२२) २६१३०८२०, २६१०४९१२, ६२३६९०४६
www.vitragvani.com, email-info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग
**पूजा इम्प्रेशन्स**
भावनगर
मो. ९७२५२५११३१

## प्रकाशकीय निवेदन

**मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,**
**मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।**

महावीर भगवान, गौतम गणधर तत्पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करके भरत में आये हुए, श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं, यह जगत विदित है। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं। ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के भरतक्षेत्र पर महान उपकार हैं। उन्हीं आचार्यदेव की परम्परा में हुए आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी द्वारा रचित ग्रन्थ मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल प्रवचन 'मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन', भाग-१ पाठकवर्ग के हस्तकमल में प्रदान करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

वर्तमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में जो कहा जा रहा है, उसे प्रत्यक्ष झेलनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके अनन्य भक्त, कि जिनकी विद्यमानता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विदेहगमन के समय साक्षात् थी, ऐसे प्रियवर पूज्य कहान गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का क्या कहना! जो विषय वचनगोचर नहीं, विकल्पगोचर नहीं, उसे कथंचित् वक्तव्य करना वह कहान गुरुदेवश्री की समर्थ प्रचण्ड शक्ति के दर्शन कराते हैं, और भावि में ॐकार ध्वनि खिरने की सूचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रस्तुत प्रवचन अध्यात्म के अनेकविध रहस्यों को व्यक्त कर रहे हैं। आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी के हृदय में प्रवेश कर उनके भावों को स्पष्ट करने का सामर्थ्य प्रस्तुत प्रवचनों में व्यक्त होता है।

पण्डितप्रवर टोडरमल हिन्दी जैन जगत के एक अद्वितीय विद्वान हैं। हिन्दी जैन जगत में

उनकी समता का दूसरा विद्वान नहीं हुआ। उनके पूर्व एवं पश्चात् हिन्दी-जैन-जगत में अनेक गद्य-पद्यमय मौलिक रचनाओं की सृष्टि हुई है किन्तु वे सब मिलकर भी पण्डित टोडरमल के असाधारण महत्व को प्रभावित नहीं कर सकीं। अपने समय के विद्वद्वर्ग में पण्डित टोडरमल सर्वोच्च एवं बेजोड़ हैं। उनकी प्रसिद्ध मौलिक रचना श्री मोक्षमार्गप्रकाशक में उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा की अजस्त्रधारा प्रवाहित हुई है। मोक्षमार्ग के गूढ़ एवं शुष्क विषय को इतनी सुन्दरता से उठाया है कि हृदय उसमें डूबता ही चलता है। कहीं भी अस्वाभाविकता से हृदय ऊबता नहीं है। सम्पूर्ण ही मोक्षमार्गप्रकाशक में एक ऐसा औपन्यासिक प्रभाव है कि आरम्भ करने के उपरान्त छोड़ने को जी नहीं चाहता। दर्शन, साहित्य, तर्क, न्याय, व्याकरण, काव्य, छन्द, अलंकार, संस्कृत, गणित तथा धर्म सम्बन्धी उनका ज्ञान असामान्य था। मोक्षमार्गप्रकाशक यद्यपि मुक्ति-मार्ग का प्रतिपादक एक धर्म ग्रन्थ है किन्तु उसमें भाव एवं भाषा का अद्भुत समन्वय हुआ है। ढुंढारी जैसी साधारण भाषा में विषय की गहनता तथा भावों के भार को ऐसी कुशलता से सम्भाला गया है कि आश्चर्य उत्पन्न होता है। भाव एवं भाषा इस तरह सटकर चले हैं कि उनका वियोग कहीं देखने को नहीं मिलता। दोनों में कहीं शैथिल्य भी नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक की एक सबसे बड़ी विशेषता उसकी सुघड़ी एवं सुव्यवस्थित शैली ही है। ऐसी रचना शैली हिन्दी जैन जगत में अन्यत्र अनुपलब्ध है। इस शैली के कारण पण्डित टोडरमल का व्यक्तित्व हिन्दी जैन जगत के शत-शत विद्वानों से भी ऊँचा हो गया है। उनकी प्रतिभा के असंख्य चमत्कार उनकी शैली में ही साकार हुए हैं। साधारण से साधारण बात की सिद्धि के लिए उन्होंने हृदयग्राही तर्क एवं उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। पद-पद पर मस्तिष्क उनकी बुद्धि की पैनाई तथा अनुभूति की गहराई का लोहा मानता है।*

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी का मोक्षमार्गप्रकाशक हिन्दी जैन-गद्य-साहित्याकाश का दैदीप्यमानचन्द्र है। भाव, भाषा और शैली की अपनी निराली विशेषताओं से समन्वित यह ग्रन्थ वास्तव में हिन्दी साहित्य की एक अनुपम निधि है। मोक्षमार्ग के प्रकाशन जैसे जगत के सबसे भारी उत्तरादायित्व को लेकर इसका प्रणयन हुआ और इस उद्देश्य का इसमें जो सर्वांग निर्वाह हुआ है, वह वास्तव में स्तुत्य है। अनवधि अज्ञान-तमावृत्त अन्त:चक्षुओं के घन-आवरण को ध्वस्त कर ध्रुव ज्ञानालोक का अनायास उद्घाटन कर देनेवाला मोक्षमार्गप्रकाशक निश्चय ही सत्-साहित्य का शृंगार है जो विश्व के एक सर्व महान् प्रयोजन और जगत की एक कठिनतम समस्या का सरलतम समाधान प्रस्तुत करता है। जागतिक दु:ख और उनके कारणों की बुद्धिगम्य सम्यक्विवेचना देकर शाश्वत् सुख का मार्ग खोल देनेवाली यह अमर साहित्यिक कृति सभी दृष्टि से अतोल और अमोल

*** साभार प्राप्त : मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन भाग=४**

है। मोक्षमार्गप्रकाशक का प्रणेता नि:सन्देह लोक-मांगल्य का पवित्र अधिष्ठाता है जो अज्ञान का रूप धरकर सम्पूर्ण विश्व में छाये हुए अमंगल का विघटन कर लोक में निराकुल शान्ति की पुनीत प्रतिष्ठा चाहता है और लोक में इससे महान् किसी इतर कार्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस अर्थ में पण्डित टोडरमल एक महान लोकदृष्टा और एक महान् लोक-सृष्टा भी है। भ्रान्त लोक जीवन को शाश्वत् सत्य की पुनीत दिशा देने का गुरुतर भार अपने शीश पर लेकर मोक्षमार्गप्रकाशक जैसी लघुसी कृति के माध्यम से इसे जिस कौशल से निभाया गया है, वह आश्चर्योत्पादक है।*

यही कारण है कि जब संवत् 1982 में आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी को यह ग्रन्थ प्राप्त हुआ तो उन्होंने कुशल जौहरी की भाँति इस ग्रन्थ की महानता को परख लिया। इस ग्रन्थ के सातवें अधिकार पर तो वे ऐसे रीझे कि पूरे अधिकार को लिखवाकर अपने साथ रख लिया।*

तत्पश्चात् उन्होंने इस ग्रन्थ पर कई बार प्रवचन किये एवं अपने अन्य प्रवचनों में भी अपनी बात को पुष्ट करने के लिये इस ग्रन्थ एवं पण्डित टोडरमलजी का वे अत्यन्त आदर के साथ स्मरण करते रहे।*

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक प्रवचनों में भावभासनपूर्वक की समझ को अधिक महत्ता दी है। ऐसी शैली भी व्यक्त हो रही है। प्रत्येक प्रवचन भेदज्ञानपूर्ण है। पूज्य गुरुदेवश्री की सातिशय ज्ञाताधारा के दर्शन भी प्रत्येक प्रवचनों में हो रहे हैं। अखण्ड एकरूप स्वरूपाश्रित परिणतिपूर्वक समझाने का सामर्थ्य प्रवचनों में उभरकर बाहर आ रहा है। जिनके एक प्रवचन श्रवणमात्र से जिनके भव का अन्त आया, ऐसे पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानी का उल्लेख अनेक प्रवचनों में आता है। यहाँ इस बात का उल्लेख इसलिए किया गया है कि पूज्य गुरुदेवश्री की सातिशय देशना का सामर्थ्य तो महापवित्र है ही, परन्तु प्रवचन सम्बन्धित विकल्प के निमित्त से मुमुक्षु जीव के भव का अन्त आ सकता है वह इस बात का प्रमाण है। जिनके विभाव अंश में इतना सामर्थ्य है तो उनकी पवित्र ज्ञानदशा के दर्शन से मुमुक्षुजीव का आत्मकल्याण न हो, यह बात अस्थानीय है। ऐसे सबके प्रिय पूज्य गुरुदेवश्री का जितना गुण संकीर्तन किया जाये, उतना कम ही है, इसलिए इस प्रसंग पर उनके चरणों में भक्तिभावपूर्वक शत-शत वन्दन हो, वन्दन हो!

पूज्य गुरुदेवश्री के आन्तरिक जीवन और भावितीर्थाधिनाथपने की प्रसिद्धि करनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री की अनन्य भक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री को भी इस ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर भाववन्दन करते हैं।

---

*** साभार प्राप्त : मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन भाग-४**

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग में आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सुरक्षित रखा, तदर्थ उसके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की जा रहा है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का विशेष लाभ जनसामान्य ले कि जिससे यह वाणी शाश्वत् सुरक्षित बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर उपलब्ध प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री तथा प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किये गये है। यह प्रवचन सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन द्वारा किया गया है। जिसे जाँचने का कार्य श्रीमती नम्रताबेन मोदी, सोनगढ़ और श्री प्रमेशभाई जैन, भोपाल द्वारा किया गया है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर और जवाबदारी पूर्ण होने से जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है तथापि प्रकाशन कार्य में भूलवश कोई गलती रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से निवेदन करता है प्रस्तुत प्रकाशन में यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का कष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में उसे सुधार किया जा सके।

यह प्रवचन ग्रन्थ (www.vitragvani.com) तथा वीतराग-वाणी ऐप पर उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण,
**श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,**
विलेपार्ला, मुम्बई

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

# अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

## ( संक्षिप्त जीवनवृत्त )

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी स प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्लार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौ य ग भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अ यास में प्राय: प्रथम न बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

**शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी स प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के

धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेता बर स प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अ यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। स प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिग बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, स यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिग बर शास्त्रों के अ यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिग बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् स प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे स प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिग बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिग बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मु य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश–टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिस बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के स पादकत्व में प्रार भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सित बर माह से नव बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेता बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिग बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिग बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिग बर जैन बने।

श्री दिग बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिग बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिग बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य स पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रार भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिग बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रार भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिग बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिग बर मन्दिर थे और दिग बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रार भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिग बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन

कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मु बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री स मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नव बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम स मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, स यग्दर्शन, और उसका विषय, स यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा स यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से स यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवल बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवल बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्त भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

आचार्यकल्प पंडित श्री टोडरमल्लजी

## प्रवचन अनुक्रमणिका


| प्रवचन क्रमांक | अधिकार संख्या | पृष्ट संख्या |
|---|---|---|
| १. | अधिकार-१ | ००१ |
| २. | अधिकार-३ | ०१६ |
| ३. | अधिकार-४ | ०३२ |
| ४. | अधिकार-४ | ०५१ |
| ५. | अधिकार-७ | ०६१ |
| ६. | अधिकार-७ | ०८५ |
| ७. | अधिकार-७ | १०४ |
| ८. | अधिकार-७ | १२० |
| ९. | अधिकार-७ | १३७ |
| १०. | अधिकार-७ | १५३ |
| ११. | अधिकार-७ | १७० |
| १२. | अधिकार-७ | १८७ |
| १३. | अधिकार-७ | २०६ |
| १४. | अधिकार-७ | २२४ |
| १५. | अधिकार-७ | २३३ |
| १६. | अधिकार-७ | २४७ |
| १७. | अधिकार-७ | २६५ |
| १८. | अधिकार-७ | २८२ |

## श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

# श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

ॐ

परमात्मने नमः

# मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन

## (भाग–१)

**(आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल द्वारा रचित श्री मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के उपलब्ध प्रवचन)**

**गुरुवार, दि. १२-८-१९५४,**
**प्रथम अधिकार, प्रवचन नं. १**

मोक्षमार्ग प्रकाशक शास्त्र का १४वाँ पृष्ठ है। देखिये, अधिकार क्या चल रहा है? कि प्रश्नकार का प्रश्न है कि साधारण प्राणी अपने ज्ञान के क्षयोपमश के कारण, कोई शास्त्र का अन्यथा अर्थ भासित हो और शास्त्र में गूँथे, तो उसकी तो परंपरा चले तो उसमें क्या समझना? ऐसा प्रश्न उठा उसका यह उत्तर चलता है। शास्त्रज्ञान की न्यूनता के कारण, कोई अर्थ अन्यथा भासित होकर उसको गूँथे तो उसकी परंपरा चले उसका क्या समझना? ऐसा प्रश्नकार ने प्रश्न किया है। तब कहा कि, भाई! ऐसा नहीं बन सकता। जैनशासन में यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान को धारण करनेवाले परंपरा से चले आ रहे हैं, इसलिये उसकी सत्य परंपरा टूटी नहीं है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि कोई ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव ने सत्य तत्त्व का अन्यथा निरूपण किया हो और गूँथा हो तो दूसरा पुरुष ऐसा निकले कि उसकी परंपरा चलने न दे।

'पुनः इतना विशेष जानना कि जिसे अन्यथा जानने से जीव का अहित हो...' जिसे अन्यथा जानने से जीव का अहित हो 'ऐसे देव-गुरु-धर्मादिक उनकी एवं जीवादिक तत्त्वों का श्रद्धानी तो अन्यथा जाने ही नहीं...' सच्चा जैनी यथार्थ श्रद्धावान हो उसे अंतर अभिप्राय में ऐसा है कि वीतराग ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वीतरागी भाव

ही मोक्ष का मार्ग है--इसलिये उसे सच्चे देव-गुरु-धर्म में फेरफार नहीं होता और जीवादि तत्त्व जीव, अजीव आदि, मोक्षादि तत्त्व हैं। मोक्ष तो पूर्ण सर्वज्ञ की दशा है। जीव सदा त्रिकाल ज्ञानमय है। संवर, निर्जरा सो धर्म है। संवर, निर्जरा को धारण करनेवाले सच्चे गुरु हैं और देव एवं सद्गुरु, धर्म--अहिंसा है, ऐसे देव-गुरु-धर्म को और नव तत्त्वों को तो सच्चा श्रद्धावान जैनी अन्यथा जाने ही नहीं। 'उसका तो जैन आगम में प्रसिद्ध कथन है...' यहाँ यह बात सिद्ध करी है। उसका तो जैन आगम में प्रसिद्ध कथन है कि सर्वज्ञ देव कैसे होते हैं? निर्ग्रंथ संत भावलिंग सहित उनका द्रव्यलिंग कैसा होता है? राग रहित अहिंसा स्वभाव धर्म कैसा होता है? और नव तत्त्व की प्रसिद्धि कैसी होती है? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष- उसका तो जैन आगम, परंपरा सत् शास्त्र वीतराग द्वारा कहे गये हैं, उसमें तो प्रसिद्ध कथन यथार्थ है। समझ में आया? यह जैन आगम की परिभाषा रखी है। वीतराग के श्रीमुख से प्रवाहित, गणधर द्वारा उस अनुसार गूँथे गये और उस अनुसार परंपरा आचार्य आदि द्वारा रचित, उस जैन आगम में देव कैसे, गुरु कैसे, धर्म कैसा, जीव कैसा, संवर कैसा, निर्जरा कैसी--उसका तो प्रसिद्ध कथन है, प्रगट कथन है। उसमें कहीं ... कथन नहीं है। वह तो प्रगट व्यक्त निर्मल कथन चला आ रहा है। इसलिये उसमें तो जैन को सच्ची श्रद्धा समझने में कोई भी भ्रमणा होने का कारण नहीं रहता। शेठी!

देखिये! सच्चे देव सर्वज्ञदेव कैसे होते हैं, सच्चे गुरु मुनि अभ्यंतर और बाह्य कैसे होते हैं, सच्चा धर्म कैसा होता है, यह सब तो शास्त्र में प्रसिद्ध और प्रगट एवं स्पष्ट कथन है। अनेक आगमों में उसकी साक्षी मिलती है। अनेक आगम--जैनागम वीतराग के उसमें उसकी साक्षी मिलती है। उसमें कोई विरोध और भ्रम का कारण नहीं रहता है। समझ में आया? यह जैनागम अर्थात् सनातन शास्त्र वीतराग के चले आ रहे हैं उसको जैनागम कहते हैं। उसमें देव-गुरु-शास्त्र का यथार्थ स्वरूप चला आ रहा है। बीच में दूसरे कल्पित (शास्त्र) भगवान के नाम पर किये, उसमें तो देव-गुरु-धर्म की भ्रांति उठायी है और उसमें नवों तत्त्व की भ्रांति उत्पन्न हुई है। उसको जैनागम नहीं कहते हैं।

षट्खण्डागम, धवल, जयधवल, महाधवल, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि में तो देव-गुरु-धर्म और नव तत्त्वों का प्रसिद्ध अनेक आगमों में पूर्वापर विरोध रहित प्रसिद्ध और व्यक्त, प्रगट कथन है। उसमें तो जैन के सच्चे श्रद्धालु को कहीं भ्रमणा होने का कारण नहीं रहता। सच्चे श्रद्धालु को।

'**और जिनको भ्रम से अन्यथा जानने पर भी...**' इतनी बात। कोई ऐसा

वचन हो कि सच्चे नव तत्त्व, छः द्रव्य और पंचास्तिकाय एवं देव-गुरु-धर्म में मुख्य प्रयोजन में तो कहीं प्रसिद्ध कथन शास्त्र में है--इसलिये भूल होने की संभावना नहीं है। '**जिनको भ्रम से अन्यथा जानने पर भी जिन-आज्ञा मानने से जीव का बुरा न हो, ऐसे कोई सूक्ष्म अर्थ...**' पाठ है। जीव का बुरा न हो, ऐसे कोई सूक्ष्म अर्थ। उसमें तो बुरा हो ऐसा आया था, भाई! जिसे अन्यथा जानने से जीव का बुरा हो, खराब हो, अहित हो। ऐसे देव-गुरु-धर्म और नव तत्त्वों का तो सच्चे आगम समयसार आदि में स्पष्ट कथन है। अरे..! रत्नकरण्ड श्रावकाचार लो, इष्टोपदशे आदि शास्त्र लो, कोई भी शास्त्र दिगंबर सनातन जैनदर्शन का लो, उसमें सब स्पष्ट कथन है।

अब, ऐसे कोई सूक्ष्म बोल में भूल हो जाये, अन्यथा जानने पर भी उसे जिन की आज्ञा मानने से वीतराग ऐसा कहते होंगे, ऐसा जानने में आ गया, साधारण धारणा के बोल में और जीव का बुरु न हो, उसमें कहीं जीव का बुरा नहीं होता। कोई धारणा के बोल में फेरफार हो गया। ऐसे कोई सूक्ष्म अर्थ में किसी को, किसी को, वह किसी को ऐसा कहते हैं। '**उनमें से किसी को कोई अन्यथा प्रमाणता में लाये तो भी उसका विशेष दोष नहीं है।**' मूल तत्त्व में फेर पड़े, ऐसा हो तो उसे आत्मा का अहित हो। मूल तत्त्व देव-गुरु-शास्त्र की बातें तो अनेक शास्त्रों में एक धारा से पूर्वापर विरोध रहित बात चली आ रही है। कोई भी शास्त्र लो, सनातन जैनागम वीतराग के, समझ में आया? निर्ग्रंथ मार्ग का कहा हुआ सनातन दिगंबर मार्ग, उसका कोई भी ग्रंथ और शास्त्र लो तो उसमें देव-गुरु-धर्म और नव तत्त्व का प्रसिद्ध प्रगट कथन पूर्वापर विरोध रहित है। पूर्वापर विरोध कहीं है ऐसा नहीं बनता। उसमें तो कहीं पूर्वापर विरोध है ही नहीं। कहीं कोई अल्प फेर (हो कि) कहीं ऐसा लिखा हो कि ऐकेन्द्रिय को सास्वादन समकित हो। कोई ग्रंथ कहे कि ऐकेन्द्रिय को सास्वादन नहीं होता। ऐसा कुछ अन्यथा जानने से उसमें आत्मा का अहित नहीं होता। ऐसे कथन शास्त्र में आये। इसके कारण उसमें कहीं मूल विशेष दोष नहीं है। समझ में आया? साधारण कोई ऐसा बोल हो, परन्तु मूल देव-गुरु-धर्म और नव तत्त्व में फेर पड़े तो आत्मा का अहित हो।

मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, और संसार का मार्ग मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र है। उसमें कहीं कोई अल्प भी फ़र्क़ पड़े तो उसका अहित हो। लेकिन उस बात की तो प्रसिद्धता है। कोई शास्त्र में उस बात में गुप्तता नहीं है। वह तो प्रसिद्ध प्रगट बात है। कोई ऐसा गूढ़ अर्थ आदि हो धारणा के विषय में, तो उसमें कोई विशेष दोष नहीं है।

'वही गोम्मटसार में कहा है :--'

**सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।**

**सद्दहदि असब्भावं अजाणमणो गुरुणियोगा।। (गाथा-२७ जीवकाण्ड)**

अर्थ :-- '**सम्यग्दृष्टि जीव...**' जिसे सच्चा आत्मभान हुआ है, उसे '**उपदेशित सत्य वचन का श्रद्धान करता है...**' अन्य गुरु द्वारा उपदेशित सच्चे अर्थ का समकिती श्रद्धान करता है। '**और अजानमान गुरु के नियोग से...**' गुरु के क्षयोपशम में कोई फेर हो, और उस क्षयोपशम में कोई अन्यथा साधारण देव-गुरु-धर्म, नव तत्त्व और मोक्षमार्ग से अतिरिक्त कोई बात में धारणा में गुरु का कोई फ़र्क़ है तो '**असत्य का भी श्रद्धान करता है...**' कोई धारणा के बोल में। समझे? धारणा, धारणा यानी यथार्थ मुख्य प्रयोजन में नहीं। मुख्य प्रयोजन में हो तो मिथ्यादृष्टि बन जाता है। देव-गुरु-धर्म, नव तत्त्व, मोक्षमार्ग, निमित्त-नैमित्तिक संबंध की श्रद्धा में तो उसकी श्रद्धा में अल्प भी फ़र्क़ नहीं हो सकता। समझ में आया? आगे है, २२१-२२२ पृष्ठ पर। कहो, समझ में आया?

इसलिये कहते हैं कि अजानमान गुरु के योग से, कोई असत्य साधारण धारणा में आ जाये तो उसमें कोई विशेष दोष नहीं है। परन्तु देव-गुरु-धर्म, समकितदर्शन-ज्ञान-चारित्र में यदि कहीं विपरीत श्रद्धा हो तो उसका अहित हो। उस श्रद्धा के कथन में परंपरा के सत्य आगम में कहीं विरोध है उसकी जाँच करे तो उसका एक ही न्याय सर्वत्र निकलता है।

'**पुनश्च, हमें भी विशेष ज्ञान नहीं है...**' अब, स्वयं कहते हैं (कि) मुझे भी कोई विशेष ज्ञान नहीं है, मैं क्षयोपशम ज्ञानवाला हूँ। '**और जिन आज्ञा भंग करने का बहुत भय है,...**' जिन आज्ञा कैसे भंग न हो, ऐसा मुझे बहुत भय है। '**परन्तु इसी विचार के बल से ग्रंथ करने का साहस करते हैं।**' इस विचार के बल से नाम वास्तविक प्रयोजनभूत तत्त्व का तो मुझे श्रद्धा और भान है। अन्यथा कोई बात धारणा के बोल में रह जाये तो उसमें कोई विशेष दोष नहीं है। इस साहस से, '**इसी विचार के बल से ग्रंथ करने का साहस करते हैं।**' समझ में आया?

'**इसलिये इस ग्रंथ में जैसा ग्रंथों में वर्णन है...**' महा संतों ने पूर्व में जो पूर्वापर कथन जो अनादि से चला आ रहा है, भगवान की वाणी के साथ मेलयुक्त है, '**वैसा ही वर्णन करेंगे।**' वैसा ही इसमें वर्णन करूँगा। '**अथवा कहीं पूर्व ग्रंथों में सामान्य गूढ़ वर्णन था,...**' इतनी बात है। '**कहीं पूर्व ग्रंथों में सामान्य गूढ़ वर्णन था, उसका विशेष प्रगट करके...**' कि इसमें यह करना चाहते हैं। ऐसा विशेष भाव प्रगट करके '**वर्णन यहाँ करेंगे।**' वह मेरे घर का नहीं करूँगा। पूर्व ग्रंथों

में गूढ हो, उस गूढ़ता को खोलकर और उसमें क्या अभिप्राय कहना चाहते हैं, उसको मैं इस ग्रंथ में विशेष प्रगट करुँगा। '**सो इसप्रकार वर्णन करने में मैं तो बहुत सावधानी रखूँगा।**' देखा? जिन आज्ञा भंग करने का भय है और इसप्रकार वर्णन करने में मैं बहुत सावधानी रखूँगा। '**सावधानी करने पर भी कहीं सूक्ष्म अर्थ का...**' सूक्ष्म अर्थ हाँ! परमार्थ तत्त्व में कोई फ़र्क़ नहीं। देव-गुरु-धर्म में कोई फ़र्क़ नहीं। समझ में आया? आगे आता है न भाई दूसरा? इसमें बहुत आते हैं। २६४ या उसमें कहीं आता है न? कि, यह तो इसकी मूल वस्तु होनी चाहिये। देखिये, २५९ पृष्ठ पर है। '**हेयोपादेय तत्त्वों की परीक्षा करना योग्य है।**' देखिये, २५९ पृष्ठ। है? नीचे से छठवी पंक्ति। छठवी पंक्ति का अंतिम भाग। '**इसलिये...**' छठवी का अंतिम भाग। '**हेयोपादेय तत्त्वों की परीक्षा करना योग्य है।**' छोड़ने योग्य कौन है? आदरणीय कौन है? उसकी परीक्षा तो धर्मी जीवों को अवश्य करनी चाहिये। है? देखिये, २५९ पृष्ठ। हेय--मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र की बराबर परीक्षा करनी। उपादेय--सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की बराबर परीक्षा करनी।

'**वहाँ जीवादिक द्रव्यों...**' की तो बराबर परीक्षा करनी। शास्त्र में प्रसिद्ध कथन है। '**तत्त्वों को...**' पहिचानना। देखा? जीवादि छः द्रव्य, जीवादि नव तत्त्वों को बराबर पहिचानना। '**तथा त्यागने योग्य मिथ्यात्व-रागादिक और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिक का स्वरूप पहिचानना।**' त्यागने योग्य मिथ्यादर्शन किसे कहना? राग विकार किसे कहना? व्यवहार किसे कहना? वह छोड़ने योग्य है। उसको तो बराबर पहिचानना। '**और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिक का स्वरूप पहिचानना। तथा निमित्त-नैमित्तिकादिक जैसे हैं, वैसे पहिचानना।**' लो। निमित्त किसे कहना? नैमित्तिक स्वतंत्र किसप्रकार है? उसको तो बराबर उपादान-निमित्त, निमित्त-नैमित्तिक उसकी तो बराबर परीक्षा करनी। शास्त्र में उसके कथन तो प्रसिद्ध प्रगट हैं, उसमें कोई फेरफार है नहीं। कोई भी शास्त्र वीतराग दिगंबर सनातन सत्य जैनदर्शन के ले लो, उसमें कोई भी ग्रंथ में यह बात तो प्रसिद्ध और प्रगट है। उसमें कहीं कोई गूढ़ता नहीं है। समझ में आया? अन्य बहुत जगह है, परन्तु इसमें इस एक मुद्दे में बात आ गयी। कहो, समझ में आया? उसकी तो बराबर परीक्षा करनी। उसमें यदि गड़गड़ गोटाला है तो मिथ्यादर्शन रहता है। समझ में आया?

उस बात में कहीं फेरफार है नहीं, ऐसा कहा। वह तो कोई भी शास्त्र अभी देखो, एक समयसार लो, एक साधारण षट्द्रव्यसंग्रह लो, परमात्मप्रकाश लो, इष्टोपदेश लो, कोई भी छोटा-बड़ा ग्रंथ लो, छह ढाला लो,... समझ में आता है? उसमें तो देव-गुरु-धर्म, नव तत्त्व, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, छोड़नेयोग्य मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान,

मिथ्याचारित्र का स्पष्ट प्रसिद्ध कथन है। उसमें कहीं गड़बड़ नहीं है। उसमें कुछ गूढ़ भी नहीं है। गड़बड़ तो नहीं है, परन्तु गूढ भी नहीं है। वह तो स्पष्ट परीक्षा करना चाहे तो हो सकती है।

मुमुक्षु :-- क्षयोपशम न हो तो क्या करे?

उत्तर :-- क्षयोपशम न हो तो संसार का क्षयोपशम नहीं है? यथार्थ रुचि हो तो उस प्रकार का ख्याल आये बिना रहे ही नहीं। क्षयोपशम कम-बेसी का सवाल नहीं है, उसकी रुचि यथार्थ होनी चाहिये। यथार्थ रुचि हो तो सत् की खोज में सत्य में असत्य पाखंड रहे नहीं। प्रभु के पास पाखंड टिके नहीं। इसप्रकार प्रभुत्व तत्त्व क्या है, सम्यक् का, ज्ञान-दर्शन का, चारित्र का सामर्थ्य, देव-गुरु-धर्म का, प्रभुता का सामर्थ्य क्या है ऐसी जिसे सत्य की रुचिपूर्वक खोज हो तो उसके अन्दर पाखंड एवं अज्ञान टिक नहीं सकता। उसे कोई भ्रमित कर जाय ऐसा बनता नहीं। कहो, समझ में आया? शेठी! क्षयोपशम थोड़ा हो तो उसमें पाखंड नहीं टिकता। बुद्धि थोड़ी हो बालक को, लेकिन उसको कोई आकर कहे कि तेरे पिता को मैंने पूर्व भव में पच्चीस हजार दिये थे, तो लड़का क्या कहेगा? अरे..! पूर्व भव की बात क्या? मेरी बुद्धि थोड़ी है, मैं क्या करूँ ऐसा कहे? मेरी थोड़ी है इसलिये हाँ भर देनी? चल, चल। पूर्व भव में पच्चीस हजार दिये थे, ऐसी बात तू करता है, तू जूठा है। आठ साल का बालक भी ना कह दे। उसमें कोई विशेष बुद्धि की आवश्यकता नहीं है।

इसप्रकार सच्चे देव-गुरु और धर्म, सच्चे नव तत्त्व उसमें मोक्षतत्त्व केवलज्ञानयुक्त तत्त्व कैसा होता है? संवर, निर्जरा का कैसा स्वभाव है? आस्रव, बंध कैसे होते हैं? उसके कारण संवर, निर्जरा नहीं होते ऐसी व्याख्या तो स्पष्ट है। उसमें कोई गड़बड़ करवाने जाये तो चलता नहीं। क्योंकि शास्त्र में उसके कथन तो प्रसिद्ध और प्रगट है। कोई साधारण धारणा की बात में फ़र्क़ पड़े, तो कहते हैं कि, उसमें भी मैं सावधानी रखूँगा। '**सावधानी करने पर भी कहीं सूक्ष्म अर्थ का अन्यथा वर्णन हो जाये तो विशेष बुद्धिमान हों, वे उसे सँवार कर शुद्ध करें--ऐसी मेरी प्रार्थना है।**' लो, यह विनय वर्णित करते हैं। साधारण बोल में कोई फ़र्क़ पड़े, तत्त्वों में तो कोई फ़र्क़ है ही नहीं, क्योंकि ग्रंथ में तो वह बात स्पष्ट है। इसप्रकार यह ग्रंथ रचने का निश्चय किया। '**इसप्रकार शास्त्र रचने का निश्चय किया है।**' कितनी संधियुक्त बातें की है!

'**अब यहाँ, कैसे शास्त्र वाँचने-सुनने योग्य हैं...**' कैसे शास्त्र वाँचने-सुनने योग्य हैं? कैसे शास्त्र जोड़ना, सीखना, सीखाना, विचारने, लिखवाने, धर्मकथा करनी वह शास्त्र कैसे होने चाहिये उसकी व्याख्या करते हैं। समझ में आया? भगवानजीभाई को

यह थोड़ा अधिक चाहिये था इसलिये (लिया)। इस रेकोर्डर में। कहो, समझ में आया? कैसे शास्त्र वाँचना, सुनना, सुनाना, जोड़ना, गूँथना, रचना, सीखना, सीखाना, विचारना, लिखना और लिखवाना? ऐसे शास्त्र पढ़ना, यह जो बोल कहने में आते हैं, उस बात की व्याख्या इसमें करते हैं। देखो! यह समझने जैसी मुद्दे की रकम की बात है। कहो, समझ में आया? दूसरे शब्द नीचे हैं। उपर बोल चलते हैं, फिर नीचे दूसरे शब्द है। वाँचना, इसप्रकार सुनना, जोड़ना, सीखना, सीखाना, विचारना, लिखना, लिखवाना, ऐसे सत्य शास्त्र। ये तो अभी मेल नहीं रहा है। देखो! पण्डितों को कहे कि, ऐसे तत्त्व लिखना। तो कहेंगे, नहीं, हमें जहाँ पगार मिले वहाँ चाहे जैसा लिखना और चाहे जैसा... कहो, यह बात।

यहाँ परिषद रखी थी। उसमें एक प्रस्ताव रखने का था कि सत्य शास्त्र हो उसे लिखना और प्रसिद्ध करना, अन्य का लिखना नहीं। तो कहने लगे, नहीं, हमें चलता नहीं। प्रस्ताव निकल गया। काल देखो न! यहाँ कहते हैं कि धर्म अर्थीओं को, विद्वान हो कि समकिती हो कि ज्ञानी हो कि गृहस्थ हो कि मुनि हो, कैसे शास्त्र उसे पढ़ना, सुनना, सुनाना, सुनाना...? ए... वाड़ीभाई! कैसे शास्त्र सुनना, पढ़ना, जोड़वा, सीखना, सीखाना? विचारना, लिखना और लिखवाना। चलिये, लिखवाना कहते हैं न भाई! स्वयं लिखे या लिखवाये, लेकिन कैसे होने चाहिये? हैं? बराबर यथार्थरूप हो वह, ऐसे शास्त्र एक पंक्ति में रख दे।

"**जो शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करें...**' ओहोहो..! एक टूकड़ा रख दिया। '**जो शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करें...**' अर्थात् सम्यग्दर्शन-सम्यक्ज्ञान-सम्यक्चारित्र वीतरागी परिणाम का प्रकाश करे। समझ में आता है? क्योंकि जगत को हित तो करना है और अहित का नाश करना है। तो जो शास्त्र--आगम मोक्षमार्ग (अर्थात्) आत्मा की मुक्ति हो, बंधन से छूटे, जिस भाव से बंधन हो उस भाव से छूटने का दर्शाये और जिस भाव से अबंध परिणाम हो ऐसा मोक्ष का मार्ग कहे, प्रकाश करे '**वही शास्त्र वाँचने-सुनने योग्य हैं;...**' इसमें तो बहुत आया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- यह क्या आया?

जो शास्त्र, आत्मा पूर्णानंद (कैसा है, यह दर्शाये)। क्यों? कि जो मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, वह मोक्ष कहीं बाहर से आये ऐसी चीज नहीं है। मोक्ष अन्दर की शक्तिरूप से आत्मा मोक्ष है और प्रगटरूप से आत्मा उस शक्ति का अवलंबन करे, श्रद्धा-ज्ञान एवं रमणता वीतरागी पर्याय द्वारा करके, उसे पूर्ण मोक्ष हो, ऐसा जिस शास्त्र में कथन हो... सुमेरुमलजी! इसमें तो बहुत आ गया, देखो!

आगम की कसौटी। सुवर्ण की कसौटी करते हैं कि नहीं? (ऐसे) आगम की कसौटी। जो आगम मोक्षमार्ग (दर्शाता हो, वह आगम है)। इसमें तो यह भी आया कि आत्मा है, उसे अनादि से अहितपने की मान्यता है, उसे हितपने की मान्यता, हितपने का ज्ञान और हितपने की रमणता बताये, अहितरूप विकार का नाश करने का बताये, हितपने के मार्ग की उत्पत्ति बताये, उसका नाम आगम कहने में आता है, बाकी आगम नहीं कहलाते। हें!

मुमुक्षु :-- नव तत्त्व आ गये।

उत्तर :-- नव तत्त्व आ गये। अहित का नाश बताये...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- यह आगम है ऐसा पहले निर्णय तो कर। तुझे हित करना है कि नहीं? तो हित शांति से हो कि अशांति से हो? तो जो कोई अशांति, पुण्य-पाप, आस्रव एवं बंध से हित बताये वह आगम नहीं। जो कोई अराग परिणामी श्रद्धा, ज्ञान एवं रमणता से मुक्ति का कारण बताये, और मुक्ति बताये वही मोक्षमार्ग है, वही आगम है। आगम का प्रथम सीधा संक्षिप्त अर्थ (यह है)।

हित करना है कि नहीं? हाँ। तो हित कैसे हो? अनादि काल से अहित चला आ रहा है। अनादि काल से पुण्य-पाप, आस्रव, बंध की दशा चली आ रही है। जीव तो है। पुण्य-पाप, आस्रव और बंध चले आ रहे हैं। नहीं क्या है? संवर, निर्जरा और मोक्ष। नहीं क्या है? मोक्ष का मार्ग। क्या कहा? अनादि से जीव है, जड़ है और उसमें पुण्य-पाप, आस्रव और बंध यह छः तत्त्व तो अनादि से चले आ रहे हैं। भाई! कहो, बराबर है यह? सुमेरुमलजी! क्योंकि अकेला जीव हो तो किस पर लक्ष्य करे? यानी अजीव भी है, जीव भी है। और उस जीव को वर्तमान शांति हो तो उसमें अस्रव, पुण्य-पाप अनादि से चले रहे हैं ऐसा हो नहीं सकता। तो अनादि से पुण्य और पाप, दया और दान, भक्ति, व्रत, काम, क्रोध ऐसा विकार और बंधभाव और वह पुण्य-पाप आस्रव में समा जाते हैं।

अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, बंध और जीव--यह छः चले आ रहे हैं। जिस जीव को शास्त्रश्रवण करना है, सुनना है, वाँचना है किस हेतु से? हित के लिये। जो कर रहा है उसमें कुछ परिवर्तन करने के लिये। जीव है वह अनादि से पुण्य-पाप, आस्रव, बंध की दशा कर रहा है, उसमें से परिवर्तन करने के लिये। जो शास्त्र उस जीव को हमेशा बताये, उस जीव को जीव के आश्रय से पुण्य-पाप, आस्रव, बंध का व्यय नाम नाश बताये, और स्वभाव के आश्रय से मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र बताये और उसका फल पूर्ण मोक्ष बताये उसे आगम कहने में आता

है। मगनभाई! बराबर है यह आगम की व्याख्या? किसे कहना आगम? भगवानजीभाई! बात तो बहुत अच्छी आयी। वे कहते थे, मुझे वहाँ सुनने में ऐसा सादा हो तो ठीक पड़े। है तो बहुत अच्छा और सादा। ठीक है। भाई! यहाँ तो सादी से सादी ऐसी मीठी बात आती है। थोड़ा उसके वीर्य में, ज्ञान में थोड़ा माहात्म्य करके रखे और जमाये, जमाये तो उसे ऐसा लगे कि आ..हा..हा..! यह तो कोई मार्ग है!! लेकिन विचार तो उसे करना चाहिये न? मोहनभाई! यहीं झटककर चला जाये तो हो गया खत्म।

जो आगम... ओहो..हो..! '**जो शास्त्र...**' उसके कथन '**मोक्षमार्ग का प्रकाश करे...**' यहाँ से बात शुरू की है। तब बंधमार्ग का, मोक्षमार्ग के प्रकाश के ज्ञान के साथ बंधमार्ग के अभाव का ज्ञान भी आ जाता है। लेकिन अभाव का, मोक्षमार्ग के भाव का। जो शास्त्र, चाहे जिस प्रकार... चारों अनुयोग हों, कथानुयोग हो, चरणानुयोग हो, द्रव्यानुयोग हो या करणानुयोग हो, मोक्षमार्ग (दर्शाता हो)। अहो.. आत्मा! तुझे श्रद्धा–ज्ञान और चारित्र प्राप्त करना हो तो यह वर्तमान दशा चली आ रही है उसकी रुचि छोड़। वह रुचि छोड़, ऐसी नास्ति से बात तो करे न। लेकिन तुझे यदि हित करना है, शांति चाहिये, आनंद चाहिये यानी कि मुक्ति की राह––पंथ चाहिये, तो मुक्तस्वरूप वस्तु तू है उसके अवलंबन से, उस मुक्तस्वरूप की मोक्ष के कारण की दशा प्रगट होगी। कहो, समझ में आया?

ऐसा जो आगम बताये, '**मोक्षमार्ग का प्रकाश करे वही शास्त्र वाँचने–सुनने योग्य हैं;...**' क्या कहते हैं? कोई भी आगम बात करे, करणानुयोग की करे, प्रकृति की करे, कोई आस्रव, बंध की व्याख्या करे लेकिन उसका प्रयोजन क्या? कि यह स्वभाववान वस्तु है उसको पलट दे। अनादि से पुण्य–पाप विकार की पर्यायरूप, अवस्थारूप रुक गया है, अब स्वभाव का आश्रय करके श्रद्धा, ज्ञान और रमणता प्रगट कर। अन्य आस्रव, बंध से श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं होंगे और श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र कोई अजीव के निमित्त से अथवा गुरु मिले इसलिये उनके लक्ष्य से होंगे नहीं। वाड़ीभाई! लो, इसमें तो निमित्त भी उड़ गया और व्यवहार भी उड़ गया। जो आगम व्यवहार और निमित्त से मोक्षमार्ग का प्रकाश न करे तो अवलंबन स्वभाव के अवलंबन से ही प्रगट होता है। ऐसी जो बात करे वही आगम (है)। शेठी! ... शेठी तो बहुत खानदान है तो उसे बड़ी अच्छी लगती है। न्याय आये तब तो उसे अन्दर ऐसा होता है कि ओहो..! मार्ग तो यह है। क्यों शेठी! मार्ग तो ऐसा है, भैया!

वस्तु... तुझे नक्की करना पड़ेगा न प्रभु! तू है कि नहीं? तू है कि नहीं? है तो तेरी हयाती में कुछ वर्तमान में विरुद्ध है कि नहीं? यदि वर्तमान में विरुद्ध न

हो तो तेरी शांति प्रगट होनी चाहिये। सुमेरुमलजी! शरीर में रोग आते हैं, प्रतिकूलता आती है, वह तो जड़ की दशा है। तेरा लक्ष्य पर ऊपर जाता है, वे नहीं करवाते। लक्ष्य तेरा पर के ऊपर जाता है तो तेरी दशा में बंधभाव है कि नहीं? बंधभाव है, उसका नाश करने की अपूर्व दृष्टि बतावे कि बंध का अवलंबन नहीं, शरीर का अवलंबन नहीं और बंधन से छूटने का (उपाय) बताये, तो बंधन से छूटने को (तो) शुद्ध चैतन्य ज्ञानानंद है। क्योंकि प्राप्त की प्राप्ति होती है। तो आत्मा में जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल पर्याय का पिण्ड न हो तो कहाँ-से आयेगी? भगवान, आगम जीवतत्त्व की ऐसी परिभाषा करे कि तेरे तत्त्व में प्रभुत्व पूर्ण पड़ा है। तेरी वर्तमान दशा में अप्रभुता नाम पामरता हो गयी है। उस पामरता को, प्रभुता का अवलंबन से पर्याय में प्रभुता प्रगट की जा सकती है। समझ में आया? सुनाई देता है न थोड़ा-थोड़ा? समझ में आता है? हें! यह मुद्दे की बात है, मुद्दे की रकम है।

'**जो शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करे...**' बंधन से छूटने की रीति बताये। बंधन से छूटने की रीति बताये अर्थात् पूर्ण मुक्त होनी की राह बताये, पूर्ण मुक्त होने का पंथ बताये। पूर्ण मुक्त में जैसे कोई भी अवलंबन नहीं है, ऐसे उसके मार्ग में भी पर का कोई अवलंबन नहीं है। '**जो शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करे...**' कहो, समझ में आता है? वह शास्त्र, वही आगम वाँचना। अन्य आगम पढ़ना नहीं। अस्ति में आ गया कि नहीं? अन्य आगम नहीं पढ़ना। जिसमें राग को धर्म बताया हो, पर हो तो मुझे लाभ हो ऐसा बताया हो, समझ में आया? और राग करते-करते कभी संसार का नाश होगा ऐसा बताया हो, ऐसे शास्त्र पढ़ने, सुनने योग्य नहीं है। पढ़ने में, यही आगम पढ़ने और सुनने योग्य है। वाड़ीभाई! ऐसा सुनने योग्य है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- क्या? लेकिन सच्चा शास्त्र पढ़ा ही कहाँ है? सच्चा शास्त्र पढ़ा ही नहीं है। सच्चे शास्त्र में यह है, यह पढ़ा तो उसका नाम सच्चा शास्त्र पढ़ा कहने में आता है। नहीं तो मिथ्याशास्त्र पढ़े हैं। उसकी दृष्टि में मिथ्या है न? सच्चे शास्त्र, सच्चे शास्त्र किसको कहना वह तो ... है। जिसमें बंधमार्ग रहित की परिभाषा हो वह सुने, और उसमें ऐसा कहा हो। उसमें कहा हो ऐसा सुने। उसमें कहा हो ऐसा न मानकर अन्यथा माने तो वह सच्चा शास्त्र नहीं पढ़ता है। सच्चा शास्त्र पढ़ता और सुनता भी नहीं है। भले समयसार हो। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि कोई भी आगम का शास्त्र ऐसा होना चाहिये कि वह, जीव की नित्य हयाती रखकर, नित्य हयाती त्रिकाल, त्रिकाल हयाती, सत्ता मौजूद रखकर उसकी दशा में जो विकृत विरूद्ध विकार हो गया है, उसको छोड़ने को शास्त्र कहते

हैं। दूसरा क्या कहना है उसको? जो जिस शास्त्र में ऐसा पढ़कर, सुनकर, विचार करके विकार रहित बताया हो ऐसा उसमें है, ऐसी दृष्टि से वाँचे, सुने तो सच्चा आगम वाँचा, सुना कहने में आये। परन्तु सच्चे आगम में जो कथन है उसको विपरीत दृष्टि से वाँचे तो आगम नहीं पढ़ा है, उसकी दृष्टि को पढ़ा है। उसकी दृष्टि को पढ़ा है। अपनी दृष्टि रखकर पढ़ता है। वह (शास्त्र) क्या कहता है ऐसा दृष्टि में निखालिसता से पढ़ता, सुनता नहीं है।

वह प्रश्न था, भाई! उसका प्रश्न ऐसा था कि सच्चे आगम में भी ऊलटा मतार्थ चलता है न? लेकिन वह सच्चा आगम उसके लिये नहीं है। पढ़ना तो सच्चा आगम है (नहीं)। वह आगम तो सच्चा है, उसकी दृष्टि फेर है तो विपरीत समझता है। वह तो पहले कह दिया कि सच्चे देव-गुरु-धर्म और सच्चा नव तत्त्व, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्पष्ट कथन शास्त्रों में है। उसमें जो विपरीत कल्पना करता है उसकी शास्त्र पढ़ने की दृष्टि सच्ची नहीं है। उसकी, सुनने की लायकात भी ठीक नहीं है। महेन्द्रकुमारजी! कहो, समझ में आया? भगवानजीभाई को ऐसा ऊतारना था कि निवृत्त हो तो मुझे ठीक पड़े। दोपहर का थोड़ा सूक्ष्म पड़ता है। समझ में आया? बात सच्ची है, दोपहर का आज तो थोड़ा और सूक्ष्म आयेगा। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जो आगम मोक्षमार्ग का... ओहो..हो..! छूटने का मार्ग, उसके साथ बंध--बंधन का मार्ग सो बंध, बंधतत्त्व का वर्णन करे और बंध के मार्ग का वर्णन करे, लेकिन उसका प्रयोजन छूटने के मार्ग का प्रयोजन उसमें है। बंधन और बंधन का कारण आस्रव को समझाये उतना ही प्रयोजन नहीं है। आस्रव सो अहित है, हेय है, बंध सो अहित है, ऐसा समझाने में, संवर सो उपादेय है, निर्जरा सो हित है, मोक्ष है सो परमहित है, ऐसा समझाये उस आगम को आगम कहने में आता है। ऐसा आगम वाँचने, सुनने योग्य है। ऐसा आगम जोड़ना, सीखना, ऐसे आगम सीखना, अन्य शास्त्र को सीखना नहीं ऐसा कहते हैं। दूसरे को सीखाना हो तो ऐसे शास्त्र सीखाना, भाई! दूसरे कहे कि यह पढ़िये, प्रवचन में फलाना पढ़िये, फलाना। सीखना, सीखाना, विचारना, लिखवाना वह, ऐसे शास्त्र हो वह आत्मार्थी को सुनना और विचारना, लिखना और लिखवाना। अन्य के प्रवाह की परंपरा चलने लगे ऐसी भूल ज्ञानी और आत्मार्थी नहीं करते। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- हमारे बाप-दादा...

उत्तर :-- बाप-दादा जूठे नहीं है? वह जूठा था तो उसके बाप-दादा जूठे और उसका स्वीकार करने से निगोद में रखड़ता था।

तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हुए, वे तीर्थंकर भी पहले स्वयं पूर्व में अनंत तीर्थंकर के समवसरण में गये थे, फिर भी विरुद्ध लेकर आये थे। तीर्थंकर स्वयं, तीर्थंकर नहीं हुए उसके पहले अनंत बार समवसरण में गये, मिथ्यादृष्टिपने वापस आये, उससे क्या हुआ? वस्तु मोक्ष का मार्ग शांति, आनंद, पवित्रता, शुचिता, शौचता, सत्यता, अहिंसकता, स्वाभाविक अहिंसा हाँ! सहज अहिंसकता, वह सब वीतरागी पर्याय है, अरागी दशा है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी अकषाय दशा है और उस अकषाय दशा का जिसमें स्पष्ट कथन हो, जिसमें गड़बड़ न हो, ऐसे आगम वाँचने और सुनने योग्य है। उसका अर्थ यह है कि इससे अतिरिक्त अन्य सुनने और वाँचने योग्य नहीं है। कोई अर्थ देखना, विचारना करे उसका सवाल नहीं रहता। वह आगम स्वरूप नहीं (वाँचता), यह आगम है इसलिये वाँचन करुँ ऐसा नहीं है। वह तो कुआगम है, परन्तु उसमें क्या कहना चाहते हैं ऐसा जानकर पढ़े।

कारण कि '**संसार में...**' देखो! अब न्याय देते हैं। '**जीव संसार में नाना दुःखों से पीड़ित है।**' एक बात सिद्ध करते हैं। संसार में भगवान आत्मा अनादि से अनेक प्रकार के दुःखों से पीड़ित है। दुःख से पीड़ित है। दुःख नाम आकुलता.. आकुलता.. आकुलता..।

मुमुक्षु :-- नर्क, पशु में...

उत्तर :-- अरे..! आकुलता में। नर्क, तिर्यंच में कहाँ था। अपनी दशा में आकुलता है इसलिये दुःखी है। शरीर दुःख का कारण नहीं है, संयोग दुःख का कारण नहीं है। पैसा सुख का कारण नहीं है, निर्धनता दुःख का कारण नहीं है। निर्धनता वह दुःखरूप नहीं है। सधनता सुख का कारण नहीं है, सधनता वह सुखरूप नहीं है। मात्र आकुलता.. आकुलता.. आकुलता वही कषाय सो दुःखरूप है। समझ में आया? '**यदि शास्त्ररूपी दीपक द्वारा...**' देखो! दुःख से मुक्त होना और सुख की प्राप्ति होनी वही मोक्ष का मार्ग है। आस्रव और बंध भाव भी दुःख है। दुःख संयोग में नहीं है। पुण्य और पाप और विकल्पों का उत्पन्न होना, शुभाशुभ वृत्ति उत्पन्न होनी, व्रत-अव्रत के विकल्प उत्पन्न हो वह भी दुःखदायक है। समझ में आया? व्यवहारव्रत, हाँ! निश्चयव्रत तो स्वरूप की स्थिरता है।

संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख से, अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की आकुलता, छोटी या बड़ी, लेकिन आकुलता आकुलता आकुलता है। स्वर्ग में भी आकुलता, नर्क में भी आकुलता, मनुष्य में भी आकुलता, द्वेष में भी आकुलता और राग में भी आकुलता है। क्योंकि जहाँ आत्मा परद्रव्य का आश्रय लेकर सुख लेना चाहता है, वह सब आकुलता है, अशांति है यानी कि दुःख है।

'**यदि शास्त्ररूपी दीपक द्वारा...**' शास्त्ररूपी दीपक द्वारा '**मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लें...**' शास्त्ररूपी दीपक द्वारा वह यदि मोक्षमार्ग को प्राप्त कर ले, अर्थात् आत्मा के पवित्र आनन्दरूप पूर्ण दशा वह मोक्ष, उसको प्राप्त करने का अंतरमार्ग--उपाय प्राप्त करे '**तो उस मार्ग में स्वयं गमन कर...**' उस मोक्षमार्ग में अन्दर परिणमन करके। गमन कर नाम अंतर में परिणमन कर '**उन दुःखों से मुक्त हो।**' मोक्षमार्ग में गमन कर। देखो! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल वीतरागता का परिणमन कर और जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्ररूप आस्रव, बंध और आकुलता है, ऐसी आकुलता के दुःख से मुक्त हों। समझ में आया?

'**सो मोक्षमार्ग एक वीतरागभाव है;...**' वहाँ स्थूलरूप से बात की थी, यहाँ बात स्पष्टरूप से खोल दी। '**सो मोक्षमार्ग एक वीतरागभाव है;...**' मोक्षमार्ग कोई राग नहीं है, पुण्य नहीं है, व्यवहार नहीं है, (वह) मोक्षमार्ग ही नहीं है। मोक्षमार्ग तो एक ही प्रकार का अविकारी परिणाम है। है शेठी? पृष्ठ-१४। '**सो मोक्षमार्ग एक वीतरागभाव है;...**' खलास हो गया। उसमें देखो वीतरागभाव। राग, पुण्य, व्यवहार और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, स्वभाव का आश्रय परमपारिणामिक, चिदानंद स्वरूप, एकरूप शक्ति.. शक्ति.. शक्ति.., उस स्वभाव का शक्तिरूप सत्त्व और तत्त्व के अवलंबन से वीतराग श्रद्धा और राग एवं पुण्य के अभावरूप ज्ञानदशा तथा रमणता हो, ऐसा वीतरागभाव एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में राग आये, दया, दान आये, व्रतादि के परिणाम आये वह मोक्षमार्ग नहीं है। देखो! एक वीतरागभाव सो मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग है सो वीतरागभाव भी है और बीच में रागभाव आये वह भी मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- राग नहीं। ऊलटा है। राग जितना आता है वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। समझ में आया? ओहो..! पहले से लिखा तो धारावाही नव अध्याय तक एकधारा से बात लिखी है। परन्तु लोग समझने के लिये इस शास्त्र के विपरीत अर्थ करे, यह पढ़कर भी अपनी कल्पना उसमें डाले। पढ़े मोक्षमार्ग (प्रकाशक) और डाले (और कुछ)। भाई! व्यवहार तो करना पड़ता है कि नहीं? व्यवहार बिना होता है? व्यवहार के पेट में निश्चय पड़ा है। राग के पेट में मोक्षमार्ग पड़ा है। क्या करें?

मुमुक्षु :--

उत्तर :-- मन की कल्पना। आगम ऐसा नहीं कहता। देखो!

'**मोक्षमार्ग एक वीतरागभाव है;...**' एक वीतरागभाव है पुनः। मोक्षमार्ग तो एक वीतरागभाव (है)। एक वीतरागभाव माने दूसरा रागभाव भी मोक्षमार्ग है ऐसा नहीं।

एक ही वीतरागभाव मोक्षमार्ग अनादि त्रिकाल। महाविदेह क्षेत्र हो, भरत क्षेत्र हो, निगोद क्षेत्र हो, स्वर्ग में हो, नर्क में हो, उसमें आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्विकल्प, विकल्प का आश्रय रहित श्रद्धा, ज्ञान और रमणता यह एक ही मोक्षमार्ग है। दूसरा मोक्षमार्ग तीन काल में जैनागम में वर्णन नहीं किया है। हलका काल है तो क्या हुआ? यह तो, आटा, घी और गुड़ (शक्कर) उसका पकवान बनता है कि नहीं? कि पकवान दूसरी चीज से बनता है? बोलो, पकवान तो ऐसे ही बनता है।

यहाँ हुँडावसर्पिणी (काल) है इसलिये एक और एक चार हो जाते होंगे? हुँडावसर्पिणी काल है इसलिये एक और एक चार करो, एक और एक दो नहीं। यह हुँडावसर्पिणी काल है इसलिये इन्सान के पेट से कूत्ते का जन्म हो। ऐसा है? हुँडावसर्पिणी काल है। हुँडावसर्पिणी काल है तो क्या है? हुँडावसर्पिणी काल है इसलिये आम के वृक्ष पर लिंबु लगाओ। लींबु पका, भाई! हुँडावसर्पिणी काल है न, इसलिये आम के वृक्ष पर लींबु पका। तीन काल में पके नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ। समझ में आया? वह तो समझनेवाले, पहिचाननेवाले, प्रयत्न करनेवाले कम होते हैं, तो इससे क्या वस्तु बदल जाती है? वस्तु दूसरी होती नहीं। हुँडावसर्पिणी काल है, भाई! मनुष्य के पेट में--स्त्री के पेट में कूत्ते का जन्म हुआ। हुँडावसर्पिणी काल है। ऐसा बने नहीं तीन काल में। समझ में आया?

ऐसे मोक्षमार्ग में बंधमार्ग पके और बंधमार्ग की डाली पर मोक्षमार्ग पके ऐसा हुँडावसर्पिणी काल में बनता नहीं। समझ में आया? नीम के वृक्ष पर आम पके? आम। ऐसे बंधमार्ग में मोक्षमार्ग पंचम काल में हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वस्तु में नहीं है।

मुमुक्षु :-- काल का दोष है?

उत्तर :-- नहीं, काल का दोष नहीं है।

चंद्र तो एक ही है, अपनी अँगूली ऐसे रखकर देखता है तो वहाँ दो नहीं हो जाता है। ऐसे शास्त्र में तो यथार्थ बात है, परन्तु अपनी कल्पना करके उसको वाँचते हैं, दूसरा .. हो जाता है। व्यवहार से होता है, बंध से होता है और ऐसा-वैसा होता है, वह तो उसकी दृष्टि का विषय हुआ, वस्तु में ऐसा नहीं है। यह शास्त्र ज्ञेय है। उस ज्ञेय के विषय में ऐसा ज्ञान होता ही नहीं कि बंध और राग से धर्म होता है, ऐसा हो नहीं सकता।

वीतराग, एक वीतराग, एक ही बात। मोक्षमार्ग है। वह बाद में। यहाँ तो एक

मार्ग की परिभाषा नहीं है। एक वीतरागभाव, बस! एक वीतराग दशा। पर का अवलंबन छूटकर, शुद्ध चैतन्यशक्ति का पिंड है, उसमें से वीतराग श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र (प्रगट होता है)। राग की श्रद्धा, उससे धर्म, राग के अवलंबन से ज्ञान और राग सो चारित्र, उसका नाश करावे और वीतरागभाव की उत्पत्ति करवाये वही एक मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया?

इस बात को (समझकर) उसको उसके फलस्वरूप शांति चाहिये कि नहीं? तो उसके प्रारंभ में--शुरूआत में शांति होगी तो फलस्वरूप शांति आयेगी कि नहीं? पहले शून्य रखे हो और फलस्वरूप संख्या आये? पहले शून्य रखे और टोटल में संख्या कहाँ-से आयेगी? ऐसे पहले बंधभाव का सेवन किया और फिर आयेगा मोक्ष का मार्ग, कहाँ-से आयेगा? शास्त्र ऐसा कहता नहीं। शास्त्र, जिसकी संख्या बतानी है उसका अंक बताये। मोक्ष की पर्याय प्रगट करनी है तो उसका लक्षण बताये कि वीतराग श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र सो मोक्षमार्ग का लक्षण है। उसे आप समझो, प्रगट करो (ऐसा) शास्त्र का एक ही कथन है। दूसरी बातें आये वह, यह ज्ञान होनेपर जानने का विषय रह जाता है।

'**इसलिये जिन शास्त्रों में किसी प्रकार...**' देखा? '**इसलिये जिन शास्त्रों में किसी प्रकार...**' कोई भी ... '**राग-द्वेष-मोहभावों का निषेध करके...**' लो! पहले का अभाव बताकर, व्यय करके। राग-द्वेष-मोह---मोह माने मिथ्यात्व और राग माने प्रीति, द्वेष माने अरुचि--अणगमा। उसका निषेध करके। '**किसी भी प्रकार राग-द्वेष-मोहभाव का निषेध...**' व्यवहार का निषेध आ गया, भाई! व्यवहार का निषेध आ गया। किसी भी प्रकार शास्त्र व्यवहार का निषेध करे। दोपहर को अधिकार चलता है वह बात है। व्यवहार का निषेध करे और निश्चय का आदर करावे वह शास्त्र, बाकी दूसरे शास्त्र हो नहीं सकते। समझ में आया?

'**राग-द्वेष-मोहभावों का...**' देखो! यह भाव की व्याख्या है, संयोग की बात नहीं है। संयोगों का निषेध करे और संयोगों का आदर करावे यह बात नहीं है। अंतर में जो विकारी राग-द्वेष-मोह (होते हैं उसकी बात है)। राग-द्वेष शब्द में--पर की दया का परिणाम वह राग है, पर को मारना वह द्वेषभाव है, दया में सम्यग्दर्शन मानना वह मोह नाम मिथ्यात्वभाव है। ऐसे भावों का '**निषेध करके...**' ऐसे राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव का अभाव करवाकर '**वीतरागभाव का प्रयोजन प्रगट किया हो...**' जिसमें अकेला वीतरागभाव पर के अवलंबन रहित, चिदानंदावलंबी भाव, ऐसे '**वीतरागभाव का प्रयोजन प्रगट किया हो उन्हीं शास्त्रों का वाँचना-सुनना उचित है।**' समझ में आया? सुमेरुमलजी! ये तो कैसे शास्त्र! भाई! शांति से सुने तो (समझ

में आये), झघड़ा करे तो बापू पार आये ऐसा नहीं है। वादविवाद करे तो पार नहीं आता। वह तो लंबे काल से उस प्रकार की कुयुक्ति सीखा हो तो बात करने में तो पार नहीं आता। वस्तु को समझे तो.. ओहो..! यह तो बहुत फ़र्क़ है। सच्चे शास्त्र के बहाने उसके जूठे अर्थ करके कुशास्त्र का पोषण करता है।

सच्चे शास्त्र का लक्षण अनेकांत है। आज आयेगा, भाई! सच्चा शास्त्र का लक्षण अनेकांत है। अनेकांत अर्थात् राग से वीतरागता नहीं, वीतराग से राग नहीं। जीव से जड़ नहीं और जड़ से जीव नहीं, व्यवहार से निश्चय नहीं और निश्चयमें से व्यवहार उत्पन्न होता नहीं। बस, वही यह अधिकार कहता है।

राग-द्वेष-मोहभावों का अभाव करके और वीतरागभाव का प्रयोजन (प्रगट करके), देखो! अनेकांत हो गया। राग-द्वेष और अतत्त्व श्रद्धा का अभाव और सत् स्वतत्त्व की श्रद्धापूर्वक अन्दर वीतरागता के परिणाम की उत्पत्ति, इसका नाम अनेकांत कहने में आता है। ऐसा अनेकांत शास्त्र का लक्षण है। समझ में आया? (अधिकार) आप का ठीक आया है। भगवानजीभाई!

'**जिन शास्त्रों में किसी प्रकार...**' किसी प्रकार से, ऐसा कहते हैं। कहीं कहा हो कि देखो भाई! ज्ञानी-निमित्त पहले मिलने चाहिये....

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**रविवार, दि. ३०-११-१९५२,**
**तीसरा अधिकार, प्रवचन नं. २**

... उसमें अभी अधिकार यह है कि आत्मा में ज्ञान की जो पर्याय है, वह ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के कारण, उघाड़ के कारण ज्ञान की पर्याय और दर्शन की पर्याय का क्षयोपशमरूप थोड़ा विकास है, वह इच्छा सहित दुःख का कारण है। तब शिष्य ने प्रश्न किया कि, उस इच्छा में एक-एक विषय को ग्रहण करे तो बहुत इकट्ठा होकर उसे सुख हो कि नहीं? समझ में आया? ऐसा प्रश्न है।

'**जिस प्रकार कण-कण करके अपनी भूख मिटाये उसी प्रकार एक-एक विषय का ग्रहण करके अपनी इच्छा पूर्ण करे तो दोष क्या?**' अल्प ज्ञान

में नयी-नयी... और नये-नये विषय ग्रहण करे। तो शिष्य ने कहा कि नया-नया ग्रहण करे और नया-नया सब ज्ञान इकट्ठा होकर सुखी होगा। एक-एक विषय को जानकर बहुत विषय को जानकर इच्छा पूर्ण होकर ज्ञान में इकट्ठी दशा होकर सुखी होगा। गुरु कहते हैं कि ऐसा नहीं बनता। ज्ञान की पर्याय हिन है और उसमें इच्छा नयी-नयी हो और ज्ञान की अवस्था भी नयी-नयी होती है। एक-एक विषय आये उसे ग्रहण करे, दूसरा विषय आये तो उसका ज्ञान छूट जाता है। वह इच्छा करे तो भी जानपना छूट जाता है। इसलिये वहाँ इकट्ठा होता नहीं। तो (शिष्य) कहता है कि कण-कण करके इकट्ठा हो तो? बहुत भूख हो और कण मिले, फिर कण-कण इकट्ठा होकर भूख मिटे तो? इस प्रकार एक-एक विषय को ग्रहण करके अपनी इच्छा पूर्ण करे तो दोष क्या है?

'**यदि वे कण एकत्रित हों तो ऐसा ही मान लें...**' एक कण खाया वह हजम हो गया, फिर दूसरा आया। वह कण एकत्रित नहीं होते हैं। '**परन्तु जब दूसरा कण मिलता है तब पहले कण का निर्गमन हो जाये तो कैसे भूख मिटेगी?**' एक मण (--चालीस सेर का वज़न) की भूख हो और कण-कण मिले तो भूख मिटती नहीं। '**उसी प्रकार जानने में विषयों का ग्रहण एकत्रित होता जाये...**' देखो! थोड़ा न्याय समझना। आत्मा के ज्ञान की विकसित पर्याय में एक-एक विषय को जानने पर ज्ञान की पर्याय नयी और इच्छा भी नयी (होती है)। वह सब ज्ञान कहीं एकत्रित नहीं होता है। '**जानने में विषयों का ग्रहण एकत्रित होता जाये तो इच्छा पूर्ण हो जाये, परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करता है...**' दूसरे विषय को जानने में ज्ञान रुके '**तब पूर्व में जो विषय ग्रहण किया था उसका जानना नहीं रहता, तो कैसे इच्छा पूर्ण हो?**' ज्ञान की पूर्णता हुए बिना इच्छा किसी भी प्रकार से पूर्ण होती नहीं। '**इच्छा पूर्ण हुए बिना आकुलता मिटती नहीं है और आकुलता मिटे मिटे बिना सुख कैसे कहा जाय?**' आकुलता मिटे बिना सुख हो नहीं सकता।

'**तथा एक विषय का ग्रहण भी...**' अब थोड़ा यह विषय है। यह जीव '**मिथ्यादर्शनादिक के सद्भावपूर्वक करता है,...**' क्या कहा? आत्मा में ज्ञानस्वभाव तो त्रिकाल है परन्तु वर्तमान पर्याय में ज्ञान और दर्शन की अल्प विकासशक्ति के कारण एक विषय के जानकर जहाँ दूसरा जानने जाता है तो पहले का जानपना चला जाता है। फिर भी उस विषय ग्रहण करते समय भी मिथ्यादर्शनादिक के सद्भावपूर्वक विषय को जानता है। उस विषय को मैंने भोगा, उस विषय को मैंने जाना, उस विषय के कारण मुझे इच्छा हुई, उस विषय के कारण मुझे संतोष हुआ। इसप्रकार विषय को जानते हुए तो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याराग के कारण मिथ्यादर्शन,

ज्ञान, राग के सद्भावपूर्वक जानता है। मात्र जानने-देखनेवाला रहता हो तो तो चैतन्यपना... एक विषय का राग हुआ उसे जाना, उस जाननेवाले को जानते हुए उसने जाना। यह तो राग को जानते हुए पूरा स्वरूप मानों राग में ही समा गया। विषय से स्वाद आया, विषय से राग हुआ और राग से मेरा ज्ञान हुआ। एक विषय को जानने में भी उसे जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण के सद्भावपूर्वक उस विषय को जानता है। कहो, समझ में आया? मोहनभाई! यह पैसा मिला, उसे वह ज्ञान जाने, वह मानता है कि मैंने इकट्ठा किया, मैंने प्राप्त किया। एक को जानने में भी मिथ्यादर्शनपूर्वक जानता है। मैं ज्ञाता हूँ, उसके कारण हुआ, मुझे जानते हुए मेरे स्वपरप्रकाश में वह ज्ञात हो जाता है, ऐसा वह नहीं मानता है।

एक-एक विषय को ग्रहण करने में भी यह जीव विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञान और विपरीत राग के आचरण द्वारा उसकी मौजूदगी से उस विषय को जानता है। कहो, समझ में आया? वह विषय था तो ज्ञान हुआ, विषय था तो राग हुआ, विषय था तो आनन्द आया, मुझे आनन्द आया इसलिये मैं बहुत विषयों को एकत्रित करूँ। ऐसी विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञान और विपरीत आचरणपूर्वक वह, उसकी मौजूदगीपूर्वक उसको जानता है।

सम्यक्ज्ञान भी एक-एक विषय को जाने तो मेरे जानने में बहुत ताकत है और मुझे जानते हुए मैं उसको जानता हूँ, ऐसा वह मानता नहीं। कहो, समझ में आया? एक विषय को ग्रहण करने में एक शब्द को, एक पुस्तक को, कोई भी यात्रा को, इज्जत को, कीर्ति को, एक भी विषय को ग्रहण करते हुए, इससे मुझे सुख हुआ, उतना ही ज्ञान का करनेवाला हूँ, वह वस्तु थी तो मुझे ज्ञान हुआ, वह वस्तु थी तो मुझे आनन्द आया, इसप्रकार मिथ्यादर्शनादिक की मौजूदगीपूर्वक उस विषय को ग्रहण करता है, इसलिये सुखी नहीं होता है।

**'इसलिये आगामी अनेक दुःखों के कारण कर्म बँधते है।'** भावि अनेक दुःखों के कारणरूप कर्मों को बाँधता है। **'इसलिये यह वर्तमान में सुख नहीं है,...'** कहो, पोपटभाई! समझ में आया? एक विषय आया। एक लड़का आया लड़का। जन्म हुआ तो लगा, अच्छा हुआ, मेरा बाँझपना मिट गया। उस एक को जानते हुए मिथ्यादर्शनपूर्वक हयातस्वरूप जानता है। बाँझपना कब और बाँझपना सुनना मिटे कब? एक लक्ष्मी आयी तो, चलो अच्छा हुआ, इतना तो सुख हुआ। अब पुत्र की बात। एक-एक जानते हुए विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञानपूर्वक उसको जानता है। इसलिये वर्तमान में दुःखी और भविष्य में भी दुःख के कारणभूत कर्मों को बाँधता है। कहो, बराबर है यह? वाड़ीभाई! भाई! एक विषय को जानते हुए। पुत्र का जन्म हुआ। चलो अच्छा

हुआ। एक को जानते हुए, अब हम सुखी होंगे, वह हमें कमाकर देगा। जानने में तो विपरीत श्रद्धापूर्वक जानता है। विपरीत मान्यता, विपरीत ज्ञान और राग करके जानता है। इसलिये वर्तमान दुःखी और भविष्य में भी दुःखी है। कहो, समझ में आया? '**इसलिये दुःख ही है। यही प्रवचनसार में कहा है।**'

सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्ध तं मोक्खं दुःखमेव तथा।।७६।।

'**अर्थ :-- जो इन्द्रियों से प्राप्त किया सुख है वह पराधीन है,...**' लो, शब्द, रूप, रस, गंध और... समझ में आया? वर्ण और मन की कल्पना--यह सब इन्द्रियों से प्राप्त हुआ सुख पराधीन है। '**बाधासहित है,...**' यह बात अपने विस्तार से आ गयी है। इन्द्रियों के सुख में विघ्न है। वह उसी रूप रहे, यह कहीं आत्मा के आधीन नहीं है। '**विनाशीक है,...**' इन्द्रियों के विषय ही नाशवान अनित्य हैं। स्वयं अविनाशी नित्य है। '**बन्ध का कारण है...**' विषय बंध के निमित्त हैं और वह विषय '**विषम है,...**' एकरूप रहनेवाले नहीं है और दुःख कारण है। '**सो ऐसा सुख इस प्रकार दुःख ही है।**'

'**इस प्रकार इस संसारी जीव द्वारा किये उपाय झूठे जानना।**' लो, क्या उपाय किया? जानने में बहुत विषयों को ग्रहण करुँ और नयी-नयी इच्छा करके इच्छा पूर्ण करुँ। समझ में आया? उसी प्रकार इन्द्रियों को पुष्ट करके मेरी इच्छा पूर्ण करुँ, ऐसा जो उपाय करना चाहता है, उसके वह उपाय झूठे हैं। वह विषय की तृप्ति के कारण नहीं है। कहो, बात बराबर समझ में आती है?

'**तो सच्चा उपाय क्या है? जब इच्छा तो दूर हो जाये...**' देखो, अब दो न्याय देते हैं, दो। '**जब इच्छा दूर हो जाये और सर्व विषयों का युगपत् ग्रहण बना रहे तब यह दुःख मिटे।**' देखो, दो बात हुई। ज्ञान की पर्याय हिन है इसलिये युगपत् जानना एकसाथ होता नहीं है और इच्छा है वह नयी-नयी होने से इच्छा की पूर्णता नहीं होती है। इसलिये एक-एक विषयग्रहण से और एक-एक इच्छा से वह इच्छा पूर्ण नहीं होती है और ज्ञान में तृप्ति नहीं होती है। जब इच्छा दूर हो, देखो निमित्त मिला, और सर्व विषयों का युगपत् ग्रहण हो, दूसरी बात। ज्ञान में उघाड़ कम है, पूर्ण उघाड़ करे तो सब विषयों को जाने और कम उघाड़ में जो इच्छा से विषय को देखता है, वह इच्छा दूर करे तो दुःख मिटे। इसके बिना दुःख मिटे नहीं। समझ में आया? क्या उपाय कहा?

उस इच्छा को दूर करना और सब को युगपत् जानना। '**सो इच्छा तो महो जाने पर मिटे...**' मोह मिटाये बिना इच्छा मिटे नहीं। '**और सब का युगपत् ग्रहण**

**केवलज्ञान होने पर हो।**' देखो! दो बात कही। मोह का नाश करे तो इच्छा दूर हो और सर्व का ग्रहण केवलज्ञान करे तो हो। अस्ति-नास्ति से बात कही। इच्छा का नाश मोह का नाश करे तो हो। समझ में आता है? और सर्व का युगपत् ज्ञान केवलज्ञान प्रगट करे तो हो। उस मोह के नाश का और केवलज्ञान की उत्पत्ति करने का यानी कि इच्छा दूर करने का और सर्व को युगपत् जानने का... इच्छा को दूर करने का और सर्व को युगपत् जानने का उपाय '**सम्यग्दर्शनादिक है...**' लो, यह उसका उपाय।

इन्द्रियों की पुष्टी करना, एक-एक विषय को जानना और वह सब ज्ञान एकत्रित करना और इच्छा को टालूँ, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। लो, उपाय लाकर रखा। इच्छा को दूर करने का उपाय मोह का नाश करना है और सब को ग्रहण करने का उपाय केवलज्ञान की उत्पत्ति है। उस मोह का नाश और केवलज्ञान की उत्पत्ति सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से होती है। लो, इच्छा और मोह का नाश सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से होता है। मोह का नाश होनेपर केवलज्ञान की उत्पत्ति, सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से होती है। दूसरा कोई उपाय से होता नहीं। ल्यो, विषयों को बहुत जानना, इन्द्रियों की बहुत पुष्टी करनी, जल्दी-जल्दी विषयों को बदलकर एकदम तृप्ति करनी, यह उपाय कहीं सच्चा नहीं है। लो, लाकर रखा।

मोह का नाश और केवलज्ञान की उत्पत्ति। अर्थात् न्यून ज्ञान की पूर्णता और इच्छा का अभाव। अल्प ज्ञान का नाश करके पूर्ण ज्ञान और इच्छा है उसका अभाव अर्थात् मोह का अभाव। मोह का अभाव और केवलज्ञान की उत्पत्ति मोक्षमार्ग से होती है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से होती है, इसके अतिरिक्त कोई उपाय है नहीं। इन्द्रियों की पुष्टी से नहीं, विषयों को जानने से नहीं। समझ में आया? नयी-नयी इच्छा करूँ और फिर ज्ञान एकत्रित करूँ और विषयों का एकदम संग्रह करूँ, यह सब अज्ञानी के उपाय, इच्छा टालने का और ज्ञान को एकत्रित करने का सच्चे नहीं हैं। सच्चा उपाय तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। आत्मा परिपूर्ण आनन्दकंद है, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान, उसकी रमणता करते-करते मोह और इच्छा का नाश हो और केवलज्ञान होता है। दूसरा कोई आत्मा के सुख का, इच्छा के नाश का और सब को युगपत् जानने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

'**यही सच्चा उपाय जानना।**' तो यह सब असत्य उपाय हुए? वाड़ीभाई! पुत्र को शिक्षित करके खुशी होना, मकान बनाकर खुशी होना, स्त्री खुश हो तो खुशी होना, पुत्र होशियार हो तो खुशी होना, पुत्र का अच्छे ठिकाने ब्याह हो तो खुशी होना। मोहनभाई! यह उपाय सत्य होंगे कि नहीं? स्वयं बहुत पढ़ाई करके ... खुशी

होना, यह सब उपाय सत्य है कि असत्य? वह सब शून्य करने जैसे उपाय हैं। रतिभाई! कहो, यह फिल्म देखकर खुशी होना। कहो, ... की फिल्म आयी है न? नयी-नयी बुद्धि उसमें से खिले, एक देखे तो दूसरा भूल जाये, दूसरा देखे तो तीसरा भूल जाये, वह एकत्रित होता नहीं। कहो, समझ में आया?

आत्मा का स्वभाव ज्ञान, उसकी एक समय की पर्याय में उघाड़ कम, वह सब को ग्रहण करने जाता है, वहाँ उन सब को ग्रहण करने की ताकत ही नहीं है और इच्छा से तृप्ति करने जाये तो नयी-नयी इच्छा होती रहती है। इसलिये एक ही सत्य उपाय है कि इच्छा नाम विकार को मिटाना और केवलज्ञान की पर्याय प्रगट करनी। यानी पूर्ण ग्रहण करे ऐसी दशा प्रगट करनी और अल्प भी इच्छा रहे नहीं। अर्थात् विकार रहे नहीं। विकार माने मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। यह तीन न रहे और सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र द्वारा केवलज्ञान होकर मोह का नाश होता है। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

'**इस प्रकार तो मोह के निमित्त से ज्ञानावरण-दर्शनावरण का क्षयोपशम भी दुःखदायक है उसका वर्णन किया।**' क्या वर्णन किया? कि उघाड़भाव दुःख कारण क्यों कहा? मोह के निमित्त से। वह उघाड़ दुःख का कारण नहीं है। क्षयोपशम है न? क्षयोपशम ज्ञान, वह दुःख का कारण नहीं है। परन्तु मोह के निमित्त से इच्छा के कारण ज्ञानावरण, दर्शनावरण का जो उघाड़ भी दुःखदायक है, उसका वर्णन किया। इसलिये वह अल्प उघाड़ दुःखदायक है। क्योंकि साथ में इच्छा रही है, इच्छा साथ में रही है इसलिये। क्षयोपशम स्वयं दुःखरूप नहीं है। इसलिये प्रश्न करता है।

प्रश्नकार का प्रश्न है कि उघाड़ को आप दुःख का कारण क्यों कहते हो? देखो, प्रश्न। '**ज्ञानावरण-दर्शनावरण के उदय से जानना नहीं हुआ, इसलिये उसे दुःख का कारण कहो,...**' जितना जानने-देखने का भाव नहीं है उसे तो दुःख का कारण कहो, परन्तु जितना उघाड़--क्षयोपशम है उसको दुःख क्यों कहते हो? ...भाई! प्रश्न बराबर है? यह जानना-देखना न हो वह तो दुःख का कारण है ऐसा कहो, परन्तु जो उघाड़ है उसे आप ने दुःख का कारण क्यों कहा? ऐसा प्रश्नकार ने प्रश्न किया।

'**समाधान :-- यदि जानना न होना दुःख का कारण हो तो पुद्गल के भी दुःख ठहरे...**' तो इस जड़ को बहुत दुःख ठहरे--लकड़े को। नहीं जानना यदि दुःख हो... देखो न्याय! आत्मा में जितना उघाड़ नहीं है, यदि वह दुःख हो तो, तो फिर लकड़े को अधिक दुःख होना चाहिये। क्योंकि लकड़े में बिलकुल ज्ञान नहीं है। बराबर है यह? जानना न होना वह यदि दुःख का कारण हो तो पुद्गल नाम जड़ को भी दुःख ठहरे। उसमें ज्ञान नहीं है तो बहुत दुःखी होगा, वह तो बहुत

दुःखी होगा। दुःखी तो है नहीं। '**परन्तु दुःख का मूलकारण तो इच्छा है...**' न जानना वह दुःख का कारण नहीं है। दुःख का मूल कारण तो इच्छा, विकार (है)। समझ में आया? '**इच्छा है और इच्छा क्षयोपशम से होती है,...**' थोड़ी समझने जैसी बात है।

ज्ञान और दर्शन की अवस्था अल्प है, उस भूमिका में इच्छा होती है ऐसा कहना है। जहाँ ज्ञान पूर्ण प्राप्त हुआ है वहाँ इच्छा होती नहीं। सर्वज्ञदशा जहाँ आत्मा में हो, वहाँ इच्छा होती नहीं। इसलिये कहते हैं कि अल्प ज्ञान से इच्छा होती है ऐसा वर्णन किया है। वास्तव में उस ज्ञान से इच्छा नहीं होती है। परन्तु जो अल्प ज्ञान है, उस भूमिका में उसे इच्छा हो जाती है। वह राग का दोष है। परन्तु यहाँ क्षयोपशम को निमित्त गिनकर इच्छा में निमित्त मोह और क्षयोपशम में दुःख का निमित्त इच्छा। समझ में आया?

'**इच्छा क्षयोपशम से होती है, इसलिये क्षयोपशम को दुःख का कारण कहा है;...**' कम उघाड़ हो उसे इच्छा रहा करती है। बहुत जानुँ, बहुत विषय ग्रहण करुँ, नयी-नयी इच्छा करुँ, जगत में मान प्राप्त करुँ, ऐसा करुँ-ऐसा करुँ इस प्रकार मिथ्या प्रयत्न करता रहता है, व्यर्थ प्रयत्न। और कम ज्ञान में इच्छा उत्पन्न हुई इसलिये कम ज्ञान इच्छा का कारण बना। अपेक्षा से कहा है। '**परमार्थ से क्षयोपशम भी दुःख का कारण नहीं है।**' लो, वास्तव में ज्ञान और दर्शन का उघाड़ का अंश है वह कहीं दुःख का कारण नहीं है और उसका अभाव है वह भी दुःख का कारण नहीं है। लो, ज्ञान और दर्शन की उघाड़रूप पर्याय भी दुःख का कारण नहीं है, और उघाड़ नहीं हुआ है वह भी दुःख का कारण नहीं है। दुःख का कारण तो एकमात्र परपदार्थ की इच्छा, पराधीनता, परपदार्थ मिले तो सुखी होऊँ--ऐसी इच्छा, सुखी होऊँ ऐसी इच्छा ही दुःख का कारण है।

'**जो मोह से विषय-ग्रहण की इच्छा है वही दुःख का कारण जानना।**' लो, इच्छा दुःख का कारण है। 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल, क्या इच्छत खोवत सबै,' इच्छा है वहाँ आत्मा के ज्ञान-दर्शन की पर्याय की शक्ति का घात होता है। 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल।' इच्छा कौन करता है? अंतर में सुख और शांति न देखे वह। वह परपदार्थ की इच्छा करता है। इसलिये इच्छा तो दुःख का मूल ही है। '**वही दुःख का कारण जानना। मोह का उदय है सो दुःखरूप ही है...**' वह इच्छा और मोह का उदय निमित्त है। समझ में आया? '**सो दुःखरूप ही है, किस प्रकार सो कहते हैं :--**' अब यह दर्शनमोह का उदय और चारित्रमोह के उदय की परिभाषा बतानी है।

दर्शनमोह के उदय से होता दुःख और उसके उपायों का मिथ्यापना। अनादि अज्ञानी जीव '**दर्शनमोह के उदय से मिथ्यादर्शन होता है;...**' क्या कहते हैं? दर्शनमोह है वह मिथ्यात्व के परमाणु जड़ धूल है। उसका जब उदय होता है तब, अज्ञानी विपरीत श्रद्धा करे तो उस कर्म को निमित्त और उदय कहने में आता है। उस मिथ्याश्रद्धा के कारण अनादि का अज्ञानी, '**उसके द्वारा जैसा इसके श्रद्धान है वैसा तो पदार्थ होता नहीं है,...**' क्या कहते हैं? उस अज्ञानी की जैसी श्रद्धा है वैसा पदार्थ का स्वरूप नहीं है। तथा जैसा पदार्थ का स्वरूप है वैसा वह मानता नहीं है। देखो न्याय! अस्ति–नास्ति की है। '**उसके द्वारा जैसा...**' मिथ्या मान्यता ही अनंत संसार का कारण है। मिथ्यादर्शन शल्य––विपरीत रुचि और विपरीत अभिप्राय, '**उसके द्वारा जैसा इसके श्रद्धान है वैसा तो पदार्थ होता नहीं है...**' पदार्थ मुझे सुख का कारण है, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है। वह पदार्थ वैसा नहीं है। समझ में आया? श्रद्धान है वैसा पदार्थ नहीं है और जैसा पदार्थ का स्वरूप है ऐसा मानता नहीं है।

पदार्थ है सो निमित्तमात्र है। पदार्थ आत्मा को सुख–दुःख उत्पन्न नहीं करते हैं। परन्तु मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि यह निमित्त आया तो (सुख) हुआ। ऐसी मिथ्यादृष्टि की मान्यता अनुसार पदार्थ नहीं है और पदार्थ है ऐसी उसकी मान्यता नहीं है, इसलिये दुःखी हो रहा है। कहो, बराबर है? यह पैसा मुझे सुखरूप है। पैसा का स्वरूप तो ऐसा नहीं है। यह लड्डु मुझे सुखरूप है। लड्डु का सुख नहीं है। उसकी मान्यता अनुसार पदार्थ नहीं है और पदार्थ अनुसार मान्यता नहीं है। देखो, कन्हैयालालजी! यह पुत्र मेरे हृदय का हार है। (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। तेरी श्रद्धा अनुसार पदार्थ नहीं है। वह तो परवस्तु ज्ञेय है और जैसा पदार्थ है वैसा तू मानता नहीं है। यह पुत्र मुझे हुआ इसलिये मुझे राग होता है। यह होशियार है इसलिये राग होता है और पागल जन्मा इसलिये मुझे द्वेष होता है। पदार्थ का स्वरूप ऐसा नहीं है और तेरी मान्यता है ऐसा पदार्थ नहीं है। समझ में आया? '**इसलिये उसको आकुलता ही रहती है।**' आकुलता ही रहती है, ऐसा लिया। अब आगे।

'**जैसे––पागल को...**' अब न्याय देते हैं पदार्थ के स्वरूप का। जैसे कोई पागल को किसीने वस्त्र पहनाया। '**पागल को किसीने वस्त्र पहिना दिया। वह पागल उस वस्त्र को अपना अंग जानकर अपने को और वस्त्र को एक मानता है।**' पहिना दिया किसीने और... अब वह पागल उस वस्त्र को अपना अंग जानकर स्वयं को और वस्त्र को एकरूप मानता है। परन्तु '**वह वस्त्र पहिनानेवाले के आधीन होनेसे...**' पहिनानेवाला पहिनाये तब तक रखे, और निकाल दे तो (निकाल देना पड़े), निकालो चलो। इसको रख दो पागल की होस्पिटल में। ऐसा वस्त्र उसे नहीं

हो सकता। वह वस्त्र ले ले। वह पहिनानेवाला कभी उस वस्त्र को फाड़े, पहिनानेवाला हाँ! ध्यान रखना। अथवा पहिनानेवाला कभी वस्त्र को जोडे, खोंसे। वस्त्र छोटा लगे तो बड़ा करे, बड़े को छोटा करे। कभी ले ले, पागल को वस्त्र पहिनाया वह कभी ले ले, '**कभी नया पहिनाता है--इत्यादि चरित्र करता है।**' अर्थात् पहिनानेवाला इस प्रकार का वर्तन करे।

तब, '**वह पागल...**' उस वस्त्र की पराधीन क्रिया होने पर भी, वह पागल-बहावरा वस्त्र की पराधीन क्रिया होने पर भी, उसको अपने आधीन मानकर '**महा खेदखिन्न होता है।**' आहाहा..! अरे..! यह वस्त्र मेरा, यह ले जाता है, यह फाड़ता है। लेकिन उसने पहिनाया है, उसकी इच्छानुसार छोटे का बड़ा करे, बड़े का छोटा करे। वह वस्त्र तो उसका है, कहाँ तेरा था? समझ में आता है? कभी ले ले, कभी नया भी करे। देखो, चार बात हुई। समझ में आया? पहिनानेवाला कभी वस्त्र को फाड़े, छोटा करे, टूकड़े करे, कभी जोड़ दे, कभी ले ले, कभी नया बनाये। इस प्रकार '**वह पागल उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीन क्रिया होङ्ती है, उससे वह महा खेदखिन्न होता है।**' यह दृष्टान्त (हुआ)।

'**उसी प्रकार इस जीव को कर्मोदय ने शरीर सम्बन्ध कराया।**' यह शरीर का वस्त्र तो कर्म के कारण प्राप्त हुआ है, आत्मा के कारण नहीं। बराबर है यह? अब, '**यह जीव उस शरीर को अपना अंग जानकर...**' शरीर का अंग (अपना) जानकर। शरीर अच्छा हो तो मुझे ज्ञान हो, आँखें अच्छी हो तो मुझे ज्ञान हो, कान अच्छे हो तो मुझे ज्ञान हो, पैर चले तो मुझ से यात्रा हो। यह मूर्ख, शरीर को कर्म ने पहिनाया उसे अपना मानकर, जड़ की क्रिया से मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यादृष्टि मूढ़ मान रहा है।

'**यह जीव उस शरीर को अपना अंग जानकर अपने को और शरीर को एक मानता है।**' परन्तु '**वह शरीर कर्म के आधीन...**' देखो, ध्यान रखना। कर्म ने दिया है। शरीर किसने दिया है? कर्म ने। अब, '**कर्म के आधीन कभी कृष होता है,...**' पतला पड़ जाये। पतला पड़ जाये तब, अरे..! मैं पतला हो गया। परन्तु वह तो जड़ पतला हुआ है। वह तेरे आधीन नहीं है। कर्म ने दिया था, कर्म ने कृष किया। उसमें फाड़ा था, वस्त्र को फाड़ा था। यहाँ पतला किया। जिर्ण, जिर्ण हो गया। '**कभी स्थूल होता है,...**' उसमें जोड़े, टूकड़ा जोड़ दिया। इस प्रकार कभी परमाणु कर्म के कारण आकर पुष्ट हो, निरोगी हो, गाल लाल हो, लहुवाले हो वह सब कर्म के निमित्त की क्रिया जड़ की परमाणु में परमाणु के कारण होती है। अज्ञानी मानता है कि यह शरीर की पर्याय मेरी हो रही है, मेरा अंग है वह। मेरे कारण

होती है। कहो, समझ में आया?

एक पैर का ऐसे चलना, पैर, वह जैसा कर्म का निमित्त हो उस अनुसार पैर चले। मूढ़ ऐसा मान बैठता है कि मेरी इच्छानुसार पैर (चलता है)। मेरा अवयव है, वह मेरा अवयव है--मेरा अंग है। कहो, समझ में आया कि नहीं? ये दो-दो, पाँच-पाँच मिल चलता है तो आत्मा शरीर को चला सकता है न? कहो, तीस-तीस मिल पालीताणा से राणपुर जाये। तीस मिल होते हैं। आत्मा हो तो शरीर को चलाये न? हराम है कि आत्मा शरीर को चलता हो तो। वह कर्म की दी हुई वस्तु है। कर्म निमित्त है और वस्तु यह है। निमित्त से बात करते हैं न। इसको बाद में कहेंगे-स्वतंत्र वस्तु बाद में कहेंगे। अभी कर्म के निमित्त से बात शरीर की करी कि निमित्त से प्राप्त हुआ शरीर, निमित्त में मूढ़ता हो, शरीर कृष हो, अमुक करे तो पुनः ... तो शरीर पुष्ट हो।

'**कभी नष्ट होता है,...**' आयुष्य पूर्ण हो गया तो शरीर चला जाये। '**कभी नवीन उत्पन्न होता है,...**' नवीन शरीर हो, नया-नया। नष्ट हो जाये माने मृत्यु। नया उत्पन्न हो माने जन्म। '**इत्यादि चरित्र...**' इत्यादि में चलना, फिरना, पैर ऐसा करना, पैर ऊपर-नीचे होना वह सब जड़ की क्रिया कर्म के निमित्त अनुसार होती रहती है। फिर भी मूढ़ मिथ्यादृष्टि, यह शरीर की क्रिया मेरे कारण होती है, यह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मूढ़ है। जैसा वह मानता है वैसा शरीर नहीं है और शरीर है ऐसा मानता नहीं है। बराबर है यह बात? यह तो बड़े-बड़े साधु नाम कहलानेवाले ऐसा मान रहे हैं। दलीचंदभाई! नाम धारण करनेवाले, हाँ! यह जड़ मिट्टी--धूल, शरीर और उसका पतला पड़ना, स्थूल होना, सड़ जाना, नवीन-नवीन इत्यादि अर्थात् वर्तमान में चलना.. भाई! वर्तमान में ऐसा नहीं? ऐसे गिर जाना, ऐसे सोना, गरदन का ऐसा होना, गरदन का ऐसा होना, वह आत्मा के आधीन नहीं है। यह बात कहाँ-से आयी? समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि, पदार्थ का स्वभाव उसके कारण परिणमे और उसमें कर्म का निमित्त है। तब (वह) कहता है कि मेरे कारण से ऐसा होता है। बराबर ऐसा करुँ, पैर ऐसे चौड़े करुँ। कहते हैं, आँख में .. रखे। तब कहे कि, मुझे ... कील लगी, पुनः डॉक्टर ने ठीक कर दिया। डॉक्टर ने बापू! बहुत उपकार किया। वह सब कर्म की चेष्टा निमित्त का इस देह में होते रहते हैं। अज्ञानी मानता है कि मैंने किया। आँख में मोतियाबिंद उतारे तो कहते हैं न, रोशनी मिले। धूल में मिली? कहाँ-से मिली? ...भाई! ये मोतियाबिंद उतारते हैं न? फूली, फूली। फूली, मोतियाबिंद क्या कहते हैं? वेल। वेल-वेल होती है न? आँख में वेल (नेत्ररोग) पकती है। परन्तु वेल

पकनी, फूली का होना, मोतियाबिंद रहना, वह कर्म का निमित्त। मोतियाबिंद का टलना वह कर्म का निमित्त। तब कहता है कि, इस जीव ने मेरा अच्छा काम किया और मेरी होशियारी के कारण मैंने यह अच्छा काम किया। उस वस्तु का स्वभाव ऐसा नहीं है, ऐसा यह मानता है और मानता है वैसा पदार्थ नहीं है। ... कैसा है?

यह होंठ हिलना, मैं धीरे-धीरे बोला तो भाषा सुलटी निकली, जोर से बोला तो ऐसी निकली, यह सब इसकी (क्रिया है)। यहाँ चार बोल तो स्थूलरूप से लिये हैं। छोटा, स्थूल, मरना और जन्म होना। '**इत्यादि चरित्र होते हैं।**' उस वस्त्र में भी ऐसे लेना। वह वस्त्र लंबा हो तो उसको ऐसा करे, वह मनुष्य। ये लड़के को करते हैं न उसकी माँ? टट्टी करवाने बिठाये तो कपड़ा ऊँचा करे, ऐसा करे, वैसा करे। वह तो उसके आधीन है, इसके आधीन कहाँ था? ऐसे यह वस्त्र--शरीररूप वस्त्र जड़ मिट्टी--धूल पुद्‌गलास्तिकाय है। पोपटभाई! उसके होंठ हिलना, आँखें ऐसे होना, ऐसे होना, हाथ का ऐसा होना, अँगूली का ऐसे मुड़ना, वह सब क्रिया जड़ की स्वतंत्र पदार्थ हुआ करता है। उसमें मात्र कर्म का निमित्त है। तब, अज्ञानी मानता है कि मेरे कारण यह होता है। उसका नाम बड़ा मिथ्यादृष्टि--अज्ञानी--अधर्मी उसे कहने में आता है। बराबर है यह ज्ञानचंदजी? ठीक बात है? लो।

शरीर में '**इत्यादि चरित्र होते हैं।**' हैं! शरीर का एक अवयव बढ़ जाये, हड्डी बढ़ जाये, ये कोंढ बढ़ जाये। नहीं होता है? कोंढ निकले। कोंढ समझते हो? (पीठ की) हड्डी बाहर निकलती है। आँख में ऐसा हो जाता है, वैसा हो जाता है, दांत निकल जाये। अरे..! मुझे ऐसा धक्का लगा, आदमी ने धक्का मारा तो मेरा दाँत टूट गया। हराम है। वह तो कर्म ने दी हुई उसकी विचित्र कला (है)। वह, निमित्त से जड़ में होता रहता है। वह वस्त्र पहिनानेवाले के आधीन है वस्त्र को कैसे रखना वह। वैसे, शरीर को कैसे रखना यह कर्म के निमित्त के आधीन है। कोई उपचार के आधीन है नहीं। पोपटभाई! बात में बड़ा फ़र्क़, पूर्व-पश्चिम जितना। रतिभाई! ये दवाई क्यों करवाते होंगे लोग? वह तो कहते हैं कि इच्छा हो। शरीर पुष्ट रहना और कृष होना, वह तो जैसा कर्म का निमित्त हो उस अनुसार बनता है।

उस शरीर में '**इत्यादि चरित्र होते हैं।**' कहो! पैर का ऐसे फिसल जाना। समझ में आया? केले का छिलका आये तो पैर फिसल जाये, वह किसकी कला है? छगनभाई! वह कर्म के निमित्त की शरीर की अवस्था है। मैंने ध्यान नहीं रखा इसलिये पैर फिसल गया। हराम बात है। तुझे पदार्थ की खबर नहीं है। नव पदार्थ में अजीव पदार्थ किसे कहना? पुद्‌गलास्तिकाय किसे कहना इसकी श्रद्धा की भी तुझे खबर नहीं है। और मिथ्यादृष्टि को श्रद्धा की खबर नहीं है। चाहे जैसे क्रियाकांड करे तो भी

उसे सब अधर्म ही है। उसे धर्म–बर्म होता नहीं। कहो! इत्यादि चरित्र इस प्रकार उसकी पराधीन क्रिया होने पर भी **'यह जीव उसे अपने आधीन...'** जानकर। अपने आधीन जानकर, देखो! मैंने शरीर को ऐसे नहीं रखा, दो घण्टे मैं ऐसे ही बैठा रहा तो पैर अकड़ गया, पैर अकड़ गया। अब, पैर तो अकड़ने कारण अकड़े बिना रहे नहीं, तीन काल तीन लोक में। तेरी इच्छा और तेरा ज्ञान वहाँ काम नहीं आता। वह तो जैसे कर्म का निमित्त हो, वैसा होता है। मैंने पैर ऐसे रखा तो मुझे झुनझुनी हो गयी। ऐसे झुनझुनी हुई थी और मैं खड़ा हुआ, ध्यान नहीं रहा तो गिर गया। झुनझुनी हुई थी, दो मिनिट खडा रहा होता तो झुनझुनी ऊतर जाये तबतक तो गिरता नहीं। हराम बात है। वह गिरने की जड़ की क्रिया के समय हुए बिना रहे नहीं। उस विचित्रता की कला का चरित्र जड़ का जड़ के कारण से (होता है), उसमें पूर्व कर्म का निमित्त है। तेरी इच्छा से उसमें कुछ बनता नहीं।

मुमुक्षु :-- ऐसा मानने से जीव को क्या लाभ?

उत्तर :-- ऐसा मानने से संसार का नाश होकर आत्मा का आनंद आये। ऐसा मानने से पराधनता का नाश होकर स्वाधीनता हो। इसके अतिरिक्त तीन काल में दूसरा कोई उपाय है नहीं।

देखो न! कितनी बात करी है। इस शरीर से शुरूआत की है, बाद में दूसरी कहेंगे, हाँ! पहले निमित्त से यहाँ बात शुरू की है। कर्म का निमित्त है। दूसरे में स्वतंत्र कहेंगे। समझ में आया?

उस पागल--बहावरे को जैसे दूसरे मनुष्य ने वस्त्र पहनाया। उसकी माँ के आधीन है कि नहीं? ये लड़के को वस्त्र पहनाते हैं। उसकी माता उसको ... पहनाये, सर्दी में, ऐसे डाले, ऐसे डाले, चहेरा खुल्ला रखकर ऐसे डाले, फिर ऊपर उठा ले। पोपटभाई! उसकी माता के आधीन है कि नहीं? क्या पहनते हैं? ... फलाना पहने, ऊल्टा पहने, ऐसा करे, वैसा करे, वह तो उसकी माता के आधीन है, उसको कहाँ भान था?

ऐसे जड़ की पर्याय चैतन्य का ज्ञान और राग के आधीन नहीं है। शरीर की यह अवस्था इस अँगूली का ऐसे हिलना और ऐसे होना आत्मा के आधीन तीन काल में नहीं है। मिथ्यादृष्टि मूढ़ ने पदार्थ के स्वभाव को जाना नहीं है। इसलिये उसकी श्रद्धा विपरीत है। उस अनुसार पदार्थ का स्वरूप नहीं है। पदार्थ उसके कारण हो रहा है। फिर भी पदार्थ है ऐसी श्रद्धा नहीं है, श्रद्धा है वैसा पदार्थ नहीं है। इसलिये उसको मिथ्यादर्शन कहते हैं। समझ में आया? दस्त को कब्जे में रखना चाहे कि दस्त की खाज हो रही है, बाहर जाना कि अन्दर रहना? अरे..! एक मिनिट

के लिये भी तेरे हाथ की बात नहीं है। वह दस्त जब निकल जानेवाला है तब निकल जायेगा। पेशाब जब छूटनेवाला है तब छूट जायेगा। पेशाब छूटनेवाला होगा तब छूट जायेगा। तू रोकना चाहे तब रुक जायेगा (ऐसा नहीं है)। ... कोई जड़ की पर्याय अन्य प्रकार से हो। वह शरीर का चरित्र नाम वर्तन, उसमें कर्म का निमित्त है उस प्रकार से वर्तन होता रहता है।

आत्मा उसका जाननेवाला दृष्टा-ज्ञाता है ऐसा नहीं मानकर मेरे आधीन प्रवर्तेगा और हम रखना चाहेंगे वैसे रहेगा। बहुत लोग नहीं मानते हैं? पथ्य खायें तो आयुष्य लंबा बढे, श्वास बहुत कम लेना जिससे आयुष्य लंबा (रहे), शरीर बढ़े। समझ में आया? पैर थलकना नहीं चाहिये, नाभि में ... लगे तो हमें निरोगता रहे। यह सब मूढ जीवों की मान्यता है।

मुमुक्षु :-- आरोग्य शास्त्र...

उत्तर :-- आरोग्य शास्त्र ही झूठा है पूरा। और उसके कारण रहता है, आरोग्य शास्त्र कौन कर देता है? आरोग्य शास्त्र बनानेवाला मर गया कि नहीं? धनवंतरी मर गया कि नहीं? धनवंतरी बड़ा वैद्य कहलाता था। जड़ की पर्याय कर्म के निमित्त के आधीन है। उसने यह पहनाया। .... पहनाया कहा न? लोग खोल कहते हैं न? कहो। एक बार कहते थे वह, खोल पहनाया। .... यह खोल, इस खोल को जैसा कर्म का निमित्त बने ऐसी उसकी चरित्र दशा होती रहती है। वस्त्र होता है न? यह नस .. हो जाती है। देखो, नहीं होती है? ऐसे हो जाये, मांसपेशी में दर्द होना, फलाना हो जाये। वह सब विचित्र क्रिया जड़ की वर्तमान पर्याय जड़ की है, उसमें निमित्त कर्म का है। आत्मा के कारण उसमें कुछ हो, यह बात नहीं है। लो, उसमें कर्म का निमित्त आया, आत्मा का निमित्त तो कुछ हुआ ही नहीं, इस ओरसे। इस ओर से निमित्त भी नहीं हुआ। भाई नहीं है? ...भाई। समझ में आया?

ऐसे कहा कि कर्म के निमित्त अनुसार यहाँ हो, परन्तु आत्मा के निमित्त अनुसार हो, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी नहीं लिया। समझ में आया? यह तो हस समय होता है। जैसा कर्म के उदय का निमित्त, वैसी जड़ में पर्याय जड़ के कारण स्वतंत्र होती रहती है। उसमें कोई नियम बदलता नहीं। फिर भी अज्ञानी माने। वह पराधीन क्रिया होने के बावजूद, अपने आधीन नहीं है, ऊलटी हो जाये, जुल्लाब हो जाये, निरोगी (रहे नहीं)। अरे...! हमें आया नहीं। भाई! पहले आये होता न, बुखार को बहुत दिन हो गये, पहले आये होते तो (मिट जाता)। अरे..! पहले, बाद में था ही कब? छः महिने हो गये बुखार को, यदि चार महिने पहले आये होते तो क्षय नहीं होता। अब, दूसरे नम्बर का क्षय हो गया है। वह तो जानेवाली पर्याय जायेगी

और रहनेवाली रहेगी। तीन काल तीन लोक में देह की पर्याय जिस क्षण जो होनेवाली है, उसका चरित्र कोई आत्मा बदल नहीं सकता। ओहोहो...! भारी बात भाई! इसमें क्या हो? यह देह मेरा नहीं है और मैं आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा करके स्थिति न्यून करे और स्वभाव बढ़ाये तो स्वाधीनता हो। बाकी इसमें कुछ बदले ऐसा नहीं है। वह तो मिट्टी और धूल है। जिस क्षण जैसा चरित्र (होनेवाला है), चरित्र यानी उसका वर्तन जो होनेवाला है वह होगा। वर्तन माने उसकी पर्याय जो होनेवाली है वह होगी। परन्तु मिथ्यादृष्टि को यह बात बैठती नहीं। त्याग नाम धरानेवाले को यह बात नहीं बैठती है। त्याग तो था ही कब? ...भाई! अभी अजीव और जीव दो तत्त्व भिन्न-भिन्न है। जीव पदार्थ भिन्न, अजीव पदार्थ भिन्न है। शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न है। उसका चरित्र--वर्तन क्षण-क्षण में बने वह मेरे आधीन है ही नहीं। वह तो पूर्व कर्म अनुसार होता रहता है, मैं उसका साक्षी और दृष्टा हूँ। ऐसा नहीं मानकर, इसको मैंने किया, ऐसा नहीं हुआ इसलिये ऐसा हो गया, उसकी यह मान्यता असत्य है। उसको स्वयं के आधीन जानकर '**महा खेदखिन्न होता है।**'

अब, दूसरी बात। '**तथा जैसे -- जहाँ वह पागल ठहरा था...**' अब दूसरी बात आयी। पहले शरीर आया, क्योंकि वह साथ-साथ सदा रहता है इसलिये उसको पहले लिया। अब कहते हैं कि एक पागल कहीं बैठा था। '**वहाँ मनुष्य,...**' एक पागल बाहर घुमने निकला और नदी किनारे बैठा। ऐसे में किसी जगह से '**मनुष्य, घोड़ा, धनादिक आकर उतरे...**' लक्ष्मी आदि, समझे न? कोई पैसा ... राजा, लोग निकले, कोई राजा हो, दिवान हो वह निकले। दस बजे का समय था। वह पागल भी वहाँ आकर पत्थर पर बैठा। दस बजे तो हाथी, घोड़ा, मनुष्य, नौकर, पैसा, रूपया, हीरा, माणिक गिनने लगे। पागल-बहावरा, पागल। '**घोड़ा, धनादिक आकर उतरे...**' मोहनभाई! क्या आया? हीरा, माणिक और पैसा आकर उतरा, जहाँ पागल बैठा था वहाँ। धनादि, वस्त्र आये, मकान आया, स्त्री आयी, पुत्र आया। समझ में आया?

'**वह पागल उन्हें अपना जानता है।**' लो, उन सब को पागल अपना जानता है। ... '**वे तो उन्हीं के आधीन कोई आते हैं,...**' पागल है उसके आधीन आये हैं? राजा आकर ठहरा, समय हुआ तो राजा चलने लगा। लोग आये थे, खा-पीकर लोग चलने लगे। घोड़ा आदि पानी पीने आये थे वह पानी पीकर चलने लगे। पागल कहता है, ये क्यों जा रहे हैं? लेकिन तेरे कारण कहाँ आये है वे? समझ में आया? '**कोई जाते हैं, कोई अनेक अवस्थारूप परिणमन करते हैं;...**' कोई स्नान करता है, कोई पानी में डूबकी लगाये, कोई कपड़े धोये, कोई सुखाये, नदी

में आकर। कोई लोटे, कोई सोये। '**वह पागल उन्हें अपने आधीन मानता है, उनकी पराधीन क्रिया हो तब खेदखिन्न होता है।**' अरे..रे..! लेकिन मुझे पूछकर तो करो, पागल कहता है। ...भाई! पागल आकर बैठा था वहाँ वह सब वस्तुएँ आयी। आप को जाना था, लेकिन मुझे पूछना तो था। भले ही जाना था। लेकिन तुझे कौन पूछे? पागल! तेरे लिये कहाँ आये हैं और तुझे पूछकर कहाँ जानेवाले हैं। हम तो नदी किनारे पानी पीने आये थे, पीकर चल दिये। तेरे समीप विश्राम करने बैठे थे, भाई! विश्राम करके चलने लगे। पागल मानता है, ये मेरे आधीन है। अरे..रे..! पूछते नहीं है। यह गाय चली जा रही है, यह हाथी चला जाता है, लोग चलने लगे, अरे..! ये सब आये थे और चले जाते हैं।

'**उसी प्रकार यह जीव जहाँ पर्याय धारण करता है...**' वह तो दृष्टान्त है। जहाँ शरीर धारण किया, शरीर की बात पहले ली थी। जहाँ शरीर धारण किया, बनिये में, किसान में, नीच जाति में, नागर में कहीं से आया। '**वहाँ स्वयमेव पुत्र...**' आया। दूसरी जगह से आये, हाँ! वह पागल बैठा था वहाँ जैसे लोग कहीं से आये, वैसे यह कहीं जन्मा और पुत्र कहीं से आया। घोड़ा कहीं से आया, स्त्री कहीं से आयी, लक्ष्मी कहीं से आयी, मकान के बड़े पत्थर पोरबंदर से आये। सफेद आते हैं न भाई? मक्खन जैसा सफेद। राजुला का पत्थर। समझे न? ... किसका? ... जिथरी का, वह सब पत्थर मकान में लग गये। ..भाई! कहो, पागल जैसे एक गाँवमें से बाहर निकला, अपना गाँव छोड़कर कहीं गया उसमें ... एकत्रित हो गयी। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र, यह-वह, वस्त्र, जेवर, इज्जत, आढ़तिया स्वयं प्राप्त होते हैं, ऐसा यहाँ कहा है। देखा? वहाँ कर्म का निमित्त आया था, देखो! उसमें शरीर में लिया था।

यह वस्तुएँ तो उसके कारण आकर प्राप्त होती है, तेरे कारण से कहीं आती नहीं है। तेरी इच्छानुसार नहीं आयी है। कोई अन्य जगह पुत्र का आत्मा था, वहाँ से मरकर यहाँ आया। कोई घोड़ा आया, घोड़ागाड़ी आयी, कोई हाथी आये, कोई बैल आये, कोई गाय आयी, भैंस आयी, पँडवा आये, समझ में आया? मित्र आये और आढ़तिया हुए कहीं से एकत्रित होकर। आढ़तिया स्वयं प्राप्त होता है। '**यह जीव उन्हें अपना जानता है।**' वस्तु कहीं से आयी, उसे अपनी जानता है। भाई! बापू! तू मेरा पुत्र है, मैं तेरा पिता हूँ। यह लक्ष्मी मेरी, यह पैसा मेरा, यह मकान मेरा, यह गाय, भैंस मेरी, '**वे तो उन्हीं के आधीन कोई आता है...**' उसके कारण आये और उसके कारण जाये। मोहनभाई! बराबर होगा यह? होशियारी नहीं होने के कारण जाये या वह उसके कारण जाये? होशियारी नहीं थी इसलिये नहीं (जाते हैं)? भाई! उसको पैसा रखना आया नहीं इसलिये चली गयी। व्यवस्था करनी आनी चाहिये।

पराधीन होकर कोई लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री, लड़के, वस्त्र, मकान आये और कोई जाये, उसकी स्थिति पूर्ण हुई अवस्था की पर्याय की दशा, तो चले जाये, उसके कारण।

उसमें आया था न? पतला, स्थूल, जन्मना और मरना और बीच की अवस्थाएँ। बीच की सब शरीर की अवस्थाएँ शरीर के कारण हो। समझ में आया? ऐसे में कहीं शरीर धारण किया वहाँ सब आये। ओहोहो..! पदार्थ की जिस अवस्थारूप परिणमे वह उसके कारण हो। पिताजी कुछ छोड़कर नहीं गये थे, यह सब हमने (अपने आप किया)। बड़े लेख लिखने में आये। जात मेहनत से सब इकट्ठा किया, बापू! उसके पिताजी के पास तो दो-पाँच हजार की पुंजी थी, इसने पाँच-पचास लाख कमाये, इज्जत जमायी, बड़ी इज्जत, पुत्र-पुत्री का ब्याह किया, शान व शौकत सब छोड़कर मर गया।

यहाँ कहते हैं कि, भगवान! शांत था, धीरा हो। देखो, यहाँ भी वह वस्तुएँ आती है वह उसके कारण आयी, उसके कारण जाये, बीच में उसके कारण अवस्थाएँ होती रहे। बीच में माने समझ में आया? बीच में रहने के काल में किसी के घर पर जाये, किसी के घर ऐसे जाये, पिटारा बदले, फलाना बदले, लड़के भी कहीं गये, कोई लड़का अलग भी हो गया। जीवित लड़के अलग हो जाये, लो। वाड़ीभाई! जीवित लड़के चले जाये। बापू! आप बैठो। हमें अलग होना है। मेरी स्त्री कितनों की रोटियाँ बनायेगी, दस घर के? इसके बदले मैं और मेरी पत्नी अलग रहेंगे तो ठीक होगा। स्वतंत्र (हुए)। उसके कारण है, हाँ! तेरे कारण नहीं। वह (पिताजी) व्याकुलता करे, इतना पढ़ाया, इतने पैसा खर्च किया, किसी का कहना मानता नहीं। तेरा कब था तो तेरा कहना माने?

'**अनेक अवस्थारूप परिणमन करते हैं...**' ऐसी उनकी पराधीन क्रिया होती है। '**उन्हें अपने आधीन मानता है...**' लो, उसके आधीन है और मानता है अपने आधीन। अपने आधीन मानकर यह जीव खेद.. खेद.. खेदखिन्न (होता है)। यह सबको लागू पड़ता होगा कि नहीं? मोहनभाई! सब त्यागी को, भोगी को, सब को? सब एक जाति के। जो कोई आत्मा के अतिरिक्त शरीर और अन्य वस्तु, आत्मा के आश्रित वह अवस्था होती है, ऐसा माने वह सब मिथ्यादृष्टि अज्ञानी, मूढ हैं। उसे धर्म का कोई जानपना नहीं है। बड़ी बात भाई! आत्मा पर के लिये निकम्मा होगा? आत्मा ऐसी अनंत शक्ति का स्वामी, आप तो बहुत बड़ा वर्णन करते हो। वह तेरे में या अन्य किसी में? हैं! अनंत शक्ति का स्वामी, अनंत गुण का स्वामी, महा आनंद का स्वामी, लेकिन तेरे में। तू तेरे में ऊलटा, सुलटा कर। बाकी पर में तेरे से कुछ हो ऐसी शक्ति पर में (नहीं है)। तेरे से हो ऐसा पर में भी नहीं है और पर से

तेरे हो ऐसी शक्ति तेरे में भी नहीं है। समझ में आया?

दो दृष्टान्त दिये, लो। एक बहावरा और वस्त्र का, और एक बहावर और अन्य वस्तु आकर चली जाये और वर्तमान दो घण्टा रहे, दो घण्टे रहकर उठे, जाये, जागे, सोये। वैसे यह पागल जैसा मनुष्य, मिथ्यादृष्टि पागल विपरीत मान्यता में तुझे उन्माद हुआ है। उन्माद है, उन्माद। लो, यहाँ तो निमित्त की बात उड़ायी। समझ में आया? समझ में आया कुछ? उन्हें अपने आधीन मानकर यह जीव खेदखिन्न होता है। क्योंकि आत्मा पर का कुछ करने में समर्थ है नहीं। कहो, बराबर है यह? आत्मा को शरीर मिले वह शरीर के स्वभाव अनुसार शरीर करे। और वस्तु की प्राप्ति वस्तु के कारण होती है, आत्मा के कारण उसमें हो नहीं सकता। फिर भी अज्ञानी खेदखिन्न और दुःखी होता है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**बुधवार, दि. १६-५-१९६२,**
**चौथा अधिकार, प्रवचन नं. ३**

मोक्षमार्ग प्रकाशक, चौथा अध्याय है। देखो! '**अनादि काल से जीव कर्म के निमित्त से...**' जो उपाधिभाव होता है, उसको भी अपना मानता है, वह आया यहाँ। जीव और अजीव का वर्णन चलता है। देखो क्या कहते हैं? देखो! आत्मा एक पदार्थ है और शरीरादि अनंत परमाणु का पिंड है तो अनंत द्रव्य है, यह (आत्मा) एक द्रव्य है। इस जीव को ऐसी बुद्धि उठती है कि 'यह मैं हूँ'। शरीर अनंत परमाणु का पिंड, यह मैं हूँ, यह मैं हूँ ऐसी बुद्धि होती है। बराबर है? शरीर से भिन्न और पाँच इन्द्रिय के विषय से भिन्न आत्मा है। अनादि काल से इन्द्रिय से विषय देखे और आत्मा इन्द्रिय से पार है उसकी प्रतीत की नहीं। अपनी शुद्ध चैतन्यसंपदा अनादि काल से शरीरादि परमाणु में, यह मैं हूँ, यह मैं हूँ (ऐसा माना) तो आत्मा उससे भिन्न है, ऐसी खोजने की उसकी दृष्टि रहती नहीं।

'**तथा स्वयं जीव है,...**' आत्मा तो चैतन्य चैतन्यस्वरूप जीव है। उसका स्वभाव

ज्ञान, दर्शन, आनंद है। ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि की पर्याय उसका स्वभाव है। विभाव तो क्रोध, मान, माया, राग-द्वेष भाव है। पुण्य और पाप, दया, दान, क्रोध, मान, माया, लोभ विभाव है। तो स्वभाव और विभाव दोनों को अपना मानता है। क्यों? कि ज्ञानानंद स्वभाव और विभाव, दोनों का एक काल में परिणमन है और दोनों की एक काल में उत्पत्ति होती है। और भिन्न भासने की दृष्टि तो है नहीं। अंतर्मुख मैं चैतन्य हूँ और बहिर्मुख उत्पन्न होनेवाले शुभ और अशुभ, पुण्य-पाप भाव मलिन है, ऐसी बुद्धि है नहीं, तो सब को मैं जीव हूँ, ऐसा मानता है। यह जीव-अजीव का अधिकार चलता है। समझ में आया?

देहादि की क्रिया और पुण्य-पाप का भाव, वह सब मैं हूँ। मैं चैतन्य हूँ, ऐसा पर से भिन्न तो कभी भेदज्ञान किया नहीं। पर के साथ अभेद.. अभेद.. अभेद.. शरीर मैं, वाणी मैं, कर्म मैं और पुण्य-पाप का भाव विकार और ज्ञानादि स्वभाव सब होकर मैं हूँ (ऐसा मानता है)। क्यों, दुर्गादासजी! रोग आता है तो कैसा होता है, देखो! शरीर में रोग आया तो मुझे आया, शरीर में फेरफार होता है तो मेरे में फेरफार हुआ। भगवान अपना अस्तित्व चैतन्य, विकार से और शरीर से भिन्न रखता है उसका तो पत्ता है नहीं और पत्ता मिलने का ज्ञान भी नहीं है। कहते हैं कि विभाव और ज्ञानादि स्वभाव है, उन सब को अपनी चीज मानता है। यहाँ तो जीव-अजीव अधिकार है न। वह अजीव को जीव मानता है। अथवा अपना ज्ञानानंद स्वभाव जीव है, उसको न मानकर विभावादि विकार और शरीरादि पर वही मैं हूँ, ऐसा मानता है। कहो, समझ में आया?

तथा पुद्गल परमाणु का स्वभाव--यह पुद्गल परमाणु, यह मिट्टी--शरीर, '**वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि स्वभाव है...**' इसका स्वभाव तो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श है। '**उन सब को अपना स्वरूप मानता है।**' उन सब को अर्थात् ज्ञान भी मैं, वीर्य भी मैं, देखनेवाला भी मैं, पुण्य-पाप का भाव भी मैं और यह शरीर परमाणु की अवस्था भी मैं। ऐसा सब को एक अपना मानता है। उसका नाम मिथ्यादर्शन कहने में आता है। यह मिथ्यादर्शन--मिथ्याप्रतीत--मिथ्याश्रद्धा। अपने चैतन्य को विकार और पर में मानना वही मिथ्यात्व है।

'**ये मेरे हैं'--इस प्रकार उनमें ममत्वबुद्धि होती है।**' शरीरादि में ऐसा लिया कि यह मैं हूँ। और ज्ञान, विकार, शरीरादि के परमाणु की सब अवस्था वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की वह सब मेरा है। पर से भिन्न करने का प्रयत्न करे तो कब करे? कि उसको ऐसा ख्याल में आये कि मैं चीज ही भिन्न हूँ। शरीर, वाणी, मन से भिन्न हूँ और मैं, विकार कृत्रिम एक क्षण में एक साथ ज्ञान, दर्शन की पर्याय उत्पन्न

होती है उसके साथ दया, दान का भाव उत्पन्न होता है, काल एक, परिणमन उसका फिर भी दोनों एक नहीं है। दोनों एक नहीं है। उसको जाननेवाला अथवा मलिन परिणाम पुण्य-पाप का दोनों एक नहीं है। परन्तु एक काल में उत्पन्न होते हैं और स्वभाव सन्मुख की दृष्टि है नहीं। अंतर्मुख दृष्टि है नहीं तो बहिर्मुख में अपना मानकर ज्ञान और आस्रव सब मैं ही हूँ। वह सब अजीव चीज है उसको अपनी मानता है। आस्रव का अधिकार बाद में भिन्न आयेगा, भाई! लेकिन यहाँ तो अजीव है सो अजीव है वास्तव में। पुण्य-पाप का भाव भी अजीव है, वह जीव नहीं है। और शरीर के परमाणु में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वह जीव नहीं, परन्तु सब को वह अपना मानता है। कहो, समझ में आया? उसको अनंत काल में भिन्नता करनी आयी नहीं। क्यों करे? अपनी चीज कोई दूसरी है, विभाव क्षणिक कोई दूसरी चीज है और शरीरादि का वर्ण, गंध, स्पर्श तो बिलकुल भिन्न चीज है। ऐसा अंतर में हुए बिना उसका भेदज्ञान करने का प्रयत्न भी कहाँ-से करे? सब को एक मानता है।

'**तथा स्वयं जीव है, उसके ज्ञानादिक की...**' अब अवस्था की बात करते हैं। वह गुण पर्यंत की बात कही थी, वर्ण, गंध आदि। अब जीव के ज्ञान, दर्शन की अवस्था हीनाधिक होती है। अपने में ज्ञान, दर्शन, वीर्य की हीन-अधिक अवस्था होती है। एक बात। और क्रोध, मान, माया की अधिक-हीन अवस्था होती है। विकार भी अधिक-हीन कभी कषाय मंद, कभी तीव्र, तीव्र में भी तीव्र, तीव्रता भी असंख्य विकार तीव्र अशुभ में भी असंख्य भेद है। और शुभ कषाय के मंद में भी असंख्य भेद हैं। तो उसमें हीनाधिकता होती है। तो ज्ञान, दर्शन की हीनाधिक अवस्था भी मैं और विकारी हीनाधिक अवस्था भी मैं। समझ में आया? ऐसा मानकर अजीव को ही जीव मानता है। जीव क्या चीज है, उसकी खबर नहीं। मिथ्यादर्शन शल्य के कारण ऐसा मानता है। भारी बात भाई! सब के साथ रहना और सब से... कहते हैं न? क्या कहते हैं? मगरमच्छ के साथ रहना और...

मुमुक्षु :-- समुद्र में रहना और मगरमच्छ के साथ बैर।

उत्तर :-- उसके साथ बैर। समुद्र में रहना और मगरमच्छ के साथ बैर। कहते हैं कि आप की हिन्दी में? ऐसा कहते हैं, सब के साथ रहना और सब से भिन्न। किसी के साथ है ही नहीं, वह तो मान रखा है--मैं शरीर। यह तो मिट्टी है। उसका वर्ण, गंध, रस, स्पर्श गुण भी भिन्न है और उसकी जो ऐसी अवस्था होती है--बाल, युवान, वृद्धावस्था भी शरीर की अवस्था शरीर में होती है, उससे आत्मा तो भिन्न है। परन्तु अज्ञान से अपनी ज्ञान, दर्शन, वीर्य की अवस्था अपने में अपने अस्तित्व में होती है और विकार अवस्था भी हीनाधिक होती है, हीनाधिक। ज्ञान, दर्शन की

हीनाधिक, विकारी हीनाधिक और शरीर की हीनाधिक। समझ में आया?

वर्ण, गंध आदि की '**पलटनेरूप अवस्था होती है उन सबको अपनी अवस्था मानता है।**' सबको अपनी अवस्था मानी। ऐसे, यह मेरी अवस्था मानता है, यह मेरी अवस्था है--शरीर की अवस्था (मेरी है)। मैं बालक हूँ, मैं युवान हूँ, मैं वृद्ध हूँ, मेरा शरीर जीर्ण हो गया, मेरा शरीर पुष्ट हो गया। वह मैं हूँ। ऐसा नहीं है? पेट में बहुत दर्द होता है तो चल नहीं सकता है।

मुमुक्षु :-- मेरे दुःख हुआ।

उत्तर :-- मेरे दुःख हुआ। क्या दुःख? शरीर की अवस्था आत्मा में आ जाती है? आत्मा में रागादिक की अधिकता, हीनादिक होती है, परन्तु शरीर अवस्था के कारण से होती है? लेकिन सब को अपनी अवस्था मानता है। अनादि काल से अपनी चैतन्यसंपदा क्या है उसका निवास उसमें कभी किया नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानज्योति चैतन्य (है)। विकार की हीनाधिक अवस्था, ज्ञानादिक हीनादिक पर्याय जितना आत्मा नहीं है। विकार तो नहीं, शरीर की अवस्था तो नहीं, ज्ञान-दर्शन की हीनाधिक अवस्था जितना भी आत्मा नहीं है। आत्मा त्रिकाल ज्ञायक चैतन्यभाव ध्रुव अनादिअनंत स्वभाव है, ऐसी दृष्टि कभी करी नहीं। मिथ्यादर्शन के कारण सब अवस्था को एक मानता है। ओहो..! लेकिन फूरसद कहाँ है? इस दुनिया में काम बहुत है, काम बहुत है। काम कितना करना? दवाई की कितनी बोतल उसके घर थी। दो-चार दिन गये थे। बहुत बोतल पड़ी थी। होती है न, सब के घर उसके प्रमाण में होती है न। किसी को दुकान की खातावही हो तो किसी को माल हो, दूसरे को.... आहाहा..! अब, इसमें आत्मा एक चीज, वह भी हीनाधिक ज्ञानादि अवस्था जितना नहीं। विकार तो नहीं, पर की अवस्था नहीं। ज्ञान-दर्शन की हीनाधिक पर्याय में--दशा में अनुभव करता है उतना भी नहीं। मैं तो ज्ञायक त्रिकाल चैतन्यद्रव्य अनादिअनंत स्वभाव चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य हूँ, ऐसी दृष्टि किये बिना अनादि काल से सब अवस्थाओं में अपना आत्मा मानता है।

'**ऐसी ममत्वबुद्धि करता है।**' देखो! ऐसी अवस्था में--विकार की अवस्था, ज्ञान-दर्शन की अवस्था और शरीर की अवस्था--तीनों अपनी है ऐसा मानता है। समझ में आया? तो वास्तव में तो शरीर की अवस्था मैं नहीं, विकार की हीनाधिक अवस्था मैं नहीं, ज्ञानादिक की हीनाधिक अवस्था जितना भी आत्मा नहीं। आहाहा..! हैं!

मुमुक्षु :-- यह कठिन बात है।

उत्तर :-- कठिन बात है। पहले कहा न? आगे आयेगा न? ८६ पृष्ठ पर आता है। '**इस जीव को मोह के उदय से मिथ्यात्व--कषायादिभाव होते हैं,...**' ८६

पृष्ठ पर प्रथम पंक्ति। '**उनको अपना स्वभाव मानता है,...**' उसको अपना स्वभाव मानता है। परन्तु वह '**कर्मोपाधि से हुए नहीं जानता।**' उपादि, निमित्त की उपाधि (है)। होता है अपने में अपने कारण से। परन्तु निमित्त के लक्ष्य से हुई उपाधि है। वह कहीं निरूपाधिक भाव नहीं है, निरूपाधिक भाव नहीं है। दया, दान, व्रत, तप का विकल्प, भक्ति, पूजा का जो भी राग है वह निमित्त संबंधी अपना नैमित्तिक विकार उपाधिभाव है। वह उपाधि भाव, ऐसा नहीं जानता है कि यह उपाधिभाव है। और मेरी उपाधि से भिन्न भाव का पत्ता नहीं है। क्यों? कि दर्शन, ज्ञान उपयोग और आस्रवभाव दोनों को एकरूप मानता है। पहले में अजीव का कहा था। पुण्य-पाप का भाव हीनाधिक हो वह मैं, जीव वह मैं ऐसा मानता था। यहाँ आस्रवभाव है वही मैं हूँ। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात, भाई! भगवान चैतन्यप्रकाश पुंज, ज्ञान-दर्शन उपयोग अपना स्वभाव है और आस्रवभाव मलिन भाव निमित्त के लक्ष्य से उपाधि हुई वह। इन सब को एकरूप मानता है। सब को अनादि से एक मानता है। जीव-अजीव के भेद की खबर नहीं है और आस्रव और आत्मा के स्वभाव के भेद की भी खबर नहीं है। समझ में आता है कि नहीं इसमें? चंपकभाई! इसमें कहाँ फूरसद है? कपड़े का व्यापार करना या इसका विचार करना? क्या करना इसमें? वहाँ रूपया दिखे, सीधा पच्चीस हजार पैदा हो, तीस हजार पैदा हो बाहर में।

मुमुक्षु :-- पच्चीस हजार पूरे नहीं पड़ते।

उत्तर :-- पच्चीस हजार पूरे नहीं पड़ते, ऐसा कहते हैं। कौन जाने क्या होगा? परन्तु पच्चीस हजार तो पैदा करते होंगे न? दे हजार एक महिने में, लो न। अरे..! पचास हजार पैदा हुए। फावाभाई! लो, इनका लड़का ढाई हजार पैदा करता है। बार महिने में पैंतीस हजार। लो, वहाँ अकेला है, ये यहाँ अकेले बैठे हो। पुण्य के कारण होता होगा कि पुरुषार्थ से होता होगा? पूर्व का पुण्य हो तो हो। मैंने किया, वह मैंने किया (ऐसा माननेवाला) पर में ममता करता है। ऐसी लक्ष्मी मैंने पैदा की। मैंने ध्यान रखा तो पैदा हुई। बराबर है?

अपना स्वरूप भगवान चैतन्य ज्ञान और अंतर्मुख आनंद डली, उसको छोड़कर ऐसी सब अवस्था (होती है), उसका कारण क्या? कारण कि उसका आधारभूत एक आत्मा। किसका? दया, दान, व्रत, तप का विकल्प जो उठता है वह मलिनभाव है। आहाहा..! बारह व्रत, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, दया, दान, पूजा, भक्ति, यात्रा वह पर तरफ का लक्ष्य होकर उपाधिभाव अपने कारण से अशुद्ध उपादान में होता है। और उसी समय में ज्ञान-दर्शन का व्यापार भी उत्पन्न होता है। तो कहते हैं कि आधार तो एक आत्मा है। देखो! इस विकार का आधार जड़ ऐसा यहाँ नहीं लिया। पुण्य-पाप,

दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, उसका आधार कर्म है ऐसा नहीं। है न प्रकाशचंदजी? आधार एक और उसकसा और आस्रवभाव का परिणमन एक ही काल में होने से... आधार एक और परिणमन का काल एक। आहाहा..! पलटने का ज्ञान-दर्शन उपयोग का पलटना और विकार की क्रिया दया, दान, शुभाशुभ के परिणमने का एक काल है। आधार एक, काल एक, भिन्न भासने का प्रयत्न नहीं। क्योंकि बहिर्मुख बुद्धि है तो आस्रव की उत्पत्ति और ज्ञान की उत्पत्ति मेरे में एकसाथ उत्पन्न हुई तो सब मेरा ही है। ऐसा बहिर्मुख दृष्टि में है।

अंतर्मुख दृष्टि करे तो ज्ञान की उत्पत्ति का आधार आत्मा, विकार का आधार भले हो परन्तु वह निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ बहिर्मुख भाव, वह मेरी चीज में है नहीं। समझ में आया? ऐसा बोध न करके एक ही काल में उसकी भिन्नता भासती नहीं। क्या विकारभाव, क्या त्रिकाल स्वभावभाव। उसकी एकता में भिन्न करने का भास तो होता नहीं। वह भिन्नता भासित होने का कारण विचार है वह, मिथ्यादर्शन के बल से हो नहीं सकते हैं। मिथ्यादर्शन के बल से। किसका? दर्शनमोहनीय के उदय का जोर है इसलिये नहीं हो सकता है, ऐसा नहीं है। मिथ्यादर्शन के बल से, ऐसा यहाँ लिया है। मिथ्या मान्यता है न, कि विकार की दशा और ज्ञान की दशा दोनों का आधार का परिणमन मेरे में हुआ। ऐसी मिथ्याश्रद्धा के बल से भिन्न भासने का प्रयत्न है नहीं, ऐसा लिया है। क्यों सम्राटजी? किसका बल लिया है? दर्शनमोहनी कर्म का? देखो! लेकिन वह प्रतिबद्ध कारण तो है कि नहीं? लो, सुबह प्रश्न आया था न? फूलचंदजी! प्रतिबद्ध कारण, समर्थ कारण इसको कहते हैं कि प्रतिबद्ध कारम टलना चाहिये और अपने में अंतरंग कारण कर्म का भी अभाव होना चाहिये, तो अपने में पुरुषार्थ की जागृति होती है, अन्यथा नहीं होती है। समर्थ कारण में दो लिये हैं न? लेकिन वह तो व्यवहार से दो लिये हैं। न्यायशास्त्र है, व्यवहार से दो साथ में लिये हैं। दो साथ में लेने से निश्चय नहीं होता है। समर्थ कारण, प्रतिबद्ध कारण साथ में लिये वह तो व्यवहार से लिया है। निश्चय में समर्थ कारण आत्मा ही है। आहाहा..! वह तो प्रमाण,... न्यायशास्त्र में व्यवहार दो का कथन किया। प्रमाण, प्रमाण हुआ न? तो प्रमाण व्यवहारनय का विषय हो गया।

अकेला आत्मा अपने आधार से ज्ञान, दर्शन, आनंद की उत्पत्ति करता है अपने कारण से, अपने हेतु से। राग और निमित्त की अपेक्षा छोड़कर निरपेक्ष अपने भाव की उत्पत्ति करता है, उसमें प्रतिबद्ध कारण का अभाव उसके कारण से हो जाता है। परन्तु उसकी यहाँ अपेक्षा है नहीं। निश्चय में अपेक्षा है नहीं। समझ में आया? निश्चय में अपेक्षा कैसी? पर की अपेक्षा हो तो व्यवहार हो जाय। समझ में आया?

प्रतिबद्ध कारण कहते हैं कि नहीं? वह आया है कि नहीं? जैन सिद्धांत प्रवेशिका में।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह तो पर साथ में लिया है। दोनों साथ लिये हैं। परन्तु साथ में दो आये वह निश्चय का विषय नहीं।

वास्तव में समर्थ कारण भगवान आत्मा, अपने विकार की पर्याय उत्पन्न करने में निमित्त की अपेक्षा बिना निरपेक्ष आत्मा विकार उत्पन्न करता है। अशुद्ध उपादान का भी समर्थ कारण आत्मा है, निश्चय से। निश्चय में पर की अपेक्षा होती नहीं। और अपने स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान भेदज्ञान करने में कषाय की मंदता की निश्चय में अपेक्षा नहीं है। समझ में आया?

कषाय की मंदता की अपेक्षा और यहाँ स्वभाव की अपेक्षा, दोनों का ज्ञान कराना तो प्रमाणज्ञान हुआ। प्रमाण में दो आते हैं। निश्चय में नहीं। निश्चय में तो अकेला आत्मा अपने स्वभाव के आश्रय से, अंतर्मुख भेद करके राग और अपना स्वभाव, राग की अपेक्षा किये बिना भेदज्ञान करता है ऐसा आत्मा का समर्थ कारण का स्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- वहाँ पर नियम शब्द वापरा है। ... अभाव होने पर नियम से कार्यसिद्ध होती है।

उत्तर :-- नियम से होती है, बराबर है। नियम से कार्य होता है, लेकिन व्यवहार से लिया। प्रतिबद्ध कारण और अपनी पर्याय, दोनों के साथ काम लिया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अनुकूल हो न हो, निश्चय में अनुकूल या प्रतिकूल है ही नहीं, वह तो व्यवहार का कथन है। दोनों को साथ में लिया वह एक कथन नहीं आया। नियम से कार्य होता है भले, यहाँ भी नियम से होता है। अपना उपादान अशुद्ध विकार का कर्ता, कर्म से होता है। नियम से विकार उत्पन्न होता है, निमित्त की अपेक्षा बिना। ओहोहो..! ऐसा कहते हैं, नियम से कार्य उत्पन्न होता है, उसमें कहा है, इसलिये। उसका अर्थ क्या? यहाँ निश्चय से अपना कार्य विकार से रहित मैं हूँ, ऐसा करता है तो विकार की मंदता का निमित्त की सापेक्षाता से प्रतिबद्ध कारण टला और उदय का अभाव हुआ ऐसा कहने में आता है। जैन सिद्धांत प्रवेशिका में दो बोल का साथ में है न, इसलिये प्रतिबद्ध कारण... दीपक कब रहे? कि पवन न हो तो।

मुमुक्षु :-- लेकिन वह रहनेवाला हो तो पवन होता ही नहीं।

उत्तर :-- होता ही नहीं, परन्तु वह तो निमित्त का ज्ञान करवाया। दीपक को

अपनी ज्योत से रहना है वह समर्थ कारण अपना है। तब प्रतिबद्ध कारण पवन का अभाव पवन के कारण से होता है, वह साथ में लेकर ज्ञान करना सो प्रमाण है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि, विकार और भगवान आत्मा, ज्ञान-दर्शन की पर्याय और विकारी पर्याय--दोनों की पर्यायबुद्धि है और वर्तमान बुद्धि है तो दोनों का एक आधार मानकर और दोनों का परिणमन एक मानकर, मेरा ही वह विकार है, ऐसा मान्यता के बस ले करता है। मिथ्याश्रद्धा के बल से ऐसा मानता है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं। वस्तु तो अंतर्मुख चैतन्य ज्ञानानंद राग और निमित्त जड़ की प्रतिबद्ध के अभाव की अपेक्षा किये बिना, प्रतिबद्ध का अभाव की अपेक्षा किये बिना। आरे.. आरे..! भारी बात भाई!

मुमुक्षु :-- ... कभी टले नहीं।

उत्तर :-- वह टले तब मुझे हो, ऐसा है वहाँ? पर की अपेक्षा बिना अपने निरपेक्ष चैतन्य भगवान ज्ञान-दर्शन की पर्याय का उत्पन्न करनेवाला वह पूर्ण कौन है? वह पूर्ण कौन है? इतना। यह अंश जो उत्पन्न होता है, विकार तो पर में गया पर तरफ के लक्ष्य से, लेकिन अपने में जो ज्ञान-दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, उसका आधार कितना है? क्या है? तो उस पर्याय से हटकर स्वभावबुद्धि होती है तो निमित्त और राग की अपेक्षा बिना होती है। निरपेक्ष होती है। फूलचंदजी! यह बड़ी गड़बड़ चलती है।

अरे.. भगवान! तेरी स्वतंत्रता....। कर्ता होकर स्वतंत्रपने करे उसको कर्ता कहते हैं। कर्ता स्वतंत्र होकर करे उसको कर्ता कहते हैं। पर की अपेक्षा रखकर करे वह कर्ता स्वतंत्र रहा नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जो आत्मा एक काल में विकारी परिणमन उत्पन्न हुआ और ज्ञानादि की पर्याय उत्पन्न हुई, दोनों को एक मानता है। भिन्न भासने का कारण तो मिथ्याश्रद्धा रखकर पड़ा है। मिथ्याश्रद्धा रखकर तो पड़ा है कि वह मेरा है, मेरेमें से उत्पन्न हुआ है, मेरे से उत्पन्न हुआ है ऐसी श्रद्धा रखकर तो पड़ा है। भिन्न करने की ताकत है नहीं। अपनी मिथ्याश्रद्धा के कारण भिन्न करने की ताकत नहीं है। दर्शनमोह का उदय है तो भिन्न करने की ताकत नहीं है ऐसा नहीं है। समझ में आता है कि नहीं? नंदलालभाई! बहुत सूक्ष्म बातें।

आत्मा कैसा है? यह क्या है? लिखा था न? पहले से आया है न उसमें? देखोन! '**अनादि काल से जीव है वह कर्म के निमित्त से अनेक पर्यायें धारण करता है।**' वहाँ-से शुरू किया है न। अनेक शरीर, उसमें विकास, उसमें ज्ञान की

उत्पत्ति, विकार उपाधिभाव--सब को एक मानकर परिभ्रमण कर रहा है। कहो, समझ में आया?

अब यहाँ, **'उन सब को अपनी अवस्था मानता है। 'यह अवस्था मेरी है'--ऐसी ममत्वबुद्धि करता है।'** ८४ पृष्ठ। यहाँ जीव-अजीव का अधिकार चलता है। वह जीव नहीं, विकार परिणाम जीव नहीं, शरीर की अवस्था जीव नहीं, शरीर का वर्ण, गंध, रस, स्पर्श जीव नहीं। सब में ममत्व करता है कि वह मेरा, वह मेरा, वह मेरा ऐसा ममत्व करता है।

**'तथा...'** वळी का क्या अर्थ है तुम्हारे में? और। **'जीव और शरीर के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है...'** देखो! सब को अपनी अवस्था मानता है, भिन्न नहीं जानता है यह बात करते हैं। **'जीव और शरीर के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है...'** जब शरीर को निमित्त कहे तो आत्मा की पर्याय को ज्ञानादिक को नैमित्तिक कहे। जब आत्मा की पर्याय को निमित्त कहे तो शरीर की पर्याय को नैमित्तिक कहे। काल तो एक ही है। **'इसलिये जो क्रिया होती है...'** दोनों के संबंध में हिलना, चलना, बोलना हो उसको अपनी मानता है। कहो, उसे अपनी मानता है। देखो! मैंने शरीर हिलाया। नीचे लेंगे, हाँ!

**'अपना दर्शन-ज्ञान स्वभाव है,...'** देखो! न्याय देते हैं। अपना स्वभाव तो ज्ञान-दर्शन है। जानना-देखना अपना स्वभाव है। **'उसकी प्रवृत्ति को निमित्तमात्र शरीर के अंगरूप...'** निमित्तमात्र शरीर के अंग, मन, इन्द्रिय निमित्तमात्र है। उपादान तो अपनी पर्याय अपने से काम करती है। अपना स्वभाव दर्शन-ज्ञान और उसकी प्रवृत्ति में--परिणति में निमित्तमात्र शब्द लिया है, देखो! निमित्त ऐसा भी नहीं लिया, नीचा दिखाने को निमित्तमात्र (कहा)। 'मात्र' कहकर बहुत साधारण बात बना दी। भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन की पर्याय में प्रवृत्ति करता है। उसमें शरीर का पाँच इन्द्रिय, मन आदि अंग है, (वह) निमित्तमात्र है।

**'शरीर के अंगरूप स्पर्शनादि द्रव्यइन्द्रियाँ हैं;...'** पाँच इन्द्रियाँ है न? यह पाँच द्रव्येन्द्रिय। रूप को जानने की प्रवृत्ति करे तब आँख निमित्त है। सुनने की, सुनने की प्रवृत्ति करे तो कान निमित्त है। प्रवृत्ति तो अपनी अपने कारण से होती है। अपनी अपने कारण से होती है। निश्चय से उसमें निमित्त की अपेक्षा नहीं है। परन्तु जहाँ व्यवहार निमित्त उसकी ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय में इन्द्रियों को निमित्त देखकर.... अब यह जीव उन सब को एकरूप मानकर ऐसा मानता है। **'उन्हें एक मानकर ऐसा मानता है कि--हाथ आदि से मैंने स्पर्श किया,...'** देखो! हाथ इत्यादि, पैर द्वारा इत्यादि इन्द्रिय द्वारा, मैंने इस स्पर्श के द्वारा दूसरे का स्पर्श किया।

मुमुक्षु :-- वडे माने?

उत्तर :-- द्वारा। स्पर्श द्वारा। मैंने स्पर्श द्वारा।

मुमुक्षु :-- स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा।

उत्तर :-- हाँ, द्वारा। इस स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा। स्पर्श इन्द्रिय द्वारा मैंने स्पर्श किया। तूने स्पर्श इन्द्रिय द्वारा स्पर्श किया? तेरा भाव तो जानना-देखना है। तेरी पर्याय में जानना-देखना हुआ। उसमें स्पर्श इन्द्रिय तो निमित्तमात्र है। उसके द्वारा मैंने स्पर्श किया। कौन स्पर्शे? पर का कार्य करे कौन? स्पर्श द्वारा पर को स्पर्श करना, यह आत्मा में है ही नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श करता है--छूता है, ऐसा तीन काल तीन लोक में नहीं है। समझ में आया? हाथ इत्यादि क्यों लिया है? हाथ, पैर.. पैर में भी ऐसा होता है न? खुजली आती है तो पैर ऊँचा करके खुजाये। पैर द्वारा, इन्द्रिय द्वारा, हाथ द्वारा, शरीर द्वारा, उसके द्वारा, शरीर के स्पर्श के कोई भी भाग द्वारा। हाथ इत्यादि स्पर्श द्वारा मैंने स्पर्श किया, ऐसा अज्ञानी मानता है। परनतु मैं, जानने-देखने की प्रवृत्ति करनेवाला ज्ञायकभाव भिन्न हूँ, वह मेरे से प्रवृत्ति मेरे में होती है, वह तो निमित्तमात्र है, ऐसा नहीं जानता है। उसको मैं स्पर्श द्वारा स्पर्श करता हूँ। कहो, समझ में आया? आहाहा..!

हिस्से का बटवारा किया नहीं, हिस्से का। बाप मर जाये तो लड़के तुरन्त बटवारा करे। हैं! पाँच-दस लाख की पुंजी हो, बटवारा कर दो। कहाँ छोड़ गये हैं? यहाँ बटवारा... तेरा क्या स्वभाव, क्या विभाव, क्या इन्द्रिय द्वारा का कार्य, हिस्से का बटवारा उसने कभी किया नहीं। वह मिथ्यादर्शन श्रद्धा रखता है कि वह मैं हूँ न। वह मैं हूँ, ऐसा श्रद्धा रखता है तो उससे भिन्नता करने की ताकत है नहीं। '**हाथ आदि से मैंने स्पर्श किया...**'

मुमुक्षु :-- वहेंचणी माने भिन्नता?

उत्तर :-- वहेंचणी (माने) भेदज्ञान। वहेंचणी का अर्थ भेद। हिस्सा अलग करना, दोनों का हिस्सा। उसका कारण उसमें, मेरा कारण मेरे में। अलग-अलग।

'**जीभ से स्वाद लिया,...**' देखो! आहा..! जीभ ही तेरी नहीं है, कहाँ-से चखेगा? यह तो जड़ है। जड़ का हिलना-डुलना भी जड़ है। वह तो ४९ गाथा में आया न? द्रव्येन्द्रिय द्वारा जानना वह भी आत्मा नहीं। भावेन्द्रिय द्वारा जानना वह भी आत्मा नहीं और क्षयोपशमभाव जितना भी आत्मा नहीं। क्षयोपशमभाव एक समय की पर्याय है, उतना आत्मा नहीं है।

मुमुक्षु :-- भावेन्द्रिय..

उत्तर :-- क्षयोपशम उतना। क्षयोपशम सामान्य। भावेन्द्रिय, वह खंड खंड इन्द्रिय

का ज्ञान करने में काम आती है। खंड खंड इन्द्रिय। क्षयोपशम खंड खंड। लेकिन क्षयोपशम का पूरा भाव भिन्न लिया। पूरा सब इन्द्रिय का क्षयोपशम, मन का क्षयोपशम, सब का क्षयोपशम है न? एक-एक इन्द्रिय का इतना खंड, खंडज्ञान वह भावइन्द्रिय और सब का क्षयोपशमभाव--पाँच का, मन का, सब का उघाड़भाव है। उस उघाड़भाव की पर्याय जितना भी आत्मा नहीं है। क्षयोपशमभाव द्वारा जानना वह भी निश्चय से आत्मा नहीं। कहो, समझे?

'**जीभ से स्वाद लिया...**' चखा, चखे कौन? आत्मा तो जानने-देखनेवाला है। यहाँ यह हुआ, जीभ निमित्त हुई, प्रवृत्ति अपने परिणाम में अपने से हुई। यह चीज है, ऐसा ख्याल में आया कि यह खट्टा-मीठा है। उस खट्टे-मीठे के कारण नहीं। जीभ इन्द्रिय के कारण नहीं। अपनी पर्याय की उपादान की योग्यता से खट्टा-मीठा ख्याल में आया। ऐसा न मानकर, मैंने जीभ से स्वाद लिया (ऐसा मानता है)। यह तो एक मिथ्यात्व का एक-एक अंग का प्रकार बताते हैं। मिथ्यात्व का असंख्य प्रकार है। उसमें से एक यह भी प्रकार है। क्योंकि शरीरादि इन्द्रिय पर है तो उसके द्वारा मैं काम करता हूँ, वह भी एक मिथ्याश्रद्धान का एक भाग है। समझ में आया?

मैंने '**जीभ से स्वाद लिया...**' कहो, यह लड्डु। लड्डु.. लड्डु। मावा का जामून रात को खाया था कि नहीं? मावा का जामून वहाँ बनाया था न? दस दिन जेवनार किया था। भिन्न-भिन्न जेवनार किया था। कितनों को फड़सा दिया, फड़सा समझते हो? ये बनिये खाते हैं न? थोड़ा विशेष टूकड़ा (दिया)। हमारे यहाँ शादी में ऐसा होता है, शादी में सब जिम ले न? फिर थोड़ा-थोड़ा लड्डु का टूकड़ा देते हैं। वह प्रेम से--उल्लास से देते हैं।

मुमुक्षु :-- प्रेम दर्शाने को।

उत्तर :-- प्रेम दर्शाने को। यहाँ फूलचंदभाई प्रेम दर्शाते थे, ऐसा सुना था, कोई कहता था। फूलचंदभाई, मोरबीवाले। मावा का जामून। एक तो खाकर बैठा हो, इतना बड़ा पेट, उसमें दो-चार और दे। फिर ऊल्टी हो। वह उसके कारण नहीं, हाँ! ऊल्टी हो तो भी स्वतंत्र जड़ के कारण (होती है) और खाने की क्रिया होती है वह भी स्वतंत्र जड़ के कारण होती है। लेकिन मैंने जीभ द्वारा खाया। मूढ़ है। जीभ द्वारा चखा। प्रभु! चखने की पर्याय का ज्ञान तो तेरे में स्वयं, इन्द्रिय और उस विषय की अपेक्षा रहित निरपेक्ष होता है। आहाहा..! समझ में आया?

क्योंकि प्रवृत्ति ली न? '**अपना दर्शन-ज्ञान स्वभाव है, उसकी प्रवृत्ति...**' प्रवृत्ति तो परिणति अपनी है। जानने-देखने की परिणति--पर्याय अपनी है। अपने से उत्पन्न होती है और अपने षट्कारक अपने से है। उस परिणति का कर्ता भी आत्मा, कर्म

भी अपना, साधन भी अपना, अपना करके अपने में रखता है, अपने से भिन्न करके ध्रुव रखता है और अपने आधार से प्रवृत्ति होती है। इन्द्रिय के आधार से और चखने की चीज है उसके आधार से ज्ञान–दर्शन की प्रवृत्ति होती नहीं। लेकिन भिन्न करने की श्रद्धा नहीं है तो सब को एक मानता है। भिन्नता क्यों करे? तो कहते हैं कि, (मिथ्या) श्रद्धा के बल से वह सब को अपना मानता है।

'**नासिका से सूँघा,...**' लो, इसके द्वारा, इसके द्वारा। सब कहते हैं न, द्वारा, द्वारा। निमित्त द्वारा, निमित्त द्वारा। यहाँ तो कहते हैं, निमित्त द्वारा मैंने ऐसा काम लिया, वह मिथ्यादर्शन––श्रद्धा का अभिप्राय है। '**नासिका से सूँघा...**' फूल सूँघा। भैया! सुगंध की पर्याय उसमें रही, नासिका की पर्याय नासिका में रही और अपनी ज्ञान–दर्शन की पर्याय अपने में पर की निश्चय से अपेक्षा रहित अपने से प्रवृत्ति हुई। नाक और सुगंध की पर्याय की अपेक्षा बिना निरपेक्ष से जानने–देखने की, सुगंध का ज्ञान करने की पर्याय अपने में अपने से हुई। ऐसा नहीं मानकर, मैंने नाक द्वारा सुगंध सूँघी। अरे..! खिचड़ी (––भेलसेल) कर दी। अपना आत्मा और इन्द्रिय और वह चीज, तीनों को एक माना। ओहोहो..! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! इसके बजाय धर्म कर दें, व्रत पाले, व्रत करे, उपवास करे, ऐसा करे, जाओ धर्म हो गया। नंदलालभाई! एकदम आसान था, यह महँगा हो गया, ऐसा लोग कहते हैं। इतना सरल था। वहाँ पाँचसौ–पाँचसौ पौषध होते थे। संवर, हाँ! पाँचसौ–पाँचसौ। बोटाद में (संवत) १९८० में अंतिम चातुर्मास था। पाँचसौ संवर लोगों का। ३०० घर।

मुमुक्षु :–– ...

उत्तर :–– संवर, संवर पौषध कहते हैं न? आप में संवर नहीं करते हैं? पौषध करके बैठ जाना।

मुमुक्षु :–– एक बखत खाना।

उत्तर :–– खाना भी नहीं, पानी भी नहीं। उपवास करके बैठ जाना। पाँचसौ आदमी लगातार। पाँचसौ आदमी एक दिन में। एक दिन में पाँचसौ संवर। ऐसा होता था। पाँचसौ प्रकार करनेवाला। पाँचसौ जीव। हैं?

मुमुक्षु :–– ओम शांति।

उत्तर :–– ओम शांति दूसरा, जाप। यह तो हमारे यहाँ स्थानकवासी में ऐसा होता है कि आहार न करे, पौषध भी न करे। पौषध तो अमुक समय में करे। ये तो आकर बैठ जाये। एकाद घण्टा, दो घण्टा देर से आये, चार घण्टा देर से आये, संवर करके बैठ जाये। संवर कहते हैं, उसे संवर कहते हैं। धूल में भी संवर नहीं है। सम्यग्दर्शन का संवर हो गया।

आत्मा क्या चीज है, विकार क्या है, पर प्रवृत्ति क्या है, दोनों में कुछ भान तो है नहीं। कहाँ-से तुझे संवर आया? मिथ्यात्व का आस्रव रोकना किससे होता है? क्या मिथ्यात्व आता है, उत्पन्न हुआ उसको रोकना है? मैं ज्ञानानंद चैतन्यानंद शुद्ध हूँ, ऐसी जब दृष्टि हुई तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती नहीं। होती नहीं उसको रुँधकर संवर किया ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु :-- सामायिक करते हैं।

उत्तर :-- सामायिक कहाँ है? सामायिक किसको कहते हैं?

मुमुक्षु :-- सिर्फ बैठ जाते हैं।

उत्तर :-- हाँ, बैठ जाते हैं। हाँ वह। ख्याल है। ये सामायिक इसमें नहीं करते हैं? तुम्हारे ब्रह्मचारी करते हैं न पाँच-पच्चीस? उदासीन आश्रम में नहीं करते हैं? ... लेकिन सामायिक किसको कहना? क्या देह ऐसा करना वह सामायिक है? अभी तो पुण्य और पाप दो विकल्प है, दोनों की एक जाति है, बन्ध का कारण। और अबंधस्वभाव मेरा भिन्न है, ऐसी प्रतीति अनुभव में हुए बिना सामायिक कहाँ-से आयी? सामायिक तो व्रत है। व्रत तो सम्यग्दर्शन होने के बाद पंचम गुणस्थान में होता है। चारित्र और महाव्रत तो छठवें गुणस्थान में होता है। तो अभी सम्यग्दर्शन भूमिका क्या है, किसमें रहना और किसमें-से हठना, (इसका) भेदज्ञान तो है नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञानानंद पुंज प्रभु अभेद एक वस्तु है, उसमें दृष्टि लगाकर और राग और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न देखना, भिन्न अवलोकन चैतन्य का न हो तब तक किसमें रमना उसकी खबर उसको है नहीं। चारित्र किसमें करना है? तो कहते हैं कि, ये तो सब को एक मानता है। मैंने '**नासिका से सूँघा...**' समझे?

'**नेत्र से देखा,...**' लो, नेत्र से मैंने देखा। मेरे ज्ञान द्वारा देखा, ऐसा नहीं। उस चीज को नहीं, मेरे ज्ञान द्वारा मैं मेरे को देखता हूँ। पर को देखना कहना यह व्यवहार है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, मैंने '**नेत्र से देखा...**' मूढ है। नेत्र परवस्तु है। क्या ऐसे ऊँचा-नीचा तू कर सकता है? उसके द्वारा, उस पर्याय द्वारा तेरी ज्ञान-दर्शन की पर्याय होती है? तेरी ज्ञान-दर्शन की पर्याय तेरे से होती है। नेत्र और देखने की चीज की अपेक्षा बिना तेरी प्रवृत्ति अपने से होती है। लेकिन उसको ऐसा लगता है, उसे नेत्र द्वारा देखा तो मेरी ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति हुई। ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति हुई। समझे?

मूल भूमिका पक्की किये बिना वृक्ष.. आता है न वह? मोक्षमार्ग में आया नहीं? वृक्ष। भूमिका के बिना वृक्ष कहाँ-से आया? मोक्षमार्ग (प्रकाशक में) सातवेँ अध्याय में, नहीं? सातवाँ, सातवाँ। भूमिका के बिना, वह आया है। श्रद्धा अधिकार में आता

है कि नहीं? चारित्र अधिकार में होगा? २४२, चारित्र अधिकार। २४२ पृष्ठ है, देखो! '**दंसणभूमिह बाहिरा, जिय वयरुक्ख ण होंति...**' मूल तो श्रावकाचार का दोहा है, हाँ! लिखा है, योगीन्द्रदेव कृत, परन्तु है 'सावगधम्मं' दोहा में वह श्लोक है। '**दंसणभूमिह बाहिरा, जिय वयरुक्खं ण होंति**' हे आत्मा! सम्यग्दर्शन भूमि बिना व्रतरूपी वृक्ष न होता है। जिन जीवों को तत्त्वज्ञान है नहीं उसको यथार्थ आचरण आचरता नहीं। कहाँ-से आचरे? अभी तत्त्वज्ञान की दृष्टि पर से भिन्न हुई नहीं, तो पर से भिन्नता नहीं होकर, पर में आचरण करता है और मानता है कि मैं चारित्र व्रत पालन करता हूँ। वह तो मिथ्यादर्शन को पालता है। सम्यग्दर्शन की भूमि बिना वृक्ष कहाँ-से ऊगेगा? आकाश में ऊगता है? समझ में आया?

मैंने '**नेत्र से देखा,...**' ऐसा माननेवाला पर को अपना मानता है। मेरी पर्याय से मैं देखनेवाला मेरे को देखता हूँ। वह क्या देखने की चीज है? वह तो पर में रही। मेरे ज्ञान से, मेरे दर्शन से मेरी पर्याय को मैं देखता हूँ। ऐसा न मानकर, नेत्र से मैंने पर को देखा, वह बुद्धि में विपर्यास है। देखने की चीज और नेत्र से भिन्न न मानकर, तीनों को एक मान रखा है।

मैंने '**कानों से सुना...**' कान से मैंने सुना। कान तो मिट्टी है।

मुमुक्षु :-- बहरा मनुष्य सुनता नहीं।

उत्तर :-- सुनता नहीं है, (वह तो) उसके क्षयोपशम में उतनी योग्यता है। क्या कान के कारण से है? बहरा मनुष्य सुनता नहीं, बहरा। बहरा कहते हैं न? क्या कहते हैं? तो क्या कान के कारण से है?

मुमुक्षु :-- कान तो बड़े-बड़े हैं।

उत्तर :-- बड़े कान हो, तो उसमें क्या है? अन्दर में भाव... पुनः कहते हैं कि अन्दर परदा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझे न? परन्तु परदा टूटे (उससे नहीं), क्षयोपशम ज्ञान की योग्यता ही ऐसी है। उसके अपने कारण से क्षयोपशम ज्ञान की ऐसी योग्यता है। नहीं के इन्द्रिय के कारण से प्रवृत्ति हुई और इन्द्रिय न हो तो ऐसी प्रवृत्ति होती नहीं, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मैंने '**कानों से सुना,...**' लो, ऐसा मानता है। ज्ञान किया उस शब्द का, कान है उसका ज्ञान किया। ज्ञान किया तो अपनी ज्ञान की परिणति से हुआ। अपने ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति से (हुआ), पर से है नहीं। इतने अंश की प्रवृत्ति को स्वतंत्र न स्वीकारे, वह त्रिकाल ज्ञायकभाव है उसकी स्वतंत्रता का स्वीकार उसमें होता नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं?

ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति वर्तमान अपनी पर्याय अपने से निरपेक्ष, इन्द्रिय और विषय

से निरपेक्ष है, इतना स्वीकार जिसको नहीं है, उसको त्रिकाल स्वयंसिद्ध शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्वतंत्र है उसका स्वीकार हो सकता नहीं। यहाँ तो अभी रुका है पर्याय में। मेरी पर्याय कहाँ-से हुई? कि, इन्द्रिय से, निमित्त से। निमित्त से हुई तो अपने उपादान से क्या किया?

मुमुक्षु :-- पता नहीं।

उत्तर :-- पता नहीं? निमित्त से हो तो निमित्त आया। अब, उस समय उपादान ने क्या किया? उपादान नाम तेरी पर्याय ने क्या काम किया? अथवा तेरे गुण ने क्या काम किया? निमित्त से ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति हुई तो ज्ञान-दर्शन जो त्रिकाल गुण है, उसके विशेष भाव ने क्या काम किया? उसका विशेष भाव निमित्त से हुआ तो सामान्य ने विशेष भाव क्या किया? भाव तो एक ही है। समझ में आया? गुण सामान्य है कि नहीं त्रिकाल जानना-देखना? तो उसके विशेष की प्रवृत्ति तो कहते हैं, निमित्त से हुई। तो सामान्य से क्या हुआ? खाली रहा सामान्य? विशेष परिणमित हुए बिना रहा?

मुमुक्षु :-- वह भी खाली रहा। उसकी पर्याय उसने की।

उत्तर :-- हाँ, उसने की। सामान्य विशेष बिना रहा। सामान्य विशेष बिना (रहा तो) उस विशेष को निमित्त ने बनाया। बड़ी (विपरीत) दृष्टि, पर्यायबुद्धि में भी परतंत्रता। समझ में आया?

यहाँ वह कहते हैं कि, इतनी ज्ञान-दर्शन की प्रवृत्ति अपने से होती है, उसमें भी इन्द्रिय से मुझे हुआ, इन्द्रिय द्वारा मैं चखा, सूँघा। तेरी दृष्टि बहुत पर में एकत्व हो रही है। जीव का भाव जीव क्या? चैतन्य भगवान है, उसकी तेरी श्रद्धा का भरोसा नहीं (है)।

अब, '**मनोवर्गणारूप आठ पंखुड़ियों के फूले कमल के आकार का हृदयस्थान में द्रव्यमन है,...**' यहाँ जड़ है एक। मनोवर्गणारूप--मन रजकण है उसकी वर्गणा (अर्थात्) समूह, उस रूप जो परिणमित है, '**आठ पंखुड़िया के फूले...**' आठ पंखुड़ियों का कमल होता है न? '**फूले कमल के आकार का...**' संकुचित नहीं। ऐसे हृदयस्थान में शरीर के अंगरूप यहाँ एक द्रव्यमन है। '**जो दृष्टिगम्य नहीं ऐसा है...**' वह द्रव्यमन दृष्टिगम्य नहीं है। मनुष्य मर जाता है न? बाद में डॉक्टर चीरते हैं। अफिम खाकर मर गया हो झहर से, चीरते हैं न? चीरते हैं। तो द्रव्यमन उसको कहीं हाथ नहीं आता है। वह तो बहुत सूक्ष्म है। वह कहे कि, आप द्रव्यमन कहते हो, द्रव्यमन कहते हो, हमने तो चीरकर पूरा देख लिया। वहाँ कहाँ तेरे हाथ आयेगा वह? वह तो अंगूल के असंख्यातवें भाग में बहुत सूक्ष्म रजकण से फूले कमल के आकार से

मन है। यहाँ बात दूसरी बतानी है।

वह द्रव्यमन '**उसके निमित्त होनेपर स्मरणादिरूप ज्ञान की प्रवृत्ति होती है।**' निमित्त होनेपर स्मरणादिरूप ज्ञान की (प्रवृत्ति)। यहाँ मन का कार्य कहना है न? स्मरणादिरूप प्रवृत्ति आत्मा करता है तो उसमें मन निमित्त पड़ता है, बस! इतनी बात है। स्मरण आता है न भूतकाल का? पाँच साल पहले मैंने ऐसा किया था, दस साल पहले ऐसा हुआ था, उस स्मरण में मन निमित्त है। इन्द्रियाँ जड़ निमित्त नहीं है, विचार करते हैं उसमें। मेरे साथ पाँच साल पहले ऐसा हुआ था, दस साल पहले ऐसा हुआ था, उस स्मृति के विभाग में प्रवृत्ति तो अपने ज्ञान की पर्याय की प्रवृत्ति होती है। उसमें मन का निमित्त पड़ता है, जड़ मन का निमित्त पड़ता है।

मुमुक्षु :-- ऐकेन्द्रिय को..

उत्तर :-- वह नहीं होता है, उसको धारणा होती है। अवग्रह, इहा, अवाय, धारणा है, परन्तु यह विशेष चीज उसके पास नहीं है।

मुमुक्षु :-- स्मृति नहीं है?

उत्तर :-- नहीं, नहीं। अवग्रह, इहा और धारणा है, धारणा है। समझ में आया?

'**निमित्त होनेपर स्मरणादिरूप ज्ञान की प्रवृत्ति होती है।**' मन कहाँ है ऐकेन्द्रिय को? यहाँ तो मन की बात हो उसकी बात चलती है न। यहाँ द्रव्यमन से मैं काम करता हूँ, ऐसा माननेवाला संज्ञी की बात ली है। जिसको मन नहीं है उसकी प्रवृत्ति यहाँ (है नहीं)। उसको उपदेश भी कहाँ करना है और उसको समझाना भी कहाँ है कि तू कहाँ भूल रहा है। तुम भूल करते हो, ऐसा कहाँ उसको सुनना है।

यहाँ तो कहते हैं कि जो द्रव्यमन जड़ है, उसका निमित्त पाकर स्मरणादिरूप ज्ञान की (प्रवृत्ति होती है)। देखो! निमित्त होता है, लेकिन निमित्त होने का अर्थ क्या? वह अपने में स्मरण की प्रवृत्ति करता है तो जड़ मन का निमित्त होता है। और '**यह द्रव्यमन को और ज्ञान को एक मानकर...**' देखो! ज्ञान की स्मरणरूप प्रवृत्ति और द्रव्यमन, द्रव्यमन है तो मेरी स्मरण की प्रवृत्ति हुई। ऐकेन्द्रिय को क्यों नहीं होती है? दो इन्द्रिय को क्यों स्मृति नहीं होती है? कि मन नहीं है। मन है तो स्मृति हुई, ऐसा माननेवाला दो को एक मानता है। समझ में आया? और दलील ऐसी दे कि, लट और चींटी, मकोड़े को मन कहाँ है? तो उसको स्मृति कहाँ है? इसलिये मन हो तो स्मृति होती है। अरे..! सुन तो सही। स्मृति होती है उसमें मन निमित्त है, ऐसा कहते हैं। जिसको स्मृति होने की क्षयोपशम की लायकात अन्दर है, उसको द्रव्यमन निमित्त कहने में आता है। निमित्त है तो स्मृति होती है ऐसी बात है नहीं। निमित्त की सापेक्षता बिना अपनी स्मृति अपने कारण से आत्मा करता है,

लो। निश्चय से तो यह बात है। परन्तु निमित्त देखकर उसके कारण मेरे में स्मृति हुई, मन से मेरे में स्मृति हुई। '**द्रव्यमन और ज्ञान को एक मानकर ऐसा मानता है कि मैंने मन से जाना।**' देखो! मैंने मन से जाना। अरे..! तेरे ज्ञान से जाना है। अंतर्मुख दृष्टि नहीं है तो बहिर्मुख द्वारा ऐसा मानता है। '**मैंने मन से जाना।**'

'**तथा अपने को बोलने की इच्छा होती है...**' पाँच इन्द्रिय, मन लिया, अब वाणी लेते हैं। '**बोलने की इच्छा होती है तब अपने प्रदेशों को जिस प्रकार बोलना बने उस प्रकार हिलाता है,...**' प्रदेश तो उसके कारण हिलते हैं, परन्तु इच्छा का निमित्त देखकर इच्छा से प्रदेश, मैं ऐसा बोलूँ, ऐसे प्रदेश हिलते हैं। '**तब एकक्षेत्रावगाह संबंध के कारण शरीर के अंग भी हिलते हैं।**' इस शरीर का अंग भी ऐसे हिले, होठ हिले। '**भाषावर्गणारूप पुद्‌गल वचनरूप परिणमित होते हैं;...**' भाषावर्गणारूप पुद्‌गल उस वक्त वचनरूप होते हैं। इस शरीर से भी नहीं। शरीर तो आहारवर्गणा का बना है। तो आहारवर्गणा से भी वचनवर्गणा का परिणमन नहीं होता है, तो आत्मा से वचनवर्गणा का परिणमन हो, ऐसा कभी होता नहीं। लेकिन मानता है कि मैंने शरीर हिलाया और मैं भाषा बोला। मैं भाषा बोला। देखो, ऐसा बोला। केवली को इच्छा बिना भाषा हो, यहाँ तो इच्छा अनुसार ही हम भाषा बोलते हैं। ऐसा होगा? समझ में आया?

जिसके निमित्त से एकक्षेत्रावगाह संबंध से शरीर का अंग हिलने पर, शरीर हिले न? होंठ आदि या कंठ आदि, बोलते समय (हिले)। तब, '**भाषावर्गणारूप पुद्‌गल...**' उस वक्त वहाँ भाषा रजकण के परमाणु हैं, वे वचनरूप परिणमते हैं। '**यह सब को एक मानकर ऐसा मानता है कि मैं बोलता हूँ।**' मैं बोलता हूँ, मैंने प्रदेश हिलाये, शरीर हिला, वाणी मैंने निकाली। ओहोहो..! समझ में आया? यह मिथ्यादर्शन की दशा। मैं बोला, मेरे से भाषा की पर्याय हुई, शरीर को मैंने हिलाया। शास्त्र में तो आता है कि आहारवर्गणा से भाषावर्गणा नहीं होती है। आहारवर्गणा जुदी है और भाषावर्गणा जुदी है और आत्मा बिलकुल जुदा है। आत्मा कहाँ बोल सके? इस आहारवर्गणा से भी भाषा नहीं होती, भाषावर्गणा से भाषा होती है। समझ में आया? तो यह तो मानता है कि आहारवर्गणा को भी मैंने हिलाया। आहार से बना यह वर्गणा शरीर और भाषावर्गणा को भी मैंने परिणमित किया। मैं बराबर ऐसी भाषा बोल सकता हूँ। ऐसे सब को एक मानता है। (तेरी) दृष्टि मिथ्या है। ओहोहो..!

मुमुक्षु :-- इच्छा करता है।

उत्तर :-- इच्छा होती है उसके कारण, उसमें क्या? इच्छा से क्या शरीर हिलता है? होंठ हिलते हैं ऐसे? वह तो उसके कारण है। समझे? यह तो उसके कारण

बोलता है, यह मानता है कि मेरे कारण हिलता है। ऐसे सब को एक मानता है। और उसके कारण भाषा निकली, मेरे कारण भाषा निकली। सब को एक मानता है। शरीर को, भाषा को, सब को एक मानता है। समझ में आया? मैं बोलता हूँ, मैं बोलता हूँ। एक जन को पूछा, महाराज! यह कौन बोलता है? फिर कहा, तेरा बाप बोलता है? तू बोलता है। अरे.. भगवान! वह पूछता है कि ये बोलता कौन है? भाषा बोलती है? कि शरीर बोलता है? कि आत्मा? ऐसा पूछने का आशय था। वह तो बराबर जोरदार आदमी दृष्टि में था। क्या बोलते हो? तुम नहीं बोलते तो क्या तेरा बाप बोलता है? सोनगढ़वाले कहते हैं कि भाषावर्गणा बोलती है। वहाँ तो कह सके नहीं, इतना ज़ोर हो तो। अरे.. भगवान!

एक-एक परमाणु की पर्याय अपने कारण से होती है, तो भाषावर्गणा तो अनंत परमाणु का अनंत स्कंध है। वह स्कंध भी इस होंठ के कारण हिलते हैं, भाषारूप होती है (ऐसा) तीन काल में नहीं है। तो यह मानता है कि मैंने होंठ हिलाये, होंठ कहते हैं न इसको? और मैंने कंठ हिलाया, कंठ काँपा। अरे.. भगवान! कंठ की पर्याय (तेरे से) काँपे? वह तो जड़ के कारण से है। क्या तेरी इच्छा के कारण से काँपता है? इच्छा आस्रव है, मलिन पर्याय है और यह तो भिन्न पर्याय है, कंठ का काँपना भिन्न है। यह तो एक प्रसंग देखकर बताते हैं। मिथ्यात्व का स्वरूप, पर को अपना मानने का कितने-कितने प्रसंग में होता है, ऐसा यहाँ खुलासा करते हैं। अलग-अलग प्रसंग-प्रसंग में कहाँ-कहाँ अपनी पर में मान्यता करता है यह बताते हैं। समझ में आया?

'**तथा अपने को गमनादि क्रिया की या वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होती है...**' देखो! गमन करने की इच्छा (हुई कि) चलो, बैठो, खड़े होओ, ऐसी क्रिया आदि माने। कोई '**वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा...**' कोई वस्तु पकड़ने की (इच्छा)। '**तब अपने प्रदेशों को जैसे कार्य बने वैसे हिलाता है।**' वह कार्य पकड़ में आये... रोटी खाता हो, देखो! रोटी खाता हो न? रोटी, दाल, भात, सब्जी पड़े हो। रोटी को तोड़ने को हाथ ऐसा करे न? और दाल लेने को। जैसे दाल, रोटी आये ऐसे हाथ को बनाये। पानी पीना हो तो ऐसा करे न? कि ऐसा करे? ऐसा कर सकता है? परन्तु वह मानता है कि मैंने ऐसा किया और पानी लिया। अरे.. अरे..! वह कहते हैं, देखो! '**जैसे कार्य बने...**' जैसे वह कार्य (बने), यानी माने। जैसे इस प्रकार कार्य बनेगा तो मैं ऐसा बनाऊँ, हाथ ऐसा बनाऊँ, शरीर को ऐसा गमन कराऊँ, सोने में भी ऐसे सो जाऊँ, शरीर ऐसे पलटकर, ऐसी इच्छा (करता है)।

'**गमनादि क्रिया की या वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होती है तब अपने**

**प्रदेशों को जैसे कार्य बने वैसे हिलाता है। वहाँ एकक्षेत्रावगाह के कारण शरीर के अंग हिलते हैं...**' अँगूली चले, अँगूली चले, शरीर चले। ऐसे बैठे-बैठे पैर ऐसे-ऐसे करता है कि नहीं? '**हिलते हैं तब वह कार्य बनता है; अथवा अपनी इच्छा के बिना शरीर हिलता है तब अपने प्रदेश भी हिलते हैं;...**' दो की बात ली। स्वयं इच्छा करे और उसके कारण उन सब का गमनादि हो, उसको मानता है वह सब मेरे से होता है। '**और इच्छा के बिना शरीर हिलता है तब अपने प्रदेश भी हिलते हैं;...**' तब शरीर के कारण मेरे प्रदेश हिले, वह भी झूठ बात है। अपने प्रदेश अपने कारण से गति करते हैं। शरीर शरीर के कारण गति करता है। गिरा, फडाक से गिरा। आदमी गिर जाता है न? क्या करें भाई? मेरे आत्मा के प्रदेश भी शरीर के कारण ऐसा करना पड़ा। शरीर के कारण से हुआ है उसमें? अकस्मात होता है, टकराता है। नहीं, वह आत्मा का प्रदेश का कार्य अपना भिन्न है। और शरीर की पर्याय का कार्य भिन्न है। शरीर गिरा तो आत्मा को गिरना पड़ा ऐसा है नहीं। दोनों को एक मानकर, कोई भी प्रकार से दोनों के एक मानता है।

'**शरीर हिलता है तब अपने प्रदेश भी हिलते हैं; यह सब को एक मानकर ऐसा मानता है कि मैं गमनादि कार्य करता हूँ, मैं वस्तु का ग्रहण करता हूँ...**' देखो! मैं गमन करता हूँ, मैं शरीर को ऐसा सुलाता हूँ, पैर को हिलाता हूँ। इस प्रकार ... समझ में आया? '**अथवा मैंने किया है...**' गमनादि, ग्रहण आदि कार्य करता हूँ अथवा वह कार्य मैंने किया। शरीर की गमन की क्रिया, सोने की, बैठने की इत्यादि सब क्रिया तो जड़ की है। एक समय की जड़ की पर्याय ऐसे-ऐसे होती है, आत्मा से नहीं। शरीर की पर्याय ऐसे होती है, प्रदेश भी अपने में ऐसा किया, अपनी योग्यता से उपादान कारण से आत्मप्रदेश भी हिलते हैं। शरीर हिला इसलिये आत्मा का प्रदेश हिला, ऐसा है नहीं। लेकिन साथ में रहता है। शरीर चले और प्रदेश पीछे रह जाये, ऐसा नहीं होता? और प्रदेश चले और शरीर पीछे रह जाये। ऐसा बनता नहीं है, इसलिये दोनों (क्रिया) एक से होती है ऐसा मानता है। इसलिये दो का कार्य करनेवाला एक मैं हूँ, ऐसा मानता है। परन्तु वस्तु ऐसी है नहीं। समझ में आया? '**इत्यादिरूप मानता है।**' लो, वह शरीर तक लिया। अब कषायभाव की बात है।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मंगलवार, दि. २३-१२-१९५२,**
**चौथा अधिकार, प्रवचन नं. ४**

मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ-९२। '**मिथ्याचारित्र का स्वरूप।**' यहाँ मिथ्याचारित्र... मिथ्यादर्शन का स्वरूप आ गया, मिथ्याज्ञान का आ गया और अनादि काल में मिथ्याचारित्र, जो मिथ्या मान्यता करके करता है उसकी यह व्याख्या है। कहते हैं कि '**अपना स्वभाव तो दृष्टा-ज्ञाता है;...**' यहाँ से शुरू किया। अपना स्वभाव तो देखना और जानना मात्र उसका स्वरूप है। फिर भी वह देखता और जानता है, उसमें इष्ट-अनिष्टपना मानकर जो राग-द्वेष करता है उसको मिथ्याचारित्र कहते हैं। क्योंकि इस राग-द्वेष के कारण कोई पदार्थ की हयाती रहे ऐसा माने, किसी की अहयाती रहे ऐसा माने, इसलिये राग-द्वेष निरर्थक है। उसके राग-द्वेष के आधीन कहीं परपदार्थ अनुकूलता की हयाती और प्रतिकूलता का अभाव उसके राग-द्वेष के आधी नहीं है। फिर भी मानता है कि मैं राग करूँ तो मुझे इस पदार्थ की अनुकूलता की हयाती रहेगी। द्वेष करूँ तो यह प्रतिकूलताएँ दूर होगी। इस राग-द्वेष को यहाँ निरर्थक मिथ्या कहा है। यहाँ तक आया है, देखो!

इसको मैं परिणमित करता हूँ, इस प्रकार व्यर्थ ही मानता है। वहाँ तक आया था न? बालक का दृष्टान्त आया था न? बैलगाड़ी तो उसके बिना चलती है, फिर भी बालक हाथ लगाकर माने कि यह मेरे से चलती है, वह तो मिथ्या भ्रांति है। जगत के अनंत पदार्थ है वह द्रव्यरूप बड़ी बैलगाड़ी है। उसका समय-समय में परिणमन-पर्याय हो, उस परिणमन की बैलगाड़ी चलती है वह द्रव्य के कारण चलती है, कोई अन्य पदार्थ के कारण नहीं है। फिर भी अज्ञानी मानता है कि मेरे कारण यह शरीर, कुटुम्ब, जाति, देश, लक्ष्मी, व्यवस्था इत्यादि मैंने ध्यान रखा इसलिये हुआ। और मैंने ध्यान नहीं रखा इसलिये वह नहीं हुआ। ऐसे राग-द्वेष को यहाँ मिथ्या कहते हैं।

ज्ञानी को राग-द्वेष होते हैं वह, पदार्थ को इष्ट-अनिष्ट मानकर नहीं होते हैं। वह तो उस पर्याय की कमजोरी के कारण राग-द्वेष हो, उस वक्त भी ज्ञानी तो ज्ञाता और दृष्टा ही है। मेरा स्वभाव ही ज्ञाता और दृष्टा है। राग को बदलना भी नहीं, राग को टालना भी नहीं, राग को नया उत्पन्न करूँ ऐसा भी नहीं और राग-द्वेष से अन्य वस्तु की अनुकूलता रहेगी और प्रतिकूलता टलेगी ऐसी मान्यता धर्मी की नहीं होती। समझ में आया?

वह पदार्थ जब इच्छानुसार न परिणमे '**तब क्यों नहीं परिणमाता?**' और फिर

भी इच्छानुसार जब कदाचित् उसके काल में वह परपदार्थ हो तब, इसको मैं ऐसे परिणमाता हूँ, ऐसा वह असत्य मानता है। '**यदि उसके परिणमाने से परिणमित होते हैं...**' यह शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, यह वाणी वह आत्मा के परिणमाने से परिणमे '**तो वे वैसे परिणमित नहीं होते...**' जब वह पदार्थ भाषारूप होता नहीं, शरीर चलने की क्रिया करता नहीं, लक्ष्मी लक्ष्मी के कारण आती नहीं, लक्ष्मी लक्ष्मी कारण जाने योग्य जाती नहीं, मकान मिलने के लायक मकान आता नहीं, मकान टूटने लायक टूटता नहीं, '**तब क्यों नहीं परिणमाता?**' तब वह क्यों अन्य को बदलता नहीं? उसके कारण दूसरे परिणमते नहीं। ऐसे परिणमित करूँ, पुत्रों को ऐसे परिणमित करूँ, पुत्रीओं को ऐसा करवाऊँ, दूसरों को शिक्षा दूँ, पुत्रों को, पुत्रीओं को मैं ऐसी शिक्षा दूँ कि मेरे घर में कोई अशिक्षित रहे नहीं। तो क्या तू शिक्षा दे सकता है?

अज्ञानी का वह राग पर की पर्याय को परिणमाने में निरर्थक है, इसलिये मिथ्याचारित्र कहा है। और द्वेष से दुश्मन को परेशान कर दूँ, उसका पेशाब छुड़वा दूँ, समीप में कहीं रहने न दूँ। हम पैसेवाले हैं, हमारे समीप कोई प्रतिकूलता करे तो हम रहने न दे। कोर्ट में अमलदार अधिकारी में भी हमारी सिफारीश चलती है तो उसको रहने नहीं देंगे। मूढ़ का द्वेष निरर्थक मूढ का है। क्योंकि उस द्वेष के कारण वह अवस्था होनेवाली नहीं है। और उसके कारण जब हो, तब वह मान बैठता है कि... देखो! यह कहते हैं, '**इसलिये यह निश्चय है कि अपने करने से किसी का सद्भाव या अभाव होता नहीं।**' सिद्धांत तो यह है।

अपनी इच्छानुसार शिष्य को समझा दूँ, दो घड़ी में तुझे समझा दूँ, दो दिन में तुझे पोपट जैसा बना दूँ। मान्यता सच्ची है? किसी की ताकत है? कोई पदार्थ का परिणमना और उसको समझन अथवा असमझन होनी, वह तो उसके आधारित है। किसी के आधार से नहीं है। अपनी इच्छानुसार पदार्थ का परिणमन तो कभी नहीं होता। यह सिद्धांत। बराबर होगा यह? ये पुत्र-पुत्रीयाँ, पैसा-बैसा, शरीर, दवाई-पानी, हवा। दवा, हवा और पानी इच्छा के कारण मिलते होंगे कि नहीं? पदार्थ का पर का आना, जाना, परिणमित होना कदापि अपनी इच्छानुसार होता नहीं।

कदाचित् हो, ध्यान रखना! तो ऐसा योगानुयोग (होने पर)। क्या कहा? कदाचित् हो तो ऐसा योगानुयोग होने से होता है, योगानुयोग से। यहाँ इच्छा का होना और वहाँ उसके कारण परिणमित होना। इसकी इच्छा के कारण नहीं। कौए का बैठना और डाली का टूटना। वह कौना माने कि मेरे वज़न से डाली टूटी। ऐसा बनता नहीं। अज्ञानी अनादि का स्वयं का चिदानंद ज्ञायक स्वभाव, जिसके द्रव्य-गुण और पर्याय

अभेदरूप हो, ऐसा जिसका ज्ञायकस्वभाव है, उसको नहीं जानते हुए राग-द्वेष में प्रीति, रुचि और द्वेष करके और परपदार्थ में इष्टपना-अनिष्टपना मानकर परिणमाना चाहता है।

कदाचित् हो तो ऐसे योगानुयोग से। योगानुयोग माने क्या समझ में आया? इच्छा का होना, शरीर में रोग का मिटना। अज्ञानी माने कि मैंने इच्छा करी इसलिये दवाई लाया और रोग मिट गया। इच्छा करी,.... पर पत्थर गिरा और ... उस पत्थर को वहाँ जाना था योगानुयोग, इच्छावाले ने माना कि मेरी इच्छा से यह पत्थर लगा। इच्छा करी कि इसका पचास हजार का मकान पच्चीस हजार में ले लेना है। कुदरती ऐसा ही हुआ। लेनेवाले ने कहा, कमजोर है, नर्म है, कोई लेगा नहीं, ऐसा है, वैसा है, मेरे मकान के आगे कोई दूसरा मकानवाला आ सके ऐसा नहीं है, तेरा सब मुफ्त में जायेगा। बेच दे। समझ में आया? ऐसी इच्छा करी और काम हो गया। मूढ को ऐसा हो जाता है कि, देखा! मेरी इच्छा कैसी काम कर गयी! बराबर समझाया। ढीला हो गया, लो। योगानुयोग होने पर हो जाय, और अज्ञानी माने कि मेरी इच्छानुसार होता है। वह मिथ्याचारित्र है।

'**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**' लो। यह एक सिद्धांत है। आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन, कर्म और स्पर्श, दाल, चावल, रोटी, सब्जी, मकान, इज्जत, कीर्ति, पैर का उठना, होंठ का हिलना, शरीर का हिलना '**बहुत परिणमन...**' जड़ की अवस्था का होना तो स्वयं की इच्छा विरुद्ध ही होते देखा जाता है। सोया हो, ऐसे बायीँ ओर सोया हो, पुनः दायीँ ओर सोने का मन हो जाये। मेरा यह पैर उठता नहीं है, झुनझुनी हो गयी है, थोड़ी देर में झुनझुनी हो जाये। इच्छानुसार तो उसका कुछ भी होता नहीं, बहुत परिणमन। कोई बार योगानुयोग हो जाये। इसलिये 'बहुत' लिखा है। योगानुयोग हो जाये तो इच्छा से नहीं हुए हैं। परन्तु योगानुयोग भी बहुत नहीं होते हैं, ऐसा यहाँ सिद्धांत सिद्ध करना है। उसके राग अनुसार नहीं होता है और उसके द्वेष अनुसार भी नहीं होता है। पहले बोलने की इच्छा हुई कि ऐसा बोलू, फिर मन किया, वैसा बोलू। अरे..! भाषा तो ऐसी निकालनी थी, यह श्लोक ऐसे बोलने थे, लेकिन बोलना हुआ नहीं। इस ढंग से नहीं बोला गया, जो देशी, जो ढंग, जो प्रकार और जो मज़ा लेनी थी, (ऐसा) बोला नहीं गया। छोड़ दे, फिर से बोलू, लो। तब दूसरे ढंग से बोलूँगा। क्या तू बोल सकता है?

इच्छा अनुसार बोलना, इच्छा अनुसार देखो, एक पैर ऐसे रखा, पुनः इच्छा हुई कि दूसरा पैर ऐसे रखूँ। पुनः इच्छा हुई, वह पैसे उठाकर ऐसे रखूँ, पुनः इच्छा हुई कि दूसरा पैर उठाकर ऐसे रखूँ। इच्छा अनुसार कुछ होता नहीं। यूँ ही चेष्टा करता

रहता है। स्थिर पैर रखूँ, वहाँ थी केले का छिलका। पैर फिसलकर गिरे। कहो, समझ में आया? गोरधनभाई! होता है ऐसा?

मुमुक्षु :--

उत्तर :-- क्या प्रत्यक्ष है? कहाँ प्रत्यक्ष है? दो मिनिट में दस्त करके उठने का मन करे, (फिर भी) पंद्रह मिनिट रुकना पड़ता है। क्या प्रत्यक्ष है? पेशाब बन्द हो जाये तब आधे घण्टे में एक-एक बूँद ऊतरता है। क्या प्रत्यक्ष है? उसके परिणमन अनुसार देखकर और अज्ञानी की इच्छा अनुसार शरीर की ऐसी अनुकूलता हो पेशाब की धारा की। देखा? हमें कैसा दस्त तुरन्त आता है, दो मिनिट में बैठकर खड़ा हो गया। दो मिनिट में पेशाब हो गया। अरे..! रहने दे, वह इच्छा अनुसार नहीं हुआ है, वह तो उसके कारण हुआ है। रोग नहीं होता है? ... होता है कि नहीं? आधे घण्टे में मुश्किल से पेशाब खत्म हो। बूँद-बूँद आकर ठीक तरह से होता नहीं।

'**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**' वह नहीं कहते हैं? पुण्यविजय, कितनी दस्त की पीड़ा, भाई! दस्त की पीड़ा। एक पुण्यविजयजी है न देरावासी, बेचारे यहाँ के प्रेमी हैं, अकेले। बहुत समय पहले, ऐसी लकड़ी रखते थे और दस्त जाने के लिये पीछवाड़े में लकड़ी डाले। तो भी दस्त इतना सख्त हो गया कि वह निकले नहीं। इच्छा अनुसार तेरी पर्याय हो, तब योगानुयोग होती है, इच्छा अनुसार नहीं होती है। बहुत परिणमन तो इच्छा विरुद्ध होते देखे जाते हैं। फिर भी अज्ञानी मानता है कि मैंने ऐसी इच्छा की, मैंने द्वेष किया तो देखो, रहने नहीं दिया। उस आदमी का नाम घर में रहने नहीं दिया। देखो न, ये राजा को मार देते हैं न। ऐसा मानते हैं कि हमने रशिया का ऐसा कर दिया। वर्तमान में इच्छा से हमने सब को राजाओं को उठा दिया, फलाने को ऐसा कर दिया। योगानुयोग ऐसा बनना था। वह पर्याय उस काल में वहाँ होनेवाली थी। अज्ञानी राग को निरर्थक करके ऐसा मानता है कि इस राग से यह काम हुआ।

'**बहुत परिणमन...**' तेरी इच्छानुसार होते हो तो बहुत इच्छाएँ होती है, यह लाओ, वह लाओ। ऐसे होता होगा? वह तो जगत के पदार्थ उसके परिणमन के क्रम अनुसार .. बदलने का नियम एक समय तीन काल में व्यवस्थित में बदलता नहीं। ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव भूलकर राग-द्वेष के कारण इष्ट-अनिष्ट मानकर निरर्थक कषाय करता है। इसलिये उसे मिथ्याचारित्र कहते हैं। कहो, समझ में आया?

'**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**' पुत्र को कहे, बेटा! इतना एक-दो दिन में करना। बापू! लेकिन मेरे पास समय नहीं है। ... क्या करे? हैं? इच्छा विरुद्ध बहुत होता देखता है। पुत्र माने नहीं। लेकिन

दो दिन तो ठहर जा। नहीं, बापू! आप कहते हो लेकिन मुझे वेकेशन-छुट्टीयाँ है, मुझे सब रिश्तेदारों को मिलने जाना है। उसकी इच्छानुसार पुत्र भी परिणमता नहीं है। इच्छानुसार पुत्री परिणमति नहीं है, शरीर परिणमता नहीं है। पुस्तक आता नहीं, पुस्तक जाता नहीं। मकान इच्छा अनुसार होता नहीं। ऐसा होगा? हैं! नेमचंदभाई! ... का बहुत करने लगे, जब होना होगा तब होगा। वह पर्याय जिस क्षण, जिस काल में, जिस प्रकार से होनेवाली है उसमें कोई फेरफार करने को समर्थ नहीं है। परन्तु अज्ञानी को श्रद्धा बैठती नहीं। मिथ्यादृष्टि दूसरा सब करे--दया, दान, व्रत परिणाम। परन्तु वास्तविक तत्त्व का स्वभाव क्या है, उसका निर्णय करने को वह फूरसद लेता नहीं। तब तक उसे किंचित् भी धर्म होता नहीं।

'**बहुत परिणमन तो जिन्हें स्वयं नहीं चाहता वैसे ही होते देखे जाते हैं।**' इच्छा विरुद्ध ही, शब्द है। हैं! पुत्र पढ़े, ना पढ़े, शरीर निरोगी रहे, ना रहे, आहार-पानी मिले, ना मिले। समझ में आया? वह सब इच्छानुसार होता नहीं। फिर भी अज्ञानी अपने क्लेश से, कषाय से ऐसा मानता है कि हमारे से यह हुआ और हमारे से यह बिगड़ा। '**इसलिये यह निश्चय है कि अपने करने से किसी का सद्भाव...**' अपने करने से कोई भी अन्य पदार्थ की मौजूदगी या उसका स्वभाव होता नहीं। कोई भी चीज ना हो, एक रजकण यहाँ रखूँ, या अभाव करूँ वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। फिर भी अज्ञानी... (सद्भाव-अभाव होते ही नहीं), '**तो कषायभाव करने से क्या हो?**' लो। कोई पदार्थ तेरी इच्छानुसार तो होता नहीं, तेरे द्वेष अनुसार भी होता नहीं। मांगीरामजी! होता है? शरीर भी नहीं होता है। शरीर में भी उसकी जो पर्याय होगी वह होगी। उसे बदलने में इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र कोई बदलने को समर्थ है नहीं। '**तो कषायभाव करने से क्या हो?**' मुफ्त का हैरान हो रहा है। लोग कहते हैं, कुछ नहीं है, मुफ्त में क्यों करता है? तेरे से कुछ हो और मुफ्त में करता है? लेकिन राग-द्वेष किये बिना अज्ञानी रहता नहीं, और पर का कार्य तो उसके आधीन होता नहीं। केवल स्वयं ही दुःखी होता है। जलन.. जलन हो। अरेरे..! यह इच्छा की, हुआ नहीं। ये लड़कों ने माना नहीं, स्त्री ने माना नहीं, घर में माने नहीं, बाहर में मेरी इज्जत किस काम की? बाहर मैं अपना मुँह कैसे दिखाऊँ पाँच हजार लोगों में? तेरे घर में तो तेरा ठिकाना नहीं है, बाहर में क्या लेकर आया? मुफ्त में घर के सदस्यों को समझाने की इच्छा करता है। बराबर होगा यह? मोहनभाई! पुत्र बराबर चलते हैं? इच्छा अनुसार चलते होंगे कि नहीं?

'**जैसे--किसी विवाहादि कार्य में जिसका कुछ भी कहा नहीं होता,...**' कहते हैं न? दुल्हे की बुआ मैं। बारात में कोई जाने नहीं और दुल्हे की बुआ

मैं। कोई पूछे नहीं तो भी डेढ़ सयानी बनती फिरे वह औरत। इसका करना, उसका करना। लेकिन तुझे पूछता कौन है? ऐसे लड़के कोई पूछे नहीं तो भी डेढ़ सयाना बनता फिरे। '**विवाहादि...**' आदि शब्द से कोई कार्य में, गहने लाने में, कपड़े लाने में, मकान कितनी क़ीमत का करना, कितन समय में पूरा करना है ऐसा विचार चलता हो, उसमें '**विवाहादि कार्य में जिसका कुछ भी कहा नहीं होता, वह यदि स्वयं कर्ता होकर कषाय करे...**' मुफ्त में कर्ता बनकर विकार राग-द्वेष करे। मैं कहता हूँ, मेरी तो सलाह लो, मेरी तो सलाह लो। लेकिन तुझे कौन पूछता है? लेकिन मेरी सलाह नहीं? घर के व्यवहार में, नहीं जाते हैं, जाओ! लेकिन उसको सलाह दिये बिना चलता नहीं।

'**स्वयं कर्ता होकर कषाय करे...**' घर का बड़ा सदस्य बनकर स्वयं दुःखी होता है, उसमें दूसरा कौन दुःखी होता है? दूसरा कोई दुःखी होता नहीं। वैसा यहाँ भी समझना। वैसे कषाय कर तो (भी) जैसा होनेवाला होगा वह होगा। तू राग-द्वेष करके दुःखी होगा, बाकी कुछ है नहीं। इस बात का निर्णय अज्ञानी करता नहीं और सिर्फ मंद कषाय की क्रिया में धर्म मानकर स्वभाव की सूझ पड़ती नहीं। स्वभाव की सूझ पड़ती नहीं और निरर्थक राग-द्वेष क्यों होते हैं, उसका ज्ञान होता नहीं। उसका निरर्थक राग-द्वेष का भी ज्ञान नहीं होता है और स्वभाव कैसा है उसका भी ज्ञान करता नहीं है। निरर्थक राग-द्वेष करके हैरान होता है।

'**इसलिये कषायभाव करना ऐसा है जैसे जल का बिलोना कुछ कार्यकारी नहीं है।**' पानी को बिलोने से मक्खन निकलता नहीं। पानी को बिलोने से हाथ चिकना होता नहीं। चिकना हो? ऐसे राग और द्वेष करे उसमें जगत के कोई पदार्थ का कार्य नहीं होता। पानी को बिलोने से हाथ चिकना हो तो, यहाँ उसके राग-द्वेष के कारण जगत के पदार्थ का कार्य हो। तीन काल में... पर की दया पालूँ, पर का ऐसा कर दूँ, तीन काल में कर सकता नहीं। तेरी इच्छा से पर की दया पले नहीं। तेरे द्वेष से पर से, पर से--शरीर से वियोग होता नहीं। मुफ्त में पानी बिलोने जैसा करता है। पानी बिलोते होंगे ये सब? हाँ? फावाभाई! पानी बिलोते होंगे?

'**जैसे जल का बिलोना कुछ कार्यकारी नहीं है।**' बिलोना समझते हो न? पानी में ... करना। '**इसलिये इन कषायों की प्रवृत्ति को मिथ्याचारित्र कहते हैं।**' लो। इसलिये मिथ्याचारित्र कहते हैं, हाँ! राग-द्वेष ज्ञानी को हो, वह तो प्रयोजन से होता है। प्रयोजन क्या? विषय की आसक्ति, स्वभाव में भान होने पर भी कमजोरी से होती है। पर का कार्य करने के लिये ज्ञानी को राग-द्वेष की इच्छा होती नहीं।

'**तथा कषायभाव होते हैं सो पदार्थों को...**' देखो! क्रोध, मान, माया, लोभ अज्ञानी को होते हैं, '**सो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानने पर होते हैं...**' भाई! यहाँ अज्ञानी की बात लेनी है। यहाँ कषायभाव हो। वह कषायभाव होता है वह तो (उस) कार्य के समय उस काल में उस गुण का होता है, ऐसा ज्ञानी जानते हैं। चारित्रमोह से चारित्र की स्थिरता आत्मा को न हो तब उस काल में चारित्रगुण की विपरीतरूपी राग-द्वेष इत्यादि का परिणमन उस-उस काल में होता है, उसे होता है, वह निरर्थक नहीं है। भाई! निरर्थक नहीं है। क्योंकि उस काल में वह राग, स्वभाव में स्थिरता नहीं है इसलिये होता है। लेकिन उस राग से कोई विषय में सुख मान लेता है यया द्वेष से दुश्मन का बुरा हो, ऐसा मानता है, ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। समझ में आया?

अज्ञानी को कषायभाव होता है '**सो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानने पर होते हैं,...**' यह अनुकूल है, यह इष्ट है, यह मुझे अनिष्ट है, यह मुझे प्रिय है, यह मुझे अप्रिय है, समझ में आया? यह मेरे निजी लोग हैं, ये विरोधपक्ष के हैं। हाँ, जितने विरुद्ध बोलनेवाले हैं उस पक्ष का आदमी ..., ऐसा करके द्वेष करता है। यह मेरे निजी लोग हैं, मेरे मण्डल का अनुकूल छोटा दल है, उसका यह आदमी लगता है। ऐसा करके राग करके उसे अनुकूल रखना चाहता है, द्वेष करके प्रतिकूल को दूर करना चाहता है। वह मिथ्याचारित्र एवं मिथ्या राग-द्वेष, अज्ञानभाव है। '**सो इष्ट-अनिष्ट मानना भी मिथ्या है;...**' लो, पर वस्तु में, यह मुझे प्रियकर है, हितकर है, श्रेयकर है, अनुकूल है, इष्ट है ऐसा मानना वह मिथ्या है। ऐसे पर वस्तु में अप्रियकर है, अहितकर है, अप्रियकर है, अनिष्ट है ऐसा मानना भी मिथ्या है। लोग मानते हैं न? तूने आकर मेरा बिगाड़ा, मेरी इज्जत थी, हम बड़े थे, हमारी अधिकता थी, हम जाननेवाले थे। तेरे आने से हमारा यह सब मान जाता है। जेठाभाई! लोग ऐसी बातें करते हैं, लो न, बातें करते हों लोग। ... ऐसा हो गया। दौलत! तेरे यहाँ आने से हमारा मान-सम्मान चला जाता है। देखो, हम बातें करते हों उसमें मेरा बड़प्पन रहता है, तू ऐसा सयानापन करके मुफ्त में बैठा रहता है। वाह! लेकिन तू ... राग-द्वेष मिथ्या करता है, उसका तो कर। कोई वस्तु इष्ट-अनिष्ट है नहीं, वह तो ज्ञेय है, वह तो उसके कारण आती है और जाती है। कहीं तेरे कारण आती नहीं। '**इष्ट-अनिष्ट मानना भी मिथ्या है।**'

देखो न! राजा भी अनुकूल न हो तो दिवान को प्रतिकूल लगता है। दिवान अनुकूल न हो तो राजा को ऐसा लगता है, इसका मान बढ़ गया, अब इसको निकालना कैसे? ऐसा हो जाता है, लो। समझ में आया? एकदूसरे को विचार ऐसा आये कि ... दिवान है और अन्दर से ... इसका मान बढ़ गया। मेरा राज तो कुछ.... मेरे हुक्म की तो कोई गिनती नहीं है।

ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधु नाम धरानेवाले भी परस्पर जलते हैं. समझ में आया? जलते हो अन्दर में। अरे..! सच्चे आचार्य नहीं, हाँ! यह तो झूठे की बात चलती है। सच्चे आचार्य, उपाध्याय, मुनि ज्ञानी में ऐसा होता नहीं। अरे..! ये तो बड़ा सम्राट हो गया और मैं तो छोटा रह गया। इन सब साधुओं का ... बढ़ गया और पच्चीस-पचास शिष्य हो गये, मेरे एक भी शिष्य (नहीं है)। मुफ्त में मूढ मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष करके हैरान होता है। धर्म क्या है इसकी कुछ खबर नहीं है।

'**क्योंकि कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट है नहीं।**' इस जगत में तीन लोक के नाथ भी आत्मा को इष्ट नहीं है। ऐसा होगा? सर्वज्ञ भगवान भी आत्मा के लिये इष्ट नहीं है। परमेष्ठी कहलाते हैं न? परम इष्ट कहलाते हैं न। शुभराग आता है उसमें निमित्त होते हैं, इसलिये कहने में आता है। वास्तव में वह पदार्थ परमेष्ठी उसके हैं, आत्मा को इष्ट नहीं है। आत्मा का स्वभाव सो इष्ट है और निर्विकारी पर्याय सो इष्ट है और विकारी पर्याय सो अनिष्ट है। वास्तव में तो वह भी ज्ञाता का ज्ञेय है। कहो, समझ में आया? क्योंकि कोई पदार्थ इस जगत में इष्ट-अनिष्टरूप है नहीं। अपनी आत्मा को इष्ट मानना और पर को अनिष्ट मानना, यह भी मिथ्या है। समझ में आया? '**कैसे? सो कहते हैं :--**'

'**जो अपने को सुखदायक--उपकारी हो उसे इष्ट कहते हैं;...**' सुखदायक, उपकारी। लो, कहते हैं कि उपकारी कोई है नहीं। मुफ्त का मान बैठा है। भारी बात भाई! जिसको जो अपने को सुख का दायक निमित्त हो उसे उपकारी हो उसको इष्ट कहते हैं। तथापि '**अपने को दुःखदायक...**' दुःख का दातार--निमित्त और '**अनुपकारी हो उसे अनिष्ट कहते हैं। लोक में सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं,...**' लो। केवलज्ञानी भगवान भी उनकी पर्याय के कर्ता हैं, कहीं तेरी पर्याय के कर्ता नहीं हैं। कहो, समझ में आया? शत्रु का आत्मा भी उसकी पर्याय का कर्ता है, कहीं तेरी पर्याय का कर्ता नहीं है। समझ में आया?

'**लोक में सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं, कोई किसी को सुख-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।**' लो, भगवान उपकारक है, वह तो स्वयं को राग (होता है), ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में रहने पर भी अस्थिरता होती है, इसलिये जब राग उसके काल में आये तब निमित्त पर लक्ष्य जाने पर, वे उपकारी हैं ऐसा आरोप किया जाता है। वास्तव में तो कोई उपकारी-अनुपकारी है ही नहीं। वह पदार्थ उपकारी नहीं है। वह तो राग आने पर आरोप किया जाता है। समझ में आया? अनारोप के भान बिना आरोप भी कैसा? मैं जाननेवाला ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मेरे चिदानंद स्वभाव में मेरी स्वयं की पर्याय निज स्वभाव की ओर जो ज्ञान की

मुड़ी, और बाकी रहा राग उसका भी मैं जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। ऐसा स्वभाव वस्तु का है। इसके अतिरिक्त विपरीत मानता है।

इसलिये कहते हैं कि कोई पदार्थ किसी का कर्ता तो है नहीं कि तुझे कोई भगवान दे दे। दे दे ऐसा है? शास्त्र दे दे? समयसार पुस्तक दे दे? एक ही वस्तु हमेंशा है। ज्ञायक चैतन्यस्वभाव तो वह तो जानता ही है और जाननेवाले को क्रम में उस काल में जो राग आये, उस राग को लाना भी नहीं है, उस राग को कम भी नहीं करना है, उस राग को टालना भी नहीं है, वह तो ज्ञानस्वभाव जानने पर जो क्रम से पर्याय आये, उसे जानने का कार्य वह दूर से करता है। ऐसे स्वभाव को जाने बिना अन्य को उपकारी मानना वह भी मिथ्याभाव है। बराबर होगा यह? भारी बात भाई! शास्त्र में व्यवहार से तो उपकार है कि नहीं? यह तो निश्चय की बात चलती है। व्यवहार उपकार की व्याख्या साथ में की न। तूने तेरे ज्ञायक स्वभाव को, चिदानंद मेरा स्वभाव है ऐसे स्वभाव को जानने पूर्व भी शुभराग के ज्ञान के स्थान में देव-गुरु-शास्त्र ने कहा, चिदानंद-सूर्य तेरा है, ऐसा विकल्प और राग होने के ज्ञान में भी स्वभाव सन्मुख जाना और अभेद होना सो ठीक है, ऐसा जो विकल्प उठा और स्वभाव की रुचि की, तब उस विकल्प को और निमित्त को उपकारक गिनकर आरोप दिया जाता है। वास्तव में कोई पदार्थ उपकारी या अनुपकारी है नहीं। वह राग आया वह भी उपकारी नहीं है। भाई! क्या कहा?

मुमुक्षु :-- आरोप...

उत्तर :-- हाँ, आरोप माने यथार्थ नहीं।

मुमुक्षु :-- ... नहीं करना?

उत्तर :-- तत्त्वार्थ सूत्र में वह करना। उसकी पर्याय जब हो तब वह चीज आगे निमित्त होती है, उसको आरोप दिया जाता है। उपकार-अनुपकार शब्द बहुत आता है उसमें। जीव को मरण, जीवन, सुख-दुःख में पुद्‌गल का उपकार है। पुद्‌गल आत्मा को सुख में उपकार करता होगा? दुःख में उपकार करता होगा? वह तो तू दुःखी होने की पर्याय कर तब निमित्त को दुःख में उपकार कहा। सुखी होने का विकल्प कर तब लड्डु को सुख में निमित्त उपकारी है ऐसी बात की। जीवन तो आयुष्य के कारण रहे, पुद्‌गल को निमित्त कहा, आयुष्य पुद्‌गल को, संयोग को। वह तो निमित्त के कारण (कहा)। तेरा कार्य तो तेरे कारण होनेवाला हो, तब आरोप दिया गया है। उपकारी-अनुपकारी कोई पदार्थ है नहीं। देखो, यह पूरी बात।

तत्त्वार्थ सूत्र, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य उमास्वामी द्वारा रचित, उसमें भी कहते हैं कि जीव जीव को उपकार करता है। लो। उसमें ऐसा है। गुरु, शिष्य को

उपकार करते हैं और शिष्य, गुरु को उपकार करता है, ऐसा पाठ है। वह तो उमास्वामी का है उसमें। यहाँ ना कहते हैं। वहाँ तो निमित्त की हयाती का ज्ञान करवाते हैं। ज्ञान में भान के वक्त कौन-से गुरु निमित्त थे। समझ में आया? जीवन के समय कौन-से पुद्गल निमित्त थे, मृत्यु के समय कौन-से पुद्गल निमित्त थे, सुख-दुःख के समय कौन-से निमित्त थे, उस निमित्त का ज्ञान करवाने को वह कथन किया है। कोई उपकारी-अनुपकारी जगत में है नहीं। हैं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- संसार? संसार और स्वभाव तीन काल में तन्मय नहीं हुए हैं। उदयभाव संसार और स्वभाव पारिणामिकभाव--दोनों एकमेक तीन काल तीन लोक में हुए नहीं। क्या कहा? ज्ञायकपना स्वभावभाव और उदय संसारभाव, दोनों तीन काल में तन्मय नहीं है। यदि दोनों तन्मय हो तो अंधेरा और सूर्य दोनों एक हो जाये, वैसे विकार और निर्विकार दोनों एक हो जाये। स्वभाव सो स्वभाव है और विकार सो विकार क्षणिक संसार है। एक समय का विकार संसार है जीव में। वह स्वभाव में नहीं है। स्वभाव में उसका अभाव है। स्वभाव का उसमें अभाव है। अभावस्वभाव का भान होने पर जो थोड़ा राग रहा उसका वह ज्ञाता है। उसका ज्ञाता कहना भी व्यवहार है। संसार का जीव जाननेवाला है, ऐसा कहना भी व्यवहार है। क्या कहा, समझ में आया? राग और विकल्प जो विकल्प उठता है, पुण्य-पाप, दया, दान वह संसार है। वह संसार का ज्ञाता है ऐसा कहना सो व्यवहार उपचार है। क्योंकि वह राग है इसलिये यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। वह उदय है इसलिये यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। ज्ञाता का स्वभाव है इसलिये ज्ञान होता है। इसलिये ज्ञान और ज्ञाता का तन्मय एकत्व है। राग और संसार और आत्मा का एकत्व नहीं है। कहो, समझ में आया?

ऐसे स्वभाव का ज्ञान नहीं है और राग-द्वेष करके पर का उपकार मानता है। उपकार तो तेरे स्वभाव में एकाग्र हो, तब तेरा द्रव्य ही उपकारी है, दूसरा कोई उपकारी है नहीं। भारी बात भाई! ये सब व्यवहार का उथापन हो जायेगा। वह व्यवहार व्यवहार के काल में और व्यवहार की रीति में रहेगा। उलटा-सीधा करने जाये तो रहता नहीं। अज्ञानी कल्पना करे कि इसका नाम व्यवहार और इसका नाम राग, ये दया, दान, भक्ति साधन है। विकार चैतन्य में एकमेक नहीं है उसे तू साधन ठहराये तो... समझ में आया? वह साधन हो सकता नहीं। स्वभाव में तो स्वभाव का साधन नाम का एक गुण एकमेक है। ज्ञायक में एक साधन नाम का गुण तन्मय है। वह साधन है। राग और पुण्य विकल्प निरर्थक करके पर को उपकारी और अनुपकारी स्वीकारता

है।

'**सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के ही कर्ता हैं,...**' हो गया, लो। पूरी दुनिया उसका पर्यायधर्म, उसका परिणमन उसका कर्ता वह द्रव्य है। तेरे पर्याय में गुण के परिणमन का कर्ता तो गुण है। दूसरे के आधीन उसका परिणमन है नहीं। '**कोई किसी को सुखदायक-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।**' वह सब उमास्वामी ने कहे कथन निमित्त का ज्ञान करवाने का आचार्य का प्रयोजन था। उपकारी-अनुपकारी है ऐसा परमार्थ से सिद्ध करने का प्रयोजन नहीं था। '**सुखदायक-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।**' ओहो..! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र वह भी अनुपकारी वास्तव में नहीं है। तूने भाव माना था इसलिये आरोप दिया गया। श्रीमद् में ऐसा कहते हैं, भाई! कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को आत्मा का प्रत्यक्ष घातक जाने बिना तेरा ज्ञान सच्चा होगा नहीं। प्रत्यक्ष घातक। सब कथनशैली तो जैसे आनेवाली होती है ऐसे आये। परन्तु परमार्थ क्या है यह उसे जानना चाहिये। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, कोई पदार्थ आत्मा के अतिरिक्त अनुपकारी कोई चीज ही नहीं है। अनुपकारी, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र भी अनुपकारी नहीं है। सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र परमार्थ से उपकारी नहीं है। फिर भी व्यवहार के ग्रंथ में ऐसा आये, अहो..! धर्मात्मा, जिनसे उपकार हुआ उनके उपकार को ही छिपाये, आया था न इसमें? सम्यक्ज्ञान दीपिका में आया था न? महा घातकी, पापी, मिथ्यादृष्टि संसारी है। अबी आया था न? जिससे ज्ञान हुआ, जिन निमित्त से ज्ञान हुआ उसको ही यदि छिपाये (तो वह) महापापी, घातकी गुरु को छिपानेवाला मिथ्यादृष्टि संसारी है। वाह! यहाँ कहे कि कोई उपकारी नहीं है। दलीचंदभाई! हें?

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- ... है। जब वहाँ स्वभाव का यथार्थ ज्ञान हुआ उसका निमित्त कौन था उसका, उसको उस प्रकार का विकल्प का वह काल उपकार का अथवा विनय का आये बिना उपचार से रहे ही नहीं। वास्तव में उपकार पर को माने तो वह उपकार भी नहीं है और स्वयं समझा भी नहीं है। कहो, समझ में आया?

दो बात। यहाँ कहे, उपकार-अनुपकार (है नहीं)। वहाँ कहे कि उपकार को छिपाये वह घातकी, महाघातकी, पापी मिथ्यादृष्टि संसारी है। लो, भाई! आया था न? सम्यक्ज्ञान दीपिका में। उस दिन कहा था, आया था न? दैनिक में लिखा है। सम्यक्ज्ञान दीपिका में, अनुभवप्रकाश में भी आता है। समझ में आया? भाई! किस अपेक्षा के कौन-से कथन क्या समझाते हैं उसको समझना चाहिये। स्वभाव को जाना तब उस भूमिका में यथार्थ ज्ञान होने पर उस काल में ज्ञान का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है तो ज्ञान

ने स्व को जानते हुए, उस वक्त राग कैसा होता है और इस ज्ञान में कौन निमित्त हुआ, वह ज्ञान का स्वपरप्रकाशक (स्वभाव) सिद्ध होने से उस निमित्त का यथार्थ ज्ञान हुए बिना रहता नहीं और उस काल में उपकारी का विकल्प आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? परन्तु परमार्थ से परद्रव्य उपकारी है और परपदार्थ अनुपकारी है ऐसा माने तो उसके मिथ्या राग-द्वेष हो। वह इच्छा तो सार्थक हुई, भाई! विनय की हुई, विनय की। उस जात के स्वपर ज्ञान में स्वपर सामर्थ्य तो उस वक्त ज्ञान जानते हुए, पर कौन था, यही निमित्त था, यही पुस्तक था, यह वाणी थी और इनके शब्द निमित्त थे। वह तो ज्ञान का विवेक हुआ। उसे उस काल में साधकदशा है इसलिये राग में उपकार आये बिना रहे नहीं। हें?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, अधूरा है इसलिये आता है, वह चीज उपकारी है इसलिये आता है ऐसा नहीं। वह चीज उपकारी है इसलिये नहीं। अपने राग के काल में उस जात के ज्ञान के स्वपरप्रकाश सामर्थ्य में वह निमित्त ज्ञेय हुआ। उसके प्रति राग का काल है इसलिये, निमित्त के कारण भी नहीं, वह राग आये बिना रहे नहीं। फिर भी...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- फिर भी उसे उपचार कहते हैं, वह वास्तव में उपचार नहीं है। कहो, समझ में आया? ओहो..!

'**कोई किसी को सुखदायक-दुःखदायक, उपकारी-अनुपकारी है नहीं।**' ओहो..! आचार्य मुनियोंने गीत गाये, गोम्मटसार में नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती, ओहो..! तेरे चरणकमल के प्रसाद से मैं भवसंसार तिर गया। तेरे चरणकमल के प्रसाद से संसार पार हुआ। यहाँ कहते हैं कि उपकारी किसी को मानना सो मिथ्यात्व है। दोनों का मेल कैसे (करना)? यह कहा न। मेल करना। विनय.. विनय.. विनय.. विनय.. निश्चय से विनय तो स्वभाव का करता है। निश्चय से विनय स्वभाव का करे और साधक है तो बाधकपना पड़ा है। इसलिये राग--गुरु का विनय आये बिना उसे रहता नहीं। अन्यथा वह निह्नव और मिथ्यादृष्टि होता है। यहाँ निश्चय से पर को उपकारी मान ले तो भी वह मिथ्याचारित्र और मिथ्यादृष्टि होता है।

'**यह जीव ही अपने परिणामों में उन्हें सुखदायक--उपकारी मानकर...**' परिणामों में, हाँ! वह पदार्थ नहीं है। पदार्थ कहीं सुखदायक नहीं है और दुःखदायक भी नहीं है। अहो..! जहाँ सुख का निमित्त हो (वहाँ) कल्पना तो स्वयं करता है। आहा..! पुत्र! तुझे देखकर मेरे हृदय में ठंडक होती है। आहाहा..! बापू, बापू करे तो हृदय में ठंडक होती है। मूढ है। वह राग तुझे आया है, राग से तुझे मीठास

लगती है। वह तो है वही है। दुश्मन आये, एक तो जानता हो कि यह मेरा विरोधी है, ऐसे में कोई प्रतिकूलता आये, हाय.. हाय..! यह क्या करेगा? ऐसे दुश्मन नहीं देखे ही अच्छा है, नज़र के सामने अच्छे नहीं। नज़र के सामने अच्छे नहीं, तो क्या ज्ञान में कोई दिक्कत होती है उस ज्ञेय को जानने में? समझ में आया? परन्तु अज्ञानी को वह सुखदायक है, ऐसा मानकर जो द्वेष होता है, वह स्वयं दुःखी होता है, उसमें पर में कुछ होता नहीं।

'**अपने परिणामों में उन्हें...**' अपने परिणामों में, हाँ! '**सुखदायक––उपकारी मानकर इष्ट जानता है...**' अपने परिणाम में सुखदायक मानकर और उपकारी जानकर इष्ट मानता है। '**अथवा दुःखदायक...**' अपने परिणाम में पर को '**दुःखदायक––अनुपकारी जानकर अनिष्ट मानता है;...**' देखो! दृष्टान्त देते हैं। कोई चीज इष्ट–अनिष्ट है नहीं। '**एक ही पदार्थ किसी को इष्ट लगता है, किसी को अनिष्ट लगता है।**' वही पदार्थ किसी को इष्ट लगता है, वही पदार्थ अनिष्ट लगता है। पदार्थ में इष्ट–अनिष्टता हो तो दो भंग पड़े नहीं। पदार्थ में ज्ञेयत्व है, प्रमेयत्व है कि जो प्रमाण का प्रमेय हो, ज्ञान का ज्ञेय हो। निमित्तता तो ज्ञेय की है। इष्ट–अनिष्ट की निमित्तता ज्ञेय को नहीं है। भाई! प्रमेय, ज्ञान में प्रमाण में प्रमेय हो ऐसी निमित्तता है। परन्तु प्रमाण में अथवा ज्ञान में वह चीज इष्ट–अनिष्ट भासित हो, ऐसी उसमें निमित्तता भी नहीं है। वह तो स्वयं उत्पन्न करता है। क्या कहा समझ में आया?

केवलज्ञान होने पर लोकालोक ज्ञेय है वह निमित्त बराबर, यहाँ ज्ञान नैमित्तिक होने पर, हाँ! नैमित्तिक हुआ इसलिये ज्ञेय निमित्त है। निमित्त में कोई भंग पड़ता नहीं। ज्ञेय का निमित्तपना ज्ञान में और अपने ज्ञान में भी अपने ज्ञान का निमित्तपना है। परन्तु कोई पदार्थ सुख–दुःखरूप अनिष्ट–इष्ट का निमित्त हो, ऐसी निमित्तता उसमें नहीं है। परन्तु अपने परिणाम में एक पदार्थ जिसे इष्ट कल्पे उसे निमित्त में इष्ट का आरोप करे। अनिष्ट कल्पे उसे अनिष्ट का आरोप दे। उस पदार्थ में इष्ट–अनिष्टता नहीं है। वह पदार्थ ज्ञेय है तो वह पदार्थ ज्ञानी को ज्ञेयरूप होता है। समकित से लेकर केवलज्ञान (पर्यंत) सब ज्ञान में पदार्थ ज्ञेयरूप एकधारा से बहता है। वह तो वस्तु का स्वभाव है। हैं?

मुमुक्षु :–– ...

उत्तर :–– हाँ। लेकिन फिर भी वह इष्ट–अनिष्ट तो है ही नहीं। इष्ट–अनिष्ट है नहीं और आरोपकर ज्ञानी कहे वह अलग वस्तु है, अज्ञानी तो उस पदार्थ को ही इष्ट–अनिष्ट मान बैठा है। वस्तु ही ऐसी हो गयी है।

देखो! '**एक ही पदार्थ किसी को इष्ट लगता है, किसी को अनिष्ट लगता है।**' यह तो

अलग दृष्टान्त है। परन्तु सर्वज्ञ की वाणी लो, भाई! समयसार लो, ... आहाहा..! यह समयसार प्रकाशित होने से हमारा मान गया, इज्जत गयी। लो, वस्तु तो वही है। छिपा दो, ढक दो। समझे? भण्डार में रख दो, समयसार अभी नहीं पढ़ते। लो, समयसार तो ज्ञान का ज्ञेय है, परन्तु उसे ऐसा लगा कि यह आने से मेरी इज्जत रही, मेरी शिक्षा पर पानी फिर जाता है, जगत मुझे मान देता नहीं है और इस समयसार में सब मान चला जाता है। वह समयसार तो समयसार है, शास्त्र तो शास्त्र है और शास्त्र ज्ञान का ज्ञेय है। परन्तु अज्ञानी उसे अनिष्ट मानकर अपने परिणाम में द्वेष करता है। उसी को इष्ट मानकर अज्ञानी राग से आरोप... राग से निश्चय से मानता है। आरोप से माने तो निश्चय से दूसरी बात रह गयी है। समझ में आया? शास्त्र ज्ञान में एक निमित्त है, भगवान की प्रतिमा भक्ति में निमित्त है, वह तो स्वयं को उस काल में राग अपने कारण हुआ उसमें निमित्त हुआ, इसलिये निश्चय से वह पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं हुआ। समझ में आया?

और कोई ऐसा कहे कि यह समयसार लो तो (उसमें) आत्मा (दर्शाया है), अतः निश्चित ही समयसार में अन्य ग्रंथो से अधिक प्रियता ही है। निश्चय से प्रियता है, ऐसी बात है नहीं। वह तो जगत के परमाणु की पर्याय है। उस पर्याय में कोई अंतर नहीं है। तब, अपनी पर्याय में उस जात का ज्ञान होनेवाला है ऐसा निमित्त सामने होता है। निमित्त के कारण पर्याय पलटी नहीं है और पर्याय के कारण निमित्त आया नहीं है। और पर्याय प्रगट हुई इसलिये निमित्त इष्ट है ऐसा भी नहीं है। कहो, दलीचंदभाई!

मुमुक्षु :-- हेय-उपादेय...

उत्तर :-- हेय-उपादेय, यह विकार हेय और स्वभाव उपादेय। पहले इष्ट-अनिष्ट का कहा न। विभाव हेय, स्वभाव उपादेय। वह भी अमुक भूमिका में। परमार्थ से तो जीव तो अकेला ज्ञाता-दृष्टा है। उसमें हेय-उपादेय सब आ जाता है। राग भी ज्ञान का ज्ञेय है, कहो। वह ज्ञेय है लेकिन छूट जाता है इसलिये हेय कहा है, बाकी निश्चय से तो वह ज्ञेय है। समझ में आया? परन्तु ज्ञान सम्यक् होने पर निमित्त कैसा है उसका उसे ज्ञान होता है। फिर भी इष्ट-अनिष्ट की कल्पना सम्यक्ज्ञान में होती नहीं। मिथ्याज्ञान तो इष्ट-अनिष्ट पर को कल्पना करके इसलिये मिथ्याचारित्र कहने में आता है।

लो, यहाँ दृष्टान्त तो दिया है साधारण, हाँ! '**जैसे--जिसे वस्त्र न मिलता हो उसे मोटा वस्त्र इष्ट लगता है...**' वस्त्र ही नहीं था ऐसे गरीब मनुष्य को मोटा वस्त्र दो, मोटा। चार.. क्या कहते हैं? चार तारी ओढ़ने की मोटी खादी की चादर।

गरीब मनुष्य को दो अच्छी लगे, लो। और सेठ को दो तो कहे, अरे..! ये क्या? **'जिसे वस्त्र न मिलता हो उसे मोटा वस्त्र इष्ट लगता है और जिसे पतला वस्त्र मिलता है उसे वह अनिष्ट लगता है।'** समझ में आया? जिसे वस्त्र न मिलता हो उसे इष्ट लगे **'और जिसे पतला वस्त्र मिलता है उसे वह अनिष्ट लगता है।'** मलमल का सरबती कपड़ा मिलता हो उसे तीन तारी मोटी ओढ़ने की चादर दे (तो उसे अनिष्ट लगता है)। चादर तो वही है। हैं! गरीब मनुष्य को पैसा न हो और ऐसे ... मिले तो इष्ट लगे और बड़े पैसेवाले सामने देने जाये, लो, आप को पुत्र नहीं है, ऐसा है। हमें शादी करने का भाव नहीं है। लेकिन आप को पुत्र–पुत्री नहीं है। राजा को सामने से देने जाये। भाई! राजा को देने जाये। पैंसठ साल का हो और सोलह (वर्ष की कन्या) देने जाये। पैंसठ साल का हो तो भी देने जाये कि लो। (राजा कहे), मुझे अब शादी नहीं करनी है। जो भी हो, एक पुत्र होगा तो मेरी पुत्री को ठीक रहेगा, लो। समझे न? राजकोट का दरबार हता, वह बुढ़ा था। पैंसठ साल का था न? हम लोग गये थे, प्रवचन करने वहाँ गये थे। बड़ी उम्र, औरत छोटी उम्र की। ... फिर कहे, एकाद बालक हो तो पीछे से दो–पाँच हज़ार की आजीविका शुरू हो जायेगी। देखो! और अन्य साधारण को मिलता न हो, पैसा देकर मिले तो भी प्रसन्न हो। दूसरे को सामने से चलाकर पैसा देने आये। वह चीज इष्ट–अनिष्ट नहीं है। उसकी कल्पना के काल में वह कल्पना उत्पन्न करता है और आरोप करता है पर में कि पर मुझे सुखदायक और दुःखदायक होता है। कहो, समझ में आया? यह तो दृष्टान्त साधारण वस्त्र का दिया है।

ऐसे कोई भी चीज लो। जब जोर से वमन हुआ हो और खीर और चूरमा के लड्डु पड़े हो, साड़े दस बजे खाने के लिये बनाये हो। दाल, चावल, रोटी, सब्जी अथवा चूरमा का लड्डु (बनाया है)। वमन हुआ, इतना जोर से वमन हुआ कि छठी का दूध निकल गया। लड्डु परोसें? बापू! अभी लड्डु? आधे घण्टे पहले तो लड्डु मीठा लगता था, इष्ट था। अनिष्ट कैसे हो गया? यहाँ तो अब चूरण खाने का होश नहीं है। चूरण, चूरण। चूरमा तो नहीं लेकिन, चूरमा तो नहीं लेकिन चूरण लेना हो तो चूरण लेने का होश नहीं है। वमन होगा, लेने के साथ ही वमन होगा। पेट में कुछ नहीं रहेगा। चूरण लूँगा तो भी नहीं रहेगा। क्यों भाई होता है न? चूरण ले, दवाई है, ... लो, इष्ट लगता था न? क्षण में हो गया अनिष्ट। कल्पना है कि नहीं तेरी? किसीको ऐसा लगे। समझ में आया?

**'सूकरादि को विष्टा इष्ट लगती है,...'** सूकर.. सूकर, सूकर होता है न? सूकर को विष्टा अच्छी लगती है। विष्टा नर्म पड़ी हो, ऐसी चाटे मानो रबड़ी चाटता

हो। उसे '**विष्टा इष्ट लगती है,...**' लो, सूकर को ... '**देवादिक को अनिष्ट लगती है।**' देवों को विष्टा अनिष्ट लगती है। मनुष्य को विष्टा पड़ी हो, पायखाना पड़ा हो तो उंहुं.. (करे)। पायखाना घर में रखा हो और वह सुधरा हुआ मनुष्य भोजन करने बैठा हो, ऐसे में कोई जंगल जाता हो, और जंगल में हवा चली हो... उंहुं... भोजन करते समय ही यह कौन बैठा है? तूने पायखाना बनवाया है और तेरा घर का सदस्य दस्त करने को जाता है। तुझे क्या हुआ? मुफ्त का मानकर कल्पना राग-द्वेष और इष्ट-अनिष्ट मानकर ऐसा करता है। दो साल का लड़का साथ में बैठा हो उसे कहे, चल, चल खिलाता हूँ। ऐसे में वहाँ टट्टी करे तो.. उंहुं... क्षण में इष्ट लगता था, अब, बालक ने टट्टी की और उसके छींटे थाली में गिरते हो, ले जाओ इसे, कौन है? अरे..! ले जाओ इसे। लेकिन बापू! आपने ही भोजन के लिये बुलाया था। भोजन करने के समय तो आपने बुलाया था कि, चल, चल। मेरे साथ थाली में खाने को साथ में चल। पुनः कहता है, ... भोजन में गिरा, हाय.. हाय..!

(बरसाद) पंद्रह दिन देर से आया होता तो... भले ही बिना मौसिम की बारिश हुई होती, पंद्रह दिन देर से आया होता तो... घर में माल आने के बाद आया होता तो... कल्पना है कि नहीं? '**किसी को मेघवर्षा इष्ट लगती है, किसी को अनिष्ट लगती है।**' उस वक्त, मेंढक, चीटियाँ, सर्प के बच्चे पानी में बह जाते हैं। जंगल में देखो। वही बरसाद, वही पानी नदी में आये तो कहे, पानी तो आया, राहत रहेगी, चार इँच आया तो .. गाँव में लोग माने। और जंगल में जानवर, हिरन, मेंढक पानी में बहकर मर जाते हैं। सर्प, बिल में पानी में घुसता है तो मर जाते हैं। निकलते हैं न? मरे हुए निकलते हैं। वह किसी को इष्ट लगता है। लो, वही बरसाद किसी को मूसलाधार अच्छा लगे तो दूसरे को ऐसा होता है.. अरेरे..! पंद्रह मिनिट देर से आया होता तो माल घर के अन्दर ले लेता। अरे..! माल बिगड़ गया। पूरी मौसिम व्यर्थ गयी। ऐसी कल्पना (करता) है।

... पर्याय से परिणमती नहीं। अज्ञानी को पदार्थ, जानना-देखना मेरा स्वभाव है, उसके कारण उसका परिणमन होता है, उसका कर्ता वह द्रव्य है ऐसा मानता नहीं। '**इसी प्रकार अन्य जानना।**' दो दृष्टान्त दिये, इसी प्रकार अन्य भी जानना। इकलौता पुत्र हुआ हो और इच्छानुसार काम करे तो अच्छा लगता है। इकलौता पुत्र भी यदि इच्छानुसार कार्य न करता हो और स्वयं को ऐसी कोई ... आन पड़ी हो और पुत्र यदि बीच में आता हो तो (ऐसा भाव करता है कि) मार डालूँ, पुत्र को मार डालूँ। बहुत अच्छा कहता था न? हमारी लिखावट हुई है उसमें यह विरोध करता है। मार डालते हैं न, पुत्र को मार डाले। पुत्र मार डाले, युवान इकलौता पुत्र। हम जिस चाल

से चलते हैं, हमारी चाल में अटकायत करे तो जिंदा न रहने दे, पति को मार दें और पुत्र को भी मार दे। इष्ट था न? कल्पना, अज्ञानी कल्पना है। अपनी मान्यता से राग–द्वेष से कल्पना कर रखी है कि यह मुझे प्रिय है। वस्तु में प्रियता–अप्रियता चित्रित नहीं किया है। वहाँ रजीस्टर नहीं कर रखा है कि यह इष्ट–अनिष्ट है। तेरी कल्पना ने इष्ट–अनिष्टपना उत्पन्न किया है। वह तेरी कल्पना ही असत्य है। समझ में आया?

अतः कहते हैं, '**तथा इसी प्रकार एक जीव को भी एक ही पदार्थ किसी काल में इष्ट लगता है,...**' यह तो सामान्य बात कही। वही पदार्थ कोई जीव को, कोई जीव की बात कही, जो पहली बात कही वह। वही पदार्थ, '**एक ही पदार्थ किसी काल में इष्ट लगता है,...**' यह दृष्टान्त इष्ट के लिये कहा। वही पुत्र इष्ट लगे, तब '**किसी काल में अनिष्ट लगता है।**' सर्दी में गर्म कपड़ा अच्छा लगे और कड़ी धूप ११८ डिग्री की हो तब... लो बापू! यह गर्म कोट ओढ़ने के लिये, ऊनका बड़ा कम्बल ओढने को देता है। मूर्ख लगता है। गर्मी में होता है? लेकिन बापू! उस दिन तो कहते थे, सर्दी हो तब... लेकिन वह हिमवर्षा के समय, अभी...? समझ में आया?

एक ही काल में कोई पदार्थ इष्ट लगता है, कोई काल में अनिष्ट लगता है। समझ में आया? वही पदार्थ। सर्दी में खूब गर्म पानी स्नान करने के लिये दिया हो तो अच्छा लगता है। गर्मी में दिया हो तो.. खूब गर्मी हो और बारह बजे पसीने से तरबतर होकर आया हो और धूप में पाटला रखकर बिठाया हो और खूब गर्म पानी दिया। लो, वही चीज, जगत की पर्याय, परिणमित पदार्थ एक बार ठीक लगता है, दूसरे समय अनिष्ट लगता है। '**यह जीव जिसे मुख्य रूप से इष्ट मानता है, वह भी अनिष्ट होता देखा जाता है।**'

अब तीसरी बात समीप की ली है। अन्य इष्ट तो ठीक, लेकिन कहते हैं, मुख्यरूप से इष्टरूप माने वह भी अनिष्ट होता देखा जाता है। '**जैसे शरीर इष्ट है...**' लो। वह तो प्रिय लगता है। '**परन्तु रोगादि सहित हो तब अनिष्ट हो जाता है;...**' शरीर ऐसा सड़ जाये, बिगड़े, लट पड़े, जलन हो, अब शरीर छूट जाय तो अच्छा। कहाँ से ऐसी अक्कल आयी? पहले तो कहता था कि पचास–सौ साल जीवित रहूँ तो अच्छा। लट पड़ी। होता है न? शीतला निकलते हैं, शीतला निकलते हैं। दाने–दाने में लट पड़ जाती है, दाने–दाने में। एक बार कहा था न? एक स्त्री को दाने–दाने में लट पड़ गयी थी। युवान स्त्री, हाँ! माँ! ऐसे पाप मैंने इस भव में नहीं किये हैं। ये कहाँ के आये? बहिन! समता रखो। यह कोई पूर्व का है। वह प्राप्त

होने पर अनिष्ट लगता है। वही शरीर विषय लेते समय, भोग के समय, मक्खन के पिण्ड जैसा अच्छा लगता था वह, जब दाने में (लट) पड़ी, पलंग में शरीर को ऐसे करे तो लट का ढेर गिरे, दूसरी ओर करे तो उस ओर लट का ढेर। क्योंकि दाने-दाने में लट पड़ी थी। दाने पड़े, रोम-रोम में। और उसे ही मुलायम देखकर प्रसन्न होता हो, अच्छा हो तब। साबून, एक-एक रूपये का साबून लेकर, गर्म पानी और उसमें सुगंधी तेल डाले हुए पानी में मसलता हो, मसलते वक्त प्रसन्न होता हो। वही पदार्थ जो तेरा इष्ट लगता है, वह जब दाने-दाने में लट पड़ी, बापू! तुझे अनिष्ट लगता है। वह पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है। तेरी मान्यता उसको इष्ट-अनिष्ट का आरोप करके बड़ा दरवाजा खड़ा किया है। उसमें से राग-द्वेषमें से .. आये। राग ने इष्टपना माना, द्वेष ने अनिष्टपना माना। राग-द्वेष में ... लेकिन ज्ञानस्वभाव आत्मा हूँ, कोई चीज मुझे इष्ट-अनिष्ट नहीं है। उसके काल में परिणमन के काल में परिणमेगी।

देखोन! झामर (नेत्र का एक रोग) होता है, बहुत पीड़ा होती है न? बहुत पीड़ा झामर की, ऐसे सर पटके सर। और माथा सुन्दर हो और एकसमान हो तो दूसरे को खुल्ला करके दिखाना चाहे, बिलकुल सर पर से निकालकर। और वही जब झामरवाले की आँखे फूट जाये तो परदा रखने लगता है। किसी को (दिखे नहीं)। वही इष्ट वस्तु, अनिष्ट हो गयी। कल्पना में, हाँ! (पदार्थ में) तो जो हुआ है सो हुआ है। सर पटके, आहाहा..! यह पीड़ा। दूसरे रोग सहन हो जाये, लेकिन यह झामर सहन नहीं होता। कड़ा झामर होता है कड़ा, हाँ! ऐसा झामर की सर फोड़ दे ऐसा झामर। साधारण हो उसमें कुछ नहीं। वही शरीर जो अच्छा लगता था, वही अनिष्ट हो गया। वस्तु तो वस्तु के काल में परिणमन करके अवस्था हुआ करती है। अतः अवसर आने पर अनिष्टता देखी जाती है। '**इत्यादि जानना।**' लो, मुख्य की बात करी, हाँ! राग-द्वेष करना वह मिथ्यादर्शनपूर्वक का मिथ्याचारित्र है। इसलिये वह निरर्थक है। ज्ञाता-दृष्टा रहना और राग हो उसको जानना, इष्ट-अनिष्ट की कल्पना नहीं करनी, वह वस्तु के स्वभाव की शांति का उपाय है।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**रविवार, दि. १२-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ५**

मोक्षमार्गप्रकाशक का सप्तम अध्याय चलता है। उसमें निर्जरा का अधिकार चलता है। निर्जरा अर्थात् आत्मामें से अशुद्धता का नाश होना, शुद्धता की वृद्धि होना और कर्म का झड़ना, तीनों को निर्जरा नाम धर्म की शुद्धि की वृद्धि कहते हैं। कर्म का झड़ना वह ... जाता है। अशुद्धता का गलना--व्यय हो जाता है और अपना शुद्ध स्वभाव, शुद्ध स्वभाव की निधि भण्डार अपना आत्मा अंतर स्वसंवेदन--ज्ञान से अपने ज्ञान को अनुभव करके वेदना, विशेषपने स्वरूप में स्थिरता का लीनता का होना उसका नाम निर्जरा और उसका नाम धर्म, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है।

तब शिष्यने प्रश्न किया, शास्त्र में '**तपसा निर्जरा च**' **ऐसा कैसे कहा है?**' तत्त्वार्थ सूत्र में, तत्त्वार्थ सूत्र उमास्वामी कृत, उसमें '**तपसा निर्जरा च**', तपसा निर्जरा ऐसा क्यों कहा? उसका समाधान। इच्छानिरोध तपः। शास्त्र में इच्छानिरोध तप (कहा है)। वर्तमान में बहुत गड़बड़ चलती है। बाह्य उपवास, उणोदरी, बाह्य त्याग, रस का त्याग, वनवास रहना, एकांत में रहना, आदि अनेक प्रकार की क्रियाकांड में निर्जरा नाम धर्म की शुद्धि और वृद्धि मानते हैं, वह मिथ्यात्वभाव है। उसको धर्म कैसे होता है, उसका उसको पत्ता नहीं है।

इच्छानिरोध। भगवान आत्मा में शुभ और अशुभ इच्छा ही नहीं है। इच्छानिरोध कहा न? तो आत्मा में शुभ और अशुभ इच्छा ही नहीं है। ऐसे आत्मा की दृष्टि और अनुभव करने से और उसमें उग्रपने प्रतपंति विजयंति, अपना शुद्ध स्वभाव का विजय होना और अशुद्ध परिणाम का पराजय होना (सो तप है)। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानंद मूर्ति परमानंद है, उसका संवेदनमें से सम्यग्दर्शन-प्रतीत करके बाद में उग्रपने अपना शुद्ध स्वभाव का विजय होना, विजयपताका फरके। समझ में आया? प्रभु आत्मा की शुद्धता में विजय होता है और अशुद्धता का नाश होता है उसको धर्म और निर्जरा कहने में आता है।

'**इच्छानिरोध तपः।**' '**इच्छा को रोकना उसका नाम तप है।**' भगवान ने तो ऐसा कहा है, भाई! तेरा उपवास, उणोदरी और बारह प्रकार का तप कर, बारह प्रकार के तप की क्रिया राग है। अभ्यंतर छह प्रकार का तप है, बाह्य छह प्रकार का है। तप में विकल्प का उठना, भेदरूप राग का होना है, वह वास्तव में अभ्यंतर तप नहीं।

मुमुक्षु :-- तो उसको निर्जरा क्यों कहा?

उत्तर :-- निर्जरा निमित्त से कहा। निर्जरा का कथन दो प्रकार का चलता है, निर्जरा दो प्रकार से नहीं। समझ में आया? निर्जरा का कथन दो प्रकार का चलता है। बाह्य तप निर्जरा (कहा) वह निमित्त देखकर (कहा है)। अंतर में इच्छा पुण्य-पाप की रोककर शुद्धि का, आनंद का अमृत का वेदन विशेष हो जाये, उससे निर्जरा होती है, परन्तु बाह्य तप साथ में निमित्त-तप देखकर, सहचर देखकर उपचार से व्यवहारतप है ऐसा आरोप करने में आया है। समझ में आया? वह व्यवहारतप तप है ही नहीं। आहाहा..! समझ में आया?

जैसे व्यवहार सम्यग्दर्शन,... अपना शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प की श्रद्धा और परिणति (होना) उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग और पंच महाव्रत आदि परिणाम का विकल्प चारित्रव्यवहार और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग व्यवहारसमकित (है)। समकित दो प्रकार का नहीं है। समकित सहित कथनी-निरूपण, निरूपण दो प्रकार का चलता है। एक स्वआश्रय, एक पराश्रय। स्वआश्रय चैतन्य की श्रद्धा अनुभव में होना, निर्विकल्प आत्मा का अनुभव होना। ओहो..! समझ में आया? उसको निश्चय नाम सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। साथ में राग है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व का भेदवाली श्रद्धा उसको निमित्त देखकर साथ में रहनेवाला देखकर व्यवहार से निमित्त को अनुकूल कहा। व्यवहार से। निश्चय से अनुकूल नहीं है। समझ में आया? वह तीव्र कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा निकल गयी है और नव तत्त्व वीतराग कहते हैं ऐसा भेद करके उसके विकल्प की श्रद्धा है, ऐसा निमित्त को निश्चय सम्यग्दर्शन में व्यवहार से अनुकूल मानकर उसको आरोप कहा कि वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन है नहीं। है नहीं उसको सम्यक् कहना उसका नाम व्यवहार है। भारी बात भाई! समझ में आया?

जो चीज जैसी है ऐसी निश्चय कहता है। व्यवहार तैसी बात करता नहीं। व्यवहार अन्यथा कहता है। दो नय का कथन शास्त्र में चले और कहे कि यह शास्त्र में लिखा है न। लिखा है, भैया! किस नय का कथन है? उपचार का है? व्यवहार का है? निमित्त का है? कि यथार्थ का है? ऐसा यथार्थ भान हुए बिना अकेले राग की क्रिया को सम्यग्दर्शन मान लेना मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसा अपना आत्मा का सम्यक्ज्ञान--आत्मज्ञान, शास्त्रज्ञान नहीं। आहा..! अपना आत्मा शुद्ध अखंडानंद का अन्दर स्वज्ञेय को वर्तमान ज्ञान की पर्याय से अभेद होकर, अभेद होकर जो ज्ञान स्वसंवेदन का विकास हुआ उसका नाम निश्चय सम्यक्ज्ञान है। समझ में आया? ौर उसके साथ शास्त्र का विकल्पात्मक ज्ञान, निमित्त अनुकूल कुशास्त्र का ज्ञान नहीं है, ऐसा शास्त्र अध्ययन, शास्त्र का ज्ञान विकल्पात्मक में निमित्त को गिनकर, सहचर देखकर

सम्यक्ज्ञान व्यवहार से आरोप से कहा है। सम्यक्ज्ञान है नहीं। समझ में आया?

ऐसे सम्यक्चारित्र। दर्शन, ज्ञान, चारित्र के बाद तप आता है कि नहीं? ऐसे चारित्र अपने स्वरूप में लीनता, स्वरूप में रमणता, स्वभाव में चरना, चरना, रमना, अतीन्द्रिय शांति का रस का उग्रपने वेदन (करना), उसका नाम भगवान निश्चय नाम सच्चा चारित्र कहते हैं। ऐसे चारित्र के साथ में राग की मंदता का पंच महाव्रत और बारह व्रत का विकल्प आदि देखकर, निमित्त की व्यवहार से अनुकूलता देखकर वह चारित्र है ऐसा आरोप करने में आया है। वह चारित्र है नहीं। पंच महाव्रत और बारह व्रत... वह तो पहले आ गया। यह तो ... चलता है, यह तो निर्जरा की बात चलती है। समझ में आया? कहाँ गये नवरंगभाई? समझ में आया यह? भारी बात भाई! व्यवहार से निश्चय हो, वह तो आरोप करने की चीज है, वास्तविक चीज है नहीं। वह तो पहले आ गया। पंच महाव्रत का परिणाम चारित्र नहीं।

मुनि को पंच महाव्रत का परिणाम निश्चय आत्मज्ञान, दर्शन और लीनता के साथ में (होते हैं, वह) चारित्र नहीं। अट्ठाईस मूलगुण चारित्र नहीं। लेकिन निमित्त की व्यवहार से अनुकूलता ऐसा उस भूमिका में राग आये बिना रहता नहीं। उस भूमिका में ऐसी योग्यता व्यवहार इससे नीचे नहीं हो जाता है, इतनी अपेक्षा गिनकर उसको चारित्र का आरोप देने में आया है। समझ में आया? तीव्र पुण्य परिणाम से हटकर तीव्र परिणाम पाप में आते नहीं और इतना व्यवहार की अनुकूलता देखकर पंच महाव्रत को चारित्र कहा। चारित्र है नहीं। निरूपण दो प्रकार का है, वस्तु दो प्रकार नहीं है। दो प्रकार की नहीं है, वस्तु एक प्रकार की है।

अब यहाँ चलता अधिकार। समझ में आया? इच्छानिरोध तपः। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद का अमृत का स्वाद में इच्छा ही उत्पन्न नहीं होती। लोग कहते हैं कि भगवान ने क्यों बारह वर्ष तप किया? ऐसा कहते हैं, धन्नालालजी! क्या? महावीर भगवान ने बारह वर्ष तप किया तब उनको केवलज्ञान हुआ। निर्जरा हुई तो केवलज्ञान हुआ। अरे.. प्रभु! सुन तो सही। भगवान ने क्या किया था और कैसे उनको लाभ हुआ, वह अंतर की बातें हैं। बाहर का आहार तो छ मास-छ मास न मिला (वह तो) नहीं मिलने का था। छ-छ मास आहार नहीं मिलने का था। उसे मैंने छोड़ा ऐसा है नहीं। और उस ओर का विकल्प है कि मैं छः महिने आहार नहीं करुँगा, वह विकल्प भी पुण्यभाव है, वह भी निर्जरा नहीं, तप नहीं, शांति नहीं, अमृत का स्वाद नहीं। समझ में आया?

भगवान अमृत की निधि अतीन्द्रिय अमृत का स्वाद, जिस स्वाद के आगे आहार की इच्छा ही छः महिने तक उत्पन्न नहीं हुई। समझ में आया? इच्छानिरोध कहा

है, बराबर है, परन्तु वह इच्छा हुई थी और अटका दिया (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? शास्त्र तो शास्त्र की भाषा से कथन करे। इच्छानिरोध तपः। क्या इच्छा उत्पन्न की और उसके ... में निरोध किया? वह विकल्प पहले था कि आहार न करुँ। भान था, अपने शुद्ध श्रद्धा, अनुभव ज्ञाता-दृष्टा। अपना शुद्धोपयोग बढ़ाने के कारण और निमित्त में ऐसी इच्छा हुई कि आहार छोड़ दूँ। आहार तो छूटा ही पड़ा है, आहार कहीं आता था और छोड़ दिया (ऐसा नहीं है)। ऐसी इच्छा है उसको मैं छोड़ दूँ। क्या छोड़े? इच्छा आनन्द का स्वाद में उत्पन्न हुई नहीं। .. इच्छा भी उत्पन्न नहीं हुई। समझ में आया? इसको भगवान निर्जरा नाम धर्म की वृद्धि, शुद्धि की वृद्धि और अशुद्धता का नाश कहने में आता है। समझ में आया? कहाँ का कहाँ तप लगा दे। पाँच उपवास किये, तप है, कुछ तो लाभ है कि नहीं? व्यवहार है कि नहीं? निश्चय के बिना निमित्त का आरोप भी किसको देना? समझ में आया? चावल ही नहीं है, तो बोरी को चावल की बोरी किसको कहा? चावल ही नहीं है और चावल की बोरी। बोरी कहते हैं न? थैला, थैला। लेकिन चावल ही नहीं है और खाली बारदान है। बारदान को चावल का बारदान कैसे कहा? चार मण चावल है, चोखा समझे न? चावल, ढाई सेर का बारदान है तो साथ में तोला जाता है। चार मण, ढाई शेर। वह पकने में काम आता नहीं। ढाई शेर तो चार मण ढाई शेर (बोले)। कुंवरजीभाई! मजदूर बोले न? हमारी ... की दुकान के साथ नूर महमद की दुकान थी न। मजदूर बोले, चार मण ढाई शेर। चार मण ढाई शेर, बोरी सहित बोलते हैं ऐसा लगता है।

ऐसे बाह्य तप, अशुभी की इच्छा टलकर और शुभ हुई और शुभ रहित जितनी शांति और आनंद का वेदन है उसके साथ बाह्य तप के बारदान को साथ में गिनकर उसको तप व्यवहार से कहने में आया है। आत्मा का आनंद का, इच्छानिरोध में जो आनंद होता है, उसमें वह इच्छा काम आती नहीं। बाह्य तप किंचिंतकर है नहीं, बाह्य तप अंतर तप किंचितकर कार्य करता नहीं। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन में व्यवहार सम्यग्दर्शन अकिंचित्कर है। आहाहा..! चंदुभाई! व्यवहार.. व्यवहार.. व्यवहार.. हम व्यवहार और निश्चय दोनों मानते हैं, वे लोग एक निश्चय मानते हैं, प्रभु! सुन भाई! बापू! तुझे निश्चय-व्यवहार का गहरा घर (मालूम नहीं)। समझ में आया?

आत्मा, जब निश्चय आत्मा के स्वाश्रय से अखंड परमात्मस्वरूप मेरा, उसकी अनुभव में प्रतीत हो तब साथ में राग आता है, वह अकिंचित्कर सम्यग्दर्शन में होनेपर भी व्यवहार का आरोप आता है। जो किंचित्कर है तो उसको व्यवहार कहने में आता नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मा का सम्यक्ज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मद्रव्य का ज्ञान,

आत्मभान अंतर आत्मा के आश्रय से सम्यक्ज्ञान हुआ वह तो यथार्थ स्पष्ट है, ... है। साथ में शास्त्रज्ञान को विकल्प को व्यवहारज्ञान कहा वह, सम्यक्ज्ञान के लिये अंकिचित्कर है। आहाहा..! निश्चय सम्यक्ज्ञान के लिये शास्त्रज्ञान अकिंचित्कर है। चंदुभाई! आहाहा..! अरे.. भगवान! जो सम्यक्ज्ञान के कार्य के लिये अकिंचित्कर है उसको सम्यक्ज्ञान कहना उसका नाम आरोप है। व्यवहार है, व्यवहार है उसमें कुछ माल–बाल है नहीं। यहाँ तो व्यवहार में सब रख दिया, निश्चय तो पड़ा रहा। समझ में आया?

ऐसे भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य का अनुभव, इसके अतिरिक्त स्वरूप की स्थिरता, अविकारता, निर्मलता, शांति की बढवारी पर्याय में हुई। उसका नाम चारित्र। और पंच महाव्रत का परिणाम अकिंचित्कर चारित्र के लिये है। आहाहा..! अकिंचित्कर न हो तो उसको व्यवहार ही नहीं कहने में आता है। व्यवहार कहो कि निमित्त कहो। नहीं तो उसका कर्ता हो जाये तो स्वभाव का कार्य उसने किया ऐसा एक ने दो कार्य किया––निश्चयकार्य भी किया और व्यवहारकार्य भी किया। ऐसा है नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत और अट्ठाइस मूलगुण भी अपने चारित्र में अकिंचित्कर है। उसको निमित्त से, नीचे गिरता नहीं देखकर, भूमिका के योग्य ऐसा भाव देखकर आरोप करके चारित्र ऐसा कहने में आया है।

ऐसे तप। आराधना चार प्रकार की होती है न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप। तो यहाँ तप का बोल आया मौके पर आया है। समझ में आया? कहते हैं, '**इच्छा को रोकना उसका नाम तप है।**' भगवान आत्मा,...! वह तो विकल्प की किलबिलाहट है (कि) मैंने छोड़ दिया, मैंने उपवास किया और आहार छोड़ दिया। आहार छोड़ दिया का अभिमान ही मिथ्यात्व है। क्या वह आहार तेरे पास आनेवाला था तो तुझे इच्छा हुई तू आने से रुक गया? धन्नालालजी! क्या कवल आनेवाला था? थाली में पड़ा है। रोटी, दाल, चावल, सब्जी मुझे नहीं खाना है। आज उपवास है, चलो। तो क्या वह मुख में आने की चीज थी? और तुझे इच्छा हुई तो तूने छोड़ दी? भ्रमणा है। समझ में आया? वह चीज मुख में नहीं आनेवाली थी। उसका परावर्तन के नियम में उस चीज का वहीं रहना था, यहाँ तक आना नहीं था। उसने इच्छा में माना कि मैंने छोड़ दिया। (वह) परद्रव्य का स्वामी होकर मिथ्यादृष्टि होती है। समझ में आया? और जो इच्छा हुई कि मैंने छोड़ा, उस इच्छा में भी मुझे कुछ लाभ है, शुभ में कुछ लाभ है ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मूढ है। उसको तो निश्चय और व्यवहार दोमें से एक भी होता नहीं। समझ में आया?

लेकिन जब आत्मा को इच्छा उत्पन्न न हो ऐसी इच्छा बिना की रमणता, विजय

चैतन्य का हुआ, डंके की चोट पर आत्मा जागृत होकर अपना विजय शुद्धि की हुई। समझ में आया? तब अशुद्धता का नाश होता है, अशुद्धता की उत्पत्ति होती नहीं और कर्म का झड़ना होता है, उसको निर्जरा कहते हैं। परन्तु उस निर्जरा के साथ यह शुभ विकल्प और बाह्य तप है--उपवास, उणोदरी इत्यादि, अरे..! विनय, वयावच्च, विनय, वयावच्च वह सब विकल्प है। ओहोहो..! अरिहंत का विनय करुँ, गुरु का विनय, शास्त्र का विनय सब विकल्प है। समझ में आया? उस विकल्प को व्यवहारतप कहने में आया, वह उपचार से है, वह अकिंचित्कर है। निश्चय अपनी शुद्धि के विजय में उस बाह्यतप की इच्छा अकिंचित्कर है। आत्मा का कार्य करने में कुछ भी ताकत नहीं है। विरुद्ध कार्य करने की ताकत है। समझ में आया? उससे तो बन्ध होता है, पुण्यबन्ध का कारण विरुद्ध करता है।

इसलिये कहा कि, '**शुभ-अशुभ इच्छा मिटनेपर उपयोग शुद्ध हो...**' देखो! शुभ और अशुभ दोनों इच्छा की उत्पत्ति न हो। मिटने का अर्थ वह। समझ में आया? शुभ और अशुभ इच्छा मिटे। मिटे माने उत्पत्ति न हो। उत्पत्ति न हो तब आनन्द की शांति की उत्पत्त हो। वह उपयोग शुद्ध है, उसको शुद्धोपयोग कहते हैं। और शुद्धोपयोग ही निर्जरा है, उसको निर्जरा कहने में आयी है। वास्तविक निर्जरा वह है। अशुद्ध का नाश उपचार से, कर्म का नाश भी उपचार से निर्जरा कहने में आयी है। समझ में आया? '**शुभ-अशुभ इच्छा मिटनेपर उपयोग शुद्ध हो वहाँ निर्जरा है।**' वहाँ आत्मा की शांति की बढ़वारी है। '**इसलिये तप से निर्जरा कही है।**' इस कारण से व्यवहारतप को निर्जरा उपचार से कहने में आया है।

'**यहाँ कहता है--आहारादिरूप अशुभ की तो इच्छा दूर होनेपर ही तप होता है,...**' प्रश्न किया प्रश्न। '**आहारादिरूप अशुभ की...**' आहार की इच्छा करना तो अशुभ है। समझ में आया? यहाँ तो साधारण बात की है, संसार की अपेक्षा से, हाँ! मुनि को आहार करने की इच्छा अशुभ नहीं है। कोई ऐसा कहे कि मुनि की आहार करने की इच्छा सो पाप है। ऐसा नहीं है। यहाँ तो गृद्धिपने जो करता है, समझ में आया? '**आहारादिरूप अशुभ की तो इच्छा दूर होनेपर ही तप होता है,...**' वह शिष्य प्रश्न करता है, हाँ! '**परन्तु उपवासादिक व प्रायश्चित्तादिक शुभ कार्य हैं...**' उपवास करना, रस का त्याग करना, कायोत्सर्ग करना, प्रायश्चित्त करना, विनय करना, वयावच्च करना। बाह्यतप की बात चलती है, अभ्यंतर की बाद में आयेगी। समझे न? लेकिन फिर भी प्रायश्चित्त एकसाथ ले लिया है। चलती तो बाह्यतप की बात चलती है, लेकिन उसमें अभ्यंतर तप की प्रायश्चित्त आदि को साथ में शिष्य के प्रश्न में आ गया है। उपवास, उणोदरी, पेट में अल्प रखना, रस का

त्याग, प्रायश्चित्त, विनय, वयावच्च आदि शुभकार्य हैं, '**इनकी इच्छा तो रहती है।**' शिष्य का प्रश्न है कि उसकी तो इच्छा रहती है।

'**समाधान :–– ज्ञानीजनों को उपवासादिक की इच्छा नहीं है,...**' आहाहा..! धर्मी को आत्मा सच्चिदानंद शुद्ध निर्विकल्प आत्मा का भास––वेदन हुआ, उसको उस उपवास की इच्छा नहीं है। समझ में आया? '**एक शुद्धोपयोग की इच्छा है,...**' अंतर में स्थिर होऊँ, अंतर में स्थिर होऊँ, शुद्ध को मैं पकड़ुँ, ज्ञायक स्वरूप को पकड़कर मैं आनन्द में झूलु, ऐसी शुद्धोपयोग की सम्यग्दृष्टि को इच्छा है। समझ में आया? ओहो..! भारी गड़बड़ भाई! आज इसने इच्छा की और इच्छा रोकी, इतनी अशुभ इच्छा रोकी उतना तो तप है कि नहीं? धूल में भी तप नहीं है, सुन न! मिथ्यादृष्टि है। अशुभ इच्छा रोकी और शुभ हुई उसमें तप मानता है, निर्जरातत्त्व की अयथार्थता है। तत्त्वार्थ श्रद्धान में निर्जरातत्त्व का क्या स्वरूप है, उसकी उसको खबर नही।

ज्ञानी को '**एक शुद्धोपयोग की इच्छा है।**' अब आया, चंदुभाई! अब आया। '**उपवासादि करने से शुद्धोपयोग बढ़ता है, इसलिये उपवासादि करते हैं।**' क्या कहते हैं? उपवासादि से यदि शुद्धोपयोग बढ़ता हो तो अनन्त बार उपवासादि किये। छः–छः महिने के उपवास, अभवि और भवि (दोनों ने) अनन्त बार किये हैं। परन्तु कहते हैं कि ज्ञानी को भावना क्या है? कि आज आहार करने की इच्छा नहीं है। हेतु क्या है? निवृत्ति में मेरा शुद्धोपयोग अंतर में रमे। समझ में आया? निमित्त के लक्ष्य से हटकर मैं मेरी प्रवृत्ति में आहार की इच्छा... वह प्रवृत्ति रुक जाये तो मेरे चैतन्य पर एकाग्र होने का मुझे अवसर मिले। और एकाग्र हो तब उस बाह्य त्याग को निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? तो कहते हैं, '**उपवासादि करने से शुद्धोपयोग बढ़ता है,...**' इसमें उलटा अर्थ करे। दो–तीन बार बात आ गयी है। लेकिन जिसे शुद्धोपयोग है उसको उपवासादि निमित्त कहने में आता है। ऐसा उपवास तो अनन्त बार किया। 'मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' वस्तु की अंतर अनुभवदृष्टि, अखण्डानंद परमात्मा प्रतीत में, अनुभव में न आवे और अकेली उपवासादि क्रिया से शुद्धोपयोग बढ़े ऐसा तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? वह व्यवहार का कथन आया। निमित्त का कथन। पहले कहा था कि निमित्त व्यवहार अकिंचित्कर है। चंदुभाई! यहाँ किंचित्कर कहा। भाई! अरे.. भगवान! वह तो धर्मात्मा को, आज अष्टमी है, चौदस है, आज मुझे आहार की इच्छा नहीं है। ऐसा होकर उसकी भावना क्या है? स्वरूप में लीन निवृत्ति से मेरे आत्मा को पकड़कर मैं आत्मा के आनन्द में घुमुं, आनन्द में अन्दर डोलूँ ऐसा शुद्धोपयोग

की ज्ञानी की भावना है। उपवास की भावना नहीं। समझ में आया? इच्छा की भावना कि ऐसा त्याग करुँ, ऐसी भावना नहीं है। आहाहा..! लक्ष्मीचंदजी! ऐसी बात है। दसलक्षणी पर्व करते हैं। कैसा तप करते हैं न, व्रत का, षोडशकारण भावना, रत्नत्रय, चलेगा। उपवास, उपवास.. निर्जरा-निर्जरा का बक्सा। निर्जरा का बक्सा माने निर्जरा-फिर्जरा है नहीं, बारदान है। चैतन्यदल निर्विकल्प चैतन्य आत्मा, वर्तमान में अंतर भास हुए बिना वर्तमान में शुद्धोपयोग कहाँ-से आयेगा? समझ में आया? वर्तमान पर्याय में त्रिकाल द्रव्य शुद्ध आनंदकंद है, ऐसी भात हुए बिना उसमें लीन होना है, ऐसी लीनता कहाँ-से आयेगी? पहले तो खबर नहीं है कि चीज क्या है और किस तरफ मुझे ढलना, मुड़ना है। अकेले बाह्य तप करके ऐसा मान ले कि हमें शुद्धोपयोग बढ़ाने के लिये, शुद्धोपयोग बढ़ाने के लिये है। समझ में आया? ऐसा है नहीं।

'**इसलिये उपवासादि करते हैं। तथा यदि उपवासादि से शरीर**...' देखो! उपवास, त्याग, कायोत्सर्ग आदि शरीर की '**या परिणामों की शिथिलता के कारण**...' ऐसा जाने कि यह तो अब शरीर जीर्ण होता है। सहनशीलता में भी कमी हो जाती है। समझे? ऐसे परिणाम और शरीर कि शिथिलता के कारण '**शुद्धोपयोग को शिथिल होता जाने**...' ऐसा कहते हैं। शुद्धोपयोग में बराबर जमवट नहीं होती है, ऐसा निमित्त-शरीर मंद हो गया और परिणाम में भी इतनी उग्रता रही नहीं। तो आहार कर लेते हैं। समझ में आया? '**शिथिल होता जाने तो वहाँ आहारादिक ग्रहण करते हैं।**' आहारादिक ग्रहण करते हैं माने प्रतिज्ञा की थी और ग्रहण करते हैं, वह बात यहाँ नहीं है। समझ में आया? वह बात नहीं है। लेकिन बाद में जाने कि अब शरीर काम करता नहीं, परिणाम में (उग्रता) नहीं है, फिर उपवास न करे, फिर उपवास न करे और शुद्ध की अंतर में एकाग्रता करने का प्रयत्न करे, ऐसा प्रयत्न चले।

'**यदि उपवासादिकही से सिद्धि हो**...' उपवास, उणोदरी, रस का त्याग उससे यदि आत्मा की निर्जरा और शुद्धि होती हो, '**अजितनाथ आदि तेईस तीर्थंकर**...' ऋषभदेव भगवान तो छः महिने का उपवास था और दूसरे छः महिने आहार मिला नहीं तो बारह महिने हो गये। परन्तु अजितनाथ भगवान दूसरे तीर्थंकर भगवान के बाद पचास लाख क्रोड़ सागरोपम के बाद हुए। समझ में आया? दो उपवास किये। तीर्थंकर की शक्ति नहीं थी? तीर्थंकर तो महान समर्थ हैं। समझ में आया? कहते हैं... आदि पुराण में तो ऐसी बात आती है कि, भगवान ने आहार क्यों लिया? छः महिने का उपवास (था), लेकिन बारह महिने हुअे, आहार क्यों लेने जाते थे? कि ... ख्याल आवे कि तीर्थंकरों को भी जब इतना नभाव नहीं होता तो वे भी आहार लेते हैं। ऐसा अनुकरण कराने को किया, ऐसा आदिपुराण में पाठ है। समझ में आया? वे

तो शक्तिवान है। महा तीन ज्ञान, चार ज्ञान, मुनि हुए न, चार ज्ञान (तो हैं)। तो क्या ज्ञान में उपयोग रखते होंगे कि कल आहार क्या मिलेगा? कौन-सा बाजरा, किस खेत से आया हुआ और कैसी रोटी आयेगी, ऐसा उपयोग रखे? समझ में आया? चार ज्ञान थे (फिर भी) छः महिने भोजन के लिये आये और गये। कोई तो ऐसा कहे कि ऐसे कैसे साधु हैं? पुनः तीर्थंकर। आज तो गये, वापस आये। कल भी गये, वापस आये तो मनःपर्यय (ज्ञान में) उपयोग तो रखना (चाहिये) था। अवधिज्ञान है, उपयोग तो रखना था (कि) कहाँ-से आहार मिलेगा? किस क्षेत्र से मिलेगा? कैसा आहार मिलेगा? मिलेगा कि नहीं? अरे.. भगवान! वे कहीं निकम्मे हैं ऐसा उपयोग करने को? आहाहा..! अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान प्रगट हुआ है, तो भी वहाँ उपयोग रखने में लाभ क्या है? आहाहा..! वाड़ीभाई!

लोकोत्तर और लौकिकक्रिया बड़ा पूर्व-पश्चिम जितना अंतर है। लोग तो ऐसा मान ले कि, लो, ये चार ज्ञान के धनि, वह तो जैन उनके भगवान को ऐसा कहे। बड़े-बड़े कहकर प्रशंसा करे। परन्तु गये क्यों? एक दिन नहीं मिला, दो दिन नहीं मिला, एक महिना नहीं मिला, दो महिने मिला नहीं। चार महिने, पाँच महिने के बाद विचार तो करना था कि नहीं? लब्धरूप जो ज्ञान हुआ वह मोक्ष का कारण नहीं है, अवधि और मनःपर्यय। समझ में आया? क्या कहते हैं? अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान प्रगट हुआ वह मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष का कारण तो एक मति और श्रुतज्ञान ही है। और वह मति और श्रुतज्ञान अपने स्वभाव में लपेट होता है उसको मोक्ष का कारण कहने में आता है। समझ में आया? बीच में इतना उपयोग का उघाड़ हुआ, उपयोग करने की दरकार नहीं है। मेरा काम करना है कि मेरे को उपयोग देखना है? अवधि, मनःपर्यय का उपयोग करना उसमें मेरा क्या काम आया? मेरा काम क्या आया? धन्नालालजी! आहाहा..! दूसरों को बता दे कि आप का ऐसा होगा और वैसा होगा। अरे..! क्या काम है उसमें?

मेरा चिदानंद भगवान मेरा वर्तमान मति-श्रुतज्ञान जो साधक मोक्ष का कारण है, केवलज्ञान तो कारण है नहीं, वह तो फल है। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तो बीच में एक ऋद्धि, ऋद्धि--वैभव है, मूल चीज नहीं। मति-श्रुत अंतर में वेदन अंतर में उग्रपने करना (उससे) शुद्धि होकर निर्जरा होती है। समझ में आया? तो वह उपयोग तो भगवान ऋषभदेव को सदा काम करता था और अवधि, मनःपर्यय के विकास का उपयोग देते नहीं। समझ में आया?

भगवान तो आहार लेने को जाते थे। आहा..! अरे..! मेरे को काम मेरी शुद्धि का है। मेरा चैतन्य में वास्तविकपने एकाकार होना वही मेरा कार्य (है)। '**णियमेण**

**य जं कज्जं**'। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्विकारी वह निश्चय से करने लायक कार्य तो वह है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का उपयोग का कार्य तो मेरा है नहीं। चंदुभाई! अरे.. भगवान! तो यह जड़ की क्रिया का कार्य मेरा है, मैं चलता हूँ, बोलता हूँ, प्रभु! वह तेरी चीज में नहीं है। समझ में आया? अरे..! रागा आया शुभ, वह मेरा कार्य है और करने लायक है, सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा का अनुभव में यह बात है नहीं। समझ में आया? मूलजीभाई! ओहोहो..! लो, यह वास्तु है न? प्रभुभाई! यह आत्मा का वास्तु चलता है। .. बैठे हैं न दोनों। ... व्रत हो गया? दो जन को अभी व्रत है न? समझ में आया?

वास्तु नाम चैतन्य वस्तु, उसमें वास्तविकपने शक्तियाँ बसी है, ऐसी वस्तु में अन्दर घुस जाना, इच्छा को रोककर घुस जाना उसमें वास्तु अनादि काल से नहीं किया, वह किया। समझ में आया? अनन्त-अनन्त काल हुआ परन्तु... वह वस्तु है, हाँ! गोम्मटसार में पाठ है। गोम्मटसार में नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती वस्तु किसको कहते हैं? कि, जिसमें शक्तियाँ--गुण, पर्यायें बसे उसको वस्तु कहते हैं। गोम्मटसार, नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती। जिस में गुण और पर्याय बसे, उसको वस्तु, वस्तु--वास्तु कहते हैं।

ऐसे भगवान आत्मा इच्छानिरोध... यहाँ तप की बात चलती है न? इच्छानिरोध होकर इच्छा की उत्पत्ति नहीं। बाह्य का तप निमित्त देखकर उसको तप कहा, परन्तु वास्तव में वह तप है नहीं। उससे हठकर अंतर में लीन एकाकार होता है, उसमें बाह्यतप बिलकुल अकिंचित्कर है। अकिंचित्कर है तब उसको व्यवहार कहने में आता है। नहीं तो निश्चय का संग उसको कहते थे। निश्चय को साथ दिया। निश्चय को साथ देनेवाला निश्चय हो जाता है। समझ में आया?

तो कहते हैं, इसमें तो बहुत गड़बड़ है। एक जन कहता था, भाई! व्याख्यान चले न, अरे.. भैया! उणोदरी तप (है)। देखो! हमें तो जगह-जगह धर्म है। बारह प्रकार के तप में एक कवल कम खाओ, सात रोटी खाते हो और छः खाओ (तो) उणोदरी तप (हुआ)। तप सो निर्जरा, निर्जरा सो धर्म और धर्म है वह मोक्ष को समीप लाता है। समझ में आया? कहाँ गये केवलचंदभाई? उनके चिरंजीवी ने प्रश्न किया था। हसमुख ने। महाराज! यह छः रोटी खाये उसमें से एक रोटी कम खाये तो उणोदरी तप किया। उणोदरी तप धर्म हुआ। अब वह धर्म बढ़ाये या अंतर के परिणाम सुधरे वह धर्म? ऐसी शैली प्ररूपे, लो! देखो! उणोदरी तप कहा है कि नहीं? बत्तीस कवल का आहार है। एक कवल कम ले तो उसको उणोदरी तप कहते हैं कि नहीं? तपसाः निर्जरा। अरे.. भगवान! वह तपसाः निर्जरा नहीं, तेरे कवल क्या छः महिना आहार छोड़ दे न। छः महिने आहार की इच्छा बिना नभे तो भी वह

तप नहीं। उससे हटकर शुद्धोपयोग में रमें तब उसको व्यवहारतप कहने में आता है।

निश्चय-व्यवहार झघड़ा भारी भाई! दो नय में जगत भरमाया है। बनारसीदास कहते हैं। आता है न? समयसार नाटक में। दो नय में जगत भरमाया है। नय एक ही सत्यार्थ कहनेवाली है। व्यवहार तो अभूतार्थ अभूतं अर्थं प्रद्योतति। व्यवहार असत्यार्थ असत्य बात को प्रगट करती है। भगवान आत्मा अपना शुद्धोपयोग में रमे तब तप है। व्यवहार कहता है कि उणोदरी तप किया उसको भी हम तप कहते हैं। कहो। समझ में आया? उणोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग। देखो भैया! कायक्लेश। छः महिने तक खड़ा रहे। प्रायश्चित्त लिया। वह सब विकल्प है, प्रभु! तुझे मालूम नहीं। उसको व्यवहारतप कहा वह तो निश्चय में लीन हो तो कहने में आये। व्यवहार-ब्यवहार निरर्थक बन्ध का कारण है। आहाहा..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- ज्ञान भी वह। विकल्प है न अन्दर। व्यवहार.. ध्यान करुँ, ध्यान करुं... क्या ध्यान? वह भी विकल्प है, राग है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अंतरंग तो.. वह बाह्य में देखने में आता है, आगे कहेंगे। लोग देखते हैं इसलिये बाह्यतप कहा, वह भी आगे आयेगा। अभ्यंतर तप तो लोगों को नहीं दिखता है इस अपेक्षा से। नहीं तो है तो वह भी बाह्य। आगे आयेगा। पीछे के पन्ने पर आता है। है, देखो आता है। '**इससे निर्जरा मानकर संतुष्ट मत हो। तथा अतरंग तपों में प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त, स्वाध्याय, त्याग और ध्यानरूप जो क्रियाएँ--उनमें बाह्य प्रवर्तन उसे तो बाह्यतप ही जानना। जैसे अनशनादि बाह्य क्रिया है उसी प्रकार यह भी बाह्य क्रिया है, इसलिये प्रायश्चित्तादि बाह्यसाधन अंतरंग तप नहीं है।**' एक पन्ने के बाद है। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक ने तो बहुत रहस्य का उद्घाटन किया है। समझ में आया? ये मकान का उद्घाटन करते हैं कि नहीं अन्दर प्रवेश करने के लिये।

मुमुक्षु :-- इसीलिये गृहस्थ शब्दप्रयोग किया है।

उत्तर :-- हाँ, प्रयोग किया है न, पहले कहा है कि सामान्य का विशेष का रहस्य मैं प्रकाश करता हूँ। मेरी घर की कल्पना का नहीं। है तो अपनी चीजमें से, कल्पना से नहीं। सामान्यरूप से बात कही हो, उसको विशेषकर खोलकर एक-एक कली का पत्ता खोलकर बता दिया कि देखो, यह कमल है। यह कमल है। देखो! कमल में इतनी-इतनी कली है। देखो, एक कली में इतने-इतने पत्ते हैं। बहुत सूक्ष्म हो उसको खोलकर दिखाऊँगा। समझ में आया? अब उनको कुछ लोग अप्रमाणिक

ठहराते हैं। अरे.. भगवान! कौन जाने क्या हुआ है? इतना विद्वत्ता का अभिमान! पढ़ा उसका अभिमान, पढ़ा-लिखा का मान। वह टोडरमल है। इसमें आर्षवचन हो तो हम माने। कहा था न? एक पण्डित कहते हैं कि व्यवहारसमकित का वह निषेध करते हैं, व्यवहारज्ञान का वह निषेध करते हैं। वह ज्ञान-श्रद्धा नहीं। व्यवहारचारित्र को व्यवहारचारित्र कहते नहीं। वह चारित्र नहीं। व्यवहारतप को तप कहते नहीं। परन्तु हमारे आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य पंचास्तिकाय में धम्मादि सदृहं व्यवहार समकित कहते हैं। आर्षवाक्य में तो व्यवहार को समकित कहा है। और वह ना कहते हैं। अरे..! सुन तो सही। वहाँ ११वीं गाथा में भी ना कहा है। समयसार। व्यवहार अभूतार्थ (है)। जहाँ-जहाँ पर की अपेक्षा से कथन चला हो उसका नाम सम्यग्दर्शन है ही नहीं। वह तो ११वीं गाथा में कह दिया। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' व्यवहार--सद्भूत उपचार व्यवहार हो स्वपरप्रकाशक, सद्भूत अनुपचार व्यवहार हो--ज्ञान सो आत्मा--भेद, असद्भूत उपचार हो--राग दिखने में आता है उसे अपना जानना। असद्भूत अनुपचार हो--ख्याल में राग नहीं आता है, परन्तु ख्याल में आया तो ख्याल में है, इन सब का कथन व्यवहारनय का अभूतार्थ कहते हैं। गुण-गुणी का भेद भी अभूतार्थ नय है। विरजीभाई! विरजीभाई को पहली शंका पड़ी थी। अरे..! केवलज्ञान पर का? भेद? केवलज्ञान अपना नहीं? ऐसा जब पहली बार पढ़ा था न, शंका पड़ी थी। फिर ... अरे..! केवलज्ञान व्यवहारनय का विषय। आहाहा..! लेकिन वह किसको? उसको कहाँ है? केवलज्ञानी को कहाँ व्यवहार है या निश्चय है? वह तो प्रमाणज्ञान अखण्ड हो गया। जिसको साधना है, स्वभाव की शुद्धि की वृद्धि करनी है, उसको केवलज्ञान की पर्याय लक्ष्य में लेते हैं तो व्यवहार है, विकल्प उठते हैं। समझ में आया? साधक जीव को जिसको श्रुतप्रमाण है और श्रुतप्रमाण में निश्चय और व्यवहारनय उठती है, उसको कहते हैं, केवलज्ञान पर्याय व्यवहार है, अभूतार्थ है। अभूतार्थ। चिल्लाने लगे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं सुना? भगवान! वह किस अपेक्षा से कहा? तेरे साधक अपेक्षा से जो प्रमाणज्ञान हुआ.. समझ में आया? क्या प्रमाण? अपना, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**'-भूतार्त चैतन्य भगवान के अवलंबन से सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ भावश्रुतप्रमाण भी प्रगट हुआ। भावश्रुतप्रमाण साथ में प्रगट हुआ वह अवयवी श्रुतप्रमाण और उसके दो भाग पड़ना निश्चय-व्यवहार वह अवयव है। सम्यग्दृष्टि को प्रमाणज्ञान है और प्रमाणज्ञानवाले को निश्चय-व्यवहार है। अज्ञानी को व्यवहार है (ऐसा) तीन काल में होता नहीं। अभी ज्ञान सम्यक् न हुआ तो व्यवहार आया कहाँ-से उसको? समझ में आया?

कहते हैं, अरे..! व्यवहार आता है, ऐसा करते हैं, भगवान ने बारह वर्ष तप

किया। मूलजीभाई! सुना था कि नहीं? व्याख्यान में आये वह। सुख से सुख लिया नहीं, सुख से आहार लिया नहीं, सुख से पानी पिया नहीं, तब जाकर भगवान को बारह वर्ष बाद केवलज्ञान हुआ। दुःखी होंगे? आहाहा..! कष्ट बहुत सहन करते हैं तो निर्जरा होती है। कष्ट बहुत सहन करते हैं उसका नाम तप। कष्ट सहन करने में तो आर्तध्यान जो उत्पन्न होता है, वह तो पुण्यबन्ध का भी कारण नहीं। तो पाप है, तो निर्जरा तो कहाँ–से आयी? भगवान ने ऐसी तपस्या नहीं की। भगवान को आनन्द की लहर उठती थी। आनन्द की लहर.. जैसे दबाते हैं न? समझ में आया? आप का क्या कहते हैं? फ़व्वारा, पानी का फ़व्वारा होता है न? ऐसे दबाये तो फ़व्वारा फूटे।

ऐसे आनंद अंतर में पड़ा है। वीर्य से एकाग्र हुआ, फट (आनंद प्रगट) हुआ। पर्याय में अतीन्द्रिय शांति और आनंद में झुलना उसका नाम भगवान ने बारह वर्ष तप किया। बाहर का तप को व्यवहारतप उपचार से कहने में आता है। वह व्यवहारतप बन्ध का ही कारण है, बन्ध के कारण को निर्जरा का कारण उपचार से कहने में आया है, वह है नहीं। कहो, समझ में आया?

भगवान... यह तीर्थंकर की बात चलती है न? '**दीक्षा लेकर दो उपवास ही क्यों धारण करते? उनकी तो शक्ति भी बहुत थी।**' भगवान की शक्ति तो बहुत थी। '**परन्तु जैसे परिणाम हुए वैसे बाह्य साधन द्वारा...**' परिणाम हुए, परिणाम हुए। बाह्य साधन ... '**एक वीतराग शुद्धोपयोग का अभ्यास किया।**' शुभराग का नहीं, आहार छोड़ने का नहीं। अभ्यास तो अंतर... देखो! ओहोहो..! अंतर्मुख का अभ्यास शुद्धोपयोग का उसने किया है। दूसरा कोई उसने किया नहीं। उसमें निर्जरा होती है और उसमें शुद्धि की वृद्धि होकर केवलज्ञान होता है।

'**प्रश्न :–– यदि ऐसा है तो अनशनादिक को तप संज्ञा कैसे हुई?**' उसको तप कहा न? बोरी को चावल कहा। बारदान को चावल में गिना, कारण क्या है? पोपटभाई!

'**समाधान :–– उन्हें बाह्य तप कहा है। सो बाह्य का अर्थ यह है कि 'बाहर से औरों को दिखायी दे...**'' देखो! आया न? लोग देखते हैं कि इसने उपवास किया, शरीर जीर्ण हुआ, आहार मिलता था फिर भी छोड़ दिया। कुटुम्ब में दस सदस्य है, सब खाते हैं, इसने एक ने नहीं खाया, ऐसा लोगों को ख्याल आता है। कवल कम किये। बत्तीस कवल हंमेशा तो बहुत खाते थे। सवा शेर अनाज, सवा शेर हलवा, लड्डु तीन खा जाता है, आज तो दो ही खाया। (ऐसा) लोग देखे। समझे? '**यह तपस्वी है**' बाहर दिखे और यह तपस्वी है। लो, मास–मास खमण का पारणा

किया तो तपस्वी नाम पड़े। परन्तु इच्छानिरोध करके शुद्धि की वृद्धि की हो उसको तपस्वी कहें बाहर में? कहाँ गये तपसी? लो, तापसी नाम हो गया। दो-दो महिने के उपवास किये हैं। '**परन्तु आप तो फल जैसे अंतरंग परिणाम होंगे वैसा ही पायेगा,...**' प्रभु! बाह्य की क्रिया तो जैसी होगी वह होगी, परन्तु अंतरंग तेरा परिणाम शुभ, अशुभ और अशुद्ध है वैसा परिणाम बन्ध होगा, कोई बाह्य परिणाम के आश्रय से बन्ध-मुक्ति नहीं है। शुभाशुभ परिणाम हो तो बन्ध होगा, शुद्धभाव हो तो निर्जरा होगी। बाह्य की क्रिया के आलम्बन से कुछ है नहीं।

'**क्योंकि परिणामशून्य...**' लो, परिणामशून्य, देखो! उसकी भी बहुत टीका करते हैं। '**शरीर की क्रिया फलदाता नहीं है।**' शरीर की क्रिया फलदाता नहीं। पोकार करते हैं। इसको तो असत्य ठहरावे न। आहाहा..! पत्र में लिखते हैं, लो, सोनगढ़वाले कहते हैं कि शरीर की क्रिया से पुण्य-पाप है ही नहीं। लाख बार नहीं, अनन्त बार भगवान कहते हैं। समझ में आया? भगवान ने भेजा है। समझ में आया? कहते हैं कि '**परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नहीं है।**' शरीर क्या करे? जड़ की पर्याय है, उससे पुण्य होता है? शरीरी की क्रिया में भले ऐसा-ऐसा हाथ चलता हो और परिणाम हो अशुभ। समझे? विचार आया दुकान का और भगवान के सामने हाथ जोड़कर बैठा है और परिणाम आया दुकान का, पुत्र का, अरे..! पाप है। शरीरी क्रिया से होगा? कुंवरजीभाई! मालूम है कि नहीं? (संवत) १९८१ में। इच्छामि खमासणा ऐसे करते थे और ऐसे ही खड़े रहे, दूसरे विचार में चढ गये। गढ़डा, १९८१ की बात है, गढ़डा, गढ़डा। १९ और १८, ३७ (साल) हुए। बैठे थे ऐसे ही। विचार की ... इच्छामि खमासणा देना था न, खड़े हुए, बैठना नहीं हुआ, सब बन्द हो गया तो भी बैठे नहीं, ऐसे ही विचार में लीन हो गये।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- धूल का ध्यान था, दुकान का था। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है यहाँ।

'**परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नहीं है।**' समझ में आया? परिणाम में शून्यता है, शुभ-अशुभ का ठिकाना नहीं, शुद्धता का ठिकाना नहीं और शरीर की क्रिया फलदाता नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं, नहीं। वह तो परिणाम से फल है, शरीर से फल है नहीं। बन्ध का कारण परद्रव्य नहीं, बन्ध का कारण अपना अध्यवसाय है, यह निर्जरा अधिकार में आया कि नहीं? परवस्तु निमित्त है कषाय में, परन्तु परवस्तु बन्ध का कारण नहीं।

समझ में आया? बन्ध का कारण तो उसका अध्यवसाय है। वह तो शुद्ध को भी अध्यवसाय कहते हैं। शुद्ध अध्यवसाय हो तो निर्जरा होती है। शुभाशुभ परिणाम का अध्यवसाय हो तो बन्ध होता है। अध्यवसाय तो शुद्ध को भी कहते हैं।

'**यहाँ फिर प्रश्न है कि शास्त्र में तो अकाम-निर्जरा कही है।**' उससे तो हम इच्छा सहित करते हैं, ऐसा बताना है। '**वहाँ बिना इच्छा के भूख-प्यास आदि सहने से निर्जरा होती है,...**' देखो, तर्क निकाला, तर्क निकाला। आप तो इतना लेते हो, लेकिन हम तो इच्छा सहित त्याग करते हैं। और उसको इच्छा बिना सहन करे तो भी अकाम निर्जरा (होती है), तो हमें तो कुछ सकाम होगी कि नहीं? समझ में आया? '**भूख-प्यास सहने से निर्जरा होती है, तो फिर उपवासादि द्वारा कष्ट सहने से कैसे निर्जरा न हो?**' उपवास करें, उणोदरी करें, चीज हो उसको छोड़ देते हैं, चीज थाली में आयी, मावा के जांबू सवा शेर घी में तले हुए... जांबू नहीं होते हैं मावा के? गुलाबजांबू। उसमें दाँत भी नहीं चाहिये और घी में तले हुए तरबतर, लो, सवा शेर खाओ। नहीं। आज मेरा तप है। ये स्वाधीनपने खाये नहीं, उसको पराधीनपने अकाम निर्जरा हो और आप स्वाधीनपने निर्जरा नहीं कहते, महाराज! बहुत फेरफार है। समझ में आया? अरे.. भगवान! बात तो सुन। अकाम निर्जरा में भी कैसा भाव है और कैसा निमित्त बिना बना है, उसका विवेक कर।

'**अकाम निर्जरा से...**' अकाम समझे न? इच्छा नहीं थी और सहन करना, इतना कोई शुभ परिणाम हुआ। '**अकाम-निर्जरा में भी बाह्य निमित्त तो बिना इच्छा के भूख-प्यास का सहन करना हुआ।**' बिना चाहे प्रसंग ऐसा आया (कि) ब्रह्मचर्य पालना पड़ा। जेलर को बिना इच्छा भूख सहन करनी पड़ी। '**और वहाँ मन्दकषायरूप भाव हो, तो पाप की निर्जरा होती है,...**' मन्द कषाय का परिणाम पुण्यभाव हो तो पाप की अकाम निर्जरा कहने में आती है। '**देवादि पुण्य का बन्ध होता है।**' अकाम निर्जरावाले को मन्द कषाय हो तो पुण्य बन्ध होता है। उतनी बाह्य क्रिया पराधीन मिली तो पुण्य परिणाम बिना बन्ध हो जाता है और अकाम निर्जरा होती है ऐसा होता नहीं।

'**परन्तु यदि तीव्र कषाय होने पर भी कष्ट सहने से पुण्यबन्ध होता हो तो सर्व तिर्यंचादिक देव ही हों,...**' सब पशु देव में ही जाये। उसको देखो न, बेचारे कितने दुःखी (होते हैं)। कुछ लोग गाय को घास दे, दूध दे इसलिये, लेकिन बछड़ा हो उसको घास मिलता नहीं। यह एक महिना, सवा महिना देर हो गयी थी न (बरसाद को)? अब घास हो गया। तो कहते हैं कि,.. सब दुःखी। ... छप्पन के दुष्काल में देखा था न। ओहो..! सौ-सौ गाउ में पचास-पचास गाय (खड़ी हो)।

ग्वाला खड़ा हो कम्बल डालकर। एक गाय के ऊपर कम्बल रखकर जोर-जोर से रोता हो। ऐसा छप्पन में देखा था, दस साल की उम्र थी। रोये, अरेरे..! सौ-सौ गाय खत्म हो गयी। गाय की आँखमें से आंसू, इतनी भूख होती है न। गाय समझे न? छप्पनिया का दुष्काल, सैंकड़ो गाय (मर गयी)। बैं.. बैं.. करे ग्वाला, कम्बल कंधे पर डालकर ऐसे सर (रखकर रोये), यह प्रत्यक्ष देखा है। आहा..! समझे? रोये, गाय की आँखमें से आँसू निकले, आठ-आठ दिन, पंद्रह-पंद्रह दिन से घास न मिले। छप्पनिया का दुष्काल, (तो वह पशु) स्वर्ग में जाये। यदि मन्द कषाय के परिणाम हुए बिना अकाम निर्जरा हो तो सब स्वर्ग में जाना चाहिये। सैंकड़ो, लाखो गाय, हज़ारो गाय का झुण्ड निकले। कषाय मन्द.. हाँ, अकाम-निर्जरा में बाह्य निमित्त इच्छा बिना मिला और अंतर में कषाय मन्द हो तो पुण्य बाँधे, तो पाप की अकाम निर्जरा होती है। कहो, समझ में आया?

'**सो बनता नहीं है।**' पुण्य परिणाम हुए बिना बाह्य कष्ट आया उससे अकाम-निर्जरा हो, ऐसा तो बनता नहीं। '**उसी प्रकार इच्छापूर्वक उपवासादि करने से...**' देखो! इच्छा करके उपवास किया, उणोदरी करी, रसपरित्याग किया, '**वहाँ भूख-प्यासादि कष्ट सहते हैं, सो यह बाह्य निमित्त है;...**' बाह्य संयोग है। '**परन्तु वहाँ जैसा परिणाम हो...**' देखो, निमित्त उड़ गया। निमित्त तो ऐसा है। परिणाम जैसा हो वैसा बन्ध पड़ता है। '**वहाँ जैसा परिणाम हो वैसा फल पाता है। जैसे अन्न को प्राण कहा...**' लो, अन्न को प्राण कहा। अन्न समान प्राण नहीं, आता है न? लोग कहते हैं। तो अन्न प्राण है?

'**तथा इस प्रकार बाह्य साधन होने से अंतरंग तप की वृद्धि होती है इसलिये उपचार से इनको तप कहा है;...**' लो। अन्न को जैसे उपचार से प्राण कहा। यदि प्राण टिकने की अवस्था हो तो अन्न निमित्त है, उसको प्राण कहने में आया है। ऐसे अपना शुद्धोपयोग आदि... यहाँ तो अकाम निर्जरा (की बात है), कषाय की मन्दता का परिणाम हो तो बाह्य से निमित्त कहने में आता है। और शुद्धोपयोग में भी बाह्य उपवास आदि (को), शुद्धउपयोग हुआ तो बाह्य उपवास को निमित्त कहने में आता है। निमित्त तो ऐसा किया लेकिन परिणाम में शुद्धोपयोग नहीं किया तो कभी निर्जरा किंचित् भी होती नहीं, शुद्धि उसको होती नहीं, परन्तु पाप का बन्ध हुआ। '**इसलिये उपचार से इनको तप कहा है;...**' देखो! उपचार, उपचार। लोग इसकी तकरार करते हैं।

मुमुक्षु :-- वह कहते हैं, ... उपचार नहीं कहते।

उत्तर :-- यहाँ कहते हैं कि, व्यवहार को हम उपचार कहते हैं। शास्त्र ने कहा,

स्वयं शास्त्र ने समयसार में कहा, जगह-जगह कहा, व्यवहार सो उपचार, निश्चय सो अनुपचार कहो या यथार्थ कहो। क्या करे? ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें भी अभी शास्त्र का विपरीत अर्थ करने में रुके। कहते हैं न वह? 'जन्मअंधनो दोष नहीं आकरो, जातिअंधनो दोष नहीं आकरो, जे जाणे नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि ऐथी आकरो करे अर्थना अनर्थ।' समझ में आया? अंधा तो बेचारा देखता नहीं कि क्या है अर्थ? कैसे अर्थ करुँ? वह अक्षर देखता है, अरे...! व्यवहार के अर्थ को निश्चय में लगा देता है, करे अर्थ का अनर्थ। भगवान आचार्य कहते हैं कि एक-एक गाथा में नयार्थ करना चाहिये। व्यवहारनय से यह कथन है, स्वआश्रय निश्चय से कथन है ऐसा नयार्थ समझे बिना गाथा को मरोड़कर अर्थ करता है, वह बड़ा अन्याय करता है। समझ में आया?

वह कहते हैं कि अंतरंग तप न हो और बाह्यतप हो तो '**उपचार से भी उसे तप संज्ञा नहीं है।**' देखो! निश्चय में शुद्धोपयोग हो तो व्यवहारतप को निमित्तपने उपचार से तप कहने में आता है। निश्चय न हो तो उसको उपचार भी कहने में आता नहीं। निश्चय का आरोप उसमें आता है, वास्तव में वह तप है नहीं। अंतर का शुद्धोपयोग हुआ तो निर्जरा होती है, बाह्यतप से निर्जरा होती नहीं।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**मंगलवार, दि. १४-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ६**

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। फिर से, '**यहाँ कोई कहे कि...**' वहाँ-से लेना है। है? प्रश्न, प्रश्न। '**यहाँ कोई कहे कि शुभभावों से पाप की निर्जरा होती है,...**' अपने में कषाय मन्द हो तो पूर्व का पाप है उसकी निर्जरा होती है। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। और '**पुण्य का बन्ध होता है।**' शुभभाव से पाप की निर्जरा और पुण्य का बन्ध। '**शुद्धभाव से दोनों की निर्जरा होती है...**' और शुद्धभाव, जितना अंतर रागरहित जितनी वीतरागी पवित्र पर्याय प्रगट हुई उससे तो दोनों की--पुण्य और पाप की निर्जरा है, ऐसा हम कहते हैं। ऐसा शिष्य का

प्रश्न है।

मुमुक्षु :-- द्रव्यसंग्रह की ३५वीं गाथा की टीका में लिखा है।

उत्तर :-- हाँ, लिखा है। भले लिखा हो। अन्दर यह एक अपवाद है। समझ में आया? वह तो आता है। एक अपवाद रखकर अन्दर बात है।

'**उत्तर :-- मोक्षमार्ग में तो स्थिति का तो घटना सभी प्रकृतियों का होता है;...**' माणिकलालभाई!

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- उसकी बात एक ओर रखो। अन्य साथ की रखो न, कल वह बात हो गयी है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपना शुद्ध परिणाम हुआ वह मोक्षमार्ग है। उससे '**घटना सभी प्रकृतियों का होता है;...**' किसी को सब प्रकृति घट जाये।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- मोक्षमार्ग में प्रकृति की स्थिति न घटे? आप का वह प्रश्न उलटा हुआ। पुण्य प्रकृति की स्थिति घटे? ऐसा आप को तो पूछना चाहिये। पाप की स्थिति घटे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह दूसरी बात है। पाप की स्थिति घटे? ऐसा प्रश्न किया।

मुमुक्षु :-- हाँ, मैंने वही किया।

उत्तर :-- तो वह प्रश्न बिलकुल उलटा हुआ। मोक्षमार्ग में पापस्थिति तो घटती ही है, परन्तु पुण्यस्थिति भी घटती है। ऐसा प्रश्न (होना चाहिये)। स्थिति तो संसार है। शेठी!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- क्या स्थिति याद की?

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- ऐसा कहाँ-से आया? नहीं, नहीं, वह सब गप्प है। गप्प कहते हैं? क्या कहते हैं? खोटी कहो। समझ में आया?

यहाँ तो मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय होते ही सब प्रकृति की स्थिति घटती है। पाप की तो घटती है उसमें आश्चर्य नहीं है, परन्तु पुण्य की स्थिति भी घटती है मोक्षमार्ग में। क्योंकि स्थिति संसार है। संसार, पुण्य की हो या पाप की हो, स्थिति तो पुण्य-पाप दोनों की घट जाती है। ऐक बात।

'**वहाँ पुण्य-पाप का विशेष है ही नहीं।**' वहाँ पुण्य और पाप की स्थिति में मुद्त में फेरफार है नहीं कि पाप की स्थिति घट जाये और पुण्य की स्थिति

बढ़ जाये अथवा घटे नहीं। ऐसा पुण्य-पाप में फेर है नहीं। समझ में आया? '**और...**' अब यह बात थोड़ी... वह उदय आता था, भाषा का तो ख्याल बहुत बार आता था, परन्तु तीव्र उदय-उदय करते हैं, परन्तु बन्ध के बिना उदय कैसा? वह बात हमारी ३५ साल पहले नारणभाई के साथ हो गयी थी कि शुद्धोपयोग हो तो अनुभाग तो बढ़े, नया बढ़े, नया बढ़े। नया बढ़े वह बन्ध बिना कैसे बढ़े? समझे? जैसे शुद्धोपयोग बढ़े, वैसे अन्दर अनुभाग, प्रकृति, प्रदेश और स्थिति... तीन की बात नहीं, स्थिति घटती है, प्रकृति, प्रदेश आते नहीं शुद्धोपयोग में, परन्तु अनुभाग का घटना पुण्य प्रकृति का शुद्धोपयोग से भी होता नहीं। समझ में आया? अनुभाग का घटना नहीं (होता), उतनी बात पहली करते हैं। पुण्य प्रकृति का शुद्धोपयोग से भी घटना होता नहीं। अब, घटता नहीं, पहली बात करी। अब बढ़ता है। समझ में आया?

'**ऊपर-ऊपर पुण्यप्रकृतियों के...**' जैसे-जैसे ऊपर-ऊपर के गुणस्थान की शुद्धि बढ़ जाये ऐसे '**अनुभाग का तीव्र बन्ध-उदय होता है...**' उदय होता है, तो बन्ध हो तो उदय होता है। अनुभाग। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति की बात तो पहले की। प्रकृति, प्रदेश तो ... परन्तु ऐसा कोई स्वभाव है कि अनुभाग में रस बढ़े। पूर्ण जहाँ हो गया तो अनुभाग पूर्ण छूट जाता है। '**ऊपर-ऊपर पुण्यप्रकृतियों के अनुभाग का तीव्र बन्ध-उदय होता है...**' कहो, समझ में आया? कहाँ गये? राजमलजी! समझ में आया? डालचंदजी! ऐसा प्रश्न किया तो उसके सामने कहा कि, तुम कहते हो ऐसा नहीं है, भैया! दोनों की स्थिति घट जाये। शुद्धोपयोग से स्थिति तो घट जाये। संसार है न उग्र ऐसा। परन्तु अनुभाग पाप का घट जाये, परन्तु पुण्य का नहीं घटता, पुण्य का नहीं घटता। परन्तु उसका बढ़ता है ऐसी एक विशेषता है। समझ में आया?

ऊपर-ऊपर पुण्यप्रकृतियों का रस, रस, रस.. स्थिति नहीं, अन्दर तीव्र अनुभाग में बन्ध होता है। तीव्र बन्ध होता है तो उदय में तीव्र आता है। कहो, माणिकलालभाई! समझ में आया कि नहीं? वह कहते थे, समझ में नहीं आता है बराबर।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बढ़ा वह नया हुआ न। सत्ता में वह नया आया। वह कहाँ-से आया? नया बढ़े बिना सत्ता में आया कहाँ-से? क्या?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- रस पड़ा नया। तो बन्ध होता है न। अनुभाग का, इतना। पहले पड़े बिना उदय कहाँ-से? वह तो पढ़ते समय बहुत बार दिमाग में तो आता था। लेकिन शब्दों में मालूम नहीं पड़ता था, क्या करे? तीव्र उदय हो, तीव्र उदय हो (कहते हैं) लेकिन (रस) पड़े बिना, नया रस पड़े बिना.. पुराने में, लेकिन नया रस पड़ा

न, नया पड़ा न रस, नया रस तीव्र पड़ा तो उदय आता है।

'**और पापप्रकृतियों के परमाणु...**' देखो इसमें। इसमें वह बात सिद्ध करते हैं। '**पापप्रकृतियों के परमाणु शुभप्रकृतिरूप होते हैं--ऐसा संक्रमण शुभ तथा शुद्ध दोनों भाव होनेपर होता है...**' दोनों कारण से पलटते हैं। शुभ परिणाम हो तो पाप के परमाणु पलटकर पुण्य हो जाते हैं। शुद्धभाव से भी पापप्रकृति पलटकर पुण्य हो जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- सत्ता में पड़ी हो वह, सत्ता में पड़ी हो वह। भाई! हिंमतभाई! यह आया न? शुद्ध से भी पाप की प्रकृति पलट जाती है। उसमें तो... शुद्ध से भी पापप्रकृति के परमाणु पलटकर शुभप्रकृतिरूप होते हैं। '**ऐसा संक्रमण शुभ तथा शुद्ध दोनों भाव होनेपर होता है...**' समझ में आया?

मुमुक्षु :-- यहाँ तो प्रकृति का भी ... हुआ।

उत्तर :-- हुआ, हुआ न। अनुभाग पड़ा तो प्रकृति भी इतनी पलट जाती है। इतनी हाँ!

मुमुक्षु :-- शुद्धभाव न हो तो...

उत्तर :-- अकेले शुभ से भी प्रकृति तो पलटती है। पाप से पुण्यरूप, लेकिन अहीं तो विशेष शुद्ध की बात करनी है। शुभ में तो साधारण पलटे, वह तो अनन्त बार ऐसे पलटी है। अभवि, भवि को पहले तीव्र बँधा हो, शुभभाव में तीव्र पाप की स्थिति भी घट जाये और पाप पलटकर कुछ पुण्य भी हो जाये। परन्तु यहाँ तो शुद्ध की बात में थोड़ी विशेषता कहते हैं। समझ में आया? जितना कषाय टलकर शुद्धता हुई उससे अनुभाग भी बढ़े और प्रकृति पलट जाये। ऐसा शुद्ध और शुभ में दोनों प्रकृति पलटने की बात है। और शुद्ध में तो अनुभाग बढ़े, बाकी स्थिति आदि...

'**इसलिये पूर्वोक्त नियम संभव नहीं है,...**' तू कहता है कि शुभ से निर्जरा होती है, यहाँ ना कहा, शुभ से निर्जरा होती है उसकी ना कही। भाई! शुद्धता हो तब यह निर्जरा हो, उसमें यह प्रकार बनता है। तू कहता है कि शुभ से पाप की निर्जरा होती है और पुण्यप्रकृति का बन्ध होता है। ऐसा नहीं है। '**विशुद्धताही के अनुसार नियम संभव है।**' कषाय का अभाव, जितना स्वभाव में कषाय के अभाव की परिणति होती है उस अपेक्षा से निर्जरा का संभव है। उसमें थोड़ा समझ लेना। सझम में आया? देखो, अब दृष्टान्त देते हैं।

'**देखो, चतुर्थ गुणस्थानवाला...**' चौथा गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि जीव '**शास्त्राभ्यास...**' करता है, '**आत्मचिंतवन...**' नाम निर्विकल्प अनुभव भी कभी होता है ऐसा '**कार्य**

**करे...**' ऐसा कार्य करे। लो, शास्त्राभ्यास करे। है न? वह, करे (शब्द) दोनों को लागू पड़ता है। '**शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवन आदि कार्य करे--वहाँ भी निर्जरा नहीं,...**' यहाँ, विशेष कषाय के अभाव की निर्जरा (नहीं होती), बाकी निर्जरा तो थोड़ी है, लेकिन पंचम गुणस्थान जितनी निर्जरा नहीं होती तो वहाँ निर्जरा नहीं है, '**बन्ध भी बहुत होता है।**' देखो, चौथे गुणस्थान में निर्जरा नहीं और बन्ध बहुत (होता है)। समयसार में कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को बन्ध-बन्ध है ही नहीं। लो। समझ में आया वह तो सम्यग्दर्शन के जोर में अस्थिरता का थोड़ा परिणाम है वह अनंत संसार का कारण नहीं है। इसलिये वहाँ तो एकदम (कहा), सम्यग्दृष्टि मोक्षस्वरूप है। धन्नालालजी! जाहिर हो कि मिथ्यात्व सो संसार है, सम्यग्दर्शन सो मोक्ष है। वह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य बताने को कहा।

यहाँ तो अंश-अंश में जितना बन्ध का कारण है उससे बन्ध होता है और जितनी शुद्धता की बढवारी हुई उतनी निर्जरा होती है। शुद्धता अन्दर में (हो उस अनुसार निर्जरा होती है), प्रवृत्ति अनुसार नहीं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि बाह्य में प्रवृत्ति इतनी (करते हैं)। यहाँ कहा, देखो न, चौथे गुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास, आत्मचिंतवन आदि (करता हो)। अनुभव--निर्विकल्प अनुभव में पड़ा हो चौथे गुणस्थानावाला। चिंतवन में उस ओर का विकल्पादि हो और अनुभव भी करता हो, चिंतवन को अनुभव भी कहते हैं, '**वहाँ भी निर्जरा नहीं,...**'

मुमुक्षु :-- गुणश्रेणि नहीं?

उत्तर :-- गुणश्रेणि की यहाँ अभी ना कही है, दूसरी जगह हाँ कही है।

मुमुक्षु :-- मूल में...

उत्तर :-- मूल में है? यहाँ ना कहते हैं। है उसमें मूल में? मूल में? यहाँ तो वह सिद्ध करना है न। यहाँ निर्जरा नहीं है ऐसा सिद्ध करना है। अकषायभाव बढ़नेपर निर्जरा होती है ऐसा सिद्ध करना है। माने है तो सही। परन्तु चौथे गुणस्थान की अपेक्षा पंचम गुणस्थान में दो कषाय का अभाव है, वहाँ भी अभी निर्जरा थोड़ी और बन्ध ज्यादा है ऐसा कहेंगे। समझ में आया? वहाँ भी अभी ऐसा कहेंगे।

यहाँ तो आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है उसकी दृष्टि हुई, इससे अतिरिक्त जितनी अकषाय भाव की परिणति बढ़ती है उससे निर्जरा सिद्ध करना है। प्रवृत्ति के अनुसार निर्जरा है ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? वह कहते हैं कि शास्त्राभ्यास... भाई! वह तो इसमें निकल गया। वह कहते हैं कि शास्त्राभ्यास से निर्जरा होती है। ... आता है न, धवल में? किस अपेक्षा से बात है उसे समझे बिना... समझ में आया? धवल में वह आता है। तो रतनचंदजी है न? उसने धवल बहुत पढ़ा है न। दूसरों ने नहीं

देखा है?

मुमुक्षु :-- ....

उत्तर :-- वह नहीं देखा हो, उसमें क्या है? माल-माल देख लिया है सब। माल-माल मक्खन ले लिया है। पोपटभाई!

कहते हैं कि आत्मानुभव का कार्य करे '**वहाँ भी निर्जरा नहीं, बन्ध भी बहुत होता है।**' यहाँ तो अशुद्धता का नाश विशेष बताना है और शुद्धता की पवित्रता बढ़े तो निर्जरा होती है, यह बात सिद्ध करनी है। इसलिये कहा न, '**विशुद्धताही के अनुसार नियम संभव है।**' विशुद्धता माने अकषाय भाव, उसके अनुसार बात सिद्ध करते हैं।

'**पंचम गुणस्थानवाला...**' लो। चौथे गुणस्थानवाले को तो अमुक हदवाला है। पंचम गुणस्थान में दो कषाय का नाश हुआ। सम्यग्दृष्टि (है) और दो कषाय का नाश होकर स्थिरता भी चौथे गुणस्थान से स्थिरता भी बढ़ गयी। पहली पड़िमा, दूसरी पड़िमा आती है न? ये श्रावक की। वह पड़िमा का विकल्प नहीं। पड़िमा में लिखा है कि नहीं? उसमें लिखा है। इसमें आया है, कल लेख में पड़िमा आया था। रात को पढ़ा उसमें। पड़िमा यह ली, पड़िमा से ऐसा हो। पड़िमा तो विकल्प है, सुन न। तुझे ज़ोर देना है।

यहाँ तो पंचम गुणस्थानवाले ने दो कषाय का नाश किया है, उपवासादि करता है। उपवास, प्रायश्चित्तादि कर लेते हैं। अर्थात् बाह्य-अभ्यंतर दोनों डाला, दोनों डाला। बाह्य तप भी करते हैं और अभ्यंतर में प्रायश्चित्तादि (करते हैं)। है तो वह भी बाह्य। प्रायश्चित्त, विनय आदि '**तप करे उस काल में उसके निर्जरा थोड़ी...**' उस काल में भी उसको निर्जरा, निर्जरा नाम शुद्ध और अशुद्धि का नाश थोड़ा, कर्म का नाश और अशुद्धि का नाश थोड़ा (होता है)।

'**और छठवें गुणस्थानवाला...**' यहाँ तो यह बात करनी है न। मुनि हुआ। छठवें गुणस्थान में तीन कषाय का नाश (हुआ)। भावलिंगी संत छठवें गुणस्थान में हो, शुभ विकल्प में आये तो '**आहार-विहारादि क्रिया करे...**' देखो! छठवें गुणस्थानवाला आहार करे, स्वाध्याय करे, उपदेश करे ऐसी क्रिया करे, उपदेश के काल में भी, आहार के काल में भी, विहार के काल में भी '**उस काल में भी उसके निर्जरा बहुत होती है,...**' बहुत, वह तीन कषाय का नाश हुआ उस अपेक्षा से है। बाकी नग्नपना है और विकल्प है, उस अपेक्षा से नहीं। पाँचवें की अपेक्षा से छठवें में तीसरे कषाय का नाश है, तो जितनी विशुद्धता बढ़ी उससे निर्जरा होती है। (पाँचवावाला) उपवास करे, यह आहार करे। दोनों आमने-सामने लिया। समझ में आया? पंचम

गुणस्थानवाला उपवास करे, छठवेंवाला आहार करे। पंचमवाला प्रायश्चित्तादि तप करे, यह विहारादि करे। हिले, चले, बोले, व्याख्यान दे। कहो, समझ में आया? '**उस काल में भी...**' उस काल में भी '**उसके निर्जरा बहुत होती है,...**' तीन कषाय का नाश हुआ है, स्वद्रव्य का आश्रय उग्र हुआ है, इस अपेक्षा से उसको निर्जरा बहुत होती है। '**तथा बन्ध उससे थोड़ा होता है।**' लो। उससे भी बन्ध, पंचम की अपेक्षा से छठवें में तो बहुत अल्प बन्ध होता है। कहो, समझ में आया कि नहीं? माणिकलालभाई! बाबुभाई!

'**इसलिये बाह्य प्रवृत्ति के अनुसार निर्जरा नहीं है,...**' यह लेना है। सिद्धांत यह करना है। शुभ परिणाम के अनुसार निर्जरा नहीं है। स्वाध्याय करे और आहार करे। वह कहता है, शुभप्रवृत्ति से निर्जरा है। यहाँ शुद्ध से निर्जरा सिद्ध करनी है। उतना अपवाद है तो बात बीच में कही। '**अंतरंग कषायशक्ति घटने से...**' देखो! अंतरंग में जितना क्रोध, मान, माया, लोभ एक कषाय, दो कषाय, तीन कषाय आदि जो घटे, '**विशुद्धता होनेपर निर्जरा होती है।**' अंतरंग कषायशक्ति नाश होकर अकषायी वीतरागी पर्याय जितनी निर्मल हुई उस अनुसार निर्जरा होती है। कहो, समझ में आया? ये तो बाहर त्याग करे, इसने उपवास किये और उसने वह किया, इसलिये बहुत निर्जरा, मुनि से भी बहुत निर्जरा (होती है)। मुनि आहार करते हैं इसलिये थोड़ी निर्जरा, ऐसा है नहीं। आहार करने में निर्जरा? आहार करने में निर्जरा नहीं है, आहार करने के काल में निर्जरा है, यह क्या? आहार करने के विकल्प से नहीं। परन्तु तीन कषाय का नाश होकर शुद्ध परिणति है उससे वह निर्जरा होती है। आहार करने का विकल्प निर्जरा का कारण नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- .. नहीं ऐसा अभी कहते हैं। अभी कषाय की शक्ति पाँचवेंवाले को ज्यादा घटी है, छठवें में अधिक घटी है, इस अपेक्षा से बात ली है। थोड़ी निर्जरा तो है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- चारित्र, चारित्र। यहाँ चारित्र की प्रधानता की--स्थिरता की, यहाँ स्थिरता को प्रधानता देनी है। समयसार में सम्यग्दर्शन को प्रधानता देनी है। वहाँ भी चारित्र को प्रधानता देते हैं, मोक्ष अधिकार में देते हैं। मुनि को भी पंच महाव्रत का राग आता है वह झहर है, झहर है। अमृत को लूटनेवाला है मुनि का राग। जहाँ-जहाँ जिस प्रकार की अपेक्षा ली उसे समझना चाहिये न। समझ में आया?

'**सो इसके प्रगट स्वरूप का आगे निरूपण करेंगे...**' इससे ज्यादा विस्तार

आगे कहेंगे। लेकिन वह बात रह गयी, देह छूट गया। '**वहाँ से जानना।**'

'**इस प्रकार...**' अब सार (कहते हैं)। '**अनशनादि क्रिया को तपसंज्ञा उपचार से जानना।**' यहाँ तो यह बात कहनी है। एक उपवास, दो उपवास, चार उपवास, उणोदरी, रसपरित्याग, दूध खाना या नहीं खाना, मीठा.. क्या कहते हैं उसे? नमक, नमक। नमक बिना की रोटी खाना। ऐसी बाह्य क्रियाओं को तपसंज्ञा उपचार से है, आरोप से है, व्यवहार से है। '**इसीसे इसे व्यवहारतप कहा है।**' देखो! समझ में आया? ये तो व्यवहारतप ही घोड़ा हो गया। घोड़ा हो गया, समझे? सब हो गया। उससे धर्म हुआ। उपवास किया, उणोदरी की, यह किया, वह किया। धूल में भी धर्म नहीं है। सुन तो सही। वह तो अंतर अकषाय परिणति हो तब बाह्य तप ऐसा हो तो उसको उपचार से, आरोप से, निमित्त से, व्यवहार से कहने में आता है। वास्तव में वह तप है नहीं। भारी बात। विचार करने में श्रद्धा निर्मल करने की चीज क्या है, श्रद्धा कैसे सत्य हो, ऐसा पहले निश्चय करना चाहिये। दूसरी बात एक ओर।

विषयकषाय की आसक्ति घटे बाद में। तत्त्वार्थसार में कहा है न, भाई! बंसीधरजी ने कहा है। आसक्ति घटने से पूर्व भी वास्तविक तत्त्व की विशुद्धि, दर्शनविशुद्धि करनी चाहिये। बाद में आसक्ति घटने का प्रयत्न बाद में होता है। कहो, तत्त्वार्थसार में कहा है, भाईने--बंसीधरजी ने कहा है। कुछ बातें अच्छी ली है। उस वक्त कुछ पण्डितों की अपेक्षा से अच्छा लिखा है। बंसीधरजी सोलापुरवाले थे, चल बसे अब तो।

अब कहते हैं, देखो! '**व्यवहार और उपचार का एक अर्थ है।**' लो। व्यवहार कहो, उपचार कहो, आरोप कहो। ये दवाई में कहते हैं न? उपचार करते हैं, भाई! शेठी! मिटना हो तो मिटे, उपचार करते हैं, भाई! १०५ डिग्री बुखार बहुत समय से है, २१ दिन हो गये, टाईफोयड है, ऐसा है, वैसा है। उपचार करते हैं। होना होगा वैसा होगा। उसका अर्थ यह है। ऐसे इस बाह्यतप को उपचार--व्यवहार से कहने में आता है। वह वास्तव में तप नहीं है।

मुमुक्षु :-- ... करते हैं, जो होना होगा वह होगा।

उत्तर :-- होना होगा वह होगा, सो अकषाय परिणति से होगा, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहीं शुभभाव से और ऐसी क्रिया से होगा ऐसा नहीं है। देखो, व्यवहार, उपचार या निमित्त कहो, एक ही बात है। वह नहीं मानते।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- यह क्या कहते हैं? वह सब कहते हैं, नहीं, नहीं, नहीं। निमित्त देखकर, सहचर देखकर उपचार से व्यवहार संज्ञा समकित को कहने में आयी है। दो नय के अवलंबन से। निमित्त कहो, व्यवहार कहो, उपचार कहो, आरोप कहो, सब एक ही

बात है। तो कहते हैं कि, नहीं, निमित्त को उपचार कहा है ऐसा शास्त्र में कहीं नहीं है। अरे.. भगवान! क्या हुआ? यहाँ की बात एकदम नयी लगी, नयी लगी इसलिये उडायी एकदम। लेकिन वह उड़ जाये ऐसी नहीं है, फूँक मारने से पर्वत गिर जाये, उड़ जाये ऐसा नहीं है। समझ में आया? फूँक से पहाड़... आप में कुछ आता है न? फूँक से पहाड़ ऊड़ाना चाहते हो, ऐसा आता है। फूँक से पहाड़ ऊड़ता नहीं और पहाड़ पहाड़ के कारण ऊड़ता है। सुन न। और उसके कारण से रहता है, किसी के कारण से रहता या जाता नहीं।

'**तथा ऐसे साधन से...**' यह तो निमित्त कहा '**जो वीतरागभावरूप विशुद्धता हो...**' बाह्यतप कहा वह सब निमित्त, व्यवहार। '**वीतरागभावरूप विशुद्धता हो...**' अन्दर अकषाय शुद्धता की परिणति हो '**वह सच्चा तप निर्जरा का कारण जानना।**' निर्जरा नाम धर्म, निर्जरा नाम शुद्धि, निर्जरा नाम मोक्ष का मार्ग।

'**यहाँ दृष्टान्त है--जैसे धन को व अन्न को प्राण कहा है।**' लोग कहते हैं न? धनप्राण, अन्नप्राण ग्यारहवाँ प्राण। ये पैसेवालों को धन ग्यारवाँ प्राण है ऐसा कहे। पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- पोपटभाई तो नहीं आये हैं, ग्यारहवाँ प्राण है।

उत्तर :-- उसके कारण आत्मा के प्राण हैं? इन्द्रिय के प्राण? लोग ऐसा कहे कि धन हो तो ग्यारहवाँ प्राण है और अन्न समा प्राण, ऐसा हमारे काठियावाड़ में कहते हैं। आता है? आप में कोई भाषा होगी। अन्न समा प्राण, हिन्दी में क्या है? अन्नमयी प्राण। हमारे में, अन्न समा प्राण, काठियावाड़ में कहते हैं। अन्न हो तो प्राण है। अरे..! वह तो उपचार की बात है। देखो! '**धन को व अन्न को प्राण कहा है। सो धन से अन्न लाकर...**' धन से अन्न लाकर। दोनों की बात करनी है न। '**उसका भक्षण करके प्राणों का पोषण किया जाता है;...**' पैसे से अनाज लाये, अनाज का भक्षण करे तो प्राण, इन्द्रियों का पोषण हो। '**इसलिये उपचार से धन और अन्न को प्राण कहा है। कोई इन्द्रियादिक प्राणों को न जाने...**' इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय आदि प्राणों को तो न जाने '**और इन्ही को प्राण जानकर संग्रह करे...**' अन्न का संग्रह करो, अन्न का संग्रह करो, अन्न का संग्रह करो। खाये नहीं। समझ में आया? क्योंकि उसको भी प्राण कहने में आता है। '**इन्ही को प्राण जानकर संग्रह करे तो मरण को ही प्राप्त होगा।**' खाये नहीं और मर जाये, अनाज की कोठी भरे तो। अनाज की कोठी भरकर रखे (क्योंकि) वह तो प्राण है न, प्राण है न। लेकिन वह तो उपचार का प्राण है। यह प्राण रहे तो उसको प्राण कहने में आता है। प्राण कहाँ-से आया जड़ में, बाहर में?

‘**उसी प्रकार अनशनादि को तथा प्रायश्चित्तादिक को तप कहा है,...**’ बाह्य, हाँ! बाह्य साधन। अनशन, उणोदरी, वृत्ति... रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वय्यावृत्त को तप कहा। ‘**क्योंकि अनशनादि साधन से...**’ आहार न हो। ऐसा विकल्प घट गया। ‘**प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्तन करके...**’ उसके विकल्प में रहे। उससे ‘**वीतरागभावरूप सत्य तप का पोषण किया जाता है,...**’ अंतर में ध्यानादि करके निवृत्ति के काल में शुद्धता का पोषण किया जाय उसको निर्जरा कहने में आता है। ‘**इसलिये उपचार से अनशनादि को तथा प्रायश्चितादि को तप कहा है।**’ उपचार से, व्यवहार से प्रायश्चित्त, विनय, वय्यावृत्त, सज्झाय, ध्यान, व्युतसर्ग इन सब को व्यवहार कहा है। लो।

‘**कोई वीतरागभावरूप तप को न जाने...**’ (दृष्टान्त में) इन्द्रिय को न जाने और सिर्फ लक्ष्मी का संग्रह किया करे। वैसे यहाँ, वीतरागभावरूप चैतन्य की जागृति, अकषायभाव को तो न जाने ‘**और इन्ही को तप जानकर संग्रह करे...**’ अनशन करो, वृत्ति (संक्षेप करो), रसपरित्याग (करो), यह छोड़ो, वह छोड़ो, यह खाओ, यह पीओ, इस न रखो। ‘**तो संसारही में भ्रमण करेगा।**’ वह बाह्य तप करने बावजूद चार गति में भ्रमण करेगा। कहो, बराबर है? क्या करना? तो फिर खाना न? वह प्रश्न नहीं है। खाने का भाव भी पाप है और छोड़ने के भाव में विकल्प आया वह पुण्य है। लेकिन उससे निर्जरा है, धर्म है ऐसी बात नहीं है। यह बात बतानी है।

अकषाय भाव जितना ज्ञाता-दृष्टा का भान होकर शुद्धता बढ़े उससे निर्जरा होती है, उससे कर्म का क्षय, अशुद्धता का नाश, शुद्धता की बढ़वारी उससे होती है। समझ में आया? एक साधु था। वह दिन में खाता नहीं, रात को खाता नहीं, चौबीस घण्टे खाता नहीं, इसलिये वह समकितदृष्टि होगा कि नहीं? ऐसा प्रश्न आया था। यहाँ प्रश्न बहुत आते हैं। वहाँ सम्यग्दर्शन की बात बहुत चलती है, और यह ऐसा त्यागी, खाये नहीं, रात-दिन खाये नहीं, सर नीचे पैर ऊपर, ऐसा खड्डा। दिगंबर का यहाँ प्रश्न आया, दिगंबर में जन्म लिया हो उसका। महाराज! उसको सम्यग्दृष्टि है कि नहीं? (दिगंबर में) जन्म हुआ लेकिन कुछ मालूम नहीं। दिगंबर धर्म क्या है? समझ में आया? दिगंबर धर्म क्या चीज है, उसका पत्ता नहीं। जन्म लिया, कुछ मालूम नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा अनशन करके मर जाये, सूख जाये तो भी अंतर सम्यग्दर्शन और स्थिरता बिना निर्जरा होती नहीं। धर्म का भान नहीं, कहाँ-से निर्जरा आयी? बारह-बारह महिने का उपवास करे। ओहो..! ये तो बहुत करता है, हाँ! शरीर जीर्ण हो गया है, कुछ खाता नहीं, मौन, मौन, मौन तीन-तीन साल मौन रहा। तीन साल काष्ट मौन। लोगों को तो ऐसा हो जाये, ओहोहो..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह तो बारह वर्ष मौन रहे। बारह-बारह वर्ष मौन रहे। हम वहाँ गये थे न, हुबली-हुबली। हुबली का एक महात्मा था। वहाँ बेचारा प्रवचन सुनने को आया था। हमने प्रवचन किया न, उसके मठ में भी व्याख्यान किया था। बड़ा मठ था। लोग बहुत थे न। तो हुबली के मठ में व्याख्यान किया था, सब आये थे व्याख्यान सुनने को। लेकिन वह बारह वर्ष से मौन था, लो। अरे..! मौन में क्या आया? अंतर वस्तु क्या है? राग क्या है? जड़ की स्वतंत्रता क्या है? पृथक् का भेदज्ञान बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं और उसके बिना शुद्धि की वृद्धि होती नहीं। मौन रहकर मर जाये न। यहाँ तो कहते हैं कि समकिती--ज्ञानी का बोलना सो मौन है, चलना सो समाधि है। शेठी! समयसार नाटक में आता है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह तो मुनि को। यह तो सम्यग्दृष्टि, चाहे रहो वन में, चाहे रहो मन्दिर में। वह चले सो उसकी समाधि है, बोले सो उसका मौन है। डोले वह उसकी समाधि है। क्रिया उसके कारण है, अन्दर अकषाय श्रद्धा की परिणति हुई है उससे सब लाभ होता है। समझ में आया? वह समयसार नाटक में लिखा है। समयसार नाटक पढ़ा है कि नहीं? लो, पढ़ा नहीं? दिगंबर में जन्म लिया अभी तक। समयसार नाटक, समयसार है। उसके कलश का अर्थ है उसमें। बहुत अच्छा किया है, बनारसीदास, बहुत अच्छा है। कलश को पद्य में लिया है, पद्य में। पद बनाये हैं, बहुत अच्छी बात, बहुत अच्छी। बनारसीदास तो बहुत... पावर फट गया। बहुत ज्ञानी, सम्यक्ज्ञानी (थे) लेकिन उनके पुरुषार्थ की उग्रता... बड़ा काम किया। व्यवहार जितना है उससे लाभ माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। जितना असंख्य अध्यवसाय व्यवहार उसमें लाभ माननेवाले को उतना ही मिथ्यात्व है। चिल्लाने लग जाये ऐसा है। अरेरे..रे..! व्यवहार सो मिथ्यात्व? व्यवहार सो मिथ्यात्व? व्यवहार से लाभ मानना सो मिथ्यात्व है। व्यवहार से जानने को मिथ्यात्व नहीं (कहते)। उससे लाभ माने तो, व्यवहार से कुछ ... है, कुछ लाभ, कुछ है, कुछ है उसमें। अनशनादि में कुछ तो है। कुछ है, बन्ध। समझ में आया?

'**कोई वीतरागभावरूप तप को न जाने और इन्हीं को तप जानकर संग्रह करे तो संसारही में भ्रमण करेगा। बहुत क्या...**' क्या कहें? '**इतना समझ लेना कि निश्चयधर्म तो वीतरागभाव है।**' लो। सच्चा धर्म जितना ज्ञाता-दृष्टा होकर राग रहित स्थिरता होती है वही एक वीतरागभाव ही धर्म है। बाकी अन्दर में विकल्पादि, पंच महाव्रतादि सब आये वह धर्म-बर्म है नहीं।

मुमुक्षु :-- इस देश में धर्म नहीं होगा, अन्य देश में...

उत्तर :-- दूसरे देश में धर्म होगा। दूसरे देश में होगा? दूसरे देश में फ़सल दूसरी होती होगी, ऐसा होगा? झहर की फ़सल। निश्चयधर्म सच्चा धर्म, प्रमाणिक धर्म, वास्तविक धर्म वीतरागभाव है। बीच में राग आता है वह धर्म है नहीं। वह तो उपचार से कथन करने में आया है।

'**अन्य नाना विशेष...**' अनेक प्रकार का विशेष '**बाह्यसाधन की अपेक्षा उपचार से किये हैं...**' कहो। दूसरे तप को, विनय को, वय्यावृत्त को सब को उपचार से कहा है। '**उनको व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जानना।**' उसको तो व्यवहारमात्र धर्म जानना। '**इस रहस्य को नहीं जानता...**' देखो, निर्जरा में यह बात ली। 'रहस्य' शब्द डाला। इस रहस्य को तो पीछानता नहीं '**इसलिये उसके निर्जरा का भी सच्चा श्रद्धान नहीं है।**' रहस्य को पीछानता नहीं। बाह्यप्रवृत्ति तो निमित्त गिनकर और उसमें बाह्य से निवृत्ति हुई न, तो अंतर में उपयोग की शुद्धता का बढ़वारा हो उससे निर्जरा होती है या धर्म होता है। अन्य किसी से बारह प्रकार के तप से धर्म होता नहीं। यह पढ़े नहीं।

टोड़रमल का पढ़ना नहीं, ऐसा कोई अभी कहता था। वह मख्खनलालजी है न वहाँ? दिल्ही, दिल्ही। टोड़रमल का पढ़ना नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर सके नहीं ऐसा कोई कहे तो उसका (साहित्य) पढ़ना नहीं। कहो, अरे.. भगवान! सर्वज्ञ परमात्मा तो कहते हैं कि विष्णु को जगत का कर्ता कहते हैं, ऐसे हमारा कोई जैन श्रावक, साधु नाम धारण करके छः काय की दया पाल सकता है ऐसा माने, शरीर की रक्षा करना माने, वह विष्णु जैसा मिथ्यादृष्टि है। उसमें कुछ फेर है नहीं। जैन में और अन्य में कुछ फेर नहीं। विष्णु ने जगत का कर्ता माना, इस जैन ने शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, छः काय की दया पाल सकता हूँ, तो इतने का कर्ता हुआ। कर्ता की दृष्टि में कोई फेर है नहीं।

मुमुक्षु :-- छः काय की दया...

उत्तर :-- मुनि पालते नहीं। मुनि क्या पालते हैं? वह तो राग मंद होता है तो पालते हैं ऐसा कहने में आता है। पर की पर्याय कौन पाले? पाले कौन? रखे कौन? टाले कौन? आहाहा..! भारी गड़बड़ भाई! कल कोई कहता था न? दिल्ही। भाई! भाई थे न? दिल्ही, मक्खनलालजी। भाई! अपने यहाँ मक्खनलालजी आये थे न? यहाँ आये थे हाँ! मानस्तंभ की (प्रतिष्ठा में)। जुगलकिशोर के साथ आये थे न? सब थे। दोसौ लोग। नहीं, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न करे... प्रत्यक्ष कर सकता है। शेठी! आँख का ओपरेशन करवाया, आँख अच्छी की, ऐसा नहीं कर सकते? पाल सकते हैं, बोल सकते हैं, चश्मा साफ कर सकते हैं, आँखमें से कचरा निकाल सकता है, पेशाब कर सकता है, दिशा कर सकता है, थूक निकाल सकता है।

पूरा दिन करता है और कहते हैं कि करता नहीं, करता नहीं, करता नहीं। पढ़ना नहीं ऐसा कहा। मैंने पूछा, कौन बीसपंथी है? टोडरमल का निषेध क्यों करता है? तो कहा, हाँ, बीसपंथी लगता है। ऐसा कुछ कहा, भाई को बहुत मालूम नहीं है। जयकुमारजी को।

मुमुक्षु :-- बीसपंथी तो ना ही कहे न।

उत्तर :-- इसलिये कहता हूँ। मुझे लगा, ना कहता है, ऐसा क्यों? तेरापंथी ना नहीं कह सकता। बीसपंथी है न। नहीं। अरे.. भगवान! तेरा (अभिप्राय) छोड़ दे न, सत्य क्या है (यह देख)।

मुमुक्षु :-- आप को पढ़ना हो तो छठवाँ छोड़कर दूसरा पढ़ना।

उत्तर :-- जाओ, छठवाँ एक छोड़ देना, ये लोग कहे कि पाँचवाँ छोड़ देना, श्वेतांबर, स्थानकवासी। ये पाँचवाँ अध्याय है न? उसमें श्वेतांबर और स्थानकवासी को तो अन्यमति कहा है, वह जैन है ही नहीं। क्योंकि जैनदर्शन से विपरीत बहुत किया है। देव अरिहंत को आहार लेना, अरिहंत को क्षुधा लगना, अरिहंत को रोग होना ऐसा कहा। अरिहंत स्त्री होना, मल्लिनाथ। श्वेतांबर जैन है ही नहीं। वह तो अन्यमति है। ऐसा पंचम अध्याय में टोडरमलजी ने कहा है और यथार्थ कहा है। समझ में आया? सब सुनना धीरे से, हाँ! पोपटभाई के पुत्र को कहता हूँ। पोपटभाई! स्थानकवासी और श्वेतांबर को जैन कहा नहीं, जैन ही नहीं। जिसमें बन्ध अधिकार की अधिकता बताते हैं और आंशिक शुद्धता हो वह तो बात ही नहीं। नहीं, जैन नहीं है। समझ में आया? तो अन्य मत में डालते हैं।

ऐसे कोई पर का कर्ता, परद्रव्य का कर्ता हो वह, जैसे विष्णु की प्रवृत्ति चलती है उसमें उसको जोड़ दो, वह जैन है नहीं। समझ में आया? तो वह कहते हैं, नहीं, टोडरमल का पढ़ना नहीं। वह एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता (ऐसा कहते हैं)।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बहुत ... गड़बड़ करते हैं, सब गड़बड़ करते हैं। वह तो एक उसने बनाया है न? मैना सुंदरी, उसका गीत बनाया है। क्या कहते हैं? भूल गये। नाम आता है न? क्या? पाठ पढ़ लो, उसमें ऐसा होता है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, बस वह। यहाँ कहीं सब थोड़ा याद रहता है। पाया मैना राणी, पूजा का फल पाया मैना राणी, ऐसा उसमें आता है। पूजा का फल प्राप्त किया। अरे.. भगवान! क्या है? ऐसा पूजा का फल रोग मिटे, वह तो उपचार से कथन

किया। उस वक्त पुण्य का उदय था, तो मिटे। महामुनियों को खा जाते हैं, देखो न। संत, पंच महाव्रतधारी महंत संत, महंत तीन कषाय का नाश है। उसकी माता खाती है तो क्या उसमें है? उसमें क्या अपनी वीतरागता चली जाती है? समझ में आया? उसको उतने पुण्य से ब्रह्मचर्य से हो गया, पूजा से हो गया। ये (मुनिराज) तो महा पूजा करने लायक है। स्वयं ही पूजा करने लायक हैं। उसकी पूजा करे, ऐसे तो स्वयं परमेश्वर हैं। पंच परमेष्ठी में परमेश्वर हैं। वह तो पूर्व का पाप-पुण्य का उदय उस अनुसार संयोग बनता है। उसमें स्वभाव को क्या है? स्वभाव में है नहीं। इतना धर्म करे तो उसको रोग मिट जाये, पूजा करे तो ऐसा हो। मैना राणी, पूजा का फल पाया मैना राणी। लक्ष्मीचंदजी! बहुत अच्छा लगे। अपने कुटम्ब में भी ऐसा कोई रोग हो तो भगवान (की पूजा करना)। नहीं मिटेगा तो क्या भगवान को झूठा ठहरायेगा? क्या करना है तुझे? पूर्व के पाप के कारण से ना मिटे तो भगवान झूठे हैं? भगवान तो त्रिकाल सत्य है। तीन काल तीन लोक में अरिहंत सर्वज्ञ परमात्मा परम सत्य, इन्द्रों--सौ इन्द्रों द्वारा पूज्य हैं। तेरा भाव ऐसा हो नहीं और पूर्व का पुण्य न हो तो रोग न मिटे, उसमें क्या हुआ? उससे क्या भगवान झूठे हो जाते हैं?

मुमुक्षु :-- ... पानी से रोग मिटे।

उत्तर :-- हाँ। पानी था। लेकिन भगवान को छूकर पानी था इसलिये (रोग) मिट गया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो बीसपंथी को डालना है न, पंचामृत डालना है न। भाई! रहने दे न। भगवान तो निवृत्तिमय थे, उनको तो एक जलाभिषेक था। ऐसी बात है, सत्य तो ऐसा है। समझ में आया? भगवान को तो... वह तो वीतराग है। जैसा वीतराग था ऐसा बिंब होना चाहिये न? कि दूसरा बिंब होना चाहिये? जैसा मनुष्य का शरीर हो ऐसा दर्पण में प्रतिबिंब उठता है न? कि यहाँ लाल हो और वहाँ सफेद (प्रतिबिंब) उठता है? यहाँ सफेद हो और वहाँ लाल उठता है?

भगवान वीतराग थे, अक्रिय बिंब थे। उसमें कुछ नहीं था। एक पानी से साफ करना (होता है), मैल न हो इसलिये। दूसरी चीज उसमें हो सकती नहीं। शेठी! शेठी भी बीसपंथी है। कहो, समझ में आया? यह तो पहले की बात है। यह तो उसका पुत्र आया न, बदल दिया, पूरे कुटुम्ब को बदल दिया।

'**इसलिये उसके निर्जरा का भी सच्चा श्रद्धान नहीं है।**' एक भी तत्त्व का तेरा ठिकाना नहीं है और तू कहता है कि मैं जैनधर्मी हूँ। जीव का, अजीव का ठिकाना नहीं, आस्रव का ठिकाना नहीं, पुण्य-पाप का ठिकाना नहीं, बन्ध का ठिकाना

नहीं, निर्जरा का ठिकाना नहीं। एक रहा मोक्ष अब। अब एक मोक्ष रहा।

मोक्षतत्त्व तो अरिहंत, सिद्ध का लक्षण है। समझे? वह कहीं डाला है, इसमें कहीं लिखा है, है कहीं पुराने में? मैंने लिखा है, कहीं लिखा है। पीछे डाला है। लाल अक्षर से लिखा है। पीछे आता है वह अलग बात है। वह तो आता है, वह तो मालूम है। तिर्यंच के अधिकार में। देव-गुरु आ जाते हैं अन्दर।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह तो है, वह तो मालूम है। अनुसंधान करके लिखा है, लाल अक्षर से। वह तो आता है, ख्याल में है।

मोक्षतत्त्व तो अरिहंत, सिद्ध का लक्षण है। अब, इसमें कुछ कारण ...क्या? मोक्ष समझते नहीं उसको अरिहंत, सिद्ध का भी भान नहीं है। अरिहंत, सिद्ध की पीछान नहीं, केवलज्ञान की खबर नहीं। जिसको केवलज्ञान क्या है और एक समय में तीन काल तीन लोक सामान्य विशेष सब जानते हैं, उसमें गड़बड़ करते हैं तो वह अरिहंत, सिद्ध को भी जानते नहीं और मोक्ष को भी जानते हैं। इसलिये थोड़ा लिखा होगा ऐसा लगता है। समझ में आया?

धर्म का मूल तो अरिहंत है, उनके वाणी निकली है और भाव था अन्दर से ... तो सर्वज्ञ को ही अभी समझते नहीं। वह कहता है, एक समय में आसा जाने। देखो न, आया है न, कल ही आया है। कल नहीं, पहलेवाले में आया है। आप के सात प्रश्न में बहुत आया है। केवलज्ञान अनादिअनंत जाने कि नहीं? भगवान जाने। और वह छद्मस्थ जाने कि केवली जाने? अरे..! दोनों जाने। सुन न। अनादिअनंत न जाने तो ज्ञान कैसा? स्वयं का आत्मा आदि-अंत रहित है ऐसा ज्ञान न हुआ तो ज्ञान कैसा आया? ... अरे..! चल.. चल। वस्तु तो अनादिअनंत है। केवली को अनादिअनंत में सादिसांत हो जाता है। केवलज्ञान के बहुत घोटाले निकले। क्रमबद्ध बाहर आया, क्रमबद्ध बाहर आया और घोटाला खड़ा हुआ।

कहते हैं कि '**तथा सिद्ध होना उसे मोक्ष मानता है।**' लो। मोक्षतत्त्व की भूल बताते हैं। सिद्ध होना उसे मोक्ष (मानता है)। '**वहाँ जन्म-मरण-रोग-क्लेशादि दुःख दूर हुए अनन्तज्ञान द्वारा लोकालोक का जानना हुआ,...**' लो, यह सिद्ध का लक्षण बाँधते हैं। अहो..! जन्म, जरा, मरण, रोग, क्लेशादि दुःख दूर हुए '**अनंतज्ञान द्वारा लोकालोक का जानना हुआ...**' लोकालोक को जाना, स्वयं कहाँ गया? '**त्रिलोकपूज्यपना हुआ,...**' ओहो..! तीन लोक में पूज्य हुए। '**इत्यादि रूप से उसकी महिमा जानता है।**'

'**सो सर्व जीवों के दुःख दूर करने की, ज्ञेय जानने की, तथा पूज्य होने की इच्छा है।**' ..

समझ में आया? '**सर्व जीवों के दुःख दूर करने की,...**' जन्म, जरा, रोग, क्लेशादि दुःख। '**ज्ञेय जानने की,...**' लोकालोक को जाने वह। '**तथा पूज्य होने की इच्छा है।**' तीनों बात ले ली। '**यदि इन्हीं के अर्थ मोक्ष की इच्छा की...**' इसके लिये मोक्ष की इच्छा की '**तो इसके अन्य जीवों के श्रद्धान से क्या विशेषता हुई?**' तेरी और अन्य जीव की श्रद्धा में कहाँ फ़र्क़ पड़ा? क्या फ़र्क़ हुआ? हम जैन हैं, मोक्षतत्त्व ऐसा मानते हैं। सिद्ध लोकालोक को जानते हैं, त्रिलोकपूज्य हैं, जन्म, जरा, मरण से रहित हो गये हैं। तो वह दुःख दूर करना, पूज्यपना करना, ज्ञेय को जानना इसकी चाह तो सर्व जीवों को है। तो तेरी सर्व जीव से श्रद्धा में क्या फ़र्क़ हुआ? मोक्षतत्त्व की तुझे खबर नहीं है। ईश्वरचंदजी! मोक्ष की बड़ी गड़बड़ कर देते हैं मोक्ष में।

'**तथा इसके ऐसा भी अभिप्राय है...**' देखो! पुनः... मोक्षतत्त्व की दूसरी भूल बताते हैं। '**तथा इसके ऐसा भी अभिप्राय है कि स्वर्ग में सुख है उससे अनन्तगुना सुख मोक्ष में है।**' इन्द्र के सुख से मोक्ष में अनन्तगुना सुख है।

मुमुक्षु :-- ऐसा आता है।

उत्तर :-- आये वह तो उपचार करके आया है। सर्वोत्कृष्ट सुख लोक में दूसरे दिखे नहीं तो देव के सुख का ख्याल करवाकर अनन्तगुना कहे। परन्तु जाति एक है तो अनन्तगुना कहना? वह स्वर्ग का सुख तो जहर है। भगवान आत्मा का सुख तो अनंत आनंदअमृत है। तो जहर से अमृत गुणाकार कहाँ-से होगा? समझ में आया?

'**स्वर्ग में सुख है उससे अनन्तगुना सुख मोक्ष में है।**' बहुत लोग मानते हैं कि नहीं? ओहो..! मोक्ष में सुख इन्द्र से अनन्तगुना। '**सो इस गुणाकार में वह स्वर्ग-मोक्षसुख की एक जाति जानता है...**' स्वर्ग के सुख की जात और मोक्ष के सुख की जात, एक वर्ग, एक प्रथम कक्षा का वर्ग। फिर पाँचसौ नंबर का हो या प्रथम नंबर का हो। '**वहाँ स्वर्ग में तो विषयादिक सामग्रीजनित सुख होता है,...**' वहाँ तो विषयादिक सामग्रीजनित राग का, राग का--जहर का सुख है। पैसेवाले को सुखी कहते हैं न? धूल में भी सुख नहीं है। सामग्री को देखकर कल्पना करता है कि मुझे ... कोई कहता था न? कितनी कमाई? वह तो बहुत कहते थे। एक दिन की तीस हजार की कमाई है। ऐसा कहते थे। पोपटभाई थे न? गये, अभी नहीं है। उनके साले गोवा में रहते हैं न, दशाश्रीमाली हैं। जोरावर (नगर) है न। शांतिलाल। लेकिन पाँच-सात हजार की एक दिन की कमाई होगी ऐसा लगता है। दस-दस लाख का तो वहाँ बँगला है, गोवा में। एक क्रोड़ रूपये का सामान पड़ा है। क्या कहते हैं? कूँआ में से तेल निकालते हैं, क्रोड़पति, वह तो अरबपति कहते थे। पोपटभाई कहते थे, अरबपति तो नहीं होंगे लेकिन बहुत होंगे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, अन्दर से ऐसा निकालते हैं। एक दिन की तीस हजार की कमाई। ओहोहो...! बारह महिने में साठ लाख। ... कमाई। पूरा दिन पैसा बढ़ गया तो लड़का कहता है, यह गाड़ी लेनी है, दूसरा कहे, वह गाड़ी लेनी है, बदल दो, वह कहे, यह लेनी है, ऐसा तकिया लगाना है, ऐसी लकड़ी डालनी है। पूरा दिन लकड़ी में जाता है। पैसा बहुत, दशाश्रीमाली बनिये हाँ अपने। है न जोरावरनगर के? पोपटभाई लिंबडीवाले हैं न? परनाळावाले। ये ..भाई के गाँव के। पोपटभाई, परनाळा के। इनके भाई है न? आप के मामा के पुत्र। शांतिलाल की बात चलती है। कितनी कमाई? पोपटभाई कहते थे, एक दिन की तीस हजार की। एक दिन की। ए.. कुंवरजीभाई! व्यर्थ। होशियार होकर किया है, सब की क़िमत उड़ा देने जैसा है, उसमें कुछ नहीं है। तीस हजार की तो नहीं होगी, लेकिन पाँच-सात हजार की होगी।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- तीस हजार? कितने? बीस हो तो बारह महिने के कितने हो गये? होगी। बीस हजार एक दिन का तो छः लाख महिने का और बहत्तर लाख बारह महिने में। बहत्तर लाख बारह महिने में। होगी, बड़ी कमाई है, बड़े कारखाने हैं। बनिया है लो, अपने दशाश्रीमाली। पाणासणा के हैं। इनके मामा के पुत्र, मामा के पुत्र। धूल में भी सुख नहीं है, ऐसा यहाँ कहना है। वे अभी कहते थे, पूरा दिन पुत्र और पुत्रियाँ, लड़का-लड़की। पैसा बहुत, ऐसा लाओ, ऐसा मकान (करो), इसका ऐसा करो, गाड़ी लाओ, यह लाओ, वह लाओ, पूरा दिन होली जले। शांति अल्प भी नहीं इतने पैसे हुए तो भी। धूल में भी नहीं है। पैसे में कब शांति थी? पोपटभाई! ज्यों-ज्यों पैसा बढ़े त्यों-त्यों लड़के भी ऐसा ही करे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- ... हो गया है।

कहते हैं, वह तो सामग्रजनित कल्पना है स्वर्ग में। सामग्री बहुत मिली उसकी कल्पना है। उसके सुख को तू सिद्ध के सुख के साथ मिलाता है? कहाँ अतीन्द्रिय आनंद अमृत से तरबतर आनंद मुक्ति में और कहाँ जहर का आनन्द। पैसा और धूल, पचास लाख, क्रोड़ पैदा करता हो तो उसमें क्या हुआ? वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिल, उसमें क्या आया? धूल में भी कुछ है नहीं। हम बराबर सँभालते हैं, लो। कुंवरजीभाई! देखो, दूसरे की दुकान ऊड़ गयी, हम ध्यान रखते हैं तो दुकान चलती है। आचार्य कहते हैं कि सब असत्य है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसने कहाँ व्यापार कहाँ किया है? सब बुद्धि समझने जैसी है। वह तो होने के काल में होता रहता है। कहा न? बनिये का नहीं कहा? एक दिन में, एक महिने में पचास लाख। पारेख, नहीं? कहाँ गये अमृतलालभाई? ये रहे, उनके साले केशवलाल पारेख, एक महिने में पचास लाख। वह तो धूल में पूर्व के पुण्य के रजकण हो तो आ जाये। उसमें आया क्या? तुझे कहाँ शांति और धर्म है? पैसा खर्च करेंगे तो धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं है, सुन तो सही। वह तो राग मंद करे तो पुण्य हो। बाकी धर्म-बर्म कैसा उसमें?

तो कहते हैं कि स्वर्ग का सुख तो सामग्रीजनित है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। समझ में आया? सामग्रीजनित है न? सामग्रीजनित। आत्मजनित नहीं। वह तो सामग्री देखकर ऐसी कल्पना, कल्पना, कल्पना (करे कि), ऐसा करूँ, घर की गाडी बनाओ, साठ लाख की एक बनाओ। साठ लाख की गाड़ी, दुनिया में हिन्दुस्तान में न हो ऐसी एक गाड़ी बनाओ। क्या करना है? पैये अलग, फलाना अलग, ढिकना अलग... ऐसी सामग्री की कल्पना, होली जलती है और दुःखी है।

'**उसकी जाति इसे भासित होती है,...**' स्वर्ग के सुख की जात मोक्ष में भासित होती है '**परन्तु मोक्ष में विषयादिक सामग्री है नहीं,...**' मोक्ष में तो कहीं विषयसामग्री नहीं है।

मुमुक्षु :-- पैसा भी नहीं है।

उत्तर :-- पैसा भी नहीं है और आहार का कण भी नहीं है। रहने को मकान भी नहीं है। लाड़ी, गाड़ी, वाड़ी, घोड़ी वहाँ कुछ नहीं है। सिद्ध में लाड़ी नहीं, वाड़ी नहीं, गाड़ी नहीं, घोड़ी नहीं। पहले गाड़ी थी न? गाड़ी कहते हैं न? कार, कार कहते हैं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो अतीन्द्रिय आनंद का सुख है, पर का क्या आया? भगवान आनंदकंद का पर्वत है उसमें से निकालकर आनंद की अनंती पर्याय निराकुल शांतरस जिसके अनंद की गंध इन्द्र के इन्द्रासन में नहीं ऐसा। कहाँ आत्मा का सुख और कहाँ स्वर्ग का सामग्रीजनित सुख, दोनों की एक जाति माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। उसको मोक्ष के सुख का पत्ता नहीं। क्या मोक्ष का सुख है, मालूम नहीं, लो। समझ में आया? कहाँ सुख है? धूल भी नहीं है। बहुत पैसा हो जाये तो लड़के भी माने नहीं। पोपटभाई! हाँ, फिर कहे कि, आप पुराने गर्भश्रीमंत नहीं हैं, हम गर्भश्रीमंत आये हैं। आप ज्यादा बोलना नहीं, बापू! आप तो पहले साधारण थे और हम पाँच-दस लाख में आये, गर्भश्रीमंत आये हैं, उसके अनुसार सामग्री चाहिये। ठीक भाई!

हाँ, हाँ, ऐसा होता है। बना है उसकी बात चलती है। एक जन कहता था, कहा न। लड़का बारह साल का था। गृहस्थ के यहाँ जन्म हुआ था। दस लाख रुपया, पचास-साठ पहले की बात है। उसका बाप पैसा नहीं भेजता था। पुना में पढ़ता था, दशाश्रीमाली बनिये का लड़का पुना में पढ़ता था। पैसा नहीं भेजते थे तो कहा, बापू! चाचा साथ में है उनको जचे नहीं तो एक महिने का दोसौ रूपया जेबखर्च के चाहिये। लिखकर भेजना, अपने खाते में लिखकर। मैंने गरीब के घर जन्म नहीं लिया है, ऐसा लिखा था। हमें तो बहुतों की बात मालूम है, बहुत की मालूम होती है। हम घोड़ागाड़ी के घर में जन्मे हैं। उसमें जन्म लिया है, गरीब के घर नहीं। उस वक्त तो लक्ष्मी रोकड़ थी न। वह हम उठाते हैं। उस वक्त पैसा चांदी में थे न। लाख, दो लाख आते थे, सौ-सौ हजार की थैली आती थी न, एक-एक हजार की सौ थैलियाँ। जहाँ रखनी हो कोई कमरे में, वहाँ मजदूर न ले जाय, घर के सदस्य को बुलाये। मजदूर कुछ हद तक ले जाये, बाहर तक। दो सौ, तीन सौ थैलियाँ आयी हो। एक-एक थैली हजार की हो, तीन लाख। लड़के को बुलाये उठाने। उस वक्त हमारी कमर टूटती हैं, उसे जब अन्दर ले जाना हो तब। और आप कहते हो कि एक महिने का... यह तो पहले की बात है, चालीस साल पहले की। पैसा चाहिये, एक महिने का दो सौ रूपये का खर्च चाहियेगा। खाने-पीने का बात अलग, जेबखर्ची के दो सौ रूपये एक महिने का चाहिये। ना कह नहीं सकते। पोपटभाई! सत्य बात है न।

'**सो वहाँ के सुख की जाति इसे भासित तो नहीं होती;...**' अतीन्द्रिय आत्मा का सुख तो भासित होता नहीं। ओहो..! अन्दर आनंद.. आनंद.. आनंद... क्या है अतीन्द्रिय, यह सम्यग्दर्शन बिना उसकी तो खबर है नहीं, तो लगा दे सामग्री का सुख और सिद्ध का सुख एक जाति का। सुख की जाति भासित नहीं होती। '**परन्तु महान पुरुष स्वर्ग से भी मोक्ष को उत्तम कहते हैं...**' महापुरुष कहते हैं कि स्वर्ग से मोक्ष उत्तम है '**इसलिये यह भी उत्तम मानता है। जैसे कोई गायन का स्वरूप न पहिचाने, परन्तु सभा के सर्व लोग सराहना करतके हैं इसलिये आप भी सराहना करता है।**' सब हँसते हों और दो साल का लड़का बैठा हो तो वह हँसता है, क्यों? भले ही हमें मालूम नहीं हो। हँसे, माँ-बाप हँसते हो तो वह भी हँसता है। लेकिन क्यों? हम तो कारण जानते हैं कि इसमें कुछ विस्मयता है। वह कहे, आप हँसते हो तो मैं भी हँसता हूँ। समझ में आया? ऐसे सिद्ध के सुख की जाति मालूम नहीं है, महापुरुष कहते हैं कि मोक्ष में महासुख है। हम भी कहते हैं कि महासुख है। तुझे महासुख सिद्ध का मालूम नहीं है। रागरहित,

विकल्परहित, सामग्रीरहित, मनरहित, वाणीरहित, देहातीत ऐसा, आत्मा के आनंद में से जो पावर फटकर जो पर्याय निकली... पूर्णानंद.. पूर्णानंद.. उसके आनन्द की तुलना कहाँ दूसरे के साथ? ऐसा मोक्ष जाने नहीं और स्वर्ग के साथ मिला दे तो वह मिथ्यादृष्टि है, उसे मोक्षतत्त्व की खबर नहीं है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**बुधवार, दि. १५-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ७**

सातवाँ अध्याय चलता है। उसमें क्या अधिकार (है)? सेठाई का, अरबोपति का जो सुख है वह तो सामग्रीजनित (है)। वह पहले कल आ गया है। सामग्रीजनित सुख है, पहले आ गया है। क्या कहते हैं? इन्द्र को सुख है वह सामग्री (जनित है)। पूर्व का जो पुण्यबन्ध था (उसके फलस्वरूप है)। ... सामग्री तरफ झुकाव हुआ, हम सुखी हैं ऐसी कल्पना की वह जहर है, राग है, दुःख है। समझ में आया? इन्द्र का सुख और अरबोपति का सुख या बड़े राजा-महाराजा का सुख, उससे सिद्ध परमात्मा अथवा मोक्ष का सुख अनन्तगुना तुम कहता है (तो) तेरी बड़ी विपर्यासबुद्धि है। क्योंकि संसार का पुण्य का सुख जो है वह सामग्रीजनित पूर्व का पुण्य है वह फला (तो) यह धूल मिली। पाँच-पचास लाख, क्रोड़, पाँच करोड़, दस करोड़ (मिले)। समझ में आया? धूल.. धूल। बराबर है? धूल मिली तुझे और उस धूल में इन्द्र भी, हमें सुख है, हमें उसमें आनन्द है, इस प्रकार राग के सुख की कल्पना में वह आनन्द मानता है।

और मोक्ष का सुख राग नहीं। मोक्ष का सुख तो आत्मा का आनन्द, जैसे चना होता है, कच्चा चना, कच्चा चना होता है न? हमारे बनिये में कहते हैं, डाळिया थया कांई शुक्रवारिया? ऐसा कहे, शुक्रवार हो तब। चने में, जना जब पक्का होता

है... समझ में आया? तब चना में जो मीठास है वह बाहर प्रगट होती है। बराबर है? क्या कहा? यह कच्चा चना है न, कच्चा चना? चना है तो वावो.. वावो को क्या कहते हैं? बोना। आप की हिन्दी भाषा पूरी नहीं आती है। यदि चना को बोवे तो ऊग जाये, खावे तो तुरा लगे, तुरा लगे, कसायेला लगे लेकिन उसको एक बार सेक दे (तो) बोवे तो ऊगे नहीं और तुरास का नाश होकर चना में जो मीठास का स्वाद पड़ा है वह प्रगट होता है। समझ में आया? वह मीठास अन्दर में पड़ी है। वह अग्नि से नहीं आयी। रेती में भुँजन किया उससे स्वाद नहीं आया। उससे स्वादा आता हो तो कँकर, कोयला को सेक डाले, यदि (उसमें से) स्वाद आता हो तो। उसमें स्वाद है ही नहीं। चना में तो अन्दर स्वाद पड़ा है वह अंतर में शक्ति है, वह जहाँ जलाया (तो) तुरास का नाश हुआ, स्वाद प्रगट हुआ, बोवे तो ऊगे नहीं, आनंद दे। यह दृष्टान्त (हुआ)। अब, आत्मा पर सिद्धांत। समझ में आया?

ऐसे भगवान आत्मा अपने में अन्दर आनंद पड़ा है, आनंद आत्मा में है, जैसा चना में स्वाद है ऐसे आत्मा में आनंद पड़ा है। भगवान जाने आनंद कहाँ होगा? उस आनंद में अज्ञान के कारण, मैं आनंद नहीं, मुझे तो यह पुण्य-पाप का फल, सामग्री, इन्द्र और इन्द्रासान, वैकुंठ, स्वर्गादि का भव (हो) उसमें हमें आनंद है। तो कहते हैं कि वह तो राग की जात है, जहर की जात है। स्वर्ग का सुख तो राग की, कषाय की, मिलनता की जात है, उससे तू मोक्ष का सुख अनन्तगुना कहता है तो उस जात से अनन्तगुना जहर आया। समझ में आया? एक बिन्दु जहर, अनन्तगुना जहर, गुणाकार करे तो जहर से अनन्तगुना जहर का गंज आता है। उसमें कोई अमृत आता नहीं। ऐसे इन्द्र की इन्द्राणी का सुख और.. यहाँ तो कहाँ ऐसे कोई राजा ही है।

इन्द्र, महाराजा, चक्रवर्ती और वासुदेव, बलदेव तीर्थंकर के समय में होते थे। इतनी सामग्री, कहते हैं कि उस सामग्रीजन्य जो राग आया उसमें विकारी सुख मानता है, उससे अनन्तगुना मोक्ष में सुख है, ऐसा माननेवाला मूढ है। क्योंकि वह राग की जात है और मोक्ष में सुख तो आत्मा का आनन्द है। अंतर आनन्द आत्मा है, उसकी एकाग्रता करके आत्मा की प्रतीति करते हैं कि मैं तो आनन्द शांतरस का कंद हूँ। मैं शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, कुटुम्ब नहीं, पुण्य-पाप का फल मैं नहीं। और मेरी दशा में वर्तमान शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप भाव होता है वह भी मैं नहीं। मैं होऊँ तो मेरे से छूटा पड़े नहीं और छूटा पड़ता है वह मैं चीज नहीं। समझ में आया? मैं तो आत्मा अखण्ड आनन्द, सच्चिदानंद, निर्मलानंद प्रभु (हूँ)। मेरी पर्याय नाम हालत में दया, दान, व्रत, जप, तप की वृत्ति उठती है वह भी राग है। वह

पुण्यबन्ध का कारण है। उस पुण्यबन्ध से धूल मिलती है। आत्मा का लाभ उससे किंचित् होता नहीं। समझ में आया? बहुत कठिन बात है।

एक बार मैंने कहा था न? कौन-सा गाँव कहा? तोरी, तोरी। तोरी में हम गये थे। दो साल हुए। (संवत) २०१६की साल। लोग बहुत आये न, नाम प्रसिद्ध तो है न। चारों ओर से बगसरा और सेठ लोग आये थे। नरभेरामभाई इत्यादि आये थे। खचाखच लोग थे। व्याख्यान तो हुआ कि आत्मा में आनन्द है। अध्यात्मदृष्टि किये बिना पुण्य-पाप के भाव में लाभ माननेवाला मिथ्यादृष्टि है, मूढ है। उसे धर्म होता नहीं। रात्रि को खेती करनेवाले कणबी होते हैं न? कणबी कहते हैं? किसान। किसान को खबर पड़ी, स्वामीनारायण (माननेवाले) किसान को। गाँव में बहुत घर है। तोरी.. तोरी, २०१६ की साल। उनको मालूम पड़ा कि, एक महाराज आत्मा की बात करते हैं। महाराज! हम तो जंगल में थे। आप की बात तो हो गयी। अब? एक पुस्तक लेकर आये। अगाधगति नाम का पुस्तक उसके पास था। किसान बहुत, बहुत किसान। उसमें पढ़ते-पढ़ते उसे समझ में नहीं आता था कि यह क्या है? उसमें ऐसा लिखा था... कहा, पढ़िये, हमने तो कभी वह पुस्तक पढ़ा नहीं है। तत्त्व क्या है यह आप पढ़ो तो हमें मालूम पड़े।

अगाधगति नाम का पुस्तक, उसमें ऐसा लिखा था... तोरी नहीं? तोरीवाले नहीं रहते हैं? तोरावाले ताराचंदभाई वहाँ मुंबई में रहते हैं न? ताराचंदभाई न? तोरी के है न? हमारे कुंवरजीभाई के समधी ताराचंदभाई, तोरी(वाले) उनका गाँव। उनके मकान में ही हमने आहार किया था, दो साल हुए। उसमें ऐसा लिखा था कि, कोई भी प्राणी जप, तप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, सेवा ऐसे बहुत बोल थे, उसे करनेवाले को यहाँ संसार मिलेगा। धर्म-बर्म होगा नहीं, उसको मोक्ष होगा नहीं। लक्ष्मीचंदजी! ऐसा उसके ग्रंथ में निकला। वह तो बेचारे दिन में आ सके नहीं, रात्रि में सब मिलकर आये, पुस्तक लेकर। अगाधगति, अगाधगति। अरे..! आत्मा! तेरी गति कोई अगाध है। समझ में आया? ऐसा बहुत लिखा था। इतने सारे शब्द थे। व्रत पालो, दया पालो, अहिंसा पालो, तप करो, उपवास करो, जाप करो, भगवान का स्मरण करो, गुणग्राम करो, दान दो, भक्ति-पूजा, यात्रा करो, इन सब का फल संसार में रुलने का है। उसका (फल) यहाँ है, ऐसा उसमें पाठ था। उसका फल यहाँ है। धूल मिलेगी यहाँ की सामग्री। वाड़ीभाई! देखो भाई! हमने जो दोपहर को कहा था वह उसमें निकला, देखो!

दोपहर को हमारा व्याख्यान था, वह तुम्हारे पुस्तक में निकला। देखो तो सही, क्या चीज है। मालूम नहीं, मालूम नहीं। वह तो ओघे-ओघे जिस संप्रदाय में जन्मा

उसमें जो कहा वह सच्चा और ऐसे ही गप्प मारे तो भी माने सच्चा, जिंदगी चली जाये। अनंत-अनंत काल में... उसमें तो बहुत लिखा है, यहाँ फलेगा, यहाँ फलेगा, यहाँ फलेगा। उसमें मुक्ति-बुक्ति है नहीं। आहाहा..! समझ में आया? ...लालजी! ऐसा लिखा था। अगाधगति। अरे.. आत्मा! तेरी तो कोई अगाधगति है। दया, दान के विकल्प की वृत्ति से कोई धर्म मानता है और मनाता है, वह सब आत्मा के न्याय से लूटनेवाले हैं। समझ में आया? प्राणभाई! बहुत कठिन भाई! पूरा जगत तो उसे धर्म माने।

मुमुक्षु :-- जगत माने, ज्ञानी न माने।

उत्तर :-- ज्ञानी न माने एक। धर्मीजीव सम्यग्दृष्टि उसे धर्म न माने। जैसा पापबन्ध है--हिंसा, जूठ, चोरी, विषय, कमाना.. क्या होगा यह? ये आप का कमाने का भाव पाप होगा या पुण्य? लेकिन आप लड़के के लिये कमाते हो, तुम्हारे लिये? पाप। जितना कमाने का भाव है (वह) पाप और फले वह पैसा पूर्व के पुण्य का फल। वर्तमान पाप की नयी लोन ले, नयी, वह भविष्य में पाप भोगेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- कोई व्यापार नहीं कर सकेगा।

उत्तर :-- कौन करता था? अज्ञानी दुकान पर बैठा-बैठा राग और द्वेष करे, बाकी तीसरी कोई चीज वह कर नहीं सकता। कुंवरजीभाई! वह तो कल कुंवरजीभाई को याद दिलाया था। शुभ और अशुभ भाव, दो के सिवा तीसरा उसने अनंत काल में कभी किया नहीं। जड़ की क्रिया शरीर हिलाना आदि आत्मा कर सके ऐसा तीन काल में नहीं है। मरते वक्त देह ऐसा हो जाता है। भाई! कुछ बोलो। कौन बोले? यह तो जड़ है, यह तो मिट्टी है, धूल है। आत्मा तो सच्चिदानंद अरूपी ज्ञानघन भिन्न तत्त्व है। उस तत्त्व की खबर बिना, हमने किया, शरीर का किया, कुटुम्ब का किया, ज्ञाति का किया, धंधा बहुत किया, ऐसा-ऐसा करके हमने पाँच-पचास करोड़ इकट्ठा किया। मूढ! तेरी मान्यता में बड़ी विपरीतता है। बाहर से मिलता है वह तो पूर्व का पुण्य पड़ा हो (उससे मिलता है)। हुन्नर करो हज़ार, भाग्य बिन मिले न कोड़ी। लाख तेरा हुन्नर कर, पूर्व का पुण्य सत्ता.... हाँ, पूर्व में कोई शुभभाव किया हो, दया, दान का, व्रत का कोई शुभभाव किया हो तो पुण्यबन्धन हो जाये और पुण्यबन्धन के पाक के काल में सोगठी गोठवाजय जाय। सोगठी समझते हो? नहीं समझते? पासा खेलते हैं न? भैंस, गाय सोगठी रखते हैं कि नहीं? समझ में आया? पोपटभाई! समझ में आया? यह हमारी गुजराती भाषा है। समझ में आता है कुछ? कहते हैं कि पूर्व पुण्य का फल। सुखड़ी का ... करते हैं न?

मुमुक्षु :-- पहले करते थे, अब गया।

उत्तर :-- अब गया? हमने तो वह देखा था, भाई! सुखड़ी का तह करते हैं।

मृत्यु के बाद भोज करना हो, वृद्ध सदस्य चल बसे हो तो सुखड़ी (बनाकर खिलाये)। जैसा सुखड़ी का तह आये वह खाना। कच्चा आये तो कच्चा और पक्का आये तो पक्का और लाल हो जाये, सुखड़ी थोड़ी लाल भी हो जाती है, दलदार हो, दो तसु, तीन तसु दलदार आये वह खाना। ऐसे पूर्व का पुण्य और पाप का जैसा भाव किया हो उतना परमाणु कर्म का दल की सुखड़ी पड़ी है, उसके पाक के काल में जो आया वह लेना, मिला। वह उसको मिला नहीं। उसके पास चीज आयी। यह मानता है कि मुझे मिला। वह उसने ममता की। वह चीज तो चीज में रही। वह चीज यहाँ आती नहीं और यह वहाँ घुस जाता नहीं।

अनादि काल से पुण्य का परिणाम, उसका फल, हमको धर्म होगा ऐसी मान्यतावाले को आचार्यदेव कहते हैं कि, इन्द्र के सुख से सिद्ध का मोक्ष का सुख तूने अनंतगुना माना। तेरी जात में फ़र्क़ है तो तेरी मान्यता में भी फ़र्क़ है। जिस कारण से पुण्यबन्ध हो, उस कारण से धर्म हो, ऐसी तेरी मान्यता तो, इन्द्र के सुख से मोक्ष का सुख अनन्तगुना जाति से मान रखा है। यह तेरी मान्यता में बड़ी आठ पानशेरी की भूल है। आठ पानशेरी समझते हो? मण में मण की भूल। मण में मण की भूल। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य वह बात कहते हैं, भगवान! तेरे संसार की सामग्री का फल, उसको तू अनन्तगुना मोक्ष का सुख मानता है, तेरी बड़ी मिथ्याश्रद्धा है। अज्ञान पाखंड तेरी दृष्टि में है। हमने ऐसा क्यों नहीं जाना? देखो, यहाँ कहते हैं न? '**शास्त्र में भी तो इन्द्रादिक से अनन्तगुना सुख सिद्धों के प्ररूपित किया है।**' शिष्य ने प्रश्न किया, हम क्या कहते हैं, हम तो कहते हैं लेकिन शास्त्र ऐसा कहते हैं, ऐसा शिष्य प्रश्न करता है। देखो है न? '**इन्द्रादिक से अनन्तगुना सुख सिद्धों के प्ररूपित किया है।**' मोक्ष, सिद्ध यानी मोक्ष। परमात्मदशा जो हो। जैसे उस चनामें से पूर्ण मीठास प्रगट हो बाद में ऊगता नहीं। ऐसे आत्मा का आनन्द अन्दरमें से अनुभव करके पुण्य-पाप का राग से हटकर अपना चैतन्य भगवान आनन्दकंद (है), ऐसी दृष्टि और अनुभव करते-करते पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति होती है। वहाँ अब थोड़ा दुःख या राग या संसार में अवतरना वह परमात्मदशा में होता नहीं।

शिष्य कहता है, महाराज! हमारा आप निषेध करते हो कि स्वर्ग के सुख से अनन्तगुना सुख हम मोक्ष में माने तो हम मूढ है, हमारी दृष्टि विपरीत कहते हो। लेकिन हम तो शास्त्र में लिखा आप को बताते हैं। समझ में आया? '**शास्त्र में भी तो इन्द्रादिक...**' इन्द्रादि आदि माने राजा, महाराजा, अरबोपति खमा खमा होता हो न? एक-एक दिन की पचास-पचास हजार की कमाई। आहा..! मैं चौड़ा और

गली सँकड़ी। कुंवरजीभाई! आहाहा..! क्या है आहाहा..? ऐसी धूल तो अनन्त बार मिली है और उसके कारणरूप पुण्यभाव भी तू अनन्त बार कर चुका है। लेकिन आत्मा क्या है उसकी पीछान कभी एक सेकण्ड भी नहीं की। 'जे स्वरूप समज्या विना' श्रीमद् कहते हैं न? श्रीमद् राजचंद्र, पहले श्लोक में। २९ वर्ष की आयु में उसने १४२ श्लोक बनाये। उसको जातिस्मरण तो सात वर्ष से था।

श्रीमद् राजचंद्र ववाणिया के दशाश्रिमाली वणिक थे। उनका संवत १९२४ में जन्म हुआ था और संवत १९३१ में सात वर्ष की उम्र में पूर्व भव का भान था। जातिस्मरण––इस भव के पहले मैं क्या था, वह (स्मरण) आ गया। फिर सोहल वर्ष उम्र में एक 'मोक्षमाळा' बनायी। सोलह वर्ष, दस और छः। १०८ पाठ बनाकर नाम (दिया), मोक्षमाळा। माला में १०८ मणका होता है न? १०८ मणका। १०८ पाठ बनाकर मोक्षमाळा बनायी।

बाद में ... 'बहु पुण्य केरा पुंजथी शुभदेह मानवनो मळ्यो, तोये अरे.. भवचक्रनो आंटो नहीं एक्के टळ्यो।' आत्मा का सुख क्या है, मालूम नहीं। 'सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे लेश ए लक्षे लहो, क्षण–क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो।' क्या कहते हैं? क्षण–क्षण में तुझे पुण्य और पाप का भाव उत्पन्न होता है वह मेरी चीज है और मुझे लाभदायक है ऐसी मान्यतावाले का आत्मा का आनन्द लूट जाता है। आत्मा का आनन्द लूटता है। आत्मसिद्धि.. समझ में आया? आत्मसिद्धि की शुरूआत की २९ वर्ष में।

'जे स्वरूप समज्या विना पाम्यो दुःख अनंत, समजाव्युं ते पद नमुं श्री सद्गुरु भगवंत'। पहला श्लोक यह बनाया, ऐसा करते हुए डेढ़ घण्टे में १४२ श्लोक बनाये। समझ में आया? कहते हैं कि अनन्त काल में तूने, आत्मा प्रभु सच्चिदानंद आनंदकंद क्या है, अपना आत्मा में आनंदरस पड़ा है और शुभ और अशुभ दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव में दुःख है। आहाहा..! समझ में आया? जगत से तो निराली चीज है। अनंत–अनंत काल से परिभ्रमण किया, कभी उसने आत्मा की चीज क्या, एक सेकण्ड पीछानी नहीं। एक सेकण्ड भी पीछाने (तो), जैसे पर्वत में बड़ी बिजली गिरने से दो टूकड़े हो जाये, वह टूकड़े फिर मिलते नहीं। रेण देने से, रेण समझते हो? क्या कहते हैं? संधि मारते हैं न? बिजली के कारण दो टूकड़े हो जाये तो जोड़ने से वापस जुड़ते हैं?

ऐसे भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के राग से रहित मेरी चीज अन्दर भिन्न है, एक सेकण्ड भी सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, उसको जन्म–मरण का अंत आता है। समझ में आया? और उसके बिना अनन्त बैर 'यम नियम संयम आप कियो,

पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो'। 'यम नियम संयम त्याग कियो, यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लह्यो, मुख मौन रह्यो,' मुख मौन रह्यो। 'जप भेद जपे तप त्यों ही तपे, सबसे उदासी लही सबपै' सब से उदास। सब त्याग (किया)। अरे...! लेकिन तेरा आत्मा क्या उसे एक समय पीछाना नहीं। ऐसी क्रियाकांड अनंत बैर की, जिसमें अज्ञानी ने धर्म माना और मनाया, मनाया (कि) तुझे धर्म होगा, धीरे-धीरे होगा। दुकान छोड़कर बैठे हो तो तुमको धर्म है। धूल में भी नहीं है, सुन तो सही। दुकान छोड़ी ही नहीं है तुने। अन्दर में एक राग का कण शुभ आये उसको भला मानना, वह अनंती कसायखाना की दुकान चलाता है। समझ में आया? कठिन बात है कठिन। जगत को जन्म-मरण रहित की क्या चीज है वह सुनने में आयी नहीं, तो श्रद्धा कहाँ-से आये? ज्ञान तो कहाँ-से हो? और चारित्र तो कहाँ रहा? वह तो आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में आनंद में लीन होना उसका नाम चारित्र है। बाहर की क्रियाकांड को भगवान चारित्र कहते नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, आत्मा के स्वरूप का भान नहीं (हुआ तो) 'पाम्यो दुःख अनंत'। ऐसा नहीं कहा कि फलानी क्रिया पुण्य की नहीं करी, इसलिये 'पाम्यो दुःख अनंत'। समझ में आया? अरे.. भगवान! तुझे मालूम नहीं। तुम तो अनादि का है, अनादि... अनादि.. अनादि... आदि नहीं, कब से? कब से? कब से क्या? अनादि का है।

मुमुक्षु :-- केवली..

उत्तर :-- केवली भी अनादि देखते हैं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा भी आत्मा को अनादि देखते हैं। आदि नहीं। है, है और है। जो चीज न हो, 'नाशतो विद्यते भावो'। न हो वह नयी होती नहीं, हो वह पुरानी पलटकर बदले परन्तु नाश नहीं होता। रूपांतर हो, नाश होता नहीं। अनादि काल से आत्मा और परमाणु यह मिट्टी, यह जड़ जड़ मिट्टी जड़, पैसा जड़, दाल-चावल जड़, मिट्टी जड़, शरीर की चमडी खुन सुन्दर दिखे वह मिट्टी मांस की हड्डियाँ जड़। अनादि चैतन्य और जड़ अनादि तत्त्व है, वह कोई नया है नहीं। ऐसा आत्मा अनादि का चौरासी के परिभ्रमण में भटका और उसने पुण्य-पाप के फल में, पाप के फल में तो थोड़ा उसको ठीक लगे कि आहा..! पाप तो बहुत खराब, हाँ! उससे नर्क मिले, तिर्यंच योनि मिले, यह पशु योनि मिले। पुण्य से तो ... पोपटभाई! दान में पाँच-पचास खर्च करे तो? कुछ भी धर्म का प्रथम स्थान मिले की नहीं? समझ में आया? अरे..! तेरे पाँच-पचास लाख क्या, पचास क्रोड़ हो और शरीर भी बेच दे न। धर्म उसमें किंचित् नहीं है। आहाहा..! वह तो पुण्य परिणाम, उस क्रिया को अज्ञानी धर्म मानता है और उससे अनन्तगुना

मोक्ष में (सुख मानता है)।

तो आचार्य कहते हैं, सुन! हमने शास्त्र में इन्द्र के सुख की अपेक्षा मोक्ष का सुख जो अनन्तगुना कहा, उसमें हमारा क्या आशय है वह तू सुन। मोक्ष का सुख और स्वर्ग के सुख की जात एक नहीं, एक नहीं। जहर और अमृत की जात एक नहीं। संसार का सुख तो जहर, ज़हर और ज़हर (है)। ज़हर का कटोरा।

मुमुक्षु :-- ज़हर में मज़ा आता है उसका क्या?

उत्तर :-- मज़ा आये वह तो हरखसनेपात... वह तो एक बार दृष्टान्त कहा था न? एक बच्चा हो, साल-डेढ साल का। गरमी का धूप होता है न? ज्येष्ठ महिने की बहुत गरमी। उसकी माँ को मालूम न हो तो दूध बहुत पिलाया हो तो टट्टी हो जाती है। टट्टी बहुत पतली होती है। देखा है कभी? हमने तो सब देखा है। पतली टट्टी में हाथ डालकर (चाटे)। ठण्डा लगे न, गरमी बहुत होने के कारण हाथ डाले। वह चाटे। धन्नालालजी! यह दशा संसार की है। आत्मा की पर्याय में--दशा में पुण्य और पाप दोनों भाव विष्टा है। समझ में आया? माने कहाँ-से? कभी समझ की नहीं। आहाहा..! मज़ा, मज़ा, मज़ा वह लड़के को टट्टी का स्वाद आता है, ऐसी मज़ा संसार के पुण्य के फल में है। प्राणभाई! सत्य होगा यह? आप के पिताजी पैसा छोड़ गये हैं, बहुत लाख। तो उसको सुख होगा कि नहीं? बहुत लोग ऐसा कहते हैं, बहुत सुखी है।

मुमुक्षु :-- जन्म से सुखी है।

उत्तर :-- जन्म से सुखी ऐसा कहते हैं। उनके पिताजी छोड़ गये हैं, पंद्रह लाख जितना। सुखी होगा कि नहीं? धूल में भी नहीं है, सुन न अब। ए.. पोपटभाई! ये सब मक्खन लगाये, हाँ! पैसेवाले को। नानालालभाई थे न? नानालालभाई है न? नानालाल कालीदास। बेचरदास कालीदास अभी चल बसे न? उनके समधी एक बार यहाँ आये थे। समधी आये (और कहने लगे), अहो..! हमारे समधी बहुत सुखी हैं। वढ़वाण के थे, वढ़वाण के। चुडगर, चुडगर लो। चुडगर आये और कहा, हमारे समधी बहुत सुखी हैं। सुखी की व्याख्या, क्या कहा? सुखी की व्याख्या, क्रोड़पति है इसलिये? जसाणी करोड़पति है और पाँच-सात लाख की कमाई है इसलिये? कौन कहता है सुखी? हें? धूल में भी सुखी नहीं है। गाड़ी चड़ी है सर पर। वह गाड़ी में नहीं बैठा है, उसको निभाने की तृष्णा, निभाने की तृष्णा और उसकी इज्जत अनुसार रखने की तृष्णा उसके पर घोड़ा चढ़कर बैठा है।

मुमुक्षु :-- वह कहाँ मोटर में बैठे हैं।

उत्तर :-- वह कहाँ मोटर में बैठा है, वह तो उसमें बैठा है। बापू! सुख-

बुख धूल में नहीं है। क्रोड़पति भी सुखी नहीं है और अरबपति भी सुखी नहीं है। वह, इस लड़के की भाँति विष्टा (चाटता है)। वह विष्टा है। शास्त्रकार, सूकर को विष्टा का आहार होता है, ऐसा दृष्टान्त दिया है। वह विष्टा, मनुष्य का त्याग किया हुआ ख़ुराक है।

ऐसे ज्ञानी ने पुण्य का फल और पुण्य, विष्टा गिनकर श्रद्धा-ज्ञानमें से निकाल दिया है। ऐसा पुण्य का फल सूकर जैसा मिथ्यादृष्टि, लक्ष्मी में मज़ा सूकर की भाँति मानता है। समझ में आया? मनुष्य अनाज खाता है। लोथा, बाजरा और ज्वार का दाना। उसमें से विष्टा निकली वह सूकर खाता है। आचार्यदेव दृष्टान्त देते हैं, अरे.. भगवान! एक बार सुन तो सही। तूने तेरी चीज और विकार क्या, यह तूने कभी सुना ही नहीं। अनंत काल में त्यागी हुआ, भोगी हुआ, अरबोपति हुआ। अनादि का आत्मा है, कहाँ पहली बार का है। अनंत बार अरबोपति हुआ, अनंत बार जैन साधु हुआ, अनंत बार। समझ में आया? लेकिन तेरा आत्मा और अन्दर में पुण्य परिणाम क्या है, उसका भेदज्ञान कभी एक सेकण्ड भी किया नहीं। चार गति में रुला और परिभ्रमण किया। कहते हैं, मनुष्य का ख़ुराक तो अनाज (है)। उसके ख़ुराक की विष्टा (बनी) वह सूकर की ख़ुराक।

ऐसे भगवान आत्मा सम्यक्‌ज्ञानी अंतरदृष्टि हुआ, अरे..! मैं तो आनंद हूँ, मेरी वर्तमान दशा में पुण्यभाव जो उत्पन्न होता है, दया, दान, व्रत, वह तो विष्टा समान निकाल देने की चीज है। उस निकालने की चीज को सूकर जैसा मिथ्यादृष्टि, उसमें धर्म माने और मनाते हैं उसको सूकर की उपमा आचार्य देते हैं। उनको कहाँ चंदा इकट्ठा करना है किसी से कि अच्छा लगेगा या नहीं लगेगा? पैसेवाले को चंदा इकट्ठा करना हो कि इसमें पाँच हजार भरना, दो हजार भरना। भरे, ना भरे (उसके घर रहा), यहाँ कहाँ काम है। आचार्य सत्य बात जगत समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा..! अरबोपति सूकर जैसा। भाव.. भाव।

भगवान! तेरी चीज तो आनंद है न। उसकी तो तूने कभी प्रतीत की नहीं। और पुण्य के फल में ज्यादा से ज्यादा पाप का फल नहीं। खराब, खराब (जाना) लेकिन पुण्य के बन्धन को तूने भला माना। तो बन्धन को भला माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। ऐसी श्रद्धा अनंत काल में एक सेकण्ड भी की नहीं। ज्ञानी द्वारा निकाली गयी विष्टा... स्वाद लेता है, स्वाद। अभी हमें बादशाही है। ऐसे बैठा हो, मानो चक्रवर्ती बैठा हो! पाँच-पच्चीस लाख मिले हो और कुटुम्ब-कबीला आज्ञांकित कुटम्ब इकट्ठा होकर बैठा हो, क्या है? अभी हमें बादशाही है। किसकी? दुःख की। वह नहीं बोले दुःख की हाँ! कहे? भान ही नहीं है। सनेपातिया.. सनेपात कहते हैं न? क्या कहते हैं? वात,

पित्त और कफ होता है न? खड़-खड़ हँसता है, खड़-खड़ हँसता है। साथ बैठा मनुष्य समझता है, अरे..रे..! अब दो-चार घण्टे में खत्म हो जायेगा। समझ में आया? हरख हनेपात। सनेपात में हँसता है। वह सुखी होगा? अन्दर मूढ हो गया है।

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- हाँ, ... ... दो-चार घण्टे में खलास हो जायेगा। हमने प्रत्यक्ष देखा है न। हँसे, बत्तीस साल का युवान था, लीमड़ा (गाँव में)। और सात-सात जन पकड़े तो भी पकड़ न सके और जोर-जोर से हँसे, लोग रोये, उसकी पत्नी आदि। अब सुबह नहीं होगी। लेकिन वह हँसता है न? जैसे वह हरख सनेपातिया हर्ष और खुशी मानता है, वैसे अज्ञानी पूर्व पुण्य के फल में खुशी बताये, हरख सनेपातिया है। सनेपात नहीं समझते हो? त्रिदोष। त्रिदोष हमारे में कहते हैं। वात, पित्त और कफ... वात, पित्त और कफ क्या? मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र, इन तीनों का बड़ा रोग हो गया है। मिथ्याश्रद्धा। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, वह सुख मानता है, लेकिन सुख है नहीं। वह सुख मानता है उसकी दृष्टि में ऐसा है कि पुण्य से अनन्तगुना सुख मोक्ष में होगा। लेकिन पुण्य तो ज़हर है। उसका फल मोक्ष में तू गिनता है (तो) तुझे मोक्ष की भी खबर नहीं, तुझे पुण्य की खबर नहीं और आत्मतत्त्व क्या है उसकी भी तुझे खबर नहीं। बेहोश अज्ञानी मूर्ख की भाँति बकता है। समझ में आया? प्राणभाई!

तब (शिष्य) कहता है, यह इन्द्रादिक का सुख शास्त्र में कहा है न? सुन! '**तीर्थंकर के शरीर की प्रभा को सूर्यप्रभा से कोटि गुनी कही,...**' परमात्मा, देह--शरीर में जब सर्वज्ञपद (प्रगट) होता है... सर्वज्ञ--जैसे चौसठ पहोरी पीपर, पीपर समझते हो? लिंडीपीपर--छोटीपीपर, उसमें चौसठ पहोरी तीखास भरी है। तीखास समझते हो? चरपराई। हिन्दी भाषा में चरपराई कहते हैं। एक-एक पीपर के दाने में चौसठ पहोरी चरपराई अन्दर पड़ी है। वह चौसठ पहोरी जब प्रगट होती है, कहाँ-से आयी? पत्थरमें से? कँकर को घिस डालो। धूलमें-से निकले? पीपर के दाने में चौसठ पहोरी पीपर में रस पड़ा है, रस--तीखा रस--चरपरा रस। है उसमें से निकलता है। प्राप्त की प्राप्ति है और वह वहाँ से मिलती है। पूर्ण दशा जब हो गयी, चौसठ पहोरी हो गयी। अब उसको घिसना रहा नहीं। वह पुनः तिरसठ होती नहीं। तिरसठ होती नहीं और अब घिसने की आवश्यकता नहीं।

ऐसे भगवान आत्मा, समझ में आया? एक सेकण्ड के असंख्य भाग में अन्दर पूर्णानंद एकाकार आनन्द तो पड़ा है, चौसठ पहोर, चौसठ नाम सोलह आना, चौसठ नाम सोलह आना, चौसठ पैसा--एक रूपया--पूर्ण सब एक अर्थ में है। एक-एक पीपर

के दाने में चौसठ पहोरा पूर्णानंद पड़ा है वह बाहर प्रगट होता है। ऐसे भगवान आत्मा, प्रत्येक देह में विराजमान, एक-एक छोटीपीपर में जैसे चौसठ पहोरी (चरपराई) है, ऐसे एक-एक आत्मा में अन्दर में पूर्णानंद है। इस आनन्द का अन्दर अनुभव करके पूर्ण दशा जहाँ प्रगट हुई उसको तीर्थंकर कहते हैं। और उनके पूर्व पुण्य के कारण इन्द्र बड़ी सभा रचते हैं। अपने यहाँ समवसरण है न? दिखाव किया है। इन्द्र ऊपर से ऊतरकर सभा करते हैं। उस तीर्थंकर की यहाँ उपमा देते हैं।

तीर्थंकर का शरीर ऐसा होता है कि '**सूर्यप्रभा से कोटि गुनी,...**' शरीर की प्रभा, उस सूर्य की प्रभा से कोटि गुनी (होती है)। सुन्दर शरीर निर्मल। सर्वज्ञ परमात्मा जब आत्मा, चौसठ पहोरी चरपराई पड़ी है ऐसे प्रगट होती है एक-एक दाने में, ऐसे जब आत्मा में पूर्ण शक्ति पड़ी है उसका अनुभव करके आत्मा में पुण्य-पाप से हटकर, देह की क्रिया मेरी नहीं, पुण्य-पाप विकल्प उठते हैं वह मेरे नहीं, ऐसा अंतर में अनुभव करते-करते जब केवलज्ञान होता है, तो तीर्थंकर का शरीर परम औदारिक स्फटिक जैसा दिखे। स्फटिक! उनके पास शरीर में कोई देखे तो सात भव देखे। सात भव। इतना शरीर सुन्दर। उनकी बात आचार्य कहते हैं, देखो भैया!

इन्द्रादि के सुख से अनन्त गुना सिद्ध का सुख कहा, वह तो अपेक्षा से कहा है। कौन-सी अपेक्षा? यह। '**तीर्थंकर के शरीर की प्रभा को सूर्यप्रभा से कोटि गुनी कही, वहाँ उनकी एक जाति नहीं है;...**' कहाँ सूर्य का प्रकाश और कहाँ भगवान का शरीर परम औदारिक स्फटिक रत्न जैसा हो गया। समझ में आया? जहाँ बारह सभा व्याख्यान सुनने को आती है। इच्छा बिना ॐ की ध्वनि निकलती है। इच्छा बिना ॐ ध्वनि और सिंह, बाघ, हाथी, राजा, महाराजा और इन्द्रों सभा में सुनते हैं, ऐसे तीर्थंकर की प्रभा को '**सूर्यप्रभा से कोटि गुनी कही, वहाँ उनकी एक जाति नहीं है;...**' जात एक नहीं। यह तो औदारिक की प्रभा महान दूसरी जात की है।

'**परन्तु लोक में सूर्यप्रभा की महिमा है, उससे भी अधिक महिमा बतलाने के लिये उपमालंकार करते हैं।**' उपमालंकार है। (कहाँ) सूर्य और कहाँ प्रभु का शरीर! उतना स्फटिक, जिसमें रोग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं। अंतिम केवल पूर्ण दशा जहाँ प्रगट हो, वह परमात्मदशा (है)। शरीर में रोग नहीं होता, क्षुधा नहीं होती, आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, कुछ नहीं होता। ऐसी शरीर की प्रभा को सूर्य से कोटि गुनी कही। जात एक नहीं, जात दूसरी है। परन्तु सूर्य की प्रभा दुनिया में विशेष गिनी जाती है उसकी उपमा इसको दी है।

'**उसी प्रकार सिद्धसुख को इन्द्रादिसुख से अनन्तगुना कहा है, वहाँ उनकी**

**एक जाति नहीं है;...**' इन्द्र के सुख का अनुभव करे और मोक्ष के सुख का अनुभव एक जाति नहीं है। जाति एक नहीं? '**परन्तु लोक में इन्द्रादिसुख की महिमा है,...**' दुनिया तो एक व्यंतर देव आये न, (तो) ऐसा... ऐसा.. (करे)। मूर्ख को... एक व्यंतर देव दिखे तो आहाहा..! अरे..! अनन्त बैर तू देव हुआ। क्या है उसमें? पूर्व में ऐसा पुण्य किया, ऐसा पुण्य किया कि मरकर देव हुआ। स्वर्ग का देव, वह भी एक धूल का शरीर है, उसमें कोई आत्मा का लाभ देह से है नहीं। तो कहते हैं, एक साधारण देव देखे आहाहा..! इसको मानो, नारियल फोड़ो, ऐसा करो। मूर्खता के कहीं अलग गाँव बसते होंगे? समझ में आया? हर गाँव में मूर्ख बसते हैं, उसका कोई अलग गाँव होता नहीं। ऐसे एक व्यंतर को देखे तो.. आहाहा..! पुत्र दे, यह दे, पैसा दे, जहाँ-तहाँ मान्यता में सर हिलाये। कहते हैं, '**सिद्धसुख को इन्द्रादिसुख से अनन्तगुना कहा है,...**' (उनकी) एक जाति नहीं है। स्वर्ग का सुख और मोक्ष की जाति एक नहीं। परन्तु इन्द्रादि सुख की बहुत (महिमा है)। महिमा दर्शायी।

'**फिर प्रश्न है कि वह सिद्धसुख और इन्द्रादिसुख की एक जाति जानता है--ऐसा निश्चय तुमने कैसे किया?**' क्या कहते हैं? प्रश्न किया। महाराज! अज्ञानी जीव, सिद्ध के सुख को और इन्द्र के सुख को एक जानता है, ऐसा आपने कहाँ-से निकाला? ये सब प्राणी अनादि से स्वर्ग का सुख और परमात्मा मोक्ष का सुख एक मानते हैं, ऐसा आपने कहाँ-से निकाला? शिष्य प्रश्न करता है।

'**समाधान :-- जिस धर्मसाधन का फल स्वर्ग मानता है,...**' सुन हमारी बात! अज्ञानी जिस धर्म का साधन का फल स्वर्ग मानता है, दया, दान, व्रत के परिणाम में स्वर्ग मानता है, '**उस धर्मसाधनही का फल मोक्ष मानता है।**' समझ में आया? वह जिसको धर्म मानता है वह पुण्य है, उस पुण्य का फल स्वर्ग है। फिर भी उससे मुझे मोक्ष मिलेगा ऐसा मानता है। समझ में आया? समझ में आया? क्या कहा? अज्ञानी की हम... जो जात पुण्य की है, दया, दान, व्रत, जप, तप, भक्ति, पूजा या व्रत पालना, दान करना वह पुण्यभाव है। उससे स्वर्ग भी मानता है और उससे धीरे-धीरे मोक्ष भी होगा (ऐसा मानता है)। है न? देखो!

'**कोई जीव इन्द्रादि पद प्राप्त करे, कोई मोक्ष प्राप्त करे,...**' पहले आ गया है। '**वहाँ उन दोनों को एक जाति के धर्म का फल हुआ मानता है।**' समझे? मालूम कहाँ है कि किस फल से स्वर्ग मिले और किस फल से मोक्ष मिले, मालूम नहीं। वह तो करो न अपने, उसमें से स्वर्ग भी मिलेगा और मोक्ष भी मिलेगा। ऐसी मान्यतामें से हमने निकाला कि रागमें से स्वर्ग मिलता है, वह सब राग की क्रिया है और उससे मोक्ष भी मिलता है, ऐसा वह मानता है तो हम कहते हैं कि

स्वर्ग की जाति का सुख और मोक्ष का सुख एक ही मानता है, भिन्न नहीं मानता है। उसकी श्रद्धा में भिन्नता का भास है नहीं। समझ में आया? समझे कि नहीं, पोपटभाई? शुं कह्युं आमां? शुं कह्युं यानी क्या कहा? उसको मालूम भी नहीं है बेचारे को, सुनने भी नहीं मिली है, कहाँ-से करे? समझ में आया?

'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा, भावधर्म रुचि हिन, उपदेशक पण तेहवा शुं करे जीव नवीन?' जो कुऍं में हो वह बाहर आवे। अर्थात् द्रव्यक्रिया--यह व्यवहार यह करो, वह करो, दया, व्रत, भक्ति, पूजा उससे कल्याण होगा। ऐसा 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवड़ा, भावधर्म रुचि हिन,' लेकिन उस राग से मेरी चीज भिन्न है, अनुभव में आने लायक दूसरी चीज है, उसका भान कभी किया नहीं। कैसे करे? 'उपदेशक पण तेहवा' ऊपर बैठकर कहनेवाले भी (ऐसे ही मिले)। 'माली मकवाणी अने जोगी जहलो', दोनों मिले। यहाँ हमारे काठियावाड़ में (कहावत) है, आप में भी कुछ होगा। जैसा जहला जोगी ऐसी माली मकवाणी। माली मकवाणी नटकटी थी, उसको कोई रखता नहीं। जहला जोगी को कोई मिलती नहीं थी, अकेला कुँआरा पैसा बिना का था। दोनों का मेल हो गया। ऐसे आचार्य कहते हैं, अनंत काल से उसको पुण्य की क्रिया, व्यवहार की क्रिया, दया, दान, व्रत, सामायिक, पौषध आदि राग में पुण्य भी होगा और क्रम-क्रम से मोक्ष भी होगा। ऐसा अज्ञानी मानता है, मनानेवाला भी मिल गया। समझ में आया? 'उपदेशक पण तेहवा, शुं करे जीव नवीन? हे चंद्रानन जिन सांभळीए अरदास।'

यह भगवान की स्तुति है, चंद्रानन भगवान। वीस विहरमान महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान में विराजते हैं। साक्षात् तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा केवलज्ञानपने सीमंधरादि बीस तीर्थंकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यदेह में सीधे विराजते हैं। समझ में आया? उसमें एक चंद्रानन भगवान की स्तुति की है। उसमें कहा कि, नाथ! हमारे भरतक्षेत्र की स ब गति बदल गयी है। आप का विरह पड़ा और भरतक्षेत्र के मनुष्य कैसा मानते हैं? क्या मानते हैं? द्रव्यक्रिया में धर्म मानकर मोक्ष होगा और पुण्य भी फलेगा। हमारे तो एक काज और... क्या कहते हैं? एक पंथ दो काज। पुण्य भी होगा और मोक्ष भी होगा। प्रभु! यह क्या हुआ? आप के शासन में क्या हुआ? लूटेरे मार्ग को लूट रहे हैं। पोकार.. पोकार किया है भगवान समक्ष। भगवान तो वीतराग है, वे तो कहीं सुनते नहीं। वे तो जानते हैं पहले से कि ये सब ऐसे निकलेंगे। उनको कोई इच्छा होती नहीं, इच्छारहित है, वह तो केवलज्ञान परमात्मदशा है। इच्छा होती नहीं। इच्छा बिना वाणी निकलती है। समझ में आया?

कहते हैं, '**कोई जीव इन्द्रादि पद प्राप्त करे, कोई मोक्ष प्राप्त करे, वहाँ उन दोनों को एक जाति के धर्म का फल हुआ मानता है।**' देखो! यह करते-

करते, ज़हर खाते-खाते पेट भी भरे और अपने कुछ खाया ऐसा भी मानना हो। ऐसे पुण्यक्रिया करते हुए स्वर्ग भी मिलेगा, पैसा मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा और फिर मोक्ष मिलेगा। ऐसी मान्यता प्रभु जगत की है। वह मोक्षतत्त्व और आत्मतत्त्व को जानता नहीं। अनंत काल में एक सेकण्ड भी उसने पीछाना नहीं। समझ में आया?

जैसे सौ कळशी (तीनसौ चालीस किलो का माप) अनाज पकता है, तो सौ भरोटा (भरपूर) घास साथ में होता है। अभी छप्पन के (दुष्काल में) ऐसा देखा। हमारे यहाँ 'बाँटा' कहते थे। पाँच-छः इंच बारीश हुई थी। बाँटा समझे? ज्वार, बाजरे का इतना-इतना पौधा हुआ था। दाना नहीं। परन्तु दाना सौ कळशी पके और घास न हो ऐसा कभी नहीं बनता।

ऐसे जिसको आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प राग से भिन्न मेरी चीज है, मेरा धर्म तो निर्विकार शुद्ध, विकार से रहित है ऐसा भान हुआ, उसके भानमें से मोक्षरूपी अनाज पकेगा। और बीच में थोड़ा दया, दान का रह गया उसको भी बीच में स्वर्ग अथवा श्रीमंताई मिलेगी। समझ में आया? घास के साथ अनाज। अज्ञानी को अकेला घास (मिलता है)। खड़ समझते हो? घास, घासफूस। पुण्य के फल में अकेला घास पकेगा। उसमें आत्मा को मोक्ष-बोक्ष है नहीं।

कहते हैं, धर्मीजीव को दोनों मिलते हैं--अपना स्वरूप पुण्य-पाप की क्रिया राग से भिन्न मानकर अपना अनुभव करके निर्मलता, जितनी निर्दोषता, आत्मिकता, पवित्रता, अकषायता, वीतरागता जितना स्वभाव का भान होकर प्रगट करते हैं, उसमें तो मोक्ष की फसल पकती है। परन्तु बीच में थोड़ा राग भक्ति का, पूजा का, दान का, दया का आता है उसमें श्रीमंताई और स्वर्ग मिलता है। परन्तु दोनों जाति जुदी है। अज्ञानी को अकेली धूल मिलती है। उसको तो धर्म नहीं, मोक्ष नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यक्ज्ञान नहीं। तीनमें से एक भी चीज उसे है नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं?

'**ऐसा तो मानता है कि जिसके साधन थोड़ा होता है वह इन्द्रादिपद प्राप्त करता है,...**' देखो! थोड़ा पुण्य करे तो इन्द्रपद मिले, बहुत पुण्य करे तो मोक्ष मिले। अरे..! तेरी मान्यता में बड़े छिद्र हैं, बड़ा छिद्र है। कठिन, कठिन जगत को बहुत।

मुमुक्षु :-- समझ में आये ऐसा है।

उत्तर :-- समझ में आये ऐसा है? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :-- सीधी बातें हैं।

उत्तर :-- सीधी बात, दो और दो चार है। उसमें कहीं तीन काल तीन लोक में बदले नहीं। सुना नहीं, जहाँ पड़ा हो वहाँ मान बैठा कि पैसा भी मिलता है,

पचास लाख हुआ हो तो पाँच लाख खर्चे, पाँच लाख में मोक्ष भी मिलेगा और रुपया भी रहेगा, एक पंथ दो काज। पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- उलटा है।

उत्तर :-- उलटा है? पाँच लाख दे, उसका दसवाँ भाग (मिलेगा)। पचास डाले, उसका दसवाँ भाग, जाओ। दसवाँ भाग क्या, तेरे पचास लाख दे दे, और राग मंद कर तो पुण्य होगा, पैसा देने से पुण्य नहीं होता। पैसा तो जड़ है, जड़ उसके कारण जाता है। तेरी तृष्णा में मंदता हो, राग मंद हो, लोभ मंद हो तो पुण्य बँध जायेगा। समझ में आया? धर्म-बर्म नहीं। पैसा से धर्म होता हो तो गरीब को रोना पड़े। अरेरे..! उसको धर्म होगा नहीं। शरीर से धर्म होता नहीं तो पैसा से तो धर्म कहाँ-से आया?

अपना आत्मा देह, वाणी से तो पृथक् है, परन्तु पुण्य का भाव दया, दान, व्रत से भी मैं पृथक् हूँ, ऐसी अनुभवदृष्टि किये बिना धर्म का एक अंकुर कभी उत्पन्न होता नहीं। अनंत काल में न किया हो तो यह नहीं किया, बाकी तो धूलधमाहा अनंत बार किया। समझ में आया? वह क्या मानता है? देखो!

'**जिसके साधन थोड़ा होता है...**' आता है न? खामणा में आता है न? जघन्य हो तो ऐसा होता है, उत्कृष्ट तीर्थंकर गोत्र बाँधे। खामणा में आता है। उत्कृष्ट ... बाँधे। सब विपरीत बात। यहाँ कहते हैं, देखो भाई! अपने थोड़ा साधन करेंगे... थोड़ा को क्या कहते हैं? कम, कम। पुण्य का थोड़ा साधन करेंगे तो स्वर्ग मिलेगा और बहुत पुण्य करेंगे तो मोक्ष होगा। तेरी श्रद्धा में बड़ी विपरीतता है। थोड़ा पुण्य में स्वर्गादि मिलेगा और विशेष पुण्य हो तो भी स्वर्गादि मिलेगा, उसमें कोई धर्म-बर्म और मोक्ष-बोक्ष है नहीं। ऐसी मान्यता से हमने पकड़ लिया कि उसकी दृष्टि विपरीत है, ऐसा आचार्य कहते हैं। समझ में आया?

'**परन्तु वहाँ धर्म की जाति एक मानता है।**' धर्म की एक जात जानता है। इस धर्म से पुण्य भी होता है और उसी धर्म से मोक्ष भी होगा। '**सो जो कारण की एक जाति माने, उसे कार्य की भी एक जाति का श्रद्धान अवश्य हो;...**' जिसने एक जाति का कारण माना, उसे कार्य में भी सब फेरफार है। '**क्योंकि कारणविशेष होनेपर ही कार्यविशेष होता है।**' कारण में फेर हो तो कार्य में फेर हो। और यह तो कहता है कि कारण में हमें फेर नहीं है। पुण्य परिणाम से हमें स्वर्ग भी मिले और मोक्ष भी मिले। तो तेरी कारण की जाति स्वर्ग और मोक्ष की एक ही तूने मानी है। और तुझे धर्म की खबर नहीं और पुण्य किससे होता है यह भी तुझे खबर नहीं। '**कारणविशेष होनेपर ही कार्यविशेष होता है।**'

'**इसलिये हमने यह निश्चय किया कि उसके अभिप्राय में इन्द्रादिसुख और**

**सिद्धसुख की एक जाति का श्रद्धान है।**' उसकी श्रद्धा एक ही जात की है। समझ में आया? पोपटभाई! ये तुम्हारे वास्तु के घर आया। वास्तव में वास्तु तो इसको कहते हैं, वास्तु भगवान चिदानंदमूर्ति प्रभु, पुण्य-पाप के राग से रहित वस्तु पड़ी है, अन्दर आनन्दगुण पड़ा है। वस्तु आत्मा है उसमें बसना, अतीन्द्रिय आनन्द की प्रतीत करके बसना, इसका नाम भगवान वास्तु कहते हैं। समझ में आया? पाँच-पच्चीस लाख का मकान बनाया, लाखो का खर्च करके प्रवेश किया, वास्तु किया, राजा को बुलाये.. अनन्त बार किया। उसमें कुछ है नहीं।

भगवान आत्मा, शुभ और अशुभ विकल्प उठते हैं, वह राग है। लेकिन उसको धर्म मानता है, क्या करे? वही जात, मानों मैंने कुछ किया, मैं दुकान से हटा और कुछ करते हैं, धर्म हुआ। वहाँ वही पुण्य की जात है, सुन न। यदि राग मंद करे तो। और मान के लिये करता हो, मुझे कोई गिने, धर्म में गिने, ... गिने, आगे बिठाये, उसके लिये दान, दया, पूजा और भक्ति करता हो तो पापी (है)। पाप है, पुण्य भी नहीं है। समझ में आया? तो यहाँ तो कहते हैं कि '**हमने यह निश्चय किया कि उसके अभिप्राय में इन्द्रादिसुख और सिद्धसुख की एक जाति का श्रद्धान है।**' समझ में आया?

'**तथा कर्मनिमित्त से आत्मा के औपाधिक भाव थे, उनका अभाव होनेपर आप शुद्धस्वभावरूप केवल आत्मा हुआ।**' मोक्ष तो उसको कहते हैं कि भगवान आत्मा, उस मैल से दूर होकर, पुण्य-पाप के परिणाम से पहले दूर होकर अनुभव करे, बाद में स्थिर होकर पुण्य-पाप का भाव छूट जाये, मलिन भाव छूट जाये, अकेला आत्मा स्वभावरूप रह जाये उसका नाम भगवान मोक्ष कहते हैं। मोक्ष कोई दूसरी चीज नहीं है। ऊपर लटकना वह मोक्ष नहीं है। आत्मा में परमानंद का शुद्ध स्वभाव जो अन्दर शक्ति में पड़ा है, वह प्रगट हो जाये उसको भगवान मोक्ष कहते हैं। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता' 'आत्मसिद्धि' में है।

मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ,
समजाव्यो संक्षेपमां, सकळ मार्ग निर्ग्रंथ।।

सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा का मोक्षमार्ग (दर्शाया)। जो परिणाम मोक्ष के निर्मल है, वैसा ही निर्मल अल्प जात का, जाति एक, परन्तु अल्प अंतर पुण्य-पाप से रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प परिणति होती है, वही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग है नहीं। अज्ञानी ने दूसरा मोक्षमार्ग मान रखा है, वह मिथ्यादृष्टि मिथ्यादर्शन शल्य का पोषक है। उसमें धर्म तो नहीं है, पुण्य का भी ठिकाना नहीं है।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**गुरुवार, दि. १६-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ८**

यह मोक्षमार्ग का सप्तम अध्याय चलता है। उसमें सात तत्त्व की श्रद्धा की विपरीतता अनादि काल से जीव को है। सात तत्त्व की विपरीत मान्यता, उसमें मोक्षतत्त्व की बात चलती है। पहले कहा कि जगत मोक्ष किसको मानता है? कि सिद्ध होना और लोकालोक को जानना और जन्म-मरण के दुःख से रहित होना उसको मोक्ष कहते हैं। परन्तु ऐसा मोक्ष का स्वरूप है नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है, हाँ! भाईलालभाई! कभी सुनी न हो, वहाँ पैसा कमाने से फ़ुरसद कहाँ है? कभी सुनने जाये तो बाहर का सुने। पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- बाहर का सुने माने क्या?

उत्तर :-- बाहर का सुने यानी ये दया करो, दान करो, भक्ति करो, व्रत करो, पूजा करो तो धर्म हो। पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- हमें तो जो सुनाये वह सुनना पड़े।

उत्तर :-- ऐसे तो नरम आदमी है न, ऐसे तो नरम है न। कुछ तुलना तो करेगा कि नहीं कि न्याय क्या है? भाईलालभाई! तुलना तो करे कि यह तत्त्व क्या है।

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा, जैसे छोटीपीपरमें से चौसठ पहोरी प्रगट दशा हो जाती है, ऐसे भगवान आत्मा में सर्वज्ञपद अंतर में सर्व को पड़ा है। उसमें-से अंतर अनुभव करके अंतर आनंद की लीनता करते-करते सर्वज्ञपद हो जाता है। जैसे वह चौसठ पहोरी पीपर हो जाती है, ऐसे यहाँ पूर्ण केवलज्ञान आत्मा में पड़ा है (वह) प्रगट होता है। वह सर्वज्ञ भगवान, धर्म का मूल क्या चीज है और अनंत काल से क्यों परिभ्रमण करता है, वह बात करते हैं।

यहाँ तो कहा कि जीव-अजीव का भान नहीं। पहले से कहते हैं कि आत्मा किसको कहते हैं? और जड़ किसको कहते हैं? यह जड़ की देह की दशा है, चलना-फिरना होता है वह अपने से होता है ऐसा मानना, आत्मा से होता है ऐसा मानना, वह मिथ्यादृष्टि मूढ जीव है। अजीव जड़ का अंश जड़ की पर्यायरूप--हालतरूप अंश अपना आत्मा से होता है, उसको जड़ का भान नहीं। उसको जड़ की श्रद्धा की खबर नहीं। और मेरे आत्मा में ज्ञानादि होता है वह इन्द्रियों से होता है ऐसा मानना वह आत्मतत्त्व की भूल है। नवरंगभाई!

यह आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु अपनी पर्याय में ज्ञान से, दर्शन से, वीर्य से जानता-

देखता है। उसमें ऐसा जानना कि यह इन्द्रिय आदि अवयव मिट्टी है उससे मेरे में ज्ञान होता है, उसको अपनी वर्तमान ज्ञान की पर्याय की जीव के अंश की भी स्वतंत्रता की खबर नहीं। उसको जीवतत्त्व की खबर नहीं, अजीव की खबर नहीं। आत्मा में दया, दान परिणाम होता है वह पुण्यास्रव है। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का भाव होता है वह राग है, पुण्य है। उसको धर्म जानना वह आस्रवतत्त्व की भूल (है)। समझ में आया?

और संवर में, संवर नाम धर्म की शुद्धि, उसमें बाह्य का विकल्प उठते हैं--भेद, राग उसको संवर मानना वह संवर की भूल (है)। और उपवास करने से मुझे धर्म होता है वह निर्जरातत्त्व की भूल (है)। सूक्ष्म बात है। अनंत काल में सुनी नहीं, कभी किया नहीं। ऐसा साधारण नहीं किया? अनंत बैर मनुष्यदेह पाया, अनादि का आत्मा है, अनंत-अनंत अवतार हुआ परन्तु सच्चा सम्यक्ज्ञान--आत्मज्ञान (हुआ नहीं)। समझ में आया? नरसिंह महेता भी कहते हैं न उसकी अपेक्षा से? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी'। क्या है? आत्मा क्या कर सकता है? और कितना अंश जड़ में अपना अधिकार रखता है, खबर नहीं। यूँ ही ओघेओघे (मानता है)। ओघे को क्या कहते हैं? तुम्हारी हिन्दी भाषा किसे आती है? यहाँ कहीं सब हिन्दी भाषा आती है? ओघेओघे माने समझे बिना। ओघेओघे समझे बिना मान लेता है। सत्य क्या है, इसकी खबर नहीं।

और अपने में पुण्य-पाप का भाव से बन्ध होता है, नया कर्म का बन्ध होता है। उसमें पाप से बन्ध होता ऐसा माने, परन्तु पुण्य से बन्ध होता है उसको भला माने, वह बन्धतत्त्व की भूल मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? और अब मोक्षतत्त्व की भूल बताते हैं। समझ में आया? कहाँ गये बड़े? .... यह सब सुनना पड़ेगा, हाँ! पिताजीने मकान किया है तो। महाबळेश्वर घुमने जाना उसके बदले यहाँ ठीक है। पैसेवाले के लड़के बाहर घुमने जाये, जब गरमी का मौसम हो तब।

अरे.. भगवान! यह चैतन्यतत्त्व, इस देह के परमाणु से भिन्न तत्त्व, उसकी क्या क़ीमत है, उसकी क्या चीज है, उसकी क़ीमत करे बिना शरीर, लक्ष्मी मेरी उसकी क़ीमत करता है, वह आत्मा का खून, अनादर करता है। और अपनी पर्याय नाम अवस्था में पुण्य-पाप का भाव होता है, दया, दान, व्रत का, उसकी क़ीमत करता है कि वह बड़ी चीज है, तो विकार रहित मेरी चीज सच्चिदानंद सिद्ध समान जो सिद्ध परमात्मा अरिहंत हुए, उन्होंने अपने अन्दर से पर्याय निकाली। वह क्या चीज है उसकी क़ीमत करते नहीं और पुण्य और पाप, शुभ-अशुभ भाव की क़ीमत करते हैं, वह आत्मा की हिंसा करते हैं। आत्मा की हिंसा करते हैं। पोपटभाई! उसका

सब सुलटा हुआ है। वह बोलते हैं सब सुलटा। समझ में आता है? कुंवरजीभाई! यह समझ में आता है? सुनायी देता है न? समझ में बाद में आयेगा।

ओहोहो..! शास्त्र का रहस्य खोलकर पंडितजी ने इसमें रखा है। तो कहते हैं, यहाँ देखो मोक्षतत्त्व। मोक्ष क्या मानते हैं? कि अहो..! स्वर्ग में जाना और वहाँ लड्डु-बड्डु मिले.. समझे? उसको मोक्ष की खबर नहीं। मोक्ष तो आत्मा का... देखो यहाँ थोड़ा लिया है। '**वह दोनों अवस्था में सुखी-दुःखी नहीं है;...**' परमाणु है न परमाणु? यह परमाणु है न? परमाणु, यह रजकण-पोईन्ट जड़ है, यह जड़ है। यह परमाणु है न? मिट्टी, परमाणु माने वह कपड़े का परमाणु निकाले वह नहीं, यह पोईन्ट है, यह पोईन्ट--टूकड़ा है। अंतिम पोईन्ट करो, इसका टूकड़ा करते-करते, करते-करते आखिर का पोईन्ट, उसको भगवान परम-अणु, परम-अणु बहुत सूक्ष्म अणु कहते हैं। उसका दो भाग हो सके नहीं। वह परमाणु जब इस पिण्ड के साथ है तो उसमें विभाव है। छूटा पड़े तो स्वभाव है। परन्तु इस पिण्ड के साथ रहे तो भी परमाणु दुःखी नहीं और भिन्न पड़े रजकण, रजकण उसमें से, तो सुखी नहीं। है कहीं सुखी? ऐसे '**दोनों अवस्था में सुखी-दुःखी नहीं है;...**' परमाणु का दृष्टान्त दिया है, रजकण पोईन्ट।

'**आत्मा अशुद्ध अवस्था में दुःखी था...**' अरे..! अनादि काल की मलिन अवस्था, पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप ऐसा जो मलिन भाव, पुण्य-पाप दोनों मलिन है। वह दुःखी था। अशुद्ध अवस्था में दुःखी है। बराबर है? फिर ये पैसेवाला सुखी है, कौन कहता है? भाईलालभाई की बड़ी बात चलती है कि वह बड़े जे.पी. है, ऐसा है, वैसा है। बोलने में आये? दुनिया दूसरे प्राणी को संयोग की अपेक्षा से बोलते हैं, सुखी है नहीं। देखो! '**आत्मा अशुद्ध अवस्था में दुःखी था...**' अनादि काल से कर्म का निमित्त संयोग और अपनी पर्याय नाम दशा में शुभ-अशुभ, काम, क्रोध, दया, दान विकल्प का, विकल्प नाम लागणी की उत्पत्ति अन्दर होती है शुभ-अशुभ, वह सब दुःख है। आहाहा..! शेठी!

'**अब उसका अभाव होने से...**' जब यह आकुलता है अन्दर पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ की वह अपना स्वभाव का भानकर अशुद्धता का अभाव हुआ (तो) '**निराकुल लक्षण अनन्तसुख की प्राप्ति हुई।**' उसका नाम मोक्ष है। आकुलता का नाश होकर अनाकुल अंतर आत्मा में आनन्द पड़ा है, उसका अनुभव करते-करते प्रगट दशा में--पर्याय--हालत में दुःख के स्थान में, दुःख गया और आत्मा का आनन्द अन्दर में पूर्ण प्रगट हुआ उसका नाम मोक्ष कहने में आता है। मोक्ष कोई दूसरी चीज नहीं। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता'।

**'तथा इन्द्रादिकके जो सुख है वह कषाय भावों से आकुलतारूप है,...'** इन्द्र और सेठ को जो सुख है वह आकुलता है। भाईलालभाई! आकुलता कहते हैं। ऐसा सँभालना, यह सँभालना, यह रखना..

मुमुक्षु :-- मुनि को...

उत्तर :-- अरे..! मुनि को हो? ये सब सेठ घुमते हैं उसके लिये यह बात चलती है। मुनि को आकुलता कैसी? मुनि को आनन्द है। मुनो--अन्दर आत्मा सच्चिदानंद प्रभु, उसका अनुभव करते हुए मुनियों को तो वीतरागी सुख है। 'नवी सुखी सेठ सेनापति...' आता है न? 'नवी सुखी ...' पृथ्वी का राजा भी सुखी नहीं, देवता का देव भी सुखी नहीं है। 'एगंत सुखी मुनि वीतरागी'। लेकिन मुनि किसे कहना, यह बहुत सूक्ष्म बात है। अभी लोग मान बैठते हैं ऐसा मुनिपना है नहीं। ऐसा मुनिपना है नहीं।

अपना आत्मा अंतर सच्चिदानंद आनन्द, आनन्द, आनन्द अंतर पड़ा है, उसमें अंतर में घुसकर आनन्द का अनुभव की उग्रता जिसकी दशा में हो, जिसको प्रतिकूलता का दुःख नहीं, अनुकूलता का सुख नहीं, अंतर भूमिमें से, अंतर आत्मधाममें से, अंतर चैतन्यधाममें से आनन्द निकालकर अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हो, उसको मुनि कहते हैं। समझ में आया? वह थोड़ी सूक्ष्म बात है। वर्तमान में चलता है कुछ और मार्ग का स्वरूप कहीं और रह गया है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव कहते हैं कि, अरे.. प्रभु! तूने, तेरी चीज की क्या क़ीमत है और विकार की क्या तुच्छता है, तूने जानी नहीं, तूने कभी जानी नहीं। समझ में आया? परपदार्थ की तो तुच्छता है ही, परन्तु अपनी पर्याय नाम हालत में पुण्य और पाप का भाव होता है वह तुच्छ है। उसकी कोई क़ीमत है नहीं। धर्मी की दृष्टि में उसकी कोई क़ीमत नहीं। ओहोहो..! धर्मी की दृष्टि में वह शुभ और अशुभ पुण्य-पाप का भाव से अलग अन्दर होकर अखण्डानंद प्रभु चैतन्य का अंतर आनन्द की दशा की प्राप्ति हो, उसकी क़ीमत धर्मी की दृष्टि में है। समझ में आया? बाकी क़ीमत, धर्मी की दृष्टि में दूसरी क़ीमत है नहीं।

तो कहते हैं कि, **'इन्द्रादिक के जो सुख है वह कषाय भावों से आकुलतारूप है,...'** इन्द्र और गृहस्थ, पैसेवाले अरबोपति, ये वाईसरोय ने फलाना, ढिकना बड़े कहलाते हैं, सब को आकुलता है अन्दर। विकल्पों की लागणी की, जैसे पूनी रूई की पूनी एक टूटे और दूसरी जोड़े, एक टूटे और तीसरी जोड़े, वैसे एक राग से दूसरा राग, दूसरे राग से तीसरा राग.. राग की धारा अज्ञानीयों को संसारदशा में पुण्यवंत को या पापी को, दोनों को विकार की लागणी की धारा बहती है, वह दुःख है।

कहो, समझ में आया? '**सो वह परमार्थ से दुःखी ही है;...**' वह सेठ और इन्द्र का सुख वह परमार्थ से दुःख है। '**इसलिये उसकी और इसकी एक जाति नहीं है।**' मोक्ष के आनन्द की और इन्द्र के सुख की जाति एक नहीं है, जात ही अलग है।

'**तथा स्वर्गसुख का कारण प्रशस्तराग है,...**' क्या कहते हैं? ये स्वर्ग और पैसा मिलने का कारण शुभराग है, पुण्यराग--दया, दान, आदि शुभराग हो उससे पैसा मिले अथवा स्वर्ग मिले। उससे आत्मा की मुक्ति होती नहीं। '**मोक्षसुख का कारण वीतरागभाव है;...**' आत्मा की परम पूर्ण आनन्ददशा उसका कारण तो अन्दर अकषाय भाव, वीतरागभाव, शुद्ध परिणति भाव, निर्दोष दशा की परिणति मोक्ष का कारण है। स्वर्ग के कारण में राग और मोक्ष के कारण में आत्मा के आनन्द की पवित्र निर्मल दशा, दोनों के कारण में अंतर है। स्वर्ग के कारण में और मोक्ष के कारण में अंतर है। अज्ञानी को वह मालूम नहीं है कि क्या कारण स्वर्ग का है और क्या कारण स्वर्ग का (है)।

मुमुक्षु :-- पूर्व-पश्चिम जितना।

उत्तर :-- पूर्व-पश्चिम जितना, ऐसा होगा?

'**इसलिये कारण में भी विशेष है;...**' कार्य में तो विशेष है लेकिन कारण में भी विशेष है। '**परन्तु ऐसा भाव इसे भासित नहीं होता।**' अनादि अज्ञानी जीव धर्म के नाम से दया, दान, व्रतादि में धर्म मानकर पड़ा, उसको मोक्ष की क्या चीज है उसका भावभासन होता नहीं, भावभासन नहीं होता। जैसे पोपट को मूँगफली दे न, मूँगफली? मूँग का दाना। बोलो पोपट, रघुराम। उसको कहाँ भान है कि रघुराम यानी दाना होगा या पूरी होगा? पूरी खिलाते हैं न पोपट को पींजरे में? बोलो पोपट, रघुराम। उसको ऐसा लगे, यह पूड़ी का नाम होगा या दाने का नाम होगा? रघुराम कहना किसको? 'निजपद रमे सो राम कहीये' भगवान आत्मा अखण्डानंद पवित्र स्वरूप, उसकी पूर्ण दशा प्राप्त कर अपने स्वरूप में रमे, वह राम नाम आत्मा उसको कहने में आता है। ऐसे आत्मा की खबर नहीं, तो पोपट को पूड़ी और दाना को मान ले कि यह (रघुराम) होगा। मीठा लगे न।

ऐसे अनादि अज्ञानी को पुण्य और पाप में, बाह्य चीज में धर्म मानकर मैं कुछ धर्म करता हूँ, ऐसा मानता है। लेकिन राग से रहित अपनी निर्विकल्प चीज क्या है उसकी श्रद्धा-ज्ञान की भी खबर नहीं, तो चारित्र तो कहाँ-से होगा? बहुत सूक्ष्म बात है। अनंत काल हुआ।

अनंत काळ थी आथड्यो विना भान भगवान,
सेव्या नहीं गुरु संतने मूक्युं नहि अभिमान।

अनादि काल से अनंत भव कियो, परन्तु चैतन्य की जाति सत् समागम से, गुरुगम से एक समय भी पीछानी नहीं।

**'ऐसा भाव इसे भासित नहीं होता। इसलिये मोक्ष का इसको सच्चा श्रद्धान नहीं है।'**

**'इसप्रकार इसके सच्चा तत्त्वश्रद्धान नहीं है।'** टोटल सातों तत्त्व का। अनादि अज्ञानी इन सातों तत्त्व की भूल कर रहा है। **'इसलिये समयसार में कहा है कि अभव्य को तत्त्वश्रद्धान होने पर भी मिथ्यादर्शन ही रहता है।'** क्या कहते हैं? एक अभवी जीव होता है। जैसे कोरडु मुँग होता है न? कोरडु मुँग। क्या कहते हैं तुम्हारी हिन्दी में? मुँग, मुठ, उडद कोरडु होता है। लाख मण पानी पीलाओ तो कोरडु पीघले नहीं। कूटकर चूरा करो तो पापड़ हो। लेकिन पीघले नहीं। लाख मण पानी लाख लकड़ी रखो, कोरडु मग (पीघलता नहीं)। समझ में आया? ऐसे ऐसी एक जीव की जात है कि उसे चाहे जितना सत्य समझाओ, तत्त्वार्थ की श्रद्धा करे परन्तु आत्मज्ञान क्या है उसकी श्रद्धा नहीं करता। शेठी!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं, दूसरी बात कहते है यहाँ। तत्त्वश्रद्धान नाम विकल्पवाली श्रद्धा, रागवाली श्रद्धा। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष राग का भेद से मानता है। लेकिन मैं अखण्ड आत्मा, विकल्प नाम राग से निर्विकल्प मेरी चीज जुदी है--भिन्न है ऐसा अभवी प्राणी, कोरडु मुँग जैसा कभी आत्मा की प्रतीत, अनुभव करता नहीं। त्यागी हो, मुनि हो, योगी हो, बाह्य क्रियाकांड करे, कदाचित् स्वर्ग में जाये, सात तत्त्व को समझता नहीं। समझ में आया? कहो, 'मोहन मोती' आते थे न भाई? गढडावाले। भाई पहिचानते होंगे। मोहनलाल मोतीचंद। अस्पताल में थे न? कल देखने गये थे न। ..., यहाँ बहुत काम किया। यहाँ देह छूट गया। वहाँ देह छूट गया। यहाँ आठ दिन पहले दर्शन करने आये थे। यहाँ हमेंशा दर्शन करने आते थे। ... वाला इन्सान था। बहुत बार आये। एक बार कहते थे, महाराज! ऐसी बात तो कहीं सुनने नहीं मिलती। कहीं नहीं है। कहा, आप लोग सांढ जैसे... भाईलालभाई! पाँच-पचास लाख हुए, दस लाख हुए, इज्जत बड़ी और ... के पास जाये, सांढ जैसे कूड़ा उठा रहे हो। पोपटभाई! सेठ! समझ में आता है? वह मोती था न? बुद्धिशाली था। मोहनलाल, हमेंशा यहाँ आनेवाले, हमेंशा आनेवाले, हाँ! यह बात हम को तो कहीं सुनने नहीं मिलती है। मैंने कहा, आप सब लोग (मानते हो) दुनिया का काम

कर दे, इसका कर दे और गढड़ा को भी सुधार दिया और ऐसा था और ऐसा कर दिया। वहाँ थोड़ा किया था न, अन्दर मकान-बकान (बनाया था)। हम तो छोटी उम्र से जानते हैं न, छोटी उम्र से। समझ में आया? दीक्षा लेनेवाले थे तब उनके घर ले गये थे। मैंने कहा, मैं रात्रि को चाय पीता नहीं। मैं तो चाय पीता ही नहीं था, दिन में दूध पीता था। रात को बैठने आयेंगे। दीक्षा लेने से पहले, (संवत) १९७० से पहले, १९६८ की बात है। १९६८ की। तब से जानते हैं उनको। पचास वर्ष (हुए)। फिर (कहते थे), यह बात... आहाहा..! और सेठ लोगों को तो सब मक्खन लगाये।

मुमुक्षु :-- बहुतों के काम होते हैं न।

उत्तर :-- बहुत काम धूल का भी नहीं करता है। किसने किया है? राग और द्वेष करता है वह, क्या पर का काम कोई कर सकता है? पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- राग-द्वेष..

उत्तर :-- ये कूड़े का ढेर होता है न? विष्टा, गोबर, राडा (ज्वारा, बाजरे का डंडा) हो, साँढ कहाँ जाता है, मालूम है? दिवार में सर रखे तो क्या ... पड़े? फिर राडा, गोबर, राख सर पर गिरे। भाईलालभाई! मोहनभाई थे न, बात की थी। यह तो प्रसिद्ध बात है न। राजा, महाराजा सब... कहा, क्या है यह? आप दूसरे का काम कर देते हो और उससे हमारा कुछ काम होगा। राडा और गोबर सर पर गिरता है। राडा समझते हो? राडा को क्या कहते हैं? कूड़ा, कचरा नहीं लेकिन बाजरा, ज्वारा का जो दाना होता है न, सांठी, आप में सांठी कहते हैं न? बिगड़ गया हो तो कूड़े में डाले। फिर बड़ा साँढ हो वह दिवार में कहाँ माथा मारे? ऐसे मारे तो गिरे सर पर। ऐसे दुनिया का कूड़ा उठाने के लिये दुनिया प्रयत्न कर रही है। उस प्रयत्न से कुछ होता नहीं। उसके प्रयत्न में राग और द्वेष हो, उसका फल बन्धन होता है।

मुमुक्षु :-- उसका अभिमान तो हो न।

उत्तर :-- धूल भी नहीं है, जहाँ-तहाँ अभिमान करता है, हमने किया, हमने किया, हमने किया। हमारे नाम की तख्ती लगाओ। तख्ती, मैं उसको तस्दी कहता हूँ। तस्दी बहुत करे। महेनत बहुत पड़े। दस हजार और एक फलाना, फलाना उसकी पत्नी के स्मरणार्थ, उसके पुत्र के शादी के प्रसंग में। सब नाम आये। उसका नाम आये, उसके पिताजी का आये, स्त्री का आये और पुत्र का आये। तब उसे प्रसन्नता हो। तेरे पुण्य का भी ठिकाना नहीं है, तुझे पाप बँधता है, धर्म तो कहाँ था? समझ में आया? ऐसा लिखे, सोभागचंद अमृतलाल, ह. उनकी पत्नी के स्मरणार्थ, उनके

पुत्र अमृतलाल के शादी के प्रसंग पर। चारों नाम आ गये। शेठी!

मुमुक्षु :-- तो संतोष हो न।

उत्तर :-- धूल में भी संतोष नहीं है। उससे संतोष है? मैंने राग, तृष्णा कम की। पचास हजार दिये, मैंने तृष्णा कम की उतना कषाय मंद हुआ, उतना मेरा भाव है। दुनिया दे या नहीं, दुनिया लिखे या नहीं, यह मुझे मालूम नहीं, मुझे क़ीमत नहीं है। जितनी तृष्णा कम करे उतना उसे पुण्य हो। पुण्य का बन्धन हो, धर्म-बर्म धूल में भी नहीं होता। समझ में आया? आहाहा..! जगत से विपरीत बात है, भाई! दुनिया से मोक्ष का मार्ग कोई अलग जात का है। लेकिन सब को ऐसे राह पर चढा दिये कि होगा, होगा, धीरे-धीरे होगा न, सीधा कहीं बी.ए. थोड़ा पढ़ा जाता है। ऐसी क्रियाकांड करें, व्यवहार कुछ सुधरे, बाद में धीरे-धीरे धर्म होगा। कोयला को साबून से धोयें, लाख मण साबून से धोये तो कोयला सफेद हो। धूल भी नहीं होगा, सुन न। कोयला को सफेद करना हो तो जलाना ही पड़े। सफेद राख हो। उस कोयले को रखकर तू लाख मण साबून से धो, कोयले का काला रंग छूटता नहीं। ऐसा तेरा संसार का पुण्य-पाप का कार्य कोयले जैसा मलिन भाव है, उससे आत्मा का कुछ सुधार हो, लाख मण साबून से कोयला सफेद हो तो उसे धर्म है। समझ में आया? कोलसा समझते हो न? आप की सब भाषा नहीं आती है।

'**इसलिये समयसार में कहा है कि अभव्य को तत्त्वार्थश्रद्धान होने पर भी...**' मिथ्यादृष्टि कहा है। शेठी! ऐसे तो माने कि जीव है, अजीव है, पुण्य-पाप है, लेकिन अंतर में पुण्य का परिणाम शुभराग आये न, दया का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का, यात्रा का, वह मुझे कल्याण का कारण है। ऐसी मिथ्यादृष्टि मूढ को विपरीत श्रद्धा रहती है, जिससे उसका जन्म-मरण की गाँठ गलती नहीं। जिसको ग्रंथिभेद कहते हैं, ग्रंथिभेद। राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया और आत्मा--दोनों भिन्न है ऐसा भास हुए बिना राग से धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। तत्त्वार्थ का श्रद्धान है, सम्यग्दर्शन, भान नहीं।

'**तथा प्रवचनसार में कहा है कि आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नहीं है।**' लो, आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नहीं है। आत्मा का ज्ञान हुए बिना तेरा तत्त्वश्रद्धान भी राग का कारण है, पुण्य का कारण है, स्वर्ग मिलेगा। जन्म-मरण का अंत तो होगा नहीं। समझ में आया? आये हैं कि नहीं आये हैं भाई? नहीं आये होंगे। दुर्गादासजी नहीं आये हैं, लड़के के पास है, लड़के के पास है। कहा, चिंता मत करीये। लड़कों को कहा, महेमान है।

'**तथा व्यवहारदृष्टि से सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे हैं...**' सम्यग्दर्शन के

आठ अंग हैं न? निःशंक आदि। पच्चीस दोष टाले। समझे? संवेग आदि वैराग्य करे। **'उनको धारण करता है; परन्तु जैसे बीज बोए बिना खेत के सब साधन करनेपर भी अन्न नहीं होता,...'** ज़मीन बहुत साफ की, बोर का वृक्ष गहराई से निकाल दिया, कँकर निकाल दिये, साफ। परन्तु बीज बोए बिना फ़सल होती नहीं। फ़सल कहते हैं न? क्या कहते हैं? हिन्दी में... अपने में कहते हैं न मोल, अपने में मोल कहते हैं। बीज के बिना, बीज बोए बिना फ़सल होती नहीं। चाहे जैसा खेत साफ किया, कँकर निकालकर। हमारे 'खस' (एक गाँव) में रायचंद कुम्हार थे। बहुत साफ करे, बहुत साफ करे। रायचंद नहीं? दीक्षा ली थी। ऐसा खेत साफ करे, बीज बोए नहीं। घास हो।

ऐसे अनादि काल का अज्ञानी आत्मा पुण्य और पाप की क्रिया में सुधारकर ज्यादा से ज्यादा पुण्य का सुधार करे और राग मंद करे, राग मंद करे, कोमलता करे, सेवा करे, कोमल, कोमल, कोमल.. लेकिन वह राग मंद किया वह तो खेत साफ हुआ, लेकिन अन्दर में ज्ञानानंद का बीज बोए बिना सम्यग्दर्शन का अनुभव होता नहीं और सम्यग्दर्शन का अनुभव हुए बिना जन्म-मरण की गाँठ उसको गलती नहीं। जन्म-मरण में उसको रुलना ही पड़ता है। समझ में आया?

देखो भाई! यहाँ पच्चीस दोष टाले ऐसा कहा है। व्यवहार है न, व्यवहार। पच्चीस दोष है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को टाले, उसको माननेवालों को भी धर्मी माने नहीं, ऐसे पच्चीस दोष टाले। परन्तु आत्मा चिदानंद भगवान ज्ञानानंद प्रकाशमूर्ति, उसके सन्मुख हुए बिना ऐसी क्रिया से कभी मोक्ष का लाभ होता नहीं। ओहोहो..! बहुत कठिन जगत को। समझ में आया? लोगों को बाहर की बहुत पड़ी है, बाहर की।

एक बार कहा था न? वह मुंबई आये थे न? मुंबई, (संवत) २०१५ की साल में, नहीं? झवेरी बज़ार में चार लाख का मन्दिर (बना)। बड़ी धामधूम, लाखो लोग। अंतिम रथयात्रा में हम साथ में थे न। अंतिम रथयात्रा थी। तोलाराम अभी गुजर गये न? तोलाराम मारवाड़ी नहीं? वच्छराजजी ने यहाँ मकान बनाया न? तीन भाई। आठ-दस वर्ष पहले एक-एक को अस्सी-अस्सी लाख का बटवारा हुआ था। एक-एक को अस्सी-अस्सी लाख (आये)। तीन भाई हैं। .. सवा लाख डाले। गोगीबाई ब्रह्मचारी। फिर (संवत) २०१४ की साल में उसने १४ लाख का मन्दिर बनवाया, लाड़नू में। उसका पिताजी का नाम रखकर, तीन भाईओं के बीच १४ लाख का मन्दिर बनवाया। फिर यहाँ रथयात्रा में हमारे साथ थे। लोग बहुत थे न। ऊपर खचाखच.. ओहोहो..! क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? कालबादेवी आधा-पौना घण्टा बन्द। जनता चल सके नहीं, इतने लोग। वह सेठ मेरे साथ थे, तोलाराम। अभी चल बसे, आठ दिन पहले,

शुक्रवार को। वह कहे, महाराज! मेरे शहर में ऐसा बना दो न। मेरे लाड़नू में ऐसा बना दो। अरे.. सेठ! वह करने से होता है? मुंबई का वैभव कहीं लाड़नू में आये? लेकिन वह बाह्य की महिमा। प्राणभाई! भोले थे बेचारे, बहुत बुद्धि नहीं थी। गजराजजी की बुद्धि थी, छोटे गजराजजी है न? उनकी बुद्धि बहुत। तीन भाई हैं, वच्छराजजी, छोटे गजराजजी और बड़े तोलाराम। बड़ी कंपनी है वहाँ कलकत्ता। ऐसी चीज मेरे (लाड़नू में कर दो)। लेकिन बाहर की चीज क्या आत्मा कर सकता है? धन्नालालजी! यह तो उसके कारण से आता है और जाता है। आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा तो, या तो शुभराग करे, या अशुभराग करे, अभिमान करे अथवा ज्ञाता-दृष्टा होकर जाने की मेरा कुछ कार्य है नहीं। लोगों को बाहर की महिमा.. ओहोहो..! १४ लाख का मन्दिर बनाया तब आप के घर ऐसी शोभा नहीं थी? महाराज! ऐसी तो नहीं थी। प्राणभाई! बहुत लोग और साथ में मैं था न, सब सेठ साथ में रथयात्रा में, बड़े-बड़े करोड़पति साथ में थे। लोगों को ऐसा लगे, आहाहा..! लोग देखने निकले। क्या है यह? समझे? सौ साल में ऐसा नहीं हुआ था, हाँ! ऐसी रथयात्रा हुई। दो हाथी पर सुवर्ण का डाला था, सेठ का आया था न? सर हुकमीचंदजी सेठ का हाथी का सुवर्ण का सामान इन्दौर से आया था। लोग तो देखकर... ओहोहो.. ये! भाई! वह तो पूर्व पुण्य का ठाठ है। समझ में आया? धर्म नहीं। उसमें शुभराग प्रभावना में हुआ हो तो पुण्यबन्ध का कारण है। उस चीज के कारण से नहीं। अपने में राग शुभ हो कि ऐसी प्रभावना हो, ऐसा हो, दया, दान.. बाहर में लोग जाने, समझे ऐसा भाव हो तो उससे पुण्य बन्धे और राग से भी मैं पृथक् ज्ञानानंद हूँ ऐसी अंतर की दृष्टि किये बिना आत्मा को धर्म तीन काल तीन लोक में होता नहीं। ओहोहो..!

गले के नीचे बात उतरनी कठिन। नये लोगों को तो यह ऐसा लगे... हैं? यह तो गले के नीचे उतरना कठिन है। समझे न? गले के नीचे न उतरे तो उसकी माँ बेलन डालती है न? बेलन डालकर मोसंबी डाले। उसमें तो जबरजस्ती (करे) समझे बिना (कि) जल्दी बैठे...। धीरे-धीरे विचार करे कि हम क्या मानते हैं? और सत्य का स्वरूप क्या है? ऐसी तुलना करे, तुलना। बनिये तो तुलना बहुत करते हैं। एक ज्वार हो तो तुलना करे, यह ज्वार अच्छी है और यह बाजरा अच्छा है। यह हीरा अच्छा और यह हीरा खराब है। यह कपड़ा अच्छा और यह कपड़ा खराब है। प्राणभाई! भींडी की सब्जी लेने जाये तो जाँच करे। सड़ा न हो, ऐसा न हो... उसको क्या कहते हैं? कीड़ा पड़ा न हो, चूवो.. चूवो। वह सब स्वतंत्र भाषा होती है। करेले में चूवा न हो। भींडी होती है न? भींडी, उसमें बहुत ढंढे। चार पैसे का सेर। अभी तो चार पैसे का कहाँ मिलता है? यह तो पहले की बात है। अभी चार आना

या ऐसा कुछ है। वहाँ क़ीमत करे। 'हीरा माणेक परख्या, परख्या हेम कपूर, पण एक न परख्यो आत्मा, त्यां रह्यो दिगमूढ'। अनादि काल से आत्मा क्या चीज है? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा जिसको तीन काल तीन लोक का ज्ञान है, वह आत्मा किसे कहते हैं? और धर्म क्या है? उसकी पीछान उसने की नहीं।

तो कहते हैं, पच्चीस दोष टाले, (संवेगादिक) धारे, '**परन्तु जैसे बीज बोए बिना खेत के सब साधन करनेपर भी अन्न नहीं होता, उसी प्रकार सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान हुए बिना...**' लो, यह सारांश। जब तक सम्यक् सच्ची तत्त्व की श्रद्धा, जीव, अजीव, पुण्य-पाप, बन्ध, मोक्ष का क्या स्वरूप है, उसकी श्रद्धा बिना समकित होता नहीं। कहो, समझ में आया? '**पंचास्तिकाय व्याख्या में जहाँ अन्त में व्यवहाराभासवाले का वर्णन किया है वहाँ ऐसा ही कथन किया है।**' अनन्त बैर प्रभु! तूने महाव्रत पाले, महाव्रत--पंच महाव्रत। वह तो राग है पंच महाव्रत, पर ऊपर लक्ष्य जाता है। उसको न मारना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालना वह सब तो राग है, विकल्प है, पुण्यबन्ध का कारण है। लेकिन वह महाव्रत पालने पर भी महाव्रत से पार आत्मा क्या है, दृष्टि का अनुभव किया नहीं तो तेरा एक भव भी कम नहीं हुआ। पोपटभाई! वहाँ तो पाट पर बैठकर कहे, जय नारायण! सच्ची बात होगी, भाई! अपने से कुछ त्यागी होकर बैठे हैं न, कुछ समझे तो होंगे न। अरे..! बापू! उस समझ का घर प्रभु! बहुत महँगा है, हाँ! सच्ची समझ का घर बहुत गहरा, महँगा और उसका स्थल भी बहुत क़ीमती अलौकिक है। व्यवहार का अन्त में बहुत वर्णन किया है, ऐसा जान लेना। उसका भी कुछ फल है नहीं। लो, अब वह.. अब आया, हेमराजजी और दुलचंदजी .. दो नय। अब, थोड़े दिन रहे न। कल से आठ दिन रहे, बारह दिन बाकी रहे क्लास के।

यह विषय थोड़ा सूक्ष्म है। विचार करनेवाले के लिये अंतर की भूल कहाँ रह जाती है, उसका यह मक्खन है। थोड़ा परिचय करना पड़े, भाई! क्या नाम बड़े का? हसमुखभाई! यूँ ही नहीं मिल जायेगा, वहाँ लादी और पत्थरमें से। बहुत अभ्यास करे, निवृत्ति ले, थोड़ा-बहुत सुने तो उसकी तुलना करे तो यह समझ में आये ऐसा है। पिताजी मानते हैं इसलिये अपने सच्चे हैं, ऐसा भी नहीं चलेगा। हैं? पोपटभाई ने पिताजी ने यहाँ किया इसलिये ठीक है, ऐसा भी नहीं चलता यहाँ तो। उसको स्वयं को जाँच करनी चाहिये कि क्या चीज है? अन्दर से जाँच, अवलोकन जड़ का, चैतन्य का, विकार का, निर्विकार का क्या अवलोकन है और क्या विपरीतता है, यह स्वयं जाँच किये बिना (कार्य नहीं होता)। लोक में ऐसा कहते हैं न? नहीं, मैं स्वयं जाँच करुँगा बाद में कहुँगा, आपने जाँच की लेकिन मैं स्वयं जाँच करुँगा। शेठी! करते

होंगे कि नहीं? महेन्द्रभाई वहाँ करे कि मैं सब खातावही जाँचूँगा। भले आपने ... लिखा हो। मैं जाँच लूँग सब, कितना आया, कितना गया, कितनी कमाई हुई, बारह महिने में कितनी बढ़वारी हुई? बनिये को तो दिमाग में दिखता हो। क्यों कुंवरजीभाई! ममता तो दिखती हो। ममता कहता हूँ, ममता। दस लाख थे, उसमें पचास हज़ार, पचहत्तर लाख इस साल बढ़े, पचास हज़ार का खर्च हुआ, ग्यारह लाख हुए, इतना पैसा लेना है, इतना यह, यह माल महँगा आया और अब सस्ता हुआ इसलिये इतना नुकसान है, सब नज़र के सामने दिखे। बिना लिखे, बिना ... दिमाग में दिखाई दे। भाईलालभाई! यह तो अनुभव की बात है कि नहीं?

यहाँ क्या है? अनंत काल से क्यों नुकसान हुआ? मुनाफा कैसे मिलता है? कितना मुनाफा मिला? कितना नुकसान हुआ? मैं मुनाफा के पंथ में हूँ? या नुकसानी के पंथ में हूँ?

मुमुक्षु :-- हिसाब देने आने पड़ेगा।

उत्तर :-- बात सच्ची है।

अब यहाँ, २५३ पृष्ठ, इसमें ३५०वाँ पृष्ठ है, (उभयाभासी मिथ्यादृष्टि)। क्या कहते हैं देखो। '**अब, जो निश्चय-व्यवहार दोनों नयों के आभास का अवलम्बन लेते हैं...**' क्या कहते हैं? आत्मा निश्चयाभासी... निश्चय यानी सत्य की खबर नहीं, लेकिन सत्य का आभास, लेबास। मैं सिद्ध समान आत्मा हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मेरी दशा में राग भी नहीं ऐसा माननेवाला, निश्चय सत्य का आभास नहीं है, सत्य का आभास नहीं है लेकिन निश्चय का खोटा आभास (है), सत्य का मानता नहीं। मैं सिद्ध समान हूँ, मेरे में राग ही नहीं है। ओहो..! मैं तो शुद्ध निर्मल सच्चिदानंद हूँ। सच्चिदानंद बात तो स्वभाव में है। तेरी दशा में यदि शुद्धता हो तो यह परिभ्रमण किसका? हैं? तेरी दशा--हालत...

सुवर्ण की तो सोलह वाल--उसकी शक्ति है, लेकिन पर्याय की दशा में दो वाल तांबा या कथिर साथ में हो उसको सोलह वाल माने तो मूर्ख है। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा अन्दर में स्वभाव तो उसका शुद्ध है। जैसे छोटीपीपर (में) चौसठ पहोरी चरपराई (है), लेकिन प्रगट हुए बिना ऐसे ही पूरी पीपर खाने लगे तो चौसठ पहोरी चरपराई लगेगी? लगे कि नहीं? अन्दर चरपराई है, चरपराई है। लेकिन चरपराई तो प्रगट घिसकर करे तो प्रगट होती है। यूँ ही तू चौसठ पहोरी खा, चरपराई नहीं लगेगी। तीखास समझे? चरपराई आप की भाषा में, चरपराई। एक-एक पीपर में चौसठ पहोरी चरपराई है। लेकिन वह प्रगट कर तो दशा में आनेवाली है। प्रगट किये बिना तू (माने कि) उसमें चोसठ पहोरी है तो मैं खाऊँ गरमी लाने को (तो ऐसा नहीं

होता)। देते हैं न? चौसठ पहोरी बहुत होती है, एक वाल दे। मरते समय भी बहुत ठंडा हो जाय तो वह दे अथवा सेका हुआ चना, अब तो चना-बना कौन देता है? इंजेक्शन हो गये अब तो। पहले तो सेका हुआ चना और सोंठ (देते थे), मरते वक्त बहुत झुकाम हो, ठंडा होने लगे अंतिम स्थिति में, तब (कहे) लगाओ दाळिया। दाळिया समझे? दाळिया नहीं समझते? चना, चना, पक्का चना, भुँजा हुआ चना। उसका करे आटा, उसमें डाले सोंठ। ठण्ड हो तो लगाये, और यह क्या कहते हैं? कम्बल। ऊन का कम्बल ओढाये। आयुष्य हो तो बचे, नहीं तो मर जाये। ओढा हुआ देखा है, सोंठ लगायी हो तो भी मर जाये। समझ में आया?

कहते हैं कि उसमें गरमी होती है न? तो एक वाल दे तो भी उसमें गरमी बहुत है, चौसठ पहोरी प्रगट हुई उसमें। लेकिन ऐसे ही दो-पाँच दाना दे दे वाल जितनी, चौसठ पहोरी वाल जितनी चरपराई होती है उसमें? नहीं। प्रगट पर्याय बिना अवस्था प्रगट हुए बिना शुद्धता आती नहीं।

ऐसे आत्मा तो अन्दर शुद्ध है, परिपूर्ण निर्मल है, आनंदकंद ही है। मोक्ष होने के लायक उसमें चीज है, अंतर में। लेकिन दशा में--हालत में--वर्तमान पर्याय में, जैसे पीपर की वर्तमान में चरपराई थोड़ी है और काली है, अन्दर में हरी और तीखी है, अन्दर में रंग लीला.. लीला समझते हो? हरा, अन्दर में रंग हरा, मेहँदी की छाप में हरा रंग हुआ है, मेहँदी की छाप में, मेहँदी है न? ऐसे हरा, अन्दर लाल। ऐसे भगवान आत्मा उसकी वर्तमान दशा में राग और द्वेष की हरा रंग दिखता है, अंतर में आनंद और शुद्धता का रंग भरा है। भगवान जाने कहाँ होगा और क्या होगा? उसमें माने, वह बात बराबर। हरा रंग दिखे और घूटने से लाल हो। मेहँदी होती है न? लगाते हैं कि नहीं? नख को लाल करने को। पुनः कोई यहाँ लगाये तो हाथ लाल हो जाये। हाथ के साथ अँगूली रखे तो अँगूली भी लाल हो जाये। अँगूली होती है न? अँगूली ऐसे रखे। है तो हरी, लाल कहाँ-से आया? अंतरमें से।

ऐसे यह भगवान आत्मा प्रत्येक आत्मा में अन्दर ज्ञान और आनन्द पूर्ण पड़ा है, लेकिन उसकी वर्तमान दशा जैसे काली दिखती है छोटीपीपर की और हरा रंग तो है नहीं और चरपरी भी बहुत थोड़ी (है)। ये खारीपीपर करते हैं न? खाना खाने के बाद दो-चार खाते हैं न? खारी-खारी। वह खारी चौसठ पहोरी हो? ऐसे अनादि से कितने ही निश्चयाभासी अज्ञानी सत्य का भान नहीं, अपनी दशा में मैं पवित्र हूँ, मैं तो भगवान हूँ, मैं शुद्ध हूँ ऐसा माननेवाले को भान है नहीं। तेरी वस्तु में शुद्धता है। प्रगट कर सम्यग्दर्शन, ज्ञान से तो होगा। ऐसे प्रगट मान ले, भ्रमणा में पड़ा है। समझ में आया? यह निश्चय कहा।

और व्यवहार। व्यवहार क्या? अपनी दशा में दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, कुल की परंपरा से राग की मंदता करके, क्रिया करते–करते मुझे धर्म होगा, पहले ऐसा करें फिर धर्म होगा, ऐसा माननेवाला व्यवहार–आभासी (है)। व्यवहार का सच्चा ज्ञान करनेवाला नहीं है, परन्तु व्यवहार का भेष पहना है। शाहुकार नहीं लेकिन शाहुकार का भेष। भाईलालभाई! आपके एक थे न? वसंतजी कच्छी, जे.पी. थे न? वसंतजी त्रिकमजी ऐसा कुछ था। उसका नाम लेकर लड़का यहाँ लिखे। उसका लड़का नहीं था, ढोंगी था। मैं वसंतजी त्रिकमजी का लड़का हूँ, जे.पी. का। मैं यहाँ इतना रूपया देता हूँ। साढे तीन हजार दिये। बोस्की का कपड़ा पहना था, साथ में स्त्री और कहे कि यह मेरी भतीजी है इसका मंगनी करनी है। फिर एक समयसार दिया। साढे तीन हजार दिये, फिर यहाँ–से चला गया। दे कहाँ? लिख दिया। यहाँ बैठा था, फिर आगे बुलाया। ऐसे भी ढोंगी होते हैं। कहाँ.. ढोंग (करता है)। बोस्की का कपड़ा पहना था, सोने की (अँगूठी) पहनी थी। जे.पी. वसंतजी त्रिकमजी का लड़का हूँ। भतीजी की मंगनी करनी है।

ऐसे आत्मा अनादि से वर्तमान दशा में पवित्रता प्रगट हुए बिना, मैं पवित्र हूँ, पवित्र हूँ, पवित्र हूँ ऐसा मान ले, ठगा जायेगा। और व्यवहार की क्रिया करते–करते, दया करके, दान करके, भक्ति करके, भगवान की पूजा करते–करते कल्याण होगा। धूल में भी नहीं होगा। वह तो राग, पुण्य है। पुण्य आये बिना रहता नहीं। पाप न हो तब पुण्य आता जरूर है। पुण्य होता है, धर्मी को भी पुण्य तो आता है। पूजा, भक्ति आदि। लेकिन वह पुण्यबन्ध का कारण सम्यग्दृष्टि––धर्मी जानते हैं। उससे रहित मेरी चीज (है)। अगाध आनन्द अन्दर मेरा पड़ा है, उसके अनुभव की स्थिरता जितनी हो उतना धर्म (है)। जितना राग आया, व्यवहाराभासी उस राग को ही धर्म मानता है। है न?

‘**निश्चय–व्यवहार दोनों नयों के आभास का...**’ आभास यानी भास। भान नहीं, सत्य का ख्याल नहीं, व्यवहार का ख्याल नहीं। किसको निश्चय कहना, किसको व्यवहार कहना, खबर नहीं। नाम ले लिया कि हमें दोनों नय हैं। ‘**ऐसे मिथ्यादृष्टियों का निरूपण करते हैं।**’ उसका कथन करने में आता है।

‘**जो जीव ऐसा मानते हैं...**’ जो जीव ऐसा मानते हैं ‘**जिनमत में...**’ वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा, उसका अभिप्राय––उसके मार्ग में ‘**निश्चय–व्यवहार दोनों नय कहते हैं,...**’ दोनों नय है, दोनों ज्ञान के अंश हैं। दोनों ज्ञान के अंश हैं। समझ में आया? ज्ञान का अंश क्या? नय क्या? आत्मा वस्तु है वस्तु, उसमें एक ज्ञानगुण त्रिकाल है। उसकी वर्तमान दशा में वह त्रिकाल द्रव्य वस्तु क्या और वर्तमान

दशा की कितनी कम है, विकार से और निर्विकार से, उसका ज्ञान करना। तो दोनों ज्ञान करने को प्रमाणज्ञान कहते हैं। प्रमाण--अखण्ड पूर्ण ज्ञान। और उस प्रमाणज्ञान का एक भेद--अवयव उसको नय कहते हैं। नय यानी ज्ञान का एक (अंश)। वस्तु का एक धर्म नाम एक भाव को जाननेवाला ज्ञान का अंश को नय कहने में आता है। सुना भी न हो यह, नय माने क्या?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नय, नय। लोग न्याय नहीं कहते? यह न्याय है। न्याय यानी क्या? नय। नि अर्थात् जिस प्रकार का वस्तु का स्वरूप है, उस ओर ज्ञान को ले जाना उसको नय कहते हैं। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के पंथ में पूर्ण वस्तु का ज्ञान करना उसको प्रमाण कहते हैं। प्रमाण। पूरी चीज में पूर्ण द्रव्य हूँ, शक्ति से पूर्ण हूँ, पर्याय में अपूर्णता है और राग है। उन सब का एकसाथ ज्ञान करना वह प्रमाण है। प्र-माण--माप ले लिया। पदार्थ का माप ले लिया कि पदार्थ ऐसा है। और उस प्रमाण के एक अंश को--अवयव को--भाग को नय कहते हैं। कि जो नय का ज्ञान त्रिकाल वस्तु को जाने वह निश्चय। वर्तमान भेद, राग और अपूर्णता को जाने वह व्यवहार। ऐसी तो खबर है नहीं और मानते हैं कि हमें तो दोनों नय का साधन करना है। सूक्ष्म बात है, पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- ....

उत्तर :-- सूक्ष्म नहीं है?

'**दोनों नय कहते हैं, इसलिये हमें उन दोनों को अंगीकार करना चाहिये...**' लो, भगवान ने दो नय कहे हैं--व्यवहार और निश्चय। व्यवहार यानी यह आप का धंधे का व्यवहार नहीं, हाँ! धंधा-बंधा का व्यवहार नहीं। एक बार वह आये थे न? मंगलदास। मंगल जेसंग, जेसंग उजमशी। यह बड़ी है न? सात-आठ करोड़ रूपया है। शांतिभाई के पिताजी। यहाँ आते हैं, आये तो (सही), यहाँ सब आते हैं। एक बार आये थे, बहुत बार आते थे। मंगलदास जीवित थे, पुनर्विवाह किया था। शांतिलाल के पिताजी। उन दिनों में इतना पैसा नहीं था, साठ लाख जितना था। वह कहे, महाराज! आप व्यवहार-व्यवहार कहते हो, लेकिन हमें रोग आये तो दवाई नहीं करनी? अरे..! सेठ! क्या कहते हो? आप को कुछ मालूम नहीं। रूपया का स्वामी बनकर बैठे, भाईलालभाई! हमें सेठ से कुछ लेना तो नहीं था। उन दिनों में साठ लाख थे, हाँ! यहाँ (संवत) १९९४ के वर्ष में यह मकान हुआ, तब आये थे। १९९१-९२ में वहाँ हीराभाई के मकान में आये थे। बहुत बार (आते थे), भावनगर आये तो तब दर्शन करने आये, गाड़ी लेकर। कहा, व्यवहार आपने सुना नहीं, जैन में आप

का जन्म हुआ और आप को, यह खातावही, वह खातावही बदली, पाँच लाख मिला, सांठ के पैंसठ हुए, क्या है उसमें? वह व्यवहार हम यहाँ कहते हैं? आपका दवाई करने का व्यवहार? वह व्यवहार कौन कहता है?

यहाँ तो आत्मा का भान हो, मैं अखण्ड शुद्ध चैतन्य सच्चिदानंद आत्मा पवित्र भगवान, उसकी पर्याय प्रगट पवित्र दशा हुई, उसमें पूर्ण पवित्रता न हो तब तक दया, दान का भाव आता है उसको व्यवहार कहने में आता है। कितने ही साल से... उसके पिताजी को तो कुछ परिचय था, अगास में थे। जेसंगभाई थे न? जेसंग उजमशी। अगास में लल्लुजी थे न? ... समझ में आया?

कहते हैं, हमें तो दो नय है, निश्चय भी है, व्यवहार भी है। दोनों आदरणीय है। देखो! अंगीकार कहा है न? '**हमें उन दोनों को अंगीकार करना चाहिये।**' लेकिन दो अंगीकार हो सकती नहीं, तुझे मालूम नहीं। समझ में आया? '**ऐसा विचारकर...**' हमें तो, त्रिकाल द्रव्य है उसकी पर्याय में निर्मलता हो.. उसको निर्मलता तो हुई नहीं है, परन्तु हमें निश्चय भी अंगीकार करना है और व्यवहार भी अंगीकार करना, आदरणीय मानना। निश्चय भी आदरणीय है और दया, दान का विकल्प उठते हैं वह भी हमें उपादेय नाम आदरणीय है। क्योंकि भगवान ने दो नय कहे हैं, एक भी नय छोड़ नहीं सकते और वस्तु समझ में आये नहीं। समझ में आया?

'**ऐसा विचारकर जैसा केवल निश्चयाभास के अवलम्बियों का कथन किया था,...**' पहले। मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, केवलज्ञानमय हूँ, मेरे में राग है नहीं, पवित्रता ही है। पर्याय में भी हाँ! '**वैसे तो निश्चय का अंगीकार करते हैं।**' मैं तो पवित्र परमात्मा हूँ, मुझे कुछ है नहीं। बड़ी बात है, तो यह इच्छा किसको उत्पन्न होती है? खाने की, पीने की इच्छा उत्पन्न होती है वहाँ परमात्मपना आया कहाँ-से? समझ में आया? वह तो राग है और तुम कहते हो कि मैं पवित्र हूँ, पवित्र हूँ। खाने का राग, पीने का राग, सोने का राग, वह सब राग है, इच्छा है, वृत्ति है, विकल्प का उत्थान है, विकार का उत्थान है। वहाँ मान लेना कि मुझे तो मोक्ष है, मुझे तो मोक्ष ही है। ऐसा माननेवाला निश्चय को अंगीकार करके मानता है लेकिन वह मिथ्यात्व है, उसको खबर नहीं। '**और जैसे केवल व्यवहाराभास के अवलम्बियों का कथन किया था, वैसे व्यवहार का अंगीकार करते हैं।**' हम दया पालते हैं, पुण्य करते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं वह व्यवहार है और व्यवहार है वह हमारा नय का विषय है, हमें लाभदायक है।

'**यद्यपि इस प्रकार अंगीकार करने में दोनों नयों के परस्पर विरोध है,...**' थोड़ी सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध तो शक्ति में--स्वभाव में है और प्रगट

पर्याय--दशा में शुद्धता प्रगट करे तो उसको निश्चय कहने में आता है और साथ में अभी राग रहता है, भक्ति, पूजा, दया, दान (का भाव) आता है धर्मी को भी, लेकिन वह राग है, उसको जानना कि यह राग है, उसका नाम व्यवहार (है)। समझ में आया? लेकिन वह राग है वह अंगीकार करने लायक है और निश्चय भी अंगीकार करने लायक है, मूढ है, तुझे भ्रमणा हो गयी है।

'**दोनों नयों के परस्पर विरोध है,...**' देखो! एक ज्ञान का अंश कहता है कि मैं पवित्र हूँ, दूसरा ज्ञान का अंश कहता है कि, मेरे में अपूर्णता, राग और निमित्त है। तो दो का विषय विरुद्ध है। तो दो को अंगीकार करना ऐसा बन सकता नहीं। समझ में आया? '**दोनों नयों के परस्पर विरोध है, तथापि करे क्या? सच्चा तो दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं,...**' निश्चय किसको कहते हैं? निश्चय नाम सत्य, व्यवहार नाम आरोपित काम। सत्य भगवान आत्मा... कबीर में भी सत्यनाम भगवान ऐसा बोलते हैं। उसको भी खबर नहीं है सत्यनाम क्या है? अन्दर सत्य परमात्मा.. ऐसी बातें बहुत करे। समझे न? वहाँ एक है न? राधा-कृष्ण बड़ा पंथ है, आगरा में। आगरा में हम गये थे न। देखने तो सब आये न। लोगों को मालूम पड़े कि बड़ा संघ आया है। अन्दर सब बताया। साढे तीन करोड़ रूपया तो मकान एक मजला भी नहीं किया उसमें डाल दिये, साढे तीन करोड़। अभी मजला नहीं बनाया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं। भाईने देखा है। अभी तो साधारण खँभे हैं। उसमें .. क्या कहते हैं? अंगूर आरस में चित्र बनाया है। साढे तीन करोड़ का। अभी साधारण मकान। उसमें तो कितना ही खर्च करना होगा। वह सब कहते थे। उसका फोटो था न, अन्दर फोटो था। ... सब-से बड़ा हो गया। अन्दर लिखा था। क्या बड़ा किसको कहना? अरे.. भाई! बापू! वह चीज आत्मा सच्चिदानंद प्रभु पूर्ण, उसका अंतर अनुभव करना और इसमें थोड़ी कचास है, पूर्णता नहीं है तो राग आता है जरूर, धर्म का श्रवण का, भक्ति का, पूजा का, दान का, यात्रा का, उस भाव को जानना कि है, उसका नाम व्यवहार है। उस भाव का आदर करना और निश्चय का भी आदर करना, वह तो परस्पर विरूद्ध हुआ। दोनों का आदर करने में तो विषय विरूद्ध है, दोनों की आराधना हो सकती नहीं। समझ में आया?

'**करें क्या? सच्चा तो दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं, और जिनमत में दो नय कहे हैं...**' दोनों कहा है, निश्चय भी कहा है और व्यवहार भी कहा है, नहीं है ऐसा नहीं। '**उनमें से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता,...**'

व्यवहारनय छोड़े तो निश्चय का एकांत हो जाता है, निश्चय छोड़े तो व्यवहार का एकांत व्यवहाराभासी हो जाता है। क्या करें? समझ में आया नहीं कि व्यवहार-निश्चय क्या है? हमें तो दोनों को अंगीकार करना। भगवान ने दो नय कहे हैं, भगवान ने कहा है कि नहीं? मुनियों ने कहा है कि नहीं? देखो, कुन्दकुन्दाचार्य महाराज धर्मधोरी, उन्होंने भी व्यवहारनय कहा है। कौन ना कहता है? सुन तो सही। क्या कहा है?

भगवान आत्मा अपना शुद्ध चिदानंद स्वरूप, अनुभव दृष्टि सम्यग्दर्शन प्रगट करे वह निश्चय है। उसका आश्रय लिया है। और उसमें राग भक्ति आदि भाव, साधर्मी प्रति प्रेम, प्रभावना ऐसा राग होता है। वह जानना कि इस भूमिका में ऐसा है। उसका नाम व्यवहार है। व्यवहार आदरणीय है और निश्चय आदरणीय है, ऐसी दो बात तो भगवान ने कभी कहीं नहीं कही। समझ में आये नहीं कि क्या करना? दोनों लेना, दोनों मानना।

**'दो नय कहे हैं उनमें से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, इसलिये भ्रमसहित दोनों का साधन साधते हैं,...'** भ्रमणा से। देखो! साधन यानी निश्चय का भी साधन साधे, व्यवहार का भी साधे। दो का साधन होता नहीं। दो का साधन होता नहीं, साधन एक होता है--अंतर निश्चय का। और राग आये वह जानने लायक है। साधन दो का नहीं होता, साधन एक का होता है। दोनों साधन साधें तो अपने दोनों नयों को माना कहा जाय, ऐसा करके माने, लेकिन वस्तु की खबर नहीं है। क्यों नहीं है उसकी विशेष बात करेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**श्रावण वद-२, शुक्रवार, दि. १७-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ९**

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अध्याय, उसमें दो नय के अवलम्बनवाले का कथन है। निश्यियनय का क्या स्वरूप है और व्यवहारनय का क्या स्वरूप है, उसे जाने बिना दोनों का अवलम्बन का हम साधन करते हैं, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। उसका कथन चलता है। समझ में आया? जैनमत में दो नय कहे हैं, जैनमत में दो है न?

दूसरे में कहा है, लेकिन वह साधारण परमार्थ और व्यवहार उपचार की बात की है। वीतराग अभिप्राय में दो नय का कथन चला है। संप्रदाय में दिगंबर में जन्म हुआ फिर भी... उसकी बात चलती है। दिगंबर में जन्म हुआ उसकी बात। जन्म होनेपर भी निश्चय क्या, व्यवहार क्या, हमें तो दोनों नय का साधन साधना। क्योंकि दो नय जैनमत में तो चली है। तो भ्रमणा से निश्चय का भान बिना और व्यवहार किसको कहते हैं उसका ज्ञान बिना दोनों का साधन साधना, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। '**इसलिये भ्रमसहित दोनों का साधन साधते हैं; वे जीव भी मिथ्यादृष्टि जानना।**' ओहो..! दो नय का साधन करना। दो नय है कि नहीं? आता है, देखो!

'**अब इनकी प्रवृत्ति का विशेष बतलाते हैं :-- अंतरंग में आपने तो निर्धार करके निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग को पहिचाना नहीं,...**' दिगंबर में जन्म हुआ उसको लागू पड़ता है। श्वेतांबर आदि को तो यहाँ अन्य मत में डाल दिया है, पंचम अध्याय में। दिगंबर में जन्मने के बावजूद, निश्चय का क्या स्वरूप, व्यवहार का क्या स्वरूप जाने बिना हम दोनों नय मानते हैं, दोनों नय मानते हैं और हम दोनों नय का साधन करते हैं। दोनों नय हम अंगीकार करते हैं। ऐसा माननेवाले की दृष्टि में क्या है? '**अंतरंग में आपने तो निर्धार करके निश्चय...**' क्या निश्चय मेरा अखण्ड गुणस्वरूप, मेरा आत्मा अनंत गुण का पुंज उसका आश्रय करे जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट हो, उसको निश्चय कहते हैं। इसका तो निर्धार है नहीं, नक्की है नहीं, जैसा कहा वैसा कल्पना से मान ले कि हम तो निश्चय मानते हैं। सिद्ध समान हमारा स्वरूप है। हमारी पर्याय में मलिनता-फलिनता है नहीं। ऐसा निश्चय को सत्यार्थ निर्धार किये बिना निश्चय को मानते हैं।

और व्यवहार, वह भी निर्धार करते नहीं कि व्यवहार किसको कहना। समझ में आया? अन्दर में आत्मा में निश्चय का भान होने के बाद अथवा निश्चय का भान के साथ में दया, दान, व्रत, भक्ति का राग आता है उसको जानना उसका नाम व्यवहारनय है। ऐसा तो निर्धार करते नहीं, नक्की करते नहीं। और दोनों '**मोक्षमार्ग को पहिचाना नहीं, जिनआज्ञा मानकर...**' वीतराग दो नय कहते हैं तो दो नय को हमारे मानना (है)। क्योंकि एक नय छोडेंगे तो एकांत हो जायेगा।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो दूसरी बात है। दो नय को छोड़ना नहीं उसका अर्थ--निश्चय है तत्त्व का स्वरूप है उसको यदि छोड़ेगा तो तत्त्व का नाश हो जायेगा और व्यवहार बीच में गुणस्थानभेद--चौथी, पाँचवी, छठवी भूमिका और राग का प्रकार है ऐसा तो जैसा है वैसा न जाने, तो व्यवहार छोड़ा ऐसा कहने में आता है। आदरणीय है ऐसी

बात नहीं। जिनमत प्रवर्तः जिनमत को प्रवर्ताना चाहते हो तो दोनों नय नहीं छोड़ना, उसका अर्थ क्या? कि यदि निश्चय छोड़ेगा तो तत्त्वदृष्टि नहीं रहेगी और व्यवहार छोड़ेगा तो बीच में भेद आता है गुणस्थान में, सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना राग की मंदता और तीव्रत, पहले तीव्र बाद में मंद, ऐसे पहले शुद्धि की मंदता, फिर वृद्धि ऐसा जो भेद पड़ता है वह व्यवहारनय का विषय है। उसको छोड़े तो गुणस्थानभेद रहता नहीं, तीर्थ रहता नहीं। आदरणीय नहीं। समझ में आया?

निश्चय का क्या स्वरूप है, जानते नहीं। व्यवहार किसको कहते हैं, जानते नहीं और हम दोनों नय का साधन करते हैं। दोनों को हम अंगीकार करते हैं। तो कहते हैं कि, '**जिनआज्ञा मानकर...**' निर्धार किये बिना, निश्चय किया नहीं। '**जिनआज्ञा मानकर निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दो प्रकार मानते हैं।**' यहाँ तो मोक्षमार्ग का लिया है न। मोक्षमार्ग दो प्रकार का मानते हैं। अज्ञानी निश्चय-व्यवहार का निश्चय निर्धार क्या चीज है उसका प्रबोध-बोध हुए बिना, बस, जिनाज्ञा हमारे तो, जिनाज्ञा दो नय की है, तो नय का दो मोक्षमार्ग है। कुन्दकुन्दाचार्य पंचास्तिकाय में कहते हैं, जीव धम्मादि सद्दणं... समझ में आया? और आत्मा की श्रद्धा वह निश्चयश्रद्धा और व्यवहार दोनों मोक्षमार्ग है। आर्ष में आचार्यों ने कहा है तो हमें दोनों मानना। समझ में आया? ऐसे जिनआज्ञा मानकर निश्चय नाम सत्यार्थ मोक्षमार्ग क्या है, व्यवहार नाम उपचार क्या है उसको जाने बिना मोक्षमार्ग दो प्रकार का मानते हैं।

'**सो मोक्षमार्ग दो नहीं है,...**' मोक्षमार्ग दो नहीं है। ओहोहो..! नहीं, टोडरमल घर का कहते हैं। हमारे तो आर्षवाक्य में दो मोक्षमार्ग चलता है, कुछ लोग ऐसा कहते हैं। अरे.. भगवान! गाथा का आधार पहले दिया। आचार्य ही कहते हैं कि व्यवहार अभूतार्थ है। जिसको मोक्षमार्ग व्यवहार से कहा, वह अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, व्यवहारमोक्षमार्ग मोक्षमार्ग है नहीं। ऐसा तो ११वीं गाथा में (कहा)। जैनशासन का प्राण ११वीं गाथा है। समझ में आया? '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार अभूतार्थ, असत्यार्थ, असत्य अर्थ को प्रगट करती है और शुद्धनय सत्यार्थ को, सत्य को, सत्य भाव को, सत्य अर्थ को प्रगट करती है। इस एक गाथा के पहले दो पद में पूरे शासन की तात्पर्य क्या चीज है, उस गाथा से उसका तात्पर्य निकलता है। समझ में आया?

दो मोक्षमार्ग मानते हैं। '**सो मोक्षमार्ग दो नहीं है,...**' मोक्षमार्ग दो नहीं है। बराबर है? दो मोक्षमार्ग नहीं है? तो क्यों कहा? आचार्यों ने क्यों कहा? और पुरुषार्थसिद्धि उपाय में भी दो मोक्षमार्ग चला है और दोनों मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है ऐसी गाथा है। समझ में आया? वह तो कहते हैं कि जो निश्चय मार्ग है वही यथार्थ और सत्य है। बीच में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का परिणाम, ग्यारह अंग

का बोध आदि, जो व्यवहार विकल्प उठते हैं उसको जानना, उस काल में जानना कि है, व्यवहारमोक्षमार्ग है। यानी कि व्यवहारमोक्षमार्ग है नहीं। समझ में आया? '**सो मोक्षमार्ग दो नहीं है, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है।**' मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है, उसकी कथनी का दो प्रकार है, उसका निरूपण का दो प्रकार है। परन्तु मार्ग दो है ऐसा नहीं। समझ में आया?

'**निरूपण दो प्रकार है।**' निरूपण नाम कथन। उसकी कथनी दो प्रकार की है, मार्ग दो प्रकार का है ऐसा नहीं। अब कथनी का प्रकार क्या है? '**जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपित किया जाय सो 'निश्चय मोक्षमार्ग' है।**' ये सब महासिद्धांत हैं। जहाँ सत्य मोक्षमार्ग अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य अखण्ड पूर्णानंद, उसका अंतर्मुख होकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की प्रतीति, सम्यग्दर्शनरूप प्रतीति, सम्यक् स्वसंवेदनरूप आत्मा का ज्ञान और आत्मा के स्वरूप में रमणता करना वह निश्चयचारित्र, वही सच्चा मोक्षमार्ग है, उसको मोक्षमार्ग कथन करना उसका नाम निश्चय है। समझ में आया?

'**और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नहीं,...**' आहाहा..! व्यवहार कहता है ऐसा है नहीं। व्यवहार कहता है कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, पूजा और ग्यारह अंग का ज्ञान, अट्ठाइस मूलगुण का पालन उसको हम व्यवहारमोक्षमार्ग व्यवहारनय से कहते हैं। उसका अर्थ व्यवहार कहता है कि मोक्षमार्ग है, निश्चय कहता है कि नहीं है। वह तो बन्ध का मार्ग को व्यवहारनय मोक्षमार्ग आरोप से कहती है। वस्तु ऐसी है नहीं। समझ में आया? टोडरमल तो व्यवहार और निश्चय निश्चय से कहते हैं। कहाँ गये चंदुभाई? पत्र दिया कि नहीं मधुकर ने? तो क्यों बात नहीं करते हैं? द्रव्यसंग्रह में व्यवहारमोक्षमार्ग इसप्रकार चला है और निश्चय इसप्रकार चला है। ऐसा सब आया है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? भैया! व्यवहारमोक्षमार्ग जो कहा है वह मोक्षमार्ग है तो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग अपना शुद्ध स्वरूप, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता की निर्विकल्प परिणति, निर्विकल्प निर्विकारी दशा सो निश्चयमोक्षमार्ग (है)। और मोक्षमार्ग में निमित्त है, निमित्त है। शुद्ध उपादान की अपनी परिणति है सो निश्चयमोक्षमार्ग है। समझ में आया? शुद्ध आत्मा पूर्णानंद प्रभु अखण्ड गुण की एक पूरी चीज, उसका आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन--निर्विकल्प प्रतीति होती है, उसका आश्रय से आत्मज्ञान उत्पन्न होता है, उसमें लीनता, लीनता वीतरागता होती है। वह निश्चय परिणति आत्मा का सच्चा मोक्षमार्ग (है)। समझ में आया? वह मोक्षमार्ग में निमित्त है, निमित्त है। कौन? व्यवहार निमित्त है। उसका अर्थ, वह आत्मा के निश्चय मोक्षमार्ग में अकिंचित्कर है। समझ में आया? जैसा निमित्त पर चीज में कुछ कार्यकारी नहीं, तो उसको निमित्त कहने

में आता है। समझ में आया? शेठी! इतने साल यूँ ही गँवा दिये। तुम्हारी बात करते हैं। कहते हैं कि जैन में दिगंबर में जन्म लिया, लेकिन निश्चय-व्यवहार क्या उसका निर्धार किया नहीं। चलो, मानते हैं हम तो, दो मोक्षमार्ग मानते हैं, दो मोक्षमार्ग मानते हैं। पुराना खानदान है दिगंबर का। समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**मोक्षमार्ग तो है नहीं,...**' और निश्चयमोक्षमार्ग में निमित्त है, निमित्त है। क्या? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग और ग्यारह अंग का पर तरफ का झुकाव का ज्ञान रागमिश्रित, वह सब निश्चयमोक्षमार्ग की अंतर निर्विकारी परिणति, परिणति नाम पर्याय, पर्याय नाम दशा वीतराग श्रद्धा, ज्ञान और रमणता सो निश्चय, सच्चा मोक्षमार्ग, सत्य मार्ग, यथार्थ मार्ग, उसी मार्ग से मुक्ति होती है। उस मार्ग में निमित्तरूप पड़ता है, व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प। व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प--राग निमित्त है '**व सहचारी है।**' क्या? निश्चयमोक्षमार्ग की अंतर परिणति चलती है, उसकी सहचारी--साथ-साथ में ऐसा राग होता है। व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग आदि साथ में सहचर, सहचर--साथ-साथ उनके कारण से वह चलता है। अपने कारण से अपनी निर्विकल्प परिणति चलती है और राग के कारण से राग भी सहचर निश्चय के साथ चलता है। समझ में आया?

एक आदमी चलता हो तो चलता तो है अपने पैर से, लेकिन सहचर.. क्या कहते हैं तुम्हारे में? सथवारो, सथवारा--साथी, साथी अपने कारण से चलता है और वह चलनेवाला अपने कारण से चलता है। ऐसे अपना शुद्ध प्रभु आत्मा, शरीर-वाणी-मन की क्रिया मेरी नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प भी मैं नहीं, मैं निर्विकल्प शुद्ध आत्मा हूँ, मैं ज्ञायकभाव हूँ, परम अखण्ड परम स्वभावभाव हूँ, ऐसी अंतर्मुख होकर आत्माभिमुख होकर परिणाम जो निर्मल शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, रमणता निश्चयमोक्षमार्ग है। साथ में--सहचर, सहचर--साथ में रहनेवाला। साथ में रहनेवाला दोनों एक नहीं (है)। दोनों एक है? एक नहीं है। निश्चय में व्यवहार नहीं और व्यवहार में निश्चय नहीं। नहीं तो दो प्रकार की कथनी चले नहीं। समझ में आया?

'**मोक्षमार्ग का निमित्त है व सहचारी है...**' साथ में चलनेवाला है। '**उसे उपचार से...**' उपचार से, आरोप से '**मोक्षमार्ग कहा जाय...**' उस राग को मोक्षमार्ग कहा जाय, भेद को मोक्षमार्ग कहा जाय, निमित्त नाम व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उत्पन्न हुआ, उस निमित्त को मोक्षमार्ग कहा जाये। वह सहचर रहता है तो साथ में रहनेवाले को, वह मोक्षमार्ग परिणति चलती है (तो) साथ में रहनेवाले को मोक्षमार्ग कहा जाय '**सो 'व्यवहार मोक्षमार्ग' है।**' है नहीं, परन्तु निमित्त को देखकर, सहचारी देखकर उपचार से उसको व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप कहने में आया। समझ में आया?

निश्चय-व्यवहार का तो बहुत झघड़ा चलता है। कोई कहता है कि व्यवहार हो तो निश्चय होता है, कोई कहता है कि चौथे से बाहरवे तक व्यवहार मोक्षमार्ग है, तेरहवें में निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट होता है। वह परमानन्द आदि था, वह निकल गया, क्षुल्लक था न पहले, आर्य समाज, वह कहता है कि सातवें.. पहले तो बारहवे में कहता था, फिर (कहता था), छठवे में व्यवहारमोक्षमार्ग है, निश्चय तो सातवें में होता है। अभेद तीन हो तब निश्चय होता है। अनेक कथनी, जगत अपना सत्य और उपचार क्या है समझे बिना अनेक मान्यता चली है।

भगवान आचार्य कहते हैं, उसका रहस्य खोलते हैं, पंडितजी टोडरमल उसका रहस्य खोलते हैं कि शास्त्र में दो प्रकार की कथनी चली है, निरूपण चला है। निश्चय को यथार्थ सच्चा मोक्षमार्ग कहना और राग को सहचर देखकर उसको उपचार से, आरोप से व्यवहार कहना जो कि मोक्षमार्ग है ही नहीं, है तो बन्धमार्ग, परन्तु मोक्षमार्ग के साथ में निमित्त देखकर मोक्षमार्ग का आरोप दे दिया। समझ में आया? बहुत कठिन यह। लोगों ने बाहर से यह माना हो उसको ऐसा लगे कि यह तो सब डूब जायेगा। बाबुभाई! व्यवहार करते-करते निश्चय हो, व्यवहार हो तो निश्चय हो, यहाँ तो कहते हैं कि निश्चय है तो व्यवहार है ऐसा भी नहीं, व्यवहार है तो निश्चय है ऐसा भी नहीं। सहचर अपने-अपने कारण से दोनों है। एक यथार्थ है और एक निमित्त से उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। बराबर है?

‘**क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**’ महासिद्धांत देखो! इसलिये निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। क्या? कि निश्चय वस्तु की परिणति वह निश्चय और साथ में राग आया वह व्यवहार। तो दर्शन का भी दो प्रकार--सम्यग्दर्शन निर्विकल्प आत्मा की प्रतीति होनी वह निश्चय और बीच में राग आया नव तत्त्व की श्रद्धा का, वह व्यवहार। ज्ञान--आत्मा का ज्ञान सम्यक् हुआ वह निश्चय, शास्त्र का ज्ञान परसन्मुख हुआ वह व्यवहार। चारित्र--अपने स्वरूप में रमण करना वह निश्चय और पंच महाव्रत या अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आया वह व्यवहार। समिति,... यह सर्वत्र है न सर्वत्र? समझ में आया?

समिति, दो प्रकार की समिति की कथनी चली है। एक निश्चयसमिति, व्यवहारसमिति। निश्चयसमिति--अपना शुद्ध स्वरूप में सम्यक् प्रकार से इति प्रवृत्ति, परिणति। वीतराग परिणति अपने में हो वह निश्चयसमिति। और पर जीव को दुःख न हो ऐसा विकल्प उठता है वह व्यवहारसमिति। निश्चय के साथ में व्यवहार रहता है, सहचर है ऐसा देखकर उसको व्यवहारसमिति कहेने में आया।

मुमुक्षु :-- दोनों की मैत्री है।

उत्तर :-- दोनों की मैत्री व्यवहारनय से है। ठीक है, पंडित धीरे से अपना विचार रखते हैं। व्यवहारनय से मैत्री कहने में आता है, परमार्थ से मैत्री नहीं, दोनों विरूद्ध है। हाँ कही, मानों दोनों की मैत्री हो। समझ में आया? वह तो व्यवहारनय से प्रवचनसार में व्यवहारनय से, उपचार से निश्चय के साथ व्यवहार है उसको व्यवहार से मैत्री कहने में आता है। निश्चय से वैरी है। समझ में आया? इस मैत्री का कथन भी दो प्रकार का है। समझ में आया? एक स्वरूप की रमणता अन्दर मैत्री वह निश्चयमैत्री आत्मा की और साथ में राग आता है उसमें व्यवहारमैत्री का उपचार सहचर देखकर आरोप आता है। मैत्री है नहीं उसको मैत्री कहना उसका नाम व्यवहार है। समझ में आया? ...भाई!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- कहा न, जो मोक्षमार्ग नहीं है उसको मोक्षमार्ग कहना उसका नाम व्यवहार। ऐसे मैत्री नहीं उसको व्यवहार से मैत्री कहना उसका नाम व्यवहार। समझ में आया? ऐसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, समिति, गुप्ति का दो प्रकार की कथनी।

एक शुभाशुभ विकल्प से अपने स्वरूप में गुप्त होकर निर्विकारी शांति का स्वाद लेना वह निश्चयगुप्ति। परन्तु साथ में अशुभ से हटकर शुभ में आया वह व्यवहारगुप्ति। है नहीं, व्यवहारगुप्ति वह गुप्ति है नहीं। परन्तु निमित्त सहचर देखकर उपचार से गुप्ति का आरोप राग में करने में आया है। समझ में आया?

ऐसे ध्यान (का) दो प्रकार। ध्यान की कथनी दो प्रकार (की)। एक, भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य में एकाग्र होकर अमृत का स्वाद का अनुभव करता है वह निश्चयध्यान, वह निश्चय धर्मध्यान और साथ में विकल्प उठते हैं, भगवान क्या कहते हैं, क्या है, संसार क्या? वह शुभराग निश्चय धर्मध्यान के साथ में सहचर देखकर निमित्त देखकर उपचार से उसको धर्मध्यान कहा। है नहीं धर्मध्यान उसको धर्मध्यान कहना उसका नाम व्यवहार। समझ में आया? देखो यह लक्षण।

'**क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**' सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। कायोत्सर्ग, कायोत्सर्ग दो प्रकार की कथनी। वस्तु एक, कथन दो। आत्मा शरीर, वाणी, मन और कार्माण शरीर से हटकर और राग से हटकर कायोत्सर्ग, विकल्प है वह भी काया है, कर्म की काया भावकर्म, समझ में आया? भावकर्म का शुभराग वह विकार की काया, उससे हटकर निर्विकल्प चैतन्य में एकाकार योग होकर स्थिर होना वह निश्चय कायोत्सर्ग है। साथ में विकल्प उठता है कि मैं कायोत्सर्ग करूँ और ऐसा हो, वैसा हो, वह साथ में राग को सहचर देखकर उपचार से कायोत्सर्ग कहा है। समझ में आया?

ऐसे योग, योग। योग कहते हैं न, आत्मा में जोड़ाण। योग भी अपना स्वरूप में निर्विकल्प जोड़ाण होना उसका नाम सच्चा योग है। विकल्प उठते हैं वह व्यवहार योग है, पुण्यबन्ध का कारण है। ऐसी कथनी दो प्रकार की चलती है। समझ में आया? ऐसे सम--समता, समता। दो प्रकार की कथनी चलती है। एक आत्मा में पुण्य-पाप का राग रहित स्वभाव की समता प्रगट हो वह निश्चयसमता है और साथ में राग की मंदता का क्षमा का शुभ भाव हो वह व्यवहारसमता है। समता एक ही है, समता की कथनी दो प्रकार की चलती है। समझ में आया? धन्नालालजी!

मैंने तो बहुत बोल लिये हैं, इसमें है न? नियमसार। नियमसार में तो इतने बोल लिये हैं, बहुत बोल लिये हैं। समझे? सम, नियम, मैत्री, दया बहुत आते हैं उसमें। सब में दो-दो प्रकार लेना। चार आराधना। आराधना के भी दो प्रकार। समझ में आया? निश्चय और व्यवहार। स्वरूप का सेवन करना आनंद का निश्चय आराधन, साथ में विकल्प का अशुभ टलकर (शुभ) आया, उस विकल्प को व्यवहार आराधन कहने में आता है। आराधन है नहीं। नवरंगभाई!

ऐसे यम। यम दो प्रकार का। वह महाव्रत है न? एक निश्चय महाव्रत और एक व्यवहार महाव्रत यम। अंतर का स्वरूप में वीतराग परिणति होकर स्वरूप में लिपट जाना वह निश्चय महाव्रत है और पंच महाव्रत का विकल्प उठते हैं, वह निमित्त सहचर देखकर महाव्रत का आरोप दे दिया है। वह महाव्रत है नहीं, उसको महाव्रत कहना वह व्यवहार है। समझ में आया? राजमलजी! दो प्रकार समझे?

ऐसे दया का दो प्रकार। एक निश्चयदया, एक व्यवहारदया। कथनी दो प्रकार की, यथार्थ में दया एक प्रकार की। राग की उत्पत्ति न होना, पुण्य और पाप का विकल्प भी उत्पन्न न होना और आत्मा की अरागी परिणति उत्पन्न होना वह निश्चय से अहिंसा दया है। साथ में पर जीव को न मारने को जो विकल्प उठता है वह निमित्त सहचर देखकर आरोप से दया कहने में आया है। वह वास्तव में दया नहीं है। राग, वह हिंसा है। ओहो..! पर जीव को मैं न मारुँ वह राग हिंसा है। इस हिंसा को अहिंसा के साथ निमित्त देखकर दया कहना वह आरोप से कथन है। बहुत कठिन भाई! समझ में आया?

यह सिद्धांत ले लेना---'**निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**' सर्वत्र जैनशासन चारों अनुयोग में कथनी चलती है, सच्चा वह निश्चय, आरोपित सहचर को व्यवहार कहते हैं। सर्वत्र ऐसा लक्षण है। ऐसे टोडरमल ने कितना अंतर का रहस्य खोला है! (तो कहते हैं), नहीं, वह प्रमाणिक नहीं है। हमारी दृष्टि अनुसार हो तो प्रमाणिक। भगवान! क्या करे? तेरी भी महिमा इतनी है कि अनंत तीर्थंकर आये तो

भी तू समझ नहीं। इतनी तेरी अशुद्धता भी बड़ी और तेरी शुद्धता भी बड़ी। प्रतिकूलता का गंज आवे तो भी एक अंश प्रतिकूलता का विचार न करे। परमानंद में रहनेवाला ऐसी भी तेरी बड़ी शुद्धता है। समझ में आया?

समिति आया न? प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण का दो प्रकार--निश्चय और व्यवहार। निश्चय प्रतिक्रमण, सच्चा प्रतिक्रमण, अनारोपित, अनौपचारिक प्रतिक्रमण शुभ और अशुभ भाव से हटकर स्वभाव में वीतरागता की परिणति हटकर करना वह निश्चय प्रतिक्रमण। साथ में विकल्प उठना, मिच्छामि दुक्कडम् ऐसा दोष हुआ, उस राग को निमित्त सहचर देखकर उपचार से उसको व्यवहार कहने का व्यवहार है। क्या? व्यवहार प्रतिक्रमण पुण्यबन्ध का कारण है, निश्चय प्रतिक्रमण है वह मोक्ष का कारण है। संवर और निर्जरास्वरूप है। कथन दो प्रकार की चले, वस्तु दो प्रकार की नहीं (है)। सामायिक दो प्रकार की। पोपटभाई! वह सब गये? सामायिक दो प्रकार की। क्या है शेठी? जयपुर में दो प्रकार की सामायिक सुना था? बड़ा शहर है दिगंबर का तो। तीन हजार घर है। लो, ये आप के कहते हैं।

सामायिक दो प्रकार की। एक--अपना स्वरूप अखण्ड शुद्ध, उसमें समताभाव निर्विकल्प से परिणति कर ध्यान में रहना वह निश्चय सामायिक है। उसके साथ विकल्प उठे शुभ राग का (कि) मैं सामायिक करूँ, सामायिक है नहीं ऐसा विकल्प, उसको व्यवहार से निमित्त देखकर उपचार से सहचर देखकर सामायिक कहा। सामायिक है नहीं। विकल्प में सामायिक है नहीं। आहाहा..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अपनी सुनने की लायकात नहीं थी तो मिला नहीं, ऐसी है न बात तो। हैं? शेठी! अपनी सुनने की लायकात हो तो ऐसा सत्य मिले बिना रहे नहीं। बात तो ऐसी है। धन्नालालजी! सामायिक.. हैं? बात तो ऐसी है। फिर निमित्त का दोष निकालना कि हमें ऐसा मिला नहीं तो क्या करे? वह तो सब कथनी व्यवहार की है, परमार्थ नहीं। तेरी पात्रता और समझने की योग्यता हो (तो) तीर्थंकर उपस्थित हो, तीर्थंकर का समवसरण उपस्थित हो। समझ में आया? कहाँ से कहाँ तीर्थंकर आते हैं। आज समवसरण आया, आहा..! उसकी पात्रता हो तो कुदरती ऐसा निमित्त आ जाता है। आये बिना रहता नहीं। पराधीन नहीं, यहाँ होना है तो आना है ऐसा नहीं। समझ में आया? आहा...! जगत का कोई निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सहज (है)। अपनी उपादान योग्यता में ऐसा न हो तो न मिले, अपने कारण से है।

प्रतिक्रमण आदि। सामायिक, भगवान की स्तुति। स्तुति का दो प्रकार। स्तवान आता है न? सामायिक, प्रतिक्रमण आदि आता है न? श्रावक का (षट् आवश्यक)। चोवीसन्तु।

स्तवन का दो प्रकार। राग रहित--विकल्प रहित, पुण्य-पाप रहित अपने स्वरूप की स्तुति करके एकाग्र रहना उसका नाम निश्चयस्तवन और चौबीस तीर्थंकर आदि का स्तवन करना विकल्प से वह व्यवहार स्तवन (है)। स्तवन दो प्रकार का कथन है, यथार्थ में स्तवन एक प्रकार का है। बाबुभाई! बराबर है यह? सामायिक के बाद? वंदन, वंदन।

वंदन का दो प्रकार। अपनी वंदना करना अन्दर में आनंदकंद में घूसकर निर्विकल्प वंदना करना वह निश्चयवंदना है। गुरु को वंदना करना वह विकल्प है, व्यवहार वंदना है। समझ में आया? वंदना है नहीं उसको वंदना कहना उसका नाम व्यवहार है। जगत की विचित्रता उसके सामने यह दलील,.. बहुत कठिन। सामायिक, चउविसंत्तु, वंदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्यख्यान।

प्रत्याख्यान का दो प्रकार। भगवान आत्मा अपने स्वरूप में शुद्धता का आनंद के स्वाद में घुम जाये, डोले अन्दर आनंद में उसका नाम निश्चय प्रत्याख्यान (है)। विकल्प उठा कि मैं प्रत्याख्यान करूँ कि ऐसा प्रत्याख्यान मैंने किया ऐसा राग उठे वह व्यवहार प्रत्याख्यान आरोपित है। नवरंगभाई! लो, नवरंगभाई को थोड़ा था।

ऐसे संयम का दो प्रकार--निश्चयसंयम और व्यवहारसंयम। समझ में आया? मोक्षमार्ग प्रकाशक में ऐसे बहुत बोल है, एक बार लिख लिये थे, पुरा पन्ना है। बहुत वर्षों पहले के। नियमसार में पद्मप्रभुमलधारीदेव ने सब बोल लिये हैं। जैनशानस का निश्चय के और व्यवहार के कितने प्रकार, बहुत ले लिये हैं। उसमें था, बहुत वर्ष पहले की बात है। संयम। इन्द्रिय दमन का विकल्प वह राग है। अतीन्द्रिय आनंद में घुसकर अव्रत का विकल्प उठना नहीं, पाँच इन्द्रिय का विकल्प उठना नहीं, मन में नहीं, छ काय की हिंसा का नहीं, अपने स्वरूप में आनंद की धारा उठनी, सम्यक् प्रकार से यम, वह निश्चयसंयम है। और छ काय की दया का विकल्प आदि उठते हैं वह व्यवहारसंयम आरोप से कहने में आया।

ऐसे आचार। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, वीर्याचार, तपाचार। समझ में आया? नवरंगभाई को ऊतारने का मन हुआ, इसमें बहुत आया। समझ में आया? क्या? आचार। ज्ञानस्वरूप में अन्दर आचार-वर्तन करना वह निश्चय ज्ञानाचार (है) और समय पर विनय पढ़ना ऐसा विकल्प उठता है वह व्यवहार ज्ञानाचार (है)। है नहीं उसको कहना उसका नाम व्यवहार। आहाहा..! समझ में आया?

वैसे दर्शनाचार। सम्यग्दर्शन का निःशंकादि आठ गुण निर्विकल्प निश्चय में परिणति होना वह निश्चय सम्यग्दर्शन का आचार। निःशंक आदि शंका नहीं करना आदि व्यवहार, समकित का आठ बोल है व्यवहार, वह व्यवहार आचार समकित का (है)। यथार्थ

में एक ही आचार है। उसकी कथनी दो प्रकार की चलती है। नवरंगभाई! आहाहा..! कितना स्पष्ट किया है उसने! धन्नालालजी! व्यवहार का भेद आते हैं न? बहुत प्रकार से किसी को...

ऐसे चारित्राचार। लेकिन चारित्राचार क्या? अपना स्वरूप में लीन होना आनंदकंद में, वह निश्चय चारित्राचार है। और उसमें पंच महाव्रत आदि का विकल्प उठते हैं, जो पाँच समिति, तीन गुप्ति तेरह प्रकार का शुभ राग वह व्यवहार आचार है। वह पुण्यबन्ध का कारण है, वास्तव में वह आचार मोक्ष का कारण है नहीं। निमित्त को सहचर देखकर उपचार से कहने में आया है। उन्होंने ऐसा कहा है ऐसा नहीं, कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि व्यवहार अभूतार्थ है। ये जितने बोल कहे वह सब व्यवहार अभूतार्थ है, निश्चय भूतार्थ है। समझ में आया? टोडरमल ने कहा (ऐसा पंडित लोग कहते हैं)। नहीं, टोडरमल ने नहीं कहा, सर्वज्ञों ने कहा है, कुन्दकुन्दाचार्य ने ११वीं गाथा में कहा। जितना भूतार्थ यथार्थ निश्चय अपनी निर्विकल्प परिणति (है वह यथार्थ)। साथ में अभूतार्थ राग है वह वास्तविक समिति नहीं, गुप्ति नहीं, समझ में आया? चारित्राचार नहीं, दर्शनाचार नहीं परन्तु निमित्त देखकर सहचर से आरोप कहने में आया है। समझ में आया?

वैसे तपाचार। तप तो अन्दर, प्रतपंति विजयंति इति तपः। भगवान आत्मा की शुद्धता का विजय हो, शुद्धता का विजयपताका फरके अन्दर में निर्विकल्प धारा की उसा नाम सच्चा तप (है)। बीच में विकल्प आता है--मैं उणोदरी करुँ, मैं अनशन करुँ, मैं ... करुँ, यह करुँ, वह करुँ... करुँ माने छोडुँ आदि विकल्प, उसको व्यवहार तप कहते हैं। वह व्यवहारतप तप है नहीं, अभूतार्थ तप है। और भूतार्थ तप तो एक ही है। समझ में आया?

ऐसा वीर्याचार। वीर्य--जो अपना पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख होकर पूर्ण हो वह निश्चय वीर्याचार (है)। और भगवान की आज्ञा व्यवहार से लक्ष्य में लेकर वीर्य की स्फुरणा शुभ में वह व्यवहार वीर्याचार (है)। उसको सहचर देखकर व्यवहार वीर्याचार कहने में आया है। कहो, समझ में आया? ज्ञान, अनुष्ठान सब में लेना। प्रत्याख्यान मोक्ष की सीढी। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि। मंगलिक, उत्तम, शरण का दो प्रकार। समझ में आया? धरमचंदजी! यह धरमचंद की बात चलती है। धर्म का किरण। शीतल किरण चंद्र होता है न? शीतल किरण।

कहते हैं कि, भगवान! एक बार सुन। क्या? मंगल, मंगल। मंगल की कथनी दो प्रकार की, मंगलिक एक प्रकार का। ऐसे तो शास्त्र में बहुत आये, नाम मंगलिक, स्थापना मंगलिक, द्रव्य मंगलिक, क्षेत्र मंगलिक, काल मंगलिक, भाव मंगलिक। धवल

में आता है। कहते हैं, कथनी दो प्रकार की। मंगल--पुण्य-पाप का नाश होकर मम नाम पाप, गल नाम गलना, पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों भाव, वह गलकर आत्मा की धारा, हिमालय पर्वतमें से जैसे पर्वत में ठंडा झरना झरता है, वैसे भगवान हिमालय चैतन्यमूर्ति उसमें एकाग्र होकर शीतलता झरे, उसको मंगल कहते हैं। अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं... पर तरफ का लक्ष्यवाला शुभराग वह व्यवहार मंगलिक है। प्राणभाई!

उस प्रकार शरण। अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं व्यवहार का विकल्प है। अपना स्वरूप का शरण निश्चयशरण है। समझ में आया? अपना उत्तम पदार्थ, उसका आश्रय करके निर्विकार होना वह उत्तम है। बीच में राग आता है, भगवान का स्मरणादि वह व्यवहार उत्तम कहने में आता है। समझ में आया? मंगलिक शरण है.. तीन है न?

प्रायश्चित्त। प्रायश्चित्त का दो प्रकार। समझ में आया? नियमसार में आया था, नियमसार में बहुत बोल लिये हैं, बहुत बोल लिये हैं। नियमसार पर्याय का ग्रंथ है न, मोक्षमार्ग का ग्रंथ है न, तो पर्याय जितनी निर्मल है न, उसका बहुत लिया है। उसके साथ विकल्प है उसको व्यवहार (कहते हैं)। उसका मज़ाक किया है टीकाकार ने। व्यवहार का मज़ाक, क्या है? क्या है? निश्चय है वही सत्य एक बात है। बाद में विकल्प आदि आता है उसको उपचार से कहने में आता है। व्यवहार, उपचार है कि नहीं? लेकिन कौन ना कहता है? उपचार है न? यथार्थ नहीं।

मुमुक्षु :-- दोनों एक हो जाये?

उत्तर :-- उसका मतलब यथार्थ और उपचार एक हो जाये? चावल और बोरी एक हो जाये? समझ में आया? उसमें भी बहुत दृष्टान्त कहते हैं कि बोरी ठीक नहीं हो तो चावल गिर जाये, फलाना हो जाये, ढिकना हो जाये... ऐसे-ऐसे तर्क देते हैं न। कुतर्क करते हैं। अरे..! सुन न, उसको बोरी ही नहीं कहते। बोरी तो जो अखण्ड हो और चावल में निमित्तरूप पड़े उसको बोरी कहने में आता है। ... करके निकल जाये उसको निमित्त भी नहीं कहने में आता। समझ में आया? देवीलालजी! कहो, यह बैठता है कि नहीं? घर में भैया को बैठता है कि नहीं? वह मालूम नहीं, वह जिम्मेदारी नहीं।

मुमुक्षु :-- देरी लगेगी।

उत्तर :-- परन्तु यहाँ तो न्याय से तो बात चलती है। आठ वर्ष का बालक हो तो भी समझे कि यह बात ऐसे चलती है।

निश्चय स्वआश्रय से निर्मलानंद पर्याय होना यह सत्य है और उसके साथ राग की मंदता चले उसको व्यवहार उपचार करके कहा है। वह मार्ग-बार्ग है नहीं। क्यों,

वाड़ीभाई! बराबर होगा यह सब? क्या कहा?

प्रायश्चित्त का दो प्रकार। प्राय--ज्ञान उसमें एकाकार होकर विकार की उत्पत्ति न हो उसका नाम निश्चय प्रायश्चित्त है। विकल्प उठा, भगवान! मेरे पाप लगा, ऐसा लेना विकल्प, उस विकल्प को व्यवहार प्रायश्चित्त कहते हैं। कथन दो प्रकार का, वस्तु एक प्रकार की। समझ में आया?

ऐसे आलोचना। आलोचना का प्रकार दो। स्वरूप में स्थिर होकर आलोचना करना वह निश्चय, विकल्प से आलोचना करना कि अरे..! मुझे ऐसा पाप लगा था, ऐसा लगा, वह विकल्प व्यवहार। समझ में आया? समिति, शील, संयम सब लेना। शील- निश्चय और व्यवहार। ऐसे क्षमा निश्चय और व्यवहार। बिलकुल क्रोधरहित अपनी शांति की क्षमा अन्दर प्रगट करना। ये दस प्रकार का है न? दस प्रकार... क्या कहते हैं? पर्व? दसलक्षणीपर्व। उसमें उत्तम क्षमा एक धर्म है और विकल्प रहित क्षमा को उत्तम क्षमा कहते हैं। वह निश्चयक्षमा। और पर के अपराध को विकल्प से माफ करना वह व्यवहारक्षमा का आरोप उसमें आता है। समझ में आया? ऐसा सब है, लो। बहुत नाम दिये हैं उसमें।

अरे..! समाधि। समाधि का कथन दो प्रकार का। प्राणभाई! समाधि एक प्रकार की। चित्त समाधि होवे। अंतर में शांति समाधान, राग रहित अनाकुलता की समाधि वह निश्चयसमाधि। विकल्प उठता है यम, नियम आदि का विकल्प आता है, ऐसा शास्त्र में भी आता है, वह विकल्प--राग उठता है उसको व्यवहार समाधि कहने में आता है। यथार्थ में है नहीं। ऐसे नियम, इस प्रकार सब ले लेना। समझ में आया? निश्चय और व्यवहार। सेवा, बहुत भाषा डाली है।

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- मोक्ष का दो प्रकार--एक भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष। परमाणु का छूटना द्रव्यमोक्ष, पूर्णता की प्राप्ति वह भावमोक्ष। समझ में आया? लो। यहाँ आया, देखो!

'**क्योंकि निश्चय-व्यवहार का...**' यह सब बोल कहे न? सर्वत्र '**सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।**' चारों अनुयोग में कथन चला हो, जो सच्चा निश्चय स्वआश्रय कथन चला हो वह निश्चय और पर निमित्त या परद्रव्य आश्रय राग से कथन चला हो वह व्यवहार उपचार। उसका तो भान नहीं और हम निश्चय और व्यवहार दोनों का सेवन करते हैं। पुनः कुछ लोग ऐसा कहते हैं, सोनगढ़ में अकेला निश्चय है, हमारे निश्चय और व्यवहार दो है। अरे.. भगवान! तेरी बात... ऐसा कहते हैं, यहाँ अकेला निश्चय.. निश्चय.. निश्चय..। अपने निश्चय भी करना, व्यवहार भी करना। अरे..! करने में तेरा एक भी सच्चा नहीं, सुन न। कर्ताबुद्धि है, मैं राग को करूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है।

वहाँ निश्चय कैसा और व्यवहार कैसा? समझ में आया? हमें व्यवहार करना है, करना है, करना है। व्यवहार और राग मेरा कर्तव्य है और राग मुझे करना है, मैंने राग किया। मिथ्यादृष्टि है, व्यवहार और निश्चय है कहाँ तेरे पास? समझ में आया?

लेकिन अपने स्वरूप का अंतर अनुभव होकर प्रतीति और रमणता आंशिक हुई, उसके साथ जो विकल्प राग व्यवहार से अनुकूल देखकर, अनुकूल तो है नहीं, है तो प्रतिकूल, परन्तु व्यवहार अर्थात् कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की जो श्रद्धा थी वह छूट गयी, अव्रत का परिणाम छूट गया, ... का ज्ञान न रहा, ऐसा निमित्त शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत का परिणाम, नव तत्त्व की (श्रद्धा), भगवान ने कहे नव तत्त्व, उसकी भेदवाली श्रद्धा का विकल्प सहचर देखकर निश्चयसम्यग्दर्शन के साथ में व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया? मोक्षमार्ग... टोडरमल में ना? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है न?

व्यवहार समकित के साथ निश्चयसमकित गमनरूप--परिणमनरूप सदा होता है। ऐसा लिया है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। है न उसमें? हिन्दी है न, हिन्दी तो वाँचन के लिये रखा है। हमें तो गुजराती जमती है। समझ में आया? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है न? ३५०, देखो! '**परन्तु इतना जानना कि सम्यक्त्वी के व्यवहार सम्यक्त्व में व अन्य काल में अंतरंग निश्चयसम्यक्त्व गर्भित है...**' श्लोक का अर्थ है उसमें आखिर की पंक्ति। '**इतना जानना कि सम्यक्त्वी के व्यवहार सम्यक्त्व में व अन्य काल में अंतरंग निश्चयसम्यक्त्व गर्भित है, सदैव गमनरूप रहता है।**' है न? क्या कहते हैं? व्यवहार समकित का विकल्प तब उसको कहने में आता है कि साथ में निश्चय समकित परिणमन गमनरूप हो तो। अकेले व्यवहार को व्यवहार कहने में आता नहीं। समझ में आया? इसमें बहुत लिखा है। क्या कहा?

निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण, लक्षण, लक्षणाभास निकलकर वह उसका लक्षण है। दूसरे का लक्षण है नहीं, दूसरे में अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असंभव दोष लगे वह लक्षण है ही नहीं। निश्चय-व्यवहार का लक्षण.. समझ में आया? जहाँ-जहाँ स्वद्रव्यआश्रय विकार रहित परिणति (हुई), वह सच्चा मोक्षमार्ग, सच्चा समता, सच्चा दर्शन इत्यादि (है)। साथ में विकल्प उठते हैं निमित्त का, वह व्यवहार प्रतिकूल नहीं.. क्या प्रतिकूल? कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की अपेक्षा से, उस अपेक्षा से व्यवहार अनुकूल कहकर निमित्त कहा, निश्चच में तो स्वभाव की अपेक्षा से प्रतिकूल ही है। समझ में आया? कहते हैं कि प्रत्येक, आत्मा का जितना प्रकार निश्चय-व्यवहार का चला उसमें यह लक्षण लगा देना, यह लक्षण लगा देना। आगे-पीछे तुम्हारी कल्पना से लक्षण करना नहीं। कहो, समझ में आया?

'**सच्चा निरूपण सो निश्चय,...**' लो। सत्य का कथन चले चार अनुयोग में, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, कथानुयोग, करणानुयोग... समझ में आया? सच्चा कथन चले जैसा है ऐसा, उसका नाम निश्चय। '**उपचार निरूपण सो व्यवहार...**' लेकिन उपचार कथन जो चले, आरोपित कथन चले, निमित्त का सहचर देखकर चले वह सब व्यवहार है। '**इसलिये निरूपण-अपेक्षा दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना।**' लो, कथन की अपेक्षा से। निरूपण यानी कथन ना? आप पहले निरूपण-निरूपण बहुत बोलते थे, इसलिये पंडित निरूपण बोलते हैं तो निरूपण करना। इसमें निरूपण भाषा है न? पहले शुरूआत में आप ऐसा कहते थे। निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार। लेकिन इसमें निरूपण (कहा है), दूसरी भाषा तो करो, ऐसा मन में होता था, हाँ! कथन की अपेक्षा दो प्रकार। समझ में आया? '**निरूपण-अपेक्षा दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना।**' कथन की पद्धति में दो प्रकार की कथन प्रमाणिका चलती है।

'**एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है--इसप्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।**' देखो! ऐसे सब में बात ली न अपने। उसमें दोनों को मानना मिथ्या है, यथार्थ एक है। आहाहा..! वीतरागपना बताना है शास्त्र को, क्या बताना है? जिसमें जितना प्रकार अभी कहा उसमें वीतरागता वह सत्य है। उसमें रागादि आता है नहीं। वह उसकी विपरीत बात है, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। समझ में आया? एक निश्चय मोक्षमार्ग और एक व्यवहार मोक्षमार्ग, इसप्रकार दो हुए। एक-एक कहा न? एक निश्चय मोक्षमार्ग, एक व्यवहार मार्ग। एक-एक करके दो कहे। दो एका दो। एक और एक दो हुए न? ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं, देखो! '**एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है...**' यह एक निश्चय मोक्षमार्ग है, यह एक व्यवहार मोक्षमार्ग है, ऐसा नहीं। मोक्षमार्ग तो एक ही है। दूसरा मोक्षमार्ग का तो आरोप से कथन उपचार से करने में आया है। समझ में आया? ऐसे दो मोक्षमार्ग (माननेवााला) मिथ्यादृष्टि है। शेठी!

'**तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है वह भी भ्रम है,...**' दो मार्ग मानना वह मिथ्यात्व है और दो को आदरणीय मानना भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? लो, मालूम नहीं, ऊपर जो कहे, जय महाराज! जय नारायण! समझ में आया? दुर्गादासजी! मालूम न हो और ऊपर से जो कहे, जय नारायण! हमारे शेठी भी ऐसा करते थे, हाँ! खबर न हो तो क्या करे? बड़ा खानदान है, बड़ा पुण्य है, लेकिन खबर विना क्या करे? जयपुर में रहे तो भी। क्या कहा? दो मोक्षमार्ग मानना भी मिथ्यादृष्टि है। मिथ्या का अर्थ मिथ्यादृष्टि नहीं होता है? मिथ्या माने असत्य, असत्य यानी मिथ्यात्वभाव। '**तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है...**'

देखो! निश्चय भी आदरणीय है और व्यवहार भी आदरणीय है, '**वह भी भ्रम है,...**' मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह अधिकार हमारे दुलीचंदजी और हेमराजजी ने माँगा था। जरूरी था। उसके कारण यहाँ क्लास को भी बराबर सुनने में आवे। समझ में आया?

कहते हैं कि निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय माने... भैया! व्यवहार भी आदरणीय है, निश्चय भी आदरणीय है। व्यवहार से व्यवहार आदरणीय है ऐसा कहने में आता है। निश्चय से आदरणीय नहीं है, जानने लायक है। व्यवहार जानने लायक है, निश्चय आदरने लायक है, क्योंकि दोनों नय में विरोध है। बहुत गड़बड़ भाई! धन्नालालजी!

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- ठीक कहा। दूसरी भाषा से कहें तो व्यवहार लौकिक मार्ग है। वह द्रव्यसंग्रह में आया है। क्या कहा है? लोकोक्ति। द्रव्यसंग्रह में आया, लोकोक्ति। उसका नाम व्यवहार। परमार्थ लोकोत्तर। लोकोक्ति व्यवहार है सही, है उसकी भूमिका योग्य (परन्तु) आदरणीय नहीं, मोक्षमार्ग नहीं। वह व्यवहार जितना कहा, समिति आदि सब, वह संवर नहीं, वह गुप्ति नहीं, निर्जरा नहीं। बन्ध की पर्याय को उपचार से मोक्षमार्ग, समता, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि कहना, लेकिन वह (भी) निश्चय हो तो।

मुमुक्षु :-- व्यवहार से आदरणीय..

उत्तर :-- व्यवहार से आदरणीय का अर्थ क्या? अर्थ क्या? कि है। अशुभ टलकर ऐसा (शुभ भाव आता है)। टलकर भी, कथन की पद्धति ऐसी है, क्या करे? टले क्या, उस समय में ऐसा होता है। लेकिन वह तीव्र न हुआ उस अपेक्षा से वह जानने लायक उपादेय है। जानने के लिये उपादेय है, आदरने के लिये नहीं। समझ में आया? वह कहेंगे।

'**निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोधसहित है।**' निश्चय, व्यवहार से विरुद्ध, व्यवहार, निश्चय से विरुद्ध। दो मार्ग भी कैसे चले? और दो उपादेय भी कैसे चले? उसकी व्याख्या विशेष करेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**श्रावण वद-३, शनिवार, दि. १८-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १०**

यह मोक्षमार्गप्रकाशक का सप्तम अध्याय चलता है। उसमें निश्चय-व्यवहार नय का अभास, वास्तविक नय नहीं, निश्चय क्या है और व्यवहार व्यवहार क्या है उसको जाने बिना निश्चय का आभास, व्यवहार का आभास अवलम्बि का मिथ्यादृष्टि का कथन चलता है। यहाँ तक आया।

'**तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है वह भी भ्रम है;...**' आया न? मोक्षमार्ग की बात चलती है। अपना आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव उसका अंतर में अनुभव करके निर्विकल्प वीतराग परिणति जो हो वह सच्चा निश्चयमोक्षमार्ग है। वह अंगीकार करने लायक है, पर्याय प्रगट करने लायक है। पर्याय उपादेय है, उस दृष्टि से। और बीच में राग आता है वह वस्तु स्वरूप की चीज नहीं। व्यवहार रत्नत्रय वस्तु का स्वरूप नहीं है, वस्तु का स्वरूप माने मोक्षमार्ग का स्वरूप नहीं। व्यवहार रत्नत्रय आया वह मोक्षमार्ग का स्वरूप नहीं। स्वरूप नहीं उसको स्वरूप कहना वह निमित्त की आपेक्षा से अन्यथा कथन करने में आया। तो दो को उपादेय मानना मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- अनेकांत नहीं हुआ?

उत्तर :-- अनेकांत यह--निश्चय आदरणीय है और व्यवहार आदरणीय नहीं, उसका नाम अनेकांत है। नीचे की अवस्था चौथे गुणस्थान में। कहते हैं कि नहीं? नीचे की अवस्था में तो व्यवहार आदरणीय है कि नहीं? भगवान! व्यवहार अर्थात् क्या? वह तो राग-भाग है। राग का आदर है? राग का आदर और वीतराग परिणति का आदर, दो का आदर है? तो दो का तो विरोध है, दो में तो विरोध है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम आत्मस्वभाव के अवलम्बन से निर्मल हुआ वह वीतरागभाव है, वह सच्चा मोक्षमार्ग है और राग है वह विकार भाव है, तो सच्चा कहाँ-से आया? दो को उपादेय कहाँ-से मानना? और दो मोक्षमार्ग है नहीं। दो है नहीं तो दो का उपादेयपना बनता नहीं। समझ में आया? वह भी भ्रम है। ए.. शेठी! कहो, समझ में आया?

निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय--अंगीकार (करने योग्य), आदरणीय मानना मिथ्यादृष्टि है, भ्रम है, अज्ञान है। '**क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो...**' देखो, स्वरूप दोनों का '**परस्पर विरोधसहित है।**' परस्पर तो विरुद्ध प्रकार से है। निश्चयमोक्षमार्ग

और व्यवहारमोक्षमार्ग परस्पर विरुद्धता से है। विरुद्धता है तो एक आदरणीय और यह भी आदरणीय ऐसा विरुद्धता में कहाँ-से आया?

मुमुक्षु :-- परस्पर विरुद्ध है क्या?

उत्तर :-- परस्पर व्यवहार से निश्चय विरुद्ध और निश्चय से व्यवहार विरुद्ध। वीतराग परिणति से राग विरुद्ध, राग परिणति से वीतराग परिणति विरुद्ध।

मुमुक्षु :-- ... सहचर क्यों कहा गया?

उत्तर :-- साथ में रहते हैं, उसमें साथ में रहते नहीं? उसमें क्या? साथ में हो उसमें क्या है? साथ में छहों द्रव्य रहते हैं। समझ में आया? सहचर क्या? एकसाथ हो तो एक हो गया है? सहचर नाम साथ में रहनेवाला, (तो) दो हो गया। एक निर्मल परिणति, एक राग परिणति। निर्मल के साथ राग की परिणति रहती है।

मुमुक्षु :-- दोनों की मित्रता है?

उत्तर :-- मित्रता नहीं। व्यवहार से मित्रता कहने में आता है, निश्चय से विरोध है। देखोन, यहाँ क्या आया? वह तो साथ रहते हैं और उसको कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा का अभाव हुआ, कुशास्त्र का ज्ञान का अभाव हुआ, अव्रत आदि का अभाव हुआ तो ऐसे विकल्प को शुभ को अनुकूल अर्थात् साथ में रहने में तटस्थ निमित्तरूप गिनकर उसको व्यवहार का आरोप कहने में आया है। व्यवहार है वह मोक्षमार्ग है नहीं।

'**क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप...**' भाव '**तो परस्पर...**' व्यवहारभाव से निश्चयभाव, निश्चयभाव से व्यवहारभाव (विरुद्ध है)। निश्चय का स्वरूप निर्विकल्प परिणति, व्यवहार का स्वरूप राग परिणति, दो परस्पर विरुद्ध है। व्यवहार निश्चय विरुद्ध और निश्चय से व्यवहार विरुद्ध है। बराबर है धन्नालालजी? दोनों विरुद्ध? '**कारण के समयसार में ऐसा कहा है :--**' महा जैनसिद्धांत का मर्म। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' इस टूकड़े में पूरे शासन का रहस्य आया है।

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- हाँ, भूदत्थो है, भूयत्थो। 'द' का 'य' हुआ।

'**ववहारोऽभूदत्थो अभूयत्थो भूदत्थो भूयत्थो देसिऊणे**' इसमें है। '**देसिदो दु सुद्धणओ**', वह सब भावार्थ एक ही होता है।

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- हाँ, वह तो होता है।

'**अर्थ :-- व्यवहार अभूतार्थ है,...**' देखो, महासिद्धांत। व्यवहार, क्या कहते हैं? अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, झूठा है। बिलकुल भूतार्थ नहीं। वह तो है इस अपेक्षा

से भूतार्थ, परन्तु आदरणीय अपेक्षा से भूतार्थ है नहीं। अभूतार्थ, अभूत-असत्, असत्। व्यवहार असत्य है। कारण कहो... यहाँ मोक्षमार्ग की बात चलती है कि नहीं? मोक्षमार्ग मोक्ष का कारण है कि नहीं? क्या?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- क्या? क्या लिखा है? क्या है? परांग्मुख होकर, किसको? कहाँ? वह तो दूसरी बात है। अर्थात् वह है इतना। परांग्मुख होकर स्वरूप में ठरना यह बात है। कहाँ है? क्या बात है? मेरा मोक्षमार्गप्रकाशक यहाँ था वह आया नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह शास्त्र का ज्ञान करने की बात है। परांग्मुख होना वह दूसरी बात है, वह दूसरी बात है।

व्यवहार असत्यार्थ है अर्थात् यहाँ तो मोक्षमार्ग, मार्ग यानी कि मोक्ष कार्य का कारण। अपनी पूर्ण निर्मल दशा मोक्ष कार्य, उसका कारण दो प्रकार--उसमें एक यथार्थ कारण है और एक असत्यार्थ कारण है। देखो, कारण का न्याय उसमें निकला। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उपचार से, आरोप देकर निमित्त की अपेक्षा को लेकर अन्यथा है उसको कारण कहना, यथार्थ कारण है नहीं। यथार्थ है नहीं, परन्तु अयथार्थ को उपचार से कहना उसका नाम मार्ग है। है नहीं, कथंचित् है नहीं। कथंचित् कैसा? कथंचित् भूतार्थ सत्य है और अभूतार्थ असत्य है। एक ही बात।

व्ययवहार सो असत्यार्थ है, '**सत्यस्वरूप का निरूपण नहीं करता,...**' देखो! व्यवहार सच्चे भाव को, सत्य भाव को, सत्य स्वरूप को कहता नहीं। राग है उसको सम्यग्दर्शन, व्यवहार कहता है। तो सत्य स्वरूप को वह कहता नहीं। समझ में आया? बीच में रागा है न? देव-गुरु-शास्त्र का राग, उसको व्यवहार सम्यग्दर्शन कहता है। तो कहते हैं कि सत्य स्वरूप को प्ररूपता नहीं। सत्यस्वरूप जो वीतरागश्रद्धा है ऐसा नहीं कहता है। राग श्रद्धा है ऐसा कहता है। वह सत्य के वाच्य को कहता नहीं। समझ में आया? यह महा गाथा चारों अनुयोग की कूँची है।

सत्य भाव को, सत्य स्वरूप को, सत्य वाच्य को, जो सम्यग्दर्शन सत्य है उसको व्यवहार प्ररूपता नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन जो अपना शुद्ध चैतन्य की परिणति, सम्यग्दर्शन निर्विकल्प वह सत्य है, वह निश्चय है, यथार्थ है। ऐसे सत्य को व्यवहार प्ररूपता नहीं। ऐसे भाव को व्यवहार कहता नहीं। '**किसी अपेक्षा...**' देखो! किसी अपेक्षा नाम निमित्त की अपेक्षा '**उपचार से अन्यथा...**' वह कारण नहीं, मार्ग नहीं उसको

अन्यथा नाम है नहीं उसको कहता है।

यहाँ तो मोक्ष का कारण लेकर... समयसार में तो भूदत्थमस्सिदो त्रिकाल द्रव्य आश्रय भूतार्थ शुद्धनय लिया और अपनी पर्याय रागादि सब अभूतार्थ लिया है। समझ में आया? यहाँ तो मोक्षमार्ग में ऊतारकर, एक कारण भूतार्थ है और एक कारण असत्यार्थ है। झूठे कारण को कारण है नहीं उसको अन्यथा तरीके कहता है उसको व्यवहार कहने में आता है। मोक्षरूपी कार्य उसमें भेदरूपी व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का परिणाम वह सत्यरूप कारण नहीं। मोक्ष का कार्य का सत्यरूप कारण नहीं, वह सत्य मार्ग नहीं, वह सत्य उपाय नहीं। सत्य उपाय नहीं (है) उसको अन्यथा असत्य को उपाय है ऐसा व्यवहारनय कहती है। समझ में आया? बाबुभाई!

सत्य स्वरूप जो सम्यग्दर्शन का सत्य स्वरूप, सम्यक्ज्ञान का सत्य स्वरूप, सम्यक्चारित्र का सत्य स्वरूप, कारण का सत्य स्वरूप, क्षमा का सत्य स्वरूप, तप का सत्य स्वरूप, व्रत का सत्य स्वरूप व्यवहारनय यथार्थ स्वरूप का निरूपण करता नहीं। यथार्थ कहो कि सत्य कहो। यथार्थ स्वरूप का वह कथन करता नहीं। इतनी तो स्पष्ट बात है। '**किसी अपेक्षा...**' मात्र एक निमित्त देखकर, सहचर देखकर '**उपचार से अन्यथा निरूपण करता है।**' सत्य है उससे असत्य, असत्य को यह है ऐसा कहने में आता है। (ऐसा) करता है वह व्यवहारनय का लक्षण है। व्यवहारनय का लक्षण है। समझ में आया? ये व्यवहार की बहुत गड़बड़ी चलती है न? व्यवहार है कि नहीं? व्यवहार है कि नहीं? क्या व्यवहार है? सुन तो सही।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- रखड़ा। व्यवहार राग है, राग है, राग है, राग है, पुण्य है, विकल्प है, है, किसने ना कही? लेकिन वह सत्य स्वरूप नहीं। अन्यथा को सत्य कहता है। वह सत्य को सत्य कहता ही नहीं व्यवहार। व्यवहार का लक्षण ही ऐसा है।

'**तथा...**' बहुरि माने तथा, '**शुद्धनय जो निश्चय है,...**' अब सामने (कहते हैं)। क्या चलता है? दो परस्पर विरुद्ध है उसकी व्याख्या चलती है। दो परस्पर विरुद्ध है--निश्चय से व्यवहार विरुद्ध, व्यवहार से निश्चय विरुद्ध। विरुद्ध कैसे है उसका स्पष्टीकरण करते हैं। व्यवहारनय अन्यथा कहती है, जबकि शुद्धनय जो निश्चय है वह भूतार्थ है, सत्यार्थ है, सच्चे भाव को कहती है। '**जैसा वस्तु का स्वरूप है...**' जैसा मोक्षमार्ग का स्वरूप है, जैसा त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है, जैसी निर्मल परिणति तप आदि की है, जहाँ-जहाँ निर्मल शुद्ध संयमादि की परिणति है, ऐसा वस्तु का स्वरूप है '**वैसा निरूपण करता है।**' जैसी निर्मल पर्याय या निर्मल द्रव्य (है), उसको ही वह वास्तविकरूप

से प्ररूपता है। समझ में आया?

'**जैसा वस्तु का स्वरूप वैसा निरूपण करता है।**' निरूपण कहो, कथन करता है, लेकिन उसका वाच्य ही अन्यथा है। व्यवहारनय का अन्यथा वाच्य है, निश्चयनय का यथार्थ वाच्य है ऐसा कहते हैं। '**वैसा निरूपण करता है।**' नाम वैसा यथार्थ उसका वाच्य है। निश्चय और शुद्धनय का वास्तविक यथार्थ वाच्य--भाव है। व्यवहार का यथार्थ है नहीं। '**इसप्रकार इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है।**' देखो, सिद्ध किया। इसप्रकार (यानी) ऊपर कहा उस प्रकार से। व्यवहार अभूतार्थ--असत्य स्वरूप को कहती है और सत्य स्वरूप को कहती नहीं। शुद्धनय सत्यार्थ--सत्य भाव को कहती है। '**इसप्रकार इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है।**' दोनों का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है। दोनों का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है। समझ में आया?

उसमें अनेकांत किया है, हाँ! क्या? व्यवहार असत्यार्थ है। ऊपर से पहले लेते हैं। '**सत्यस्वरूप का निरूपण नहीं करता।**' एक बात। '**किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है।**' अनेकांत किया। भाई! पहला शब्द, शुरूआत में। सत्य कहता नहीं और असत्य कहता है, इसप्रकार दो से अनेकांत कहा। समझ में आया? आहा..! देखो न, पाठ में ही ध्वनि ऐसा है। व्यवहार अभूतार्थ है, सत्यस्वरूप को कहता नहीं, किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। तीन बोल आये, व्यवहार के तीन बोल आये।

अब, शुद्ध के। '**शुद्धनय जो निश्चय है,...**' व्यवहार अभूतार्थ है, यह शुद्धनय निश्चय है वह भूतार्थ है, सत्य है। '**जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है।**' लो, समझ में आया? अन्यथा तो है नहीं। '**जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा निरूपण करता है।**' वहाँ अन्यथा कहने की बात तो उसमें रहती नहीं। '**इसप्रकार इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है।**' इक बाजु स्वरूप की ओर ढलना, एक बाजु पर तरफ का लक्ष्य से विकार उत्पन्न होना, दोनों विरुद्ध है। परस्पर दोनों विरुद्ध है। राग के लक्ष्य से अंतर में जाने की प्रयत्न दशा होती है, अंतर में जाने के प्रयत्न से रागभाव होता नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का पर आश्रय है, निश्चयरत्नत्रय का स्व आश्रय है। व्यवहाररत्नत्रय रागरूप है, निश्चयरत्नत्रय निर्विकल्प अरागरूप है। निश्चयरत्नत्रय अभेद द्रव्य का आश्रय करके अभेद होता है, व्यवहाररत्नत्रय पर का आश्रय करके भेद होता है। समझ में आया? यह अधिकार तो सूक्ष्म है। क्लास में यह अधिकार लेना (ऐसा कहा गया)। समझ में आया? समझ में आया कि नहीं, हजारीमलजी? क्लास में (लेना), क्लास आया है। नहीं तो इस (अधिकार का) थोड़े समय पहले वाँचन हो गया है।

'**इसप्रकार इन दोनों का स्वरूप...**' दोनों का भाव, दोनों का वाच्य '**तो विरुद्धतासहित है।**' दोनों में विरोध है। राग, व्यवहार मोक्षमार्ग पर का आश्रय करता है, (निश्चय) स्व का आश्रय करता है। निर्विकल्प है, वह विकल्प राग है। यह अभेद है, पर्याय उसमें अभेद होती है, (व्यवहार में) पर्याय भिन्न-भिन्न छिन्न-छिन्न होती है। समझ में आया? इतनी तो स्पष्ट बात है (फिर भी चिल्लाते हैं), व्यवहार कारण है, व्यवहार कारण है। अरे..! यहाँ व्यवहार कारण कहते हैं, अन्यथा कारण को कारण कहते हैं यह व्यवहार का लक्षण है। देवीलालजी! क्या अन्यथा कारण? कारण तो एक ही है वास्तव में। व्यवहार अभूतार्थ की अपेक्षा कारण तो एक ही है। कोई भी कार्य में कारण दो प्रकार का नहीं। कारण का कथन दो प्रकार से चलता है। साधन दो प्रकार का नहीं, साधन की कथनी दो प्रकार से चलती है, साधन तो एक ही प्रकार का है। स्वरूप अंतर में एकाग्र होना, शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, रमणता साधन एक ही है। और वह कारण भी एक ही है। समझ में आया?

झघडा करते हैं न? उपादान और निमित्त दो कारण। समझ में आया? दो कारण तो व्यवहारनय का प्रमाण-नय से कथन करने में आया है। एक के साथ दूसरे का जुडान करके कथन करना वह तो व्यवहारनय हो गयी। समझ में आया? अपने-अपने कारण से पदार्थ में पर्याय का कार्य उत्पन्न होता है वह यथार्थ है। पर से उत्पन्न होता है (ऐसा कहना) अयथार्थ है, असत्य है। उपचार से अन्यथा कहता है, कारण नहीं और कारण कहना उसका नाम व्यवहार है। समझ में आया? मांगीलालभाई!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बिलकुल होता नहीं। पानी अपने से उष्ण होता है, अपने उपादान कारण से। निमित्त कारण से अन्यथा कथन करता है, व्यवहार अन्यथा कथन करती है।

मुमुक्षु :-- दृष्टान्त कठिन पड़ता है।

उत्तर :-- दृष्टान्त कठिन पड़ता है, अपने कहते हैं न, यह दृष्टान्त कठिन पड़ता है, ऐसा कहते हैं। सोनामें से दागीना होता है... दागीना कहते हैं? गहना होता है वह सोनी नहीं करता है। अपने कारण से है। उपचार कारण को अन्यथा कारण है, कारण है ही नहीं यथार्थ में, उसको कारण कहना वह व्यवहारनय का लक्षण है। सोनामें से गहना होता है, सोनी से नहीं।

मुमुक्षु :--...

उत्तर :-- अरे..! होता नहीं। कौन कहता है होता नहीं? उसका कार्यकाल हो और होवे नहीं? पर्याय का कार्यकाल हो और हो नहीं, उसका अर्थ क्या है? प्रत्येक

द्रव्य का समय-समय में उसका कार्यकाल है, उस समय में कार्य होता है। निमित्त हो, दूसरी चीज हो, उसका किसने निषेध किया? समझ में आया? वह कारण नहीं। मूलकारण समर्थ कारण, एक ही समर्थ कारण है। समझ में आया? जैन सिद्धांत में दो लिया है न? जैन सिद्धांत प्रवेशिका में। वह तो व्यवहार बताया है। न्यायशास्त्र के कथन की पद्धति ली है। उपादान और निमित्त दो होकर समर्थ कारण होता है, लिखा है न? यहाँ निश्चय में समर्थ कारण एक ही है। अपनी पर्याय का कार्य अपनी पर्याय से होता है, यह समर्थ कारण एक ही है। निमित्त के बिना होता नहीं, वह है तो होता है, ऐसा अन्यथा कथन व्यवहारनय करती है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- पर्याय का निश्चय से तो द्रव्य भी कारण नहीं। पर्याय पर्याय का कारण है। वास्तव में तो छः द्रव्य में जो उत्पाद होता है एक समय में, अनंत, अनंत द्रव्य है न? एक-एक द्रव्य में अनंत गुण है, तो अनंत गुण की एक समय की उत्पादरूपी पर्याय स्वकाल है, उस उत्पाद का निश्चय से पूर्व का व्यय भी कारण नहीं निश्चय से और ध्रुव भी कारण नहीं। उत्पाद का उत्पाद कारण, व्यय का व्यय कारण, ध्रुव का ध्रुव कारण। समझ में आया? प्रवचनसार-१०१ गाथा, अमृतचंद्राचार्य टीका में स्पष्ट करते हैं। उत्पाद का उत्पाद कारण, उत्पाद अपने आश्रय से होता है, उत्पाद व्यय के आश्रय से नहीं तो निमित्त आश्रय से है यह तो है ही नहीं। नवरंगभाई! कठिन बात भाई! यह तो उसकी पूर्व पर्याय कारण, उपादान कारण उसका व्यय होकर उत्पाद (होता है), वह व्यवहार का कथन है। समझ में आया?

छः द्रव्य में अनंत गुण की एक समय का उत्पाद नाम पर्याय, उत्पाद का उत्पाद कारण। वही कारण और वही कार्य, वही वीर्य और उसका कार्य, वही शक्ति और उसका कार्य, वही साधन और उसका साध्य। समझ में आया? लेकिन व्यवहारनय का कथन चलता है, वास्तविक नहीं, अयथार्थ है उसको निमित्त की अपेक्षा करके उपाचर से कहते हैं, उसमें दुनिया भ्रमित हो गयी है। दो नय से भरमाया है, समयसार नाटक में आता है न? निश्चय और व्यवहार दोनों में जगत भरमाया है। निश्चय क्या सत्यार्थ और व्यवहार असत्यार्थ उपचार से कहने में आया, यह समझते नहीं। समझ में आया? क्या?

मुमुक्षु :-- इसमें धर्म क्या हुआ?

उत्तर :-- आत्मा की निर्मल पर्याय अपनी शुद्ध शुद्ध से होती है उसका नाम धर्म। राग से होती नहीं, धर्म राग से होता नहीं, भगवान से होता नहीं, भगवान के दर्शन से होता नहीं, यात्रा से धर्म होता नहीं, वह धर्म, ऐसा कहते हैं। समझ

में आया? अपनी निर्मल धर्मदशा द्रव्य के आश्रय से होती है, वह पहले नहीं हुई थी तो होती है ऐसा कहने में आता है। परन्तु है धर्म की पर्याय निर्विकल्प वीतराग उसका कोई आश्रय-फाश्रय है नहीं। समझ में आया? धर्म के लिये यह बात चलती है, क्या है? ठीक कहा, बाबुभाई ने कि इसमें धर्म क्या आया? उसके पुराने दोस्त साथ में आये हैं, उसको कैसे समझ में आया? समझ में आया? पकड़ में न आये जल्दी से, इसमें धर्म क्या आया? आप कहते हो, ऐसा ज्ञान होता है, व्यवहार आचार और फलाना... लेकिन धर्म (क्या)?

धर्म वह कि आत्मा में निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर अकेला द्रव्य शुद्ध एकरूप... वह आयेगा, नीचे आयेगा, देखो! '**शुद्ध आत्मा का अनुभव सच्चा मोक्षमार्ग है।**' दूसरा पैरेग्राफ आयेगा। शुद्ध द्रव्य एक वस्तु, पर का लक्ष्य छोड़कर, परद्रव्य, परगुण, परपर्याय, परविकार सब का लक्ष्य छोड़कर, वह कारण-फारण नहीं, वह व्यवहार है, वह व्यवहार कारण-फारण है नहीं, उसका लक्ष्य छोड़कर द्रव्य एकरूप अभेद अभेद द्रव्य वस्तु पर दृष्टि देने से निर्मल पर्याय में निर्विकारी दशा उत्पन्न हो उसका नाम धर्म और मोक्षमार्ग है। शेठी! सब स्वतंत्र है? पहले उत्पन्न नहीं हुआ था उस अपेक्षा से कहा। परन्तु उत्पन्न है, अपने से है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह आश्रय कारण व्यवहार हुआ। तीन अंश है न सत्, तीन अंश सत्, तो एक सत् का दूसरा कारण (कहना) वह व्यवहार हो गया। सत् अहेतुक है। पर्याय भी सत् अहेतुक है, उसको राग भी कारण नहीं। धर्म की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र में राग भी कारण नहीं, द्रव्य भी कारण नहीं। सत् अहेतुक है। आहा..! लेकिन है उसका हेतु कहना क्या? तो तो द्रव्य सत् है उसको भी कोई हेतु कहना। कोई ईश्वरकर्ता है, कोई फलाना कर्ता है। स्वयंसिद्ध अकृत्रिम वस्तु, पर्याय भी किसीके द्वारा की नहीं गयी, व्यय भी किसी के द्वारा किया गया नहीं, द्रव्य भी किसी के द्वारा बना हुआ नहीं। समझ में आया? गड़बड़ बहुत हुई है न, इसलिये पकड़ने में थोड़ा कठिन पड़े। ये तो ठीक है, बाबुभाई ने प्रश्न किया वह। कहो, समझ में आया?

'**इसप्रकार इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धतासहित है। तथा तू ऐसा मानता है...**' अब आया। व्यवहार और निश्चय का भान बिना आभास को तू अवलम्बता है, तुझे निश्चय की भी खबर नहीं और व्यवहार की भी खबर नहीं। '**तथा तू ऐसा मानता है कि सिद्धसमान शुद्ध आत्मा का अनुभवन...**' सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का। देखो न्याय। वह कहता है कि हमें तो सिद्ध समान पर्याय ऐसा जो शुद्ध आत्मा, पर्याय से हाँ! '**सिद्धसमान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय,...**' सो ऐसा

निश्चय है नहीं, तुझे निश्चय की खबर नहीं। तुझे सिद्धसमान पर्याय कहाँ है? और सिद्धसमान शुद्ध आत्मा का अनुभव, वह निश्चय कहाँ-से लाया? समझ में आया? '**सिद्धसमान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय...**' ऐसा तु मानता है। ऐसा है नहीं।

'**और व्रत, शील, संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार,...**' और व्रत पालना, शील, संयम, इन्द्रियदमन रागादि होना, वह '**प्रवृत्ति सो व्यवहार...**' प्रवृत्ति सो व्यवहार, वज़न यहाँ है। '**संयमादिरूप प्रवृत्ति सो व्यवहार, सो तेरा ऐसा मानना ठीक नहीं है;...**' सो ऐसा तेरा मानना ठीक नहीं है। दोनों में तेरा ठीक नहीं। निश्चय में भी ठीक नहीं और व्यवहार में भी ठीक नहीं। निश्चय में तुने सिद्धसमान आत्मा को माना वह ठीक नहीं और व्यवहार में प्रवृत्ति को व्यवहार मानना वह भी ठीक नहीं है। समझ में आया? मालूम भी नहीं है, क्या निश्चय और क्या व्यवहार। वह तो ओघेओघे चलो भैया, अपने माँ-बाप मन्दिर जाते हैं, अपने भी जाना, दर्शन करना, तिलक लगाना। और दो-चार बार समय मिले तो व्रत पालकर बैठना, उपवास कर डालना, उपवास कर डालना...

'**क्योंकि किसी द्रव्यभाव का नाम निश्चय और किसी का नाम व्यवहार- ऐसा है नहीं।**' कोई द्रव्य का भाव उसका नाम निश्चय और कोई द्रव्य का भाव (यानी) दूसरे द्रव्य का, उसका नाम व्यवहार, ऐसा है नहीं। ऐसा कहा उसने (तो) ऐसा है नहीं। '**एक ही द्रव्य के भाव को...**' एक पदार्थ की पर्याय को, एक ही द्रव्य की दशा को, एक द्रव्य के गुण को, पर्याय को--अवस्था को '**उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है,...**' एक ही द्रव्य के... दृष्टान्त देंगे, हाँ! '**एक ही द्रव्य के भाव को...**' पर्याय को '**उस स्वरूप ही निरूपण करना...**' जानना वह तो निश्चयनय है। '**उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्यद्रव्य के भावरूप निरूपण करना...**' भाव तो वही है, लेकिन अन्य का कथन करना कि वह अन्य से हुआ, समझ में आया? जैसे विकार। विकारी पर्याय अपने में है सो निश्चय है। और कर्म का निमित्त से वह भाव हुआ कहना सो व्यवहार है। समझ में आया?

एक भाव की दो अपेक्षा। अपना भाव है सो निश्चय, निमित्त का भाव, कर्म का उदय का भाव है वह व्यवहार। समझ में आया? एक द्रव्य के भाव की दो अपेक्षा। उस ही का कहना सो निश्चय, दूसरे का कहना सो व्यवहार। समझ में आया? '**उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्यद्रव्य के भावस्वरूप निरूपण करना सो व्यवहार है।**' दृष्टान्त, देखो दृष्टान्त देते हैं।

'**जैसे--मिट्टी के घड़े को...**' माटी का घड़ा, माटी की घटरूप पर्याय, माटी का घटरूप भाव, भाव। भाव का दृष्टान्त है न। मिट्टी का घड़ा, मिट्टी की पर्याय (को) '**मिट्टी का घड़ा निरूपित किया जाय सो निश्चय और घृतसंयोग के उपचार से...**' घी के सम्बन्ध का उपचार करके यह घी का घड़ा कहना सो व्यवहार है। उस ही घड़े को घी का कहना, उस ही घड़े को मिट्टी का कहना। उस ही घड़े को मिट्टी का कहना सो यथार्थ, उस ही घड़े को घी के सम्बन्ध से घी का कहना सो उपचार (है)। समझ में आया? भाव तो एक है, दो प्रकार की कथनी है। भाव तो एक यथार्थ है। मिट्टी का घड़ा वह यथार्थ है। लेकिन संयोग से अन्यथा कहने में आया है कि घी का घड़ा। घी का घड़ा होता है कहीं? तेल की तपेली होती है? बरणी, तेल की बरणी, घी की बरणी, लोट का... समझे? क्या कहते हैं? डब्बा, आटे का डब्बा।

मुमुक्षु :-- काम तो वही करते हैं।

उत्तर :-- कभी भी नहीं कर सकते हैं। अनादि से मान रखा है कि मुझे परद्रव्य के बिना काम होता नहीं, ऐसा मान रखा है। अपना-अपना कार्य परद्रव्य के अभाव से त्रिकाल हो रहा है। क्या कहा? फिर से, वह प्रश्न हुआ था हमारे, बोटाद में एक वृद्ध आदमी है। महाराज! आप लक्ष्मी नहीं... (ऐसा कहते हो), लेकिन लक्ष्मी बिना कहीं चलता है? हमें सुबर एक रूपये की सब्जी लेना जाना (पड़े), ऐसा लेना, यह चाहिये, वह चाहिये। सुन तो सही।

भगवान आत्मा अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से रहता है, चलता है। परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कभी चलाया नहीं। परद्रव्य का क्षेत्र-काल-भाव से चलता है और कहता है कि हमें परद्रव्य के बिना चलता नहीं। वह मान्यता में फेर है।

फिर से, महेन्द्रभाई, शरीर, प्रसन्नभाई के बिना चलाता है तुम्हारा आत्मा। वह तो प्रिय पुत्र है न। समझ में आया? प्रत्येक पदार्थ अपना द्रव्य--वस्तु, क्षेत्र--अवगाहन, काल--दशा और भाव--शक्ति, उससे अनादि से चल रहा है। पर का अभाव से चल रहा है। पर बिना ही चला रहा है। बराबर है? पंडितजी! .. के बिना?

मुमुक्षु :-- घी का लोटा लाओ।

उत्तर :-- वह तो बोलने में आया। उससे कहीं घी का लोटा हो जाता नहीं, लोटा तो लोटा ही है। वह तो कथन करने को, ज्ञान करने की बात है। लेकिन लोटा या घी का घड़ा बोले, घी का लोटा, उससे लोटा घी का हो गया तो काम हुआ, ऐसा है? वह तो ज्ञान में ख्याल में आया।

प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य-क्षेत्र-भाव तो त्रिकाल है, क्षेत्र की वर्तमान अवस्था भिन्न-भिन्न है वह दूसरी बात है। बाकी वर्तमान पर्याय जो चलती है वह पर की पर्याय

का अभाव से ही चलती है। तो परद्रव्य बिना ही स्वद्रव्य का काम होता है। त्रिकाल होता है और मानता है कि मुझे परद्रव्य से काम लेना पड़ता है। लक्ष्मीचंदजी! बराबर है? प्रत्येक द्रव्य अनंत द्रव्य का अभाव से अपना काम चलाते हैं। प्रत्येक पदार्थ अनंत द्रव्य का कार्य के बिना... अनंत द्रव्य का कार्य क्या? उसकी पर्याय। अनंत द्रव्य का कार्य उसकी पर्याय। उस कार्य की पर्याय बिना प्रत्येक अनंत पदार्थ अपना कार्य से काम लेते हैं, पर से कोई काम लिया (ऐसा) तीन काल में बना नहीं। कठिन बात भाई!

वह प्रश्न हुआ था, बोटाद में। हरजीवनभाईने प्रश्न किया था, नागरभाई के भाई। महाराज! आप ये लक्ष्मीवालों को फटकारते हो कि लक्ष्मी नहीं, धूल है... चलता नहीं उसके बिना। सुबह एक रूपया चाहिये, पहले तो दो-चार पैसे लगते थे सब्जी का। अब तो एक रूपया हो तो मुश्किल से पूरा पड़े। दस लोग हो (घर में)। थैली चाहिये, रूपया चाहिये, एक अच्छा आदमी (चाहिये), वृद्ध हो गया हो तो साथ में एक आदमी चाहिये सब्जी लेने जाये तब, ऐसे में हमें (पैसे) बिना चले कैसे? चले कैसे? उसको कहा कि, प्रभु! प्रत्येक पदार्थ ने पर के अभाव से ही चलाया है। पर का भाव से चलावे तो दो द्रव्य एक हो जाता है। समझ में आया? क्या कहते हैं, देखो।

मिट्टी है न मिट्टी? '**घृतसंयोग के उपचार से उसी को घृत का घड़ा कहा जाय सो व्यवहार। ऐसे ही अन्यत्र जानना।**' ऐसे ही अन्यत्र जानना। '**इसलिये तू किसी को निश्चय माने और किसी को (पर को) व्यवहार माने...**' पर का भाव तो उसका निश्चय है। स्व का भाव अपना निश्चय है। पर का भाव को व्यवहार और अपना भाव को निश्चय, ऐसा है नहीं। कितना स्पष्ट किया है देखो! '**वह भ्रम है।**'

'**तथा तेरे मानने में भी निश्चय-व्यवहार को परस्पर विरोध आया।**' देखो! हमने जो निश्चय-व्यवहार का विरोध बतलाया था, उससे तेरा विरोध दूसरी जात का आया। समझ में आया? '**तेरे मानने में भी निश्चय-व्यवहार को परस्पर,...**' हाँ! परस्पर। व्यवहार से निश्चय तेरी मान्यता, क्या? '**यदि तू अपने को सिद्धसमान शुद्ध मानता है...**' यदि तू अपने आप को सिद्ध (समान) शुद्ध माने। वज़न यहाँ है, हाँ! सिद्ध पर। '**तो व्रतादिक किसलिये करता है?**' तो व्रतादिक किसलिये करता है? सिद्ध को व्रत कैसा? तेरी पर्याय सिद्धसमान है तो व्रत कैसा? तप कैसा? मोक्षमार्ग कैसा?

'सिद्ध समान सदा पद मेरो', बनारसीदास में आता है न? लेकिन वह तो द्रव्य

की अपेक्षा से सिद्ध समान। क्या पर्याय की अपेक्षा से सिद्ध समान है? समझ में आया? तू सिद्ध समान शुद्ध मानता है तो **'व्रतादिक किसलिये करता है?'** तो व्रतादिक क्यों करता है? **'यदि व्रतादिक के साधन द्वारा सिद्ध होना चाहता है...'** अर्थात् मोक्षमार्ग का साधन करके सिद्ध होना चाहे। समझ में आया? **'तो वर्तमान में शुद्ध आत्मा का अनुभव मिथ्या हुआ।'** सिद्धसमान, सिद्धसमान शुद्ध का अनुभव मिथ्या (हुआ)। सिद्धसमान, हाँ! समझ में आया? क्या कहा? तो वर्तमान में सिद्ध समान **'शुद्ध आत्मा का अनुभव मिथ्या हुआ।'** बराबर है? समझ में आता है? फिर शुद्ध आत्मा का अनुभव कहेंगे। यह सिद्धसमान शुद्ध का अनुभव तेरा मिथ्या है, ऐसा कहा। सिद्ध तो पर्याय है। पर्याय--कार्य पूर्ण हो गया? और साधन करता है मोक्षमार्ग का? साधन कहाँ रहा? तुझे निश्चय-व्यवहार की कुछ खबर नहीं।

**'इसप्रकार दोनों नयों के परस्पर विरोध है;...'** दोनों नयो के परस्पर विरोध है। तू सिद्ध समान मान और साधन कर, विरुद्ध हो गया तेरी नय का। साधन करना व्यवहार और सिद्धपर्याय मेरी है उसका नाम निश्चय, वह रहा ही नहीं, दोनों में विरोध है। **'इसलिये दोनों नयों का उपादेयपना नहीं बनता।'** देखो! दोनों नयों का अंगीकार करना (बनता) नहीं। एक निश्चयनय का अंगीकार करना बने, व्यवहार का अंगीकार करना बने नहीं।

अब, वह शास्त्र पढ़ा हुआ है, वाँचन किया है न उसने, इसलिये सामने दलील देता है। लेकिन आप ऐसा कहते हो, महाराज! लेकिन समयसार आदि, प्रवचनसार.. अरे..! परमात्मप्रकाश (में) **'शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है,...'** शुद्ध आत्मा के अनुभव को वहाँ सच्चा कहा है, सच्चा कहा है, निश्चय कहा है, यथार्थ कहा है। समझ में आया? और **'व्रत, तप, संयमादिक को व्यवहार कहा है;...'** समयसार में व्रत, तप, संयम उसको व्यवहार कहा है। तो ऐसा हम मानते हैं, समयसार में कहा है ऐसा हम मानते हैं। तो हमारी क्या भूल है उसमें? आप तो कहते हो, हमारी भूल और आप सच्चे। परन्तु समयसार में लिखा है, हम मानते हैं, ऐसा ही मानते हैं। शुद्धात्मा का अनुभव वह निश्चय और व्रत, तप व्यवहार ऐसा समयसार में लिखा है। ऐसा लिखा नहीं है, तुझे मालूम नहीं। उसका समाधान। ऐसा हम मानते हैं, सब दलील तो ऐसे ही करे न। शास्त्र में है, देखो! इस शास्त्र में है, इस शास्त्र में है। सुन तो सही।

**'समधान :-- शुद्ध आत्मा का अनुभव सच्चा मोक्षमार्ग है,...'** शुद्ध आत्मा, शुद्ध सिद्धसमान पर्याय नहीं। वह कहता है कि सिद्धसमान अनुभव सो निश्चय। ऐसा नहीं। शुद्ध आत्मा का अनुभव वह निश्चय।

मुमुक्षु :-- बहुत बड़ा फ़र्क़ हो गया।

उत्तर :-- बहुत फ़र्क़ हो गया। समझ में आया?

वह कहता है कि सिद्धसमान उसको हम निश्चय कहते हैं। शुद्ध आत्मा का अनुभव कहा था न तीसरी पंक्ति में? सिद्धसमान शुद्ध आत्मा। नहीं, सिद्धसमान नहीं। वह तो पर्याय हो गयी। द्रव्य शुद्ध, द्रव्य शुद्ध वस्तु। शुद्ध नाम पर से पृथक् ऐसा शुद्ध आत्मा का अनुभव, पर्याय में निर्मलता का अनुभव वह सच्चा मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

फिर से, यहाँ अभी आयेगा। शुद्ध का अर्थ आयेगा। शुद्ध आत्मा का अनुभव। शुद्ध का अर्थ द्रव्य, परद्रव्य से लक्ष्य हटाकर अपना द्रव्य पर दृष्टि देना वह द्रव्य शुद्ध है। उसका अनुभव निर्मल पर्याय का होना, शुद्ध का होना वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया? शुद्ध आत्मा का अनुभव। वह कहता है कि शुद्ध सिद्धसमान अनुभव। सिद्धसमान अनुभव (हो) तो मोक्षमार्ग रहा कहाँ? तो साधन करने का रहा कहाँ? तुमने तो सिद्ध समान पर्याय में मान लिया है। वह तेरा निश्चय सच्चा नहीं। शुद्ध आत्मा का अनुभव। परद्रव्य, गुण, पर्याय विकार, पर का हाँ! उससे लक्ष्य हटाकर अपने द्रव्य में लक्ष्य किया तो द्रव्य शुद्ध है, पर से भिन्न। उसका अनुभव, वह तो निर्मल पर्याय हुयी। निर्विकल्प वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र वह सच्चा मोक्षमार्ग है। यह सच्चा धर्म है, बाबुभाई! यह सच्चा धर्म है। समझ में आया? लेकिन सिद्धसमान अनुभव, सिद्धसमान अनुभव (कहता है)। क्या सिद्धसमान है? सिद्ध कहाँ है तुझे? सिद्धसमान अनुभव वह मोक्षमार्ग कहे तो निश्चय... पुनः निश्चय मार्ग कहे, वह कहाँ-से आया?

'**इसलिये उसे निश्चय कहा।**' इसलिये उसे, माने? शुद्ध आत्मा अभेद पर दृष्टि है, द्रव्य पर, उसका अनुभव हुआ सच्चा, निर्मल पर्याय, '**इसलिये उसे निश्चय कहा।**' अब अर्थ करते हैं। '**यहाँ स्वभाव से अभिन्न, परभाव से भिन्न--ऐसा 'शुद्ध' शब्द का अर्थ जानना।**' क्या कहते हैं? शुद्ध आत्मा, शुद्ध आत्मा ऐसा कहा न पहले? शुद्ध आत्मा। तो शुद्ध किसको कहते हैं तुम? अपना स्वभाव से अभिन्न, अपना स्वभाव से एकरूप द्रव्य। अपना स्वभाव से अभिन्न एकरूप द्रव्य और परभाव से भिन्न। परद्रव्य, परगुण, परपर्याय, पर का भाव से भिन्न। परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से भिन्न अपने द्रव्य के स्वभाव से अभिन्न। अपना स्वभाव... गुण-पर्याय भी नहीं, अपना स्वभाव एकरूप अभिन्न। स्वभाव से अभिन्न एकरूप द्रव्य। और परभाव से भिन्न। कर्मा का उदय आदि, शरीर की क्रिया आदि, उदय वह सब परभाव है, परभाव। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- सब का एकरूप है। सब का। आत्मा का स्वभाव गुण-पर्याय उसके साथ द्रव्य अभिन्न है। द्रव्य उसके साथ अभिन्न है। अपने गुण और पर्याय के साथ द्रव्य अभिन्न है। ऐसा शुद्ध द्रव्य जो अभिन्न है... समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उस अशुद्ध की यहाँ बात ही नहीं है। द्रव्य पर दृष्टि है तो द्रव्य पर से भिन्न है ऐसा शुद्ध, अपना स्वभाव से अभिन्न, अपना भाव से अभिन्न। फिर कोई गुण-पर्याय कुछ रहा ही नहीं। अपना स्वभाव से अभिन्न एकरूप द्रव्य। समझ में आया? कहो, यह मोक्षमार्गप्रकाशक, शास्त्र का उकेल करता है। उसमें भी थोड़ा कठिन पड़ता है, तो सीधा समयसार समझन में (कठिन ही पड़े)।

मुमुक्षु :-- .. वहाँ तो सीधा पढ़ने में कितनी...

उत्तर :-- सीधी बात समयसार।

कहते हैं कि '**यहाँ स्वभाव से अभिन्न,...**' स्वभाव शब्द का अर्थ अपना सब भाव, सब भाव से अभिन्न एकरूप। गुण-पर्याय से अभिन्न सब। उसमें कोई भेद नहीं कि यह पर्याय और यह गुण ऐसा नहीं। स्वभाव से अभिन्न, परभाव से भिन्न। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है पर। परभाव से (अर्थात्) विकार से भिन्न ऐसा यहाँ नहीं लेना है। यहाँ परभाव में विकार नहीं लेना है। परभाव में परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लेना है। समझ में आया? वह तो स्वद्रव्य जो स्वभाव से अभिन्न है ऐसी दृष्टि हुई, वहाँ राग का अभाव होकर शुद्ध की परिणति होती है। तब शुद्ध द्रव्य परद्रव्य से जुदा हुआ। समझ में आया? क्या कहते हैं, समझ में आता है? ज्ञानचंदजी! फिक्षर से, फिर से। एक बार इन्होंने वन्स मोर कहा था, शेठी ने। नहीं? कहा था कि नहीं? वन्स मोर का अर्थ फिर से, ऐसा न? दूसरी बार।

कहते हैं कि भैया! तू सिद्धसमान पर्याय का अनुभव सो निश्चय कहता है, सो तेरी भूल है। व्रत, संयम की प्रवृत्ति को तू व्यवहार कहता है, तेरी दोनों में भूल है। तुझे निश्चय-व्यवहार का भान नहीं। निश्चय इसको कहते हैं कि अपना जो द्रव्य अपना स्वभाव से स्वभाववान अभिन्न, स्वभाव से स्वभाववान अभिन्न, उसकी दृष्टि देने से पर्याय में निर्मलता का अनुभव होता है। वह मोक्षमार्ग कहने में आता है। समझ में आया?

'**परभाव से भिन्न...**' परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, कर्म का उदय, कर्म की पर्याय, कर्म का गुण, शरीर की पर्याय, शरीर का गुण, शरीर का द्रव्य, यह सब द्रव्य-गुण-पर्याय, द्रव्य-भाव पर। पर का द्रव्य-भाव उससे भिन्न। परभाव अर्थात् पर का द्रव्य और भाव, उसका भाव जो गुण और पर्याय, यह सब परद्रव्य गुण-भाव से भिन्न आत्मा।

मुमुक्षु :-- नास्ति से हो गया।

उत्तर :-- नास्ति से है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि सिद्धपर्याय समान नहीं लेना। परद्रव्य से भिन्न, अपना स्वभाव द्रव्य से अभिन्न ऐसा शुद्ध का अर्थ है। तू शुद्ध का अर्थ सिद्धसमान पर्याय लगा दे, ऐसा शुद्ध का अर्थ है नहीं। अनर्थ करता है। कितने ही निश्चय माननेवाले हैं न? सिद्धसमान मैं हो गया, सिद्धसमान। कहाँ-से सिद्धसमान हो गया? वह तो निश्चयाभासी हुआ। हम तो सिद्धसमान, सिद्धसमान। सुन तो सही, मर जायेगा वहाँ। सिद्धसमान कहाँ-से लाया? पर्याय में सिद्ध समान हो तो तुझे बाकी क्या रहे? विचारना, ध्यान करना बाकी कहाँ रहा? तुझे निश्चय का भी भान नहीं, व्यवहार का भी भान नहीं। समझ में आया?

शुद्ध आत्मा ऐसा कहा है, हाँ! शुद्ध आत्मा, उसका अनुभव। शुद्ध अर्थात् अपने भाव से अभिन्न ऐसा जो शुद्ध आत्मा, उसका अनुभव (वह) निर्मल पर्याय हुयी।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसका यहाँ काम नहीं है, उसका अभी काम नहीं है।

यहाँ तो अन्दर शुद्ध द्रव्य अभिन्न, अभिन्न पर दृष्टि पड़ी तो उसकी पर्याय में अनुभव निर्मल हुआ, बस इतनी बात। समझ में आया? अनुभव तो पर्याय का होता है। द्रव्य का, गुण का अनुभव नहीं होता। वह तो १५वीं गाथा में कहा। सामान्य का आविर्भाव का अर्थ क्या? पर्याय जो प्रगट निर्मल हुयी, उसको वहाँ सामान्य कहा है। कहाँ? १५वीं गाथा, जैनशासन में।

यहाँ सामान्य नाम शुद्ध द्रव्य अपना स्वभाव से अभिन्न, अपना स्वभाव से अभिन्न ऐसा जो द्रव्य उसका अंतर लक्ष्य करके जो पर्याय में अनुभव होता है, वह शुद्ध आत्मा तो द्रव्य हुआ। अभिन्न, स्वभाव से अभिन्न द्रव्य हुआ। उसका अनुभव पर्याय हुयी।

मुमुक्षु :-- अनुभव पर्याय हुयी।

उत्तर :-- अनुभव पर्याय है, अनुभव तो पर्याय है न।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- कहा न, ये सब गुण और पर्याय का भेद ही नहीं है उसमें। पर से भिन्न, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। अपना स्वभाव से अभिन्न, अपने गुण और पर्याय सब एकरूप द्रव्य में है उसमें भेद नहीं करना कि यह पर्याय है, यह विकार है, यह गुण है, ऐसा कुछ नहीं। अपना जितना स्वभाव है उससे अभिन्न द्रव्य है। तो अभिन्न द्रव्य में एकरूप की दृष्टि पड़ने से पर्याय में निर्मलता का अनुभव होना उसका नाम मोक्षमार्ग है।

मुमुक्षु :-- स्वभाव में रागादि...

उत्तर :-- वह फिर रहा नहीं। द्रव्य पर दृष्टि गयी न। भेद भी कहाँ रहा। अभेद अनुभव पर्याय का निर्मल का हुआ। राग एक ओर रह गया। समझ में आया? राजमलजी! समझ में आता है? कहो, आता है दूसरे को? ये तीन पंडित हमारे बैठे हैं न। ये चौथे पंडित हमारे यहाँ है, बाबुभाई। वह गुजरात के पंडित है। समझ में आया? ये तो मुँबई के पंडित है, लो।

यह बात बहुत अच्छी ली है, हाँ! भाई! तू अपनी पर्याय को सिद्धसमान मानकर प्रवृत्ति तो करता है व्रत की, साधन की अथवा साधन की, तो साधन मानना और साध्य पूर्ण दशा पर्याय में मानना, वह तेरा निश्चय-व्यवहार दोनों फोक है। तू निश्चय-व्यवहार को जानता नहीं। ऐसा भगवान ने कहा नहीं निश्चय को।

यहाँ तो शुद्ध आत्मा, शुद्ध आत्मा बस इतना। शुद्ध आत्मा उसका अर्थ क्या? शुद्ध यानी स्वभाव से अभिन्न, परभाव से भिन्न ऐसा शुद्ध आत्मा, बस। समझ में आया? ऐसा शुद्ध आत्मा का अनुभव, उस ओर का झुकाव, द्रव्य पर झुकाव हुआ (तो) पर्याय में निर्मलता उत्पन्न होती है वह मोक्षमार्ग है। वह तो स्पष्ट बात है, उसमें कुछ गड़बड़ी है नहीं। समझ में आया? स्वभाव से अभिन्न... भाई! यह माँगा था, हमारे दुलीचंदजी, हेमराजजी ने। यह दो नय है वह अटपटी है। तो क्या है? गड़बड़ी चलती है। बहुत मर्म भर दिया है, ओहोहो..! सातवें अध्याय का यह एक-दो लिया। समझ में आया? मिलान, दो का मिलान करे। पहले एकांत निश्चयाभास, व्यवहाराभास, फिर निश्चय के साथ व्यवहार दोनों एकसाथ कहते हैं।

'**ऐसा 'शुद्ध' शब्द का अर्थ जानना।**' यह किसका अर्थ हुआ? शुद्ध का अर्थ। शुद्ध। निर्मल पर्याय मोक्षमार्ग की उसका अर्थ नहीं है। अनुभव, सच्चा अनुभव हुआ उसका अर्थ नहीं। यह शुद्ध पहले का अर्थ इतना हुआ। समझ में आया? सच्ची निर्मल अनुभव पर्याय की बात नहीं है। शुद्ध आत्मा किसको कहते हैं? तो कहते हैं कि अपने स्वभाव से अभिन्न और परभाव से भिन्न ऐसा शुद्ध शब्द का, इस शुद्ध शब्द का अर्थ जानना। '**संसारी को सिद्ध मानना--ऐसा भ्रमरूप अर्थ 'शुद्ध' शब्द का जानना।**' संसारी पर्याय के समय भी संसारी भी मैं हूँ और निश्चय से मैं सिद्ध हूँ, ऐसा है नहीं। निश्चय से संसारपर्याय तेरी है। समझ में आया? निश्चय से संसारपर्याय तेरे में है। क्या व्यवहार से है? संसारी पर्याय अपने स्वद्रव्य की है।

'**संसारी को...**' मलिन पर्याय को निर्मल पर्याय जानना, वह भी पूर्ण निर्मल ऐसा शुद्ध शब्द का अर्थ न जानना, ऐसा अर्थ शुद्ध शब्द का न लेना। बराबर है? वह एक बोल कहा। निश्चय की भूल दिखायी, निश्चय की भूल दिखायी। उसकी निश्चय की भूल कि हम सिद्ध समान अनुभव करते हैं वह हमारा निश्चय।

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- हाँ, वह पर्याय का अनुभव निश्चय कहता है। यह तो द्रव्य तरफ का झुकना उसमें अनुभव पर्याय का होता है वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

'**तथा व्रत, तप आदि मोक्षमार्ग है नहीं,...**' अरे..! व्रत और तप। लो आया बाबुभाई! ये आप के बुझुर्गों को बैठेगा कि नहीं? बिठाना पड़ेगा? कहते हैं कि व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि शब्द पड़ा है न? दान, दया मोक्षमार्ग नहीं है। '**निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते हैं,...**' मात्र सहचर देखकर, निमित्तरूप देखकर... समझे? इतना प्रयोजन भी है न? ऐसा परिणाम आये बिना रहता नहीं। '**निमित्तादिक की अपेक्षा उपचार से इनको मोक्षमार्ग कहते हैं, इसलिये इन्हें व्यवहार कहा है।**' निमित्त की अपेक्षा से उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं, इसलिये इन्हें व्यवहार कहा।

'**इसप्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से इनको निश्चय-व्यवहार कहा है;...**' लो। इसप्रकार भूतार्थ शुद्ध द्रव्य का, एक द्रव्य का अनुभव। अभूतार्थ--व्रत, तप का उपचार से कथन, ऐसे मोक्षमार्गपने से.. भूतार्थ मोक्षमार्ग, अभूतार्थ मोक्षमार्ग। भूतार्थ को निश्चय, अभूतार्थ को व्यवहार कहा है। '**सो ऐसा ही मानना।**' लो, सो ऐसा ही मानना, आगे-पीछे नहीं मानना, फेरफार नहीं मानना, जैसा है, वैसा मानना।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उपचार का अर्थ व्यवहार इतना लेना यहाँ। वह तो विकार है, सब भेद है, सद्भुत व्यवहारनय से पर्याय है वह भी उपचार है। यहाँ भेद पड़े न सब। असद्भुत के दो है, उपचार और अनुपचार, ख्याल में आता है और नहीं ख्याल में आता है, सब उसमें आ गया, चारों व्यवहार उसमें आ गये, चारों आ गये। समझ में आया? लेकिन यहाँ तो खास उस राग को बताना है न, व्रत, तप को मानता है न, तो कहते हैं, नहीं, नहीं वह नहीं है, लेकिन उपचार से निमित्त से कहने में आया।

'**परन्तु यह दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं, इन दोनों को उपादेय मानना, वह तो मिथ्याबुद्धि है।**' दोनों सच्चे मोक्षमार्ग हैं, निश्चय भी सच्चा और व्यवहार भी सच्चा। ऐसा कथन एक बार आया था, देखो भाई! मार्ग लिखा है शब्द। व्यवहारमार्ग लिखा है पुस्तक में। परन्तु मार्ग क्या है? '**दोनों को उपादेय मानना, वह तो मिथ्याबुद्धि है।**' अब दूसरा प्रश्न उठायेगा उसका उत्तर आयेगा...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**वीर सं.-२४८८, श्रावण वद-४, रविवार,**
**दि. १९-८-१९६२, सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ११**

कहाँ तक आया है? शेठी! '**तो क्या करें, सो कहते हैं।**' ऊपर क्या कहा? कि ये दोनों साथ में मोक्षमार्ग है और दोनों को उपादेय मानना सो तो मिथ्याबुद्धि है। दो सिद्धांत कहे। निश्चयमोक्षमार्ग--अपना स्वभाव में एकाग्र शुद्ध होकर श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र वीतरागी निर्विकल्प परिणति (हो), वह निश्चयमोक्षमार्ग। और रागादि या व्रतादि का परिणाम, उसको व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आता है। तो दोनों सच्चे मोक्षमार्ग हैं, ऐसा नहीं है। एक सच्चा और एक झूठा। असत्यार्थ कहो या झूठा कहो, अभूतार्थ कहो या झूठा कहो। समझ में आया? और दोनों को उपादेय मानना। निश्चयमोक्षमार्ग भी आदरणीय है और व्यवहार व्रत, नियम आदि विकल्प शुभ राग, उपाधि परिणति आस्रव की शुभ की परिणति, वह भी उपादेय है, यह मानना तो मिथ्यात्व है। ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि है। दोनों सच्चा नहीं और दोनों उपादेय नहीं। एक सच्चा, एक असच्चा। एक उपादेय, एक हेय।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- चौथे गुणस्थान के स्थान में।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- व्रत लेने का कहाँ प्रश्न है। आता है उसको सच्चा मोक्षमार्ग न मानना। आते हैं। समझ में आया? आया है कि नहीं तुम्हारे? कौन जाने कहाँ से कहाँ हो जाता होगा।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- पुण्य काम करता है, बात सच्ची।

देखो, दो बात ली। एक भूतार्थ मोक्षमार्ग अर्थात् सच्चा। एक अभूतार्थ। वह निकाला व्यवहार अभूदत्थो उसमें से निकाला है। ११वीं गाथा, उसका दो पद। व्यवहार सो असत्य है और निश्चय सो सत्य है। उसमें से निकाला कि तुम तो कहते हो कि हमें निश्चयमोक्षमार्ग--स्वभाव की शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान भी हमें सच्चा है और बीच में व्रत, नियम, संयम का विकल्प उठते हैं, शुभराग वह भी सच्चा मोक्षमार्ग है, यह बात झूठ है। एक सच्चा है और एक झूठ है। समझ में आया? और दोनों उपादेय है ऐसा मानना भी मिथ्यादृष्टि है। निश्चय उपादेय और व्यवहार उपादेय ऐसे होता नहीं। वहाँ तक आया है।

**'वहाँ कहता है कि श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं...'** लो, श्रद्धा तो निश्चय की रखते हैं **'और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं।'** हमारी श्रद्धा में निश्चय है और प्रवृत्ति व्यवहार--व्रत, नियम, संयम, तप आदि शुभराग की प्रवृत्ति रखते हैं। वज़न रखना है न, प्रवृत्ति और व्यवहार अभिप्राय अनुसार है। प्रवृत्ति कोई व्यवहार-फ्यवहार नहीं है, ऐसा कहते हैं। प्रवृत्ति है वह व्यवहार-फ्यवहार नहीं। उसको व्यवहार मानना उसका नाम व्यवहार है। मोक्षमार्ग व्यवहार मानना वह व्यवहार है। प्रवृत्ति कोई व्यवहार (नहीं है)। प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। समझ में आया? क्या कहा समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह व्यवहार है, परिणति तो अपनी है। अपनी पर्याय में राग, विकल्प, व्रत, नियम, शील, संयम का विकल्प वह पर्याय तो आत्मा की परिणति है। उस परिणति को व्यवहार मानना, मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है। परिणति कोई व्यवहार है या निश्चय है ऐसा है नहीं। समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बहुत चलता है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- लेकिन व्यवहार क्या? वह चलता है, देखो!

**'वहाँ कहता है कि श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं...'** वह तो उसमें भी अन्य में भी आता है। 'निश्चय दृष्टि हृदय धरे जी, साधे जे व्यवहार पुण्यवंत ते पामशे भवसागरनो पार।' ऐसा नहीं है। व्यवहार करना वह भी नहीं, मैं करूँ ऐसा नहीं और प्रवृत्ति स्वयं व्यवहार नहीं। समझ में आया? **'इस प्रकार हम दोनों को अंगीकार करते हैं।'** वह कहता है सामने का पक्षवाला, हम तो दोनों को इस अपेक्षा से अंगीकार करते हैं। एक निश्चय श्रद्धा में रखते हैं, व्यवहार प्रवृत्ति करते हैं। बस! इतना हमारी दो प्रकार से.. इस अपेक्षा से दोनों को अंगीकार करते हैं ऐसा हम मानते हैं। **'सो ऐसा भी नहीं बनता,...'** वह भी बनता नहीं, तू कहता है वह बात ही झूठी है।

**'क्योंकि...'** देखो, न्याय देते हैं। **'निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है।'** व्यवहार नहीं है और व्यवहार की व्यवहारश्रद्धा नहीं करना (ऐसा नहीं)। निश्चय को निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग यथार्थ मानना और व्यवहार को व्यवहार है ऐसा मानना, व्यवहार है ऐसा मानना, ऐसी श्रद्धा करना कि व्यवहार है। एक निश्चय की श्रद्धा करना और व्यवहार की प्रवृत्ति करना और श्रद्धा नहीं करना,

वह तो निरपेक्ष निश्चय व्यवहार की अपेक्षा रही नहीं, मिथ्यादृष्टि हो गया। समझ में आया? धरमचंदजी! क्या आया?

मुमुक्षु :-- प्रवृत्ति जो है...

उत्तर :-- वह तो ठीक, प्रवृत्ति नहीं, हम प्रवृत्ति को व्यवहार कहते हैं। श्रद्धा नहीं रखना, व्यवहार की श्रद्धा नहीं, निश्चय की श्रद्धा रखना। दोनों की श्रद्धा रखना। निश्चयमोक्षमार्ग निश्चय से है, उपादेय है, सत्य है ऐसी श्रद्धा करना और व्यवहार व्रत, नियम का विकल्प शुभराग है वह मोक्षमार्ग है नहीं, व्यवहार से कहने में आता है। उपादेय नहीं, सच्चा नहीं, परन्तु है ऐसी श्रद्धा करना। एक नय की श्रद्धा करने से दूसरे नय की श्रद्धा न हो तो मिथ्यादृष्टि एकांत हो जाता है। समझ में आया? एक नय को आदरणीय मानना और दूसरी नय को नहीं मानना, नहीं मानना। आदरणीय नहीं मानना दूसरी बात (है), झूठा मानना दूसरी बात है, लेकिन है नहीं ऐसा मानना एकांत मिथ्यात्व है। समझ में आया?

'**क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप...**' अपना चैतन्यप्रभु अपनी अंतर्मुख होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी मोक्षमार्ग है उसको ऐसा मानना। '**व्यवहार का व्यवहाररूप...**' राग को, पुण्य को, शुभ भाव की प्रवृत्ति है उसको व्यवहार है ऐसी श्रद्धान करना, व्यवहार की श्रद्धान करना। हेयपने जानकर श्रद्धा उसकी करना।

मुमुक्षु :-- श्रद्धान में दोनों बात आयी?

उत्तर :-- दोनों बात आयी श्रद्धान में। आदरने में एक आया, श्रद्धान में दो आया। व्यवहार है ही नहीं तो निश्चय कहाँ-से आया? व्यवहार, निश्चय दो है नहीं ऐसा नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग है वह उपादेय और सत्य है। व्यवहारमोक्षमार्ग है, (वह) है सही, श्रद्धा में लेना की है, आदरणीय नहीं, सत्य नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह बात है। व्यवहार ही नहीं है, बस! हमें तो एक निश्चय है। व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। केवली हो गया? अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। शेठी! ऐसा है नहीं।

कहते हैं, '**क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है। एक ही नय का श्रद्धान से एकान्त मिथ्यात्व होता है।**' देखो! जैसे व्यवहार को अकेला मानना और निश्चय न हो तो भी एकान्त मिथ्यात्व है। क्या कहा? हम तो व्रत, नियम, व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र सब व्यवहार करते हैं वह हमारा व्यवहार है। लेकिन निश्चय के बिना व्यवहार तो एकान्त (मिथ्यात्व है)। एक नय दूसरी नय की अपेक्षा न रखे तो तो मिथ्यादृष्टि हो गया। समझ में आया?

कुछ लोग कहते हैं न? यहाँ दूसरी बात है, पहले दूसरा कहते हैं उसको कि हमारे व्यवहार है, व्यवहार है। लेकिन निश्चय बिना व्यवहार कहाँ-से आया? अकेला व्यवहार निश्चय बिना, जैसा एकांत मिथ्यात्व है, वैसा अकेला व्यवहार निश्चय बिना एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? कहाँ गये अपने? राजमलजी! समझ में आया? दो है मानना, नहीं है ऐसा नहीं। व्यवहार है, वह परिणति है उसको व्यवहार तरीके व्यवहार मोक्षमार्ग तरीके (मानना)। व्यवहार माने है नहीं, लेकिन है वस्तु ऐसा मानना। व्यवहार की श्रद्धा ही न करना (ऐसा नहीं)। आदरणीय नहीं, सत्य नहीं परन्तु श्रद्धा ही नहीं करना (वह तो) एकान्त मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- एक उपादेय, एक हेय, एक सत्य, एक असत्य। दोनों की श्रद्धा करना। यह श्रद्धा छोड़ने लायक है, वह हेय है ऐसी श्रद्धा करना। लेकिन व्यवहार को मानना ही नहीं, व्यवहार है ही नहीं, (वह तो) मिथ्यादृष्टि है, एकान्त मिथ्यात्व है। उसमें से निकाले, देखो! यहाँ व्यवहार की श्रद्धा न करे तो मिथ्यात्व है। लेकिन वह तो व्यवहार की श्रद्धा करने का अर्थ, है, इतनी बात है। छोड़ने लायक है। वह श्रद्धा छोड़ने लायक है, व्यवहारश्रद्धा आदरने लायक है (ऐसा मानना) मिथ्यात्व है, एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? कितनी बात कही है! टोडरमल ने शास्त्रमें-से निकालकर। कली-कली का पांदडा खिल गया है, पांदडा को क्या कहते हैं? पत्ता हो न, कली उसका एक-एक पत्ता।

कहते हैं, भैया! तुम दोनों को उपादेय मानो तो झूठ, दोनों सत्य मानो तो झूठ और दोनों की श्रद्धा न करना वह भी झूठ। समझ में आया? बाबुभाई!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वस्तु की स्थिति ऐसी है। एक ओर कहना कि एक नय दूसरे नय की अपेक्षा न रखे तो निरपेक्षा नया मिथ्या। उसका अर्थ क्या? हम तो निश्चय को मानते हैं, व्यवहार को नहीं, मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार व्यवहार है, लेकिन व्यवहार से निश्चय होता है (ऐसा) उसका अर्थ नहीं। व्यवहार से निश्चय होता है और व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। है, उसको मानना उसका नाम व्यवहार की श्रद्धा (है), बस। समझ में आया?

यह अधिकार बहुत अच्छा है। मक्खन, मक्खन। '**ववहारोऽभूदत्थो**' ११वीं गाथा का यह खुलासा करते हैं। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ-भूतार्थ भगवान पूर्णानंद की प्रतीति, ज्ञान और रमणता वह शुद्धनय का विषय है। है तो विषय भूतार्थ त्रिकाल, परन्तु उसके आश्रय से जो परिणति उत्पन्न होती है उसको

निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। निमित्त के अवलम्बन से पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव व्यवहार है ऐसा मानना। आदरणीय मानना नहीं और सत्य मानना नहीं। सत्य का अर्थ--वह सच्चा मार्ग है ऐसा मानना नहीं। परन्तु व्यवहार तरीके है ऐसा मानना।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, आदरणीय एक ही है, सत्य एक ही है, दूसरा सत्य नहीं और दूसरा आदरणीय नहीं। मानने में ख्याल में दोनों रखना। समझ में आया?

तो कहते हैं, '**एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व होता है।**' जैसे निश्चयनय की दृष्टि की अपेक्षा बिना अकेला व्यवहार एकान्त मिथ्यात्व है, वैसे निश्चयदृष्टि में व्यवहार है ऐसी अपेक्षा रखे बिना (माने तो) वह भी एकान्त मिथ्यात्व है। लोगों को पकड़ना कठिन पड़े। व्यवहार न माने तो मिथ्यात्व है कि नहीं? देखो! तो व्यवहार मानना कि व्यवहार से धर्म होता है। ऐसा कहाँ आया? वह कौन कहता है? व्यवहार से धर्म होता है, व्यवहार सहायक है, व्यवहार मददगार है तो निश्चय है, वह बात तो है नहीं। व्यवहार से पुण्यधर्म होता है। व्यवहारधर्म का अर्थ बन्धधर्म होता है। परन्तु है ऐसा मानना चाहिये। नहीं है तो एकान्त मिथ्यात्व नय एक रहती है। दूसरी नय का ज्ञान श्रद्धा में न आवे तो मिथ्यानय हो जाती है।

मुमुक्षु :-- व्यवहारबन्ध न हो तो आस्रव, बन्ध नहीं माना।

उत्तर :-- आस्रव, बन्ध तो परिणाम है न। और उसकी परिणति में है न इतना। है तो इतना नहीं मानना? मिथ्यात्व है। समझ में आया?

'**तथा प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है।**' देखो! उसने कहा था न? हम प्रवृत्ति व्यवहार की रखते हैं, प्रवृत्ति व्यवहार की रखते हैं, श्रद्धा निश्चय की रखते हैं, इसप्रकार दोनों श्रद्धा रखते हैं। तेरी दोनों श्रद्धा झूठी है। प्रवृत्ति व्यवहार की रखें हमारी श्रद्धा, प्रवृत्ति व्यवहार की रखना, ऐसा किसने कहा तुझे? सुन। '**प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है।**' परिणति जो आत्मा की है.. क्या? व्यवहार की। व्रत, तप, भक्ति, पूजा का शुभराग। '**प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है।**' प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है, वह तो शुभराग संयम, ये व्यवहारसंयम हाँ! दया, दान, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत का विकल्प श्रावक की भूमिका में, वह द्रव्य की परिणति है। वह तो आत्मा की परिणति पर्याय है, नहीं कि जड़ की है। समझ में आया?

'**वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसीकी प्ररूपित करे...**' प्ररूपित यानी जानिये, कहिये और जानिये '**सो निश्चयनय,...**' वह परिणति जीव की है, जीव

में है ऐसा जानना निश्चय सत्यार्थ है। '**और उसही को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे...**' लेकिन वह व्यवहार कर्मजन्य उपाधि है, कर्म का कार्य है, कर्म है तो हुआ है ऐसा व्यवहार से कहना, जानना सो व्यवहार है। समझ में आया? कर्मजन्य उपाधि (ऐसा कहने में आता है)। है तो जन्य जीव की पर्याय। व्यवहार रत्नत्रय का राग, पूजा, भक्ति है तो जीव की परिणति, उसकी कहना निश्चय। कर्मजन्य है और कर्म की है ऐसा जानना व्यवहार है। समझ में आया? समझ में आता है कि नहीं? ईश्वरचंदजी! देखो! ये व्यवहार-निश्चय का झघड़ा निकाल देते हैं। आहाहा..!

दोनों नय में जगत भरमायो है। बनारसीदास कहते हैं। निश्चय और व्यवहार उसका क्या मिलान है और क्या विरोध है, खबर नहीं। बस! हम निश्चय-व्यवहार दोनों को मानते हैं। वहाँ तो अकेला निश्चय मानते हैं, निश्चय मानते हैं, निश्चय मानते हैं। बाबुभाई! सोनगढ़वाले अकेला निश्चय मानते हैं, व्यवहार करना और व्यवहार करना और व्यवहार से लाभ तो मानते ही नहीं। बात तो सच्ची है। व्यवहार से लाभ ही मानते नहीं। मानते हैं कि व्यवहार से बन्ध है। समझ में आया? व्यवहार करना वह कर्तृत्वबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। परन्तु व्यवहार है नहीं ऐसी बात नहीं। कर्तृत्वबुद्धि न हो, आदरणीय बुद्धि न हो, सत्य मोक्षमार्ग न हो तो भी है। समझ में आया?

उस परिणति को अपनी जानना वह निश्चय। कर्म की परद्रव्य की... परिणति तो वही की वही, पर की जानना सो व्यवहार। समझ में आया? समझ में आता है? शेठी!

मुमुक्षु :-- जी हाँ, परिणति अपने में होती है, पर जानना चाहिये यह पर है।

उत्तर :-- व्यवहार की अपेक्षा से पर, निश्चय की अपेक्षा से तो स्व। निश्चय तो अपनी परिणति है। तो उसको तो निश्चय कहना। कर्मजन्य से हुयी ऐसा कहना वह व्यवहार है। ऐसा निमित्त अपेक्षावाली श्रद्धा रखना कि है इतना, बस। वस्तु पर से है ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त की अपेक्षा से वहाँ कर्मजन्य कहा, उसका स्वामी कर्म है ऐसा निश्चय में आया न? तो वह व्यवहार से कहने में आया। परमार्थ तो अपनी परिणति (है)। यहाँ तो दो द्रव्य की भिन्नता की बात यहाँ तो करते हैं। स्वभाव और विभाव, परभाव की बात अभी नहीं। समझे? विभाव को परभाव कहा न? पर का भाव इस अपेक्षा से। अपनी परिणति अपने में है, निमित्त से है ऐसा जानना व्यवहारनय का विषय है। हेय है, श्रद्धा में हेय है, आदरणीय नहीं। है इतना मानना। समझ में आया?

देखो! '**ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में दो नय बनते हैं;...**' प्रवृत्ति कहीं नय नहीं है। परन्तु प्रवृत्ति में अभिप्राय अनुसार कथन करने में

आता है अथवा जानने में आता है। '**उस प्रवृत्ति में दो नय बनते हैं;...**' अपनी जानना निश्चय, पर की जानना व्यवहार। ऐसे प्रवृत्ति में अभिप्राय अनुसार दो नय होता है। प्रवृत्ति कोई नय-बय है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बस, बस, बस।

'**कुछ प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नहीं।**' परिणति तो उसकी--जीव की पर्याय है, व्यवहार रत्नत्रय आदि। वह कहीं नयरूप है नहीं। '**इसलिये इस प्रकार भी दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है।**' लो, तीसरा बोल कहा न। दो नय को उपादेय हम इस तरह मानते हैं। श्रद्धा निश्चय की रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहार की रखते हैं। ऐसा बनता नहीं। '**इस प्रकार भी दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है। तो क्या करें?**' करना क्या? तुम तो... भाई! व्यवहार की श्रद्धा न रखे तो मिथ्यात्व, व्यवहार सच्चा माने तो मिथ्यात्व, व्यवहार आदरणीय माने तो मिथ्यात्व। समझ में आया? बड़ी गड़बड़ी आप की तो भाई! सुनो, सुनो, सुन तो सही। '**क्या करें? सो कहते हैं :--**'

'**निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना...**' निश्चयनय स्वद्रव्य आश्रय, स्वद्रव्य आश्रय, उसका जहाँ कथन किया हो उसको तो सच्चा मानना, उसका श्रद्धान अंगीाकार करना, वह श्रद्धा अंगीकार करना। '**व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो...**' व्यवहार निमित्त की अपेक्षा, पर की अपेक्षा से कथन किया हो '**उसे असत्यार्थ मानकर...**' उसका श्रद्धान तो किया था परन्तु '**उसका श्रद्धान छोड़ना।**' वह श्रद्धान आदरणीय नहीं। है इतना मानना, आदरणीय नहीं। समझ में आया? बड़ी गड़बड़।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- आदरणीय है ही नहीं, मोक्षमार्ग है ही नहीं, वह मोक्षमार्ग ही नहीं है। व्रत, नियम, तप, उपवास आदि मोक्षमार्ग है ही नहीं, धर्म ही नही नहीं। परन्तु व्रतादि परिणाम बीच में आये, निश्चय का अनुभव और दृष्टि होने के बाद आये उसकी व्यवहार है ऐसी श्रद्धा करनी। धर्म नहीं, मोक्ष नहीं उसके कारण, मार्ग नहीं। बड़ी कठिन बात। कहो।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- छोड़ दे, श्रद्धा में छोड़ दे, श्रद्धा में छोड़ दे। अस्थिरता में कहाँ-से छूटे? स्वरूप स्थिरता होगी तब छूटेगा। शुद्धोपयोग जब होगा तब छूटेगा। परन्तु श्रद्धा में वह, व्रत, नियम, उपवास, क्रियाकांड सब बन्धमार्ग है, वह धर्ममार्ग नहीं है ऐसा

श्रद्धा करके वह श्रद्धा छोड़ना। वह असत्यार्थ है, वह मार्ग सच्चा नहीं। ओहोहो..! '**श्रद्धान छोड़ना।**'

'**यही समयसार कलश में कहा है :--**' लो, बोलो।

**सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै--**
**स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोप्यन्याश्रयस्त्याजितः।**
**सम्यङ्निश्चयमेकमेव परमं निष्कम्पमाक्रम्य किं**
**शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो घृतिम्।।१७३।।**

'**अर्थ :-- क्योंकि सर्व ही हिंसादि...**' बन्ध अधिकार का श्लोक महाश्लोक है, हाँ! '**ववहारोऽभूदत्थो**' को इसके साथ मिलाया, इसके साथ मिलाया। सब बात एकदूसरे प्रकार से ११वीं गाथा में है उसही का सब में विस्तार है। '**अर्थ :-- क्योंकि सर्व ही हिंसादि...**' हिंसा के परिणाम, झूठ का, चोरी का, विषय का, परिग्रह ममता का और अहिंसा, पर की दया का, सत्य का, दत्त का, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का परिणाम '**अध्यवसाय है सो समस्त ही छोड़ना...**' उसमें एकत्वबुद्धि है उसको छोड़ना। सत्य पंच महाव्रत हो कि पाँच अव्रत हो, सब छोड़ने लायक है ऐसा मानना। समझ में आया? क्योंकि हिंसादि पाप परिणाम है, अहिंसा आदि पुण्य अध्यवसान '**समस्त ही छोड़ना...**' समस्त ही छोड़ना। पर की एकत्वबुद्धि--मैंने पर की दया पाली, पर का ऐसा किया और मैंने पर को ऐसा किया, अहिंसा का परिणाम मुझे ऐसा हुआ, यह सब अध्यवसाय छोड़ने लायक है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- प्रवृत्ति में एकत्वबुद्धि हुई न, मैंने उसका किया, मैंने उसकी दया पाली आदि एकत्वबुद्धि हुई न।

'**ऐसा जिनदेवों ने कहा है।**' ऐसा वीतराग देवों ने कहा है। '**इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ...**' आचार्य महाराज अमृतचंद्राचार्य उसमें से ऐसा न्याय निकालते हैं कि भगवान परमात्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ऐसा फरमाते हैं कि पंच अव्रत और पाँच व्रत के विकल्प की एकत्वबुद्धि छोड़ दे। वह परद्रव्य आश्रय एकत्वबुद्धि है छोड़ दे। वह तुझे लाभदायक है नहीं। तो उसमें से तो हम ऐसा निकालते हैं, आचार्य कहते हैं... और बादवाली गाथा में २७२ में कुन्दकुन्दाचार्य वर्णन करते हैं, उसका अमृतचंद्राचार्यने निकाल किया।

'**जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है।**' यहाँ तो हम ऐसा निकालते हैं कि कोई भी निमित्ताश्रित विकल्पादि हो, भेद हो, सब भगवानने छुड़ाया है। एकत्वबुद्धि तो छुड़ायी है लिकन पराश्रित जितने भाव हैं सब छुड़ाये हैं।

मुमुक्षु :-- धर्मी का व्यवहार छुड़ाया है?

उत्तर :-- धर्मी का व्यवहार भी छुड़ाया है। व्यवहार ही उसे कहते हैं, अज्ञानी को व्यवहार कहाँ है? वह तो पहले कहा, एकान्त नय हो गयी। अज्ञानी को व्यवहार तो एकान्त नय है, मिथ्यात्व हुआ। और ज्ञानी को निश्चय है उसके साथ व्यवहार न माने तो भी एकान्त है। है सही, लेकिन आदरणीय नहीं है, जाननेलायक है। बस, बात यह है। व्यवहार जानने लायक है वह आया, १२वीं गाथा। ओहोहो..! संतों की वाणी पूर्वापर अविरोध (है)। जहाँ देखो वहाँ एक न्याय, न्याय, न्याय। समझ में आया?

तो कहते हैं, जिनदेव त्रिलोकनाथ वीतराग प्रभु (की) दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि तेरी परद्रव्य के साथ एकत्वबुद्धि है वह छोड़ दे। ऐसा भगवान ने कहा तो हम ऐसा निकालते हैं कि परद्रव्य का आश्रय सब भगवान ने छुड़ाया है। परद्रव्य का आश्रय ही सब छुड़ाया है। '**सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चय ही को भले प्रकार...**' देखो! उसका अर्थ जब भाई ने किया, बनारसीदास, जो असंख्य प्रकार केवली कहते हैं उतने मिथ्यात्वभाव उक्त है, जितना व्यवहारभाव उतना मिथ्यात्वभाव। अर्थात् जितने व्यवहार में लाभबुद्धि उतने मिथ्यात्वभाव। समझ में आया? व्यवहार भाव वह मिथ्यात्वभाव नहीं। परन्तु जितना व्यवहार विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान, ऐसा खाना, ऐसा पीना ऐसे सब विकल्प। समझ में आया? उसमें लाभ मानना उतना मिथ्यात्व का प्रकार। जितना व्यवहार का लाभ मानने का प्रकार, उतना मिथ्यात्व का प्रकार। समझ में आया? वह बनारसीदास ने कहा है, केवली उक्त है। केवली भगवान ऐसा कहते हैं, जितना व्यवहार उतना मिथ्यात्व। लाभ मानना, हाँ!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- करे कौन? करता था कब? आता है, आता है उसको करना मानना वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? बड़ा अटपटा। राग को करुँ वह तो पर्यायबुद्धि हो गयी, मिथ्याबुद्धि हो गयी, विकारबुद्धि हो गयी। विकारबुद्धि कहो, मिथ्याबुद्धि कहो, मिथ्यादृष्टि कहो। मैं करुँ। करने लायक नहीं, आता है। उसको जानना कि है, श्रद्धा में छोड़ देना।

मुमुक्षु :-- अपनेआप आ जाता है?

उत्तर :-- अपनेआप आ जाता है, ऐसी बात है। उसका क्रम में, चारित्रगुण है उसके क्रम में जो पर्याय आनेवाली है ऐसी आती है। आगे-पीछे करने की ताकात आत्मा में है नहीं। चारित्रगुण है, उसका जितना समय तीन काल का है, उतनी पर्याय है, चारित्रगुण की। तो उस समय में जो चारित्रगुण की पर्याय आनेवाली है वह आती है। मैं लाऊँ, वह पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। मैं करुँ, मैं रचुँ कर्ताबुद्धि है। लेकिन है,

श्रद्धा में छोड़ देना कि आदरणीय नहीं। है ऐसी श्रद्धा करना। लेकिन आदरणीय है ऐसी श्रद्धा छोड़ देना।

मुमुक्षु :-- कल्याण होगा ऐसा नहीं।

उत्तर :-- कल्याण नहीं, सत्य नहीं, धर्म नहीं, मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- मुनि को निश्चय आदरणीय। यहाँ तो सन्त कहा है। '**सन्तो घृतिम्**' हे सम्यग्दृष्टि! कलशकार ने तो सम्यग्दृष्टि लिया है। कलशकार है न? सन्त का अर्थ सम्यग्दृष्टि। हे सम्यग्दृष्टि! कलश है न कलश? राजमलजी की टीका। समझ में आया? हे सन्त! हे सम्यग्दृष्टि! व्यवहार की श्रद्धा छोड़ दे। निश्चय की श्रद्धा... वह कहते हैं न, देखो!

'**सन्तु पुरुष एक परम निश्चयही को...**' एक निश्चय को, शुद्ध चिदानंदमूर्ति वीतरागस्वभाव उस निश्चयही को '**भले प्रकार...**' भले प्रकार क्यों (कहा)? सिर्फ नाममात्र नहीं। निश्चय अखण्ड शुद्ध चैतन्य की अंतर दृष्टि एकाकार होकर '**निश्चयरूप से अंगीकार करके...**' निश्चय को भले प्रकार निश्चयरूप से अंगीकार करके '**शुद्धज्ञानघनरूप...**' अपना शुद्ध प्रकाशस्वरूप भगवान '**निजमहिमा में...**' देखो! व्यवहार की महिमा नहीं। देखो, व्यवहार की महिमा नहीं। हमें व्यवहार आयेगा न। वह महिमा हो गयी, उत्साह हुआ। कर्तृत्वबुद्धि है। समझ में आया? हमें व्यवहार तो आयेगा न, उस भूमिका अनुसार व्यवहार तो आयेगा। महाराज बारंबार कहते हैं, व्यवहार तो आयेगा। हाँ, आयेगा न। महिमा हुयी, व्यवहार की महिमा हुयी वह व्यवहार का आदरणीय भाव हुआ, मिथ्यात्व भाव है। समझ में आया?

'**निजमहिमा में...**' अपनी चैतन्यमूर्ति शुद्ध वीतरागविज्ञानघन उसमें एकाकार होकर '**स्थिति क्यों नहीं करते?**' स्थिति क्यों नहीं करते? भगवान अमृतचंद्राचार्य मुनि ९०० वर्ष पहले दिगंबर संत थे। छठवी-सातवीं भूमिका में परमेष्ठीपद में आचार्यपद में थे। वह फरमाते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, ऐसा अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि हम ऐसा कहते हैं। अरे.. जीवो! व्यवहार को व्यवहार पराश्रय की श्रद्धा छोड़ दे और अकेला निश्चय शुद्धज्ञानघन निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते? व्यवहार की महिमा तुझे क्यों आती है? एक निश्चयनय, देखो! एक निश्चयनय में स्थिति... एक कहा न? एक निश्चय को भले प्रकार। तो व्यवहार को ग्रहण न करे तो मिथ्यात्व होता है कि नहीं? ऐसा नहीं। व्यवहार है ऐसी मान्यता न करे तो मिथ्यात्व है। परन्तु महिमा व्यवहार की नहीं, उत्साह व्यवहार का नहीं, कर्तृत्वबुद्धि व्यवहार की नहीं। ओहोहो..! बहुत कठिन। साधारण पंडित, त्याग को कठिन पड़ जाये ऐसा है यह।

क्यों पंडितजी? ऐसा होता है कि नहीं? क्या कहते हैं? अरे.. प्रभु! शांति से सुन। उसका सब निकाल है। समझ में आया? कोई निकाल देने की बात है नहीं। सब स्पष्टीकरण, सब स्पष्ट है। थोड़ा ज्ञान में धीरा होकर निश्चय करे तो निश्चय हुए बिना रहता नहीं। कहते हैं, '**निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते?**'

'**भावार्थ :-- यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है,...**' देखो! व्यवहार का त्याग कराया, श्रद्धा में त्याग कराया। स्थिरता में तो स्वरूप में उपयोग स्थिर होगा तब होगा। लेकिन श्रद्धा बिलकुल छोड़ दे (कि) व्यवहार से किंचित् लाभ है नहीं। इतना व्रत, इतना तप, इतना उपवास (किया), धूल में भी लाभ नहीं।

मुमुक्षु :-- पाप से बचने को..

उत्तर :-- पाप से बचे, पाप से बचे वह तो शुद्ध दृष्टि हो तो पाप से बचे ऐसा कहने में आया है। नहीं तो पाप से क्या मिथ्यात्व का पाप तो बड़ा है, उससे बचा? पाप में तो मिथ्यात्व पाप है। अशुभ में तो मिथ्यात्व अशुभ है, अशुभ से तो बचा नहीं। वह तो व्यवहार से कदाचित् कहने में आवे कि कषाय तीव्र नहीं है तो मंद है तो ठीक है, इतना। धर्म-बर्म के स्थान में ठीक है ऐसा है नहीं। समझ में आया?

'**निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते? भावार्थ :-- यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है, इसलिये निश्चय को अंगीकार करके...**' निश्चय स्वभाव शुद्ध विज्ञानघन को अंगीकार करके '**निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है।**' निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है। पर में महिमा करके प्रवर्तना युक्त है नहीं। समझ में आया? कुछ लोग कहते हैं कि वहाँ अकेली निरपेक्ष बात चलती है, सापेक्ष तो लेते ही नहीं। यह कहा नहीं? वह कहते हैं कि सापेक्षा नाम व्यवहार से कुछ लाभ हो तो सापेक्षा है। ऐसा सापेक्ष है नहीं। परन्तु व्यवहार है इतनी सापेक्षता है, बस। समझ में आया?

जैसे उपादान में निमित्त की अपेक्षा बिना निश्चय से अपनी अपेक्षा से परिणति होती है वह निरपेक्ष है। और व्यवहार से निमित्त है ऐसा जानना, जानना वह ज्ञान है। निमित्त से हुआ है ऐसी बात है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं है, निश्चय में सापेक्षता नहीं। व्यवहार से निमित्त की सापेक्षता का ज्ञान कराने को कहा, प्रमाणज्ञान कराने को। आदरणीय तो एक ही है, सापेक्ष में आदरणीय एक ही है। सापेक्ष वस्तु आदरणीय नहीं। परन्तु है इतना ज्ञान करवाया, ज्ञान करवाया, बस।

जैसे निमित्त से उपादान में कार्य नहीं होता, परन्तु उपादान में अपनी परिणति

से निश्चय से कार्य होता है। निरपेक्ष कार्य होता है। विकार या अविकार की परिणति निमित्त और पर की अपेक्षा बिना निश्चय से होता है। तब व्यवहार से कहने में आया वह निमित्त का ज्ञान कराने को कहा, लेकिन उससे निमित्त से कुछ हो गया है (ऐसा नहीं)।

ऐसे निश्चय-व्यवहार। निश्चय, निरपेक्ष व्यवहार की अपेक्षा बिना निश्चय ही अंगीकार करने लायक है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार है ऐसी श्रद्धा निमित्त की करना। इतनी सापेक्ष श्रद्धा में आता है, परन्तु उससे लाभ होता है और उसमें निश्चय को मदद मिलती है, निश्चय धर्म प्रगट होता है, मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- स्वपरप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है कि नहीं? स्वपरप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है तो पर चीज क्या है वह सब ज्ञान स्वपरप्रकाश में आ जाता है। दूसरी चीज है कि नहीं?

मुमुक्षु :-- ज्ञान में आ जाता है।

उत्तर :-- ज्ञान में आ जाता है। स्वपरप्रकाशक है न ज्ञान? अकेला स्वप्रकाशक नहीं है। अपना भी प्रकाश करता है और पर का भी प्रकाश करता है। स्व का निश्चय में स्वपरप्रकाश का पर्याय ऐसा उत्पन्न हुआ कि यह एक चीज है। दूसरी चीज है कि नहीं?

मुमुक्षु :-- .. ज्ञान क्यों करवाया?

उत्तर :-- दूसरी चीज है। दूसरी चीज है और अपने ज्ञान में ताकात ऐसी है। स्वपर जानने की ताकात है और दूसरी चीज है, नहीं है ऐसा नहीं। समझ में आया? परन्तु निमित्त से कार्य होता नहीं, व्यवहार से निश्चय होता नहीं। लेकिन व्यवहार व्यवहार के स्थान में है, निमित्त निमित्त के स्थान में है। बस, इतनी बात है। समझ में आया?

'**तथा षट्पाहुड़ में कहा है :--**' टोडरमलजी ने कुन्दकुन्दाचार्य का समयसार का पहले व्यवहार का आधार लिया, बाद में अध्यवसाय का लिया, बाद में षट्पाहुड़ में कहा। मोक्षपाहुड़ है न? उसमें मैंने लिखा है, यह तो हिन्दी है। मोक्षपाहुड़ में है। बोलो।

**जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।**
**जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।३१।। (मोक्षपाहुड़)**

दृष्टान्त भी कैसे दिये हैं, देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य के लेकर, चयन करके। दूसरी जगह कहा वह नहीं लिया? सुन न, दूसरी जगह कहा है वह व्यवहार से कहा। परमार्थ यह है।

'**अर्थ :-- जो व्यवहार में सोता है...**' व्यवहार का विकल्पमें से छूट गया है '**वह योगी अपने कार्य में जागता है।**' व्यवहार नाम दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का विकल्प है उससे सो गया है नाम उससे छूट गया है। '**वह योगी अपने कार्य में जागता है।**' अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता में जागता है। व्यवहार सोया हो वह निश्चय में जागे।

'**तथा जो व्यवहार में जागता है वह अपने कार्य में सोता है।**' देखो! जो कोई व्यवहार क्रियाकांड के राग में जागृत है, उस पर लक्ष्य लगा दिया है और उसमें अपना उपयोग लगाकर, हम कुछ करते हैं, करते हैं, करते हैं, व्यवहार करते हैं वह व्यवहार में जागृत है, सो अपने निश्चयकार्य में सोता है। मूढ है। समझ में आया? यह सब गाथाएँ मक्खन है, मक्खन है। जैनशासन का नय का मक्खन। मक्खन कहते हैं न? मक्खन? मक्खन--नवनीत।

तो कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज महा धर्मधुरंधर आचार्य संत महंत ऐसा फरमाते हैं कि व्यवहार में सो गया, व्यवहार की जागृति नहीं और निश्चय में जागृत है वह यथार्थ है। और व्यवहार विषे जागृत है कि व्यवहार ऐसा करना, ऐसा करना, ऐसा करना, ऐसा विकल्प, ऐसा विकल्प, ऐसा बनाना, ऐसा खाना, ऐसा पीना, ऐसा लेना ऐसे व्यवहार विषे जागृत है वह अपने कार्य में सोता है। अपना निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान में सो गया है अथवा वह जागृत है नहीं। वह अज्ञानी नींद में पड़ा है। ऊँघ कहते हैं न? क्या कहते हैं? नींद, नींद। वह नींद में पड़ा है। व्यवहार में जागृत है वह निश्चय में नींद में पड़ा है और निश्चय में जागृत है उसने व्यवहार को नींद में डाल दिया है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :-- रेच तो भगवान का कहा हुआ है।

उत्तर :-- हाँ। वह आता है, कहा नाम आता है उसका ज्ञान कराया है, व्रत आते हैं उसका ज्ञान कराया है कि है, ऐसा ज्ञान करो, उसमें जागृत होकर रहो ऐसा कहा नहीं। आहाहा..! समझ में आया? आगम अनुसार चेष्टा करो, आहार-पानी, फलाना करो, शुभक्रिया विकल्प, कर्तृत्वबुद्धि। व्यवहार में जागृत--किसी में कोई कमी न आवे, समाज अपने को हिन न देखे। समाज हिन न देखे। समाज कहे, ओहो..! व्यवहारप्रवृत्ति बड़ी अच्छी रखते हैं, सुबह से शाम तक। ऐसी व्यवहार की प्रवृत्ति में जागृत रहते हैं, ज्ञानी ने वह छोड़ दिया है। वह सोता है, निश्चय में तो सोता है, नींद लेता है। आहा..! अंधा है, निश्चय में अंध है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसका उपयोग कहीं का कहीं लगा देते हैं। वह तो निश्चय की दृष्टि, अनुभव हो तो व्यवहार आता है उसका ख्याल करते हैं, ख्याल करते हैं, है इतना। लेकिन ये तो ऐसा बनाऊँ, ऐसा करुँ, ऐसा करुँ, उसको जोड़ुँ, वह करुँ.. जागे, जागे, जागे व्यवहार में वह निश्चय में अंध है। जेठमलजी! लेकिन बाहर में लोग.. आहाहा..! क्या उसकी व्यवहार प्रवृत्ति! बहुत ऊँची क्रिया! एक कवल में एक बाल जितनी पपड़ी निकली.. अंतराय.. अंतराय, आज आहार का अंतराय (हुआ)। क्या हुआ? वह तो राग है उस क्रिया तरफ का। मैं ऐसा बनाऊँ, ऐसा छोड़ुँ, ऐसा बनाऊँ अकेले व्यवहार में उपयोग जोड़ दिया। निश्चय का तो भान नहीं है कि मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ज्ञाता-दृष्टा में व्यवहार की कर्तृत्वबुद्धि हो सकती नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह आता है, दूसरी बात है। विकल्प ऐसा आता है निर्दोष लेने का, सदोष लेने का नहीं। आता है उसको जागृत होकर करुँ और वह बनाऊँ (ऐसा होता नहीं)। विकार है, कर्ताबुद्धि नहीं। ज्ञाताबुद्धि रखकर ऐसा विकल्प उस भूमिकायोग्य आये बिना रहता नहीं। लेकिन जागृत नहीं उसमें। वह तो जाननेवाला है कि है। जागृत चैतन्य में है। ओहोहो..! समझ में आया? निश्चय और व्यवहार का झघड़ा बड़ा डाले। एक बार टोडरमल का पढ़ तो सही। समझ में आया?

‘**इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर...**’ देखो! इसलिये व्यवहारनय की श्रद्धा--कर्तृत्वबुद्धि--मैं ऐसा बनाऊँ, ऐसा रटुं छोड़कर... नवरंगभाई! ये पानी छानना कहाँ गया? आहा..! वह हो, भूमिका सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की हो, उस भूमिका में ऐसा विकल्प आओ, क्रिया को बननी हो तो बन जाओ, आत्मा उसका अधिकार नहीं, स्वामी नहीं। जो राग और निमित्त का स्वामी होता है, वह निश्चय में अंध है। जो निश्चय में जागृत है वह राग और निमित्त का स्वामी होता नहीं। स्वामी बनकर काम नहीं करता। समझ में आया? क्यों श्रीपालजी! बराबर है? सत्य है, त्रिकाल सत्य है। उसको अंतर में जचना चाहिये। देखो, अब कहते हैं, देखो!

‘**व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**’ पहले कहा था कि व्यवहारनय का श्रद्धान करना। लेकिन करना, हेयबुद्धि से करना। समझ में आया? पहले कहा था कि नहीं? पहले कहा था, देखो! व्यवहारनय की श्रद्धा करना, नहीं तो एकान्त मिथ्यात्व हो जायेगा। व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना युक्त है, ऐसा। व्यवहार का व्यवहाररूप है, है, है इतना श्रद्धान करना युक्त है। लेकिन यहाँ कहते हैं कि, व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़ना। वह आदरणीय है और

लाभ है ऐसा श्रद्धा छोड़ देना। '**निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' बराबर है? सुनायी देता है?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- विकल्प आये कि अशुद्धता न हो, लेकिन विकल्प में जागृत नहीं। ज्ञान में अंतर चैतन्य में जागृत है, ज्ञाता-दृष्टारूप से जागृत है। है सही, ऐसा मानना कि है। श्रद्धा छोड़ना कि उससे लाभ है। समझ में आया?

अब बड़ा सिद्धान्त कहते हैं। चार अनुयोग की कथनी में जहाँ-जहाँ कथनी चलती हो, द्रव्यानुयोग में, चरणानुयोग में, करणानुयोग में.. समझ में आया? धर्मकथा... '**व्यवहारनय...**' व्यवहारनय ऐसी चीज है कि '**स्वद्रव्य परद्रव्य को...**' मिलाकर निरूपण करता है। व्यवहारनय ऐसी है कि स्वद्रव्य को परद्रव्य में, आत्मा का कार्य जड़ में और जड़ का कार्य (आत्मा में), अथवा अपना द्रव्य पर में है और पर अपने में है, ऐसा व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को मिलाकर (कहती है)। ऐसा लेना। देखो, है न? '**मिलाकर निरूपण करता है,...**' अंतिम शब्द लेना। स्वद्रव्य और परद्रव्य को मिलाये। शरीर आत्मा का है, आत्मा का शरीर है, ऐसे एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर व्यवहारनय कथन करती है। ऐसी मान्यता करना मिथ्यात्व है। व्यवहारनय ऐसा कथन करती है वह श्रद्धा करना मिथ्यात्व है।

भोपालवाले ने पहले यह छपवाया था। नहीं, भैया? भोपालवाले ने छपवाया था। कहाँ गये डालचंदजी? पीछे बैठे हैं? अरे..! सेठ होकर पीछे क्यों बैठे हो? बाबुलालजी सेठ कहाँ गये? है कि नहीं? है? अच्छा। यह समझ में आया? आप की ओर से, भोपाल की ओर से पत्र छपवाया था न? शास्त्र का अर्थ करने की वह रीति है। उसमें से निकाला था। खलबली मच गयी। अरे.. भगवान! सुन तो सही।

कहते हैं, व्यवहारनय की ऐसी कथनपद्धति है कि अपना द्रव्य को पर कहे, परद्रव्य को अपना कहे। अपना द्रव्य को पर का कहे पर का द्रव्य को अपना कहे। एक बात, इसलिये वह श्रद्धा झूठ है। वह श्रद्धा छोड़नी। '**उनके भावों को...**' पुनः उनके भाव। आत्मा के भाव विकारी, समझ में आया? उन भावों को पर का कहे, व्यवहार। विकार अपना है तो पर का विकार करे, वह व्यवहारनय की कथनी है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- पुद्गल का बताया व्यवहार से है, परमार्थ से नहीं। अपनी पर्याय का कार्य है, क्या जड़ का कार्य है? चारित्रगुण की विपरीत पर्याय अपनी है। जिसमें चारित्र (गुण) है उसका विपरीत कार्य उसमें है। क्या विपरीत कर्म ने करवाया है? कर्म ने करवाया, ऐसा एक भाव दूसरे में लगा देती है। कर्म का उदय कर्म का भाव है

न? अनुभाग, कर्म का अनुभाग कर्म का भाव है। आत्मा में कर्म के अनुसार विकार होता है और कर्म है तो विकार है, ऐसा निमित्त कहता है। व्यवहारनय से कहता है। वह कहता है ऐसा तो नहीं है, हाँ! लेकिन कर्म है तो विकार है, ऐसा परद्रव्य के भाव को स्वद्रव्य में लगाता है और स्वद्रव्य के भाव को परद्रव्य में लगाता है। अपना आत्मा पर का बन्ध करता है, आत्मा कर्म की पर्याय का बन्ध करता है। तो अपना भाव से पर का भाव किया ऐसा व्यवहारनय कहती है। ऐसी मान्यता करना मिथ्यात्व है। समझ में आया?

'**उनके भावों को...**' उनके यानी? स्वद्रव्य के भाव को परद्रव्य का भाव, परद्रव्य का भाव को स्वद्रव्य का भाव, अपना विकारभाव को कर्म का भाव और कर्म का बन्धन भाव को आत्मा का भाव, ऐसा व्यवहारनय कहती है। ऐसी मान्यता करना वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो निश्चय से, यथार्थ में, वह स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से। यहाँ दूसरी कथनशैली है।

अपना स्वभाव शुद्ध द्रव्य है ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो अपना स्वभाव का कार्य निर्मल ही है। विभावकार्य कर्म निमित्त है, तो निमित्त तरफ का झुकाव छोड़ना है सब तो कर्म का कार्य है ऐसा कहकर छुड़ाया है। समझ में आया? वह प्रश्न बराबर है। समयसार में ऐसा लिखा है कि, कर्म व्यापक और विकारी काम--कार्य कर्म का। ऐसा कर्ता-कर्म अधिकार की ७५ से ७९ (गाथा में कहा है)। समझ में आया? वहाँ तो कहा, व्यवहाररत्नत्रय जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा रागादि है उसकी आदि में आत्मा नहीं, मध्य में नहीं, अंत में नहीं। व्यवहार की आदि में, मध्य, अंत में कर्म ही है। वह दूसरी अपेक्षा ली। वह तो शुद्ध निश्चय उपादान अपनी दृष्टि हुई तो अपनी दृष्टि का द्रव्य का परिणमन शुद्ध ही होता है। अशुद्ध होना वह दृष्टि में, दृष्टि के विषय में और उसके कार्य में है नहीं। इतनी अशुद्धता हुई तो निमित्त तरफ का लक्ष्य से जो हुई तो निमित्त का वह कार्य है ऐसा कहकर छुड़ाया है। समझ में आया? बड़ी बात भाई! प्रश्न बराबर किया है यहाँ। वहाँ है वह दूसरी बात है। वहाँ दूसरी बात है। समझ में आया?

वहाँ तो ऐसा कहा कि, विकार का स्वामी कर्म है, आत्मा नहीं। वह तो सहजात्म चैतन्यस्वरूप स्वामी आत्मा हुआ। ज्ञानानंद चैतन्यमूर्ति प्रभु शुद्ध ज्ञानघन आत्मा है ऐसा स्वामी चैतन्य का हुआ वह राग का स्वामी होता नहीं। इसलिये उसका स्वामी नहीं तो कर्म स्वामी है ऐसा कहकर छुड़ाया है। समझ में आया? यहाँ तो पहली इस

श्रद्धा का ठिकाना नहीं है, उसको स्वभावदृष्टि का भान होगा नहीं। समझ में आया? ओहोहो..! कितनी बात संक्षेप में डाली है। पढ़ने की भी ना कहते हैं। अपनी बात बाहर आयी तो खलबली (हो गयी)। एक ब्रह्मचारी का कथन है कि, नहीं। पंडितजी का ऐसा आशय नहीं है। ऐसा आया था। पंडितजी का--टोडरमल का क्या आशय है, सब हम को खबर है। किसने कहा, सब मालूम है। नाम-ठाम ... बात करते नहीं। समझ में आया? भोपालवाले ने कहा, पंडितजी का ऐसा आशय नहीं है। यह किसका आशय है? यह (बात) किसकी चलती है? भोपाल की चिट्ठी आयी थी उसकी चलती है। भोपालवाले ने उसमें-से लिखा था, कहीं घर का नहीं लिखा था। पुस्तक है कि नहीं भैया? डालचंदजी! उसमें बड़ा अर्थ है, देखो! तुम्हारा लिखाया था बाहर में।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह आया है, सब में डाला है, सब पुस्तक में (डाला है)। शास्त्र का अर्थ करने की पद्धति। बहुत में आया है, समयसार के बाद दूसरे में आया, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय,...

व्यवहारनय ऐसी कोई कथन की पद्धति करती है कि स्वद्रव्य को परद्रव्य कहती है और परद्रव्य को स्वद्रव्य कहती है। और उनके भावों को--अपने भाव को पर का और पर के भाव को अपना (कहती है)। आत्मा है तो शरीर चलता है, व्यवहानय ऐसा कहती हैं। चलने का भाव जड़ का है, उसे आत्मा का कहना वह व्यवहारनय की कथनी है। ऐसा मानना मिथ्यात्व है। अब आया ये कारण-कार्य का झघड़ा। उपादान-निमित्त।

'**कारणकार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है,...**' निमित्त कारण है तो कार्य होता है, इस कार्य में निमित्त न होता तो नहीं होता, ऐसा एक कारण से दूसरे द्रव्य में कार्य होता है और वह न हो तो दूसरे में कार्य नहीं होता है, यह व्यवहारनय की कथनी है। ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ये कारण-कार्य। दो कारण मानो, दो कारण मानो। यहाँ तो कहते हैं, दूसरा कारण से दूसरे द्रव्य में कार्य हो, व्यवहारनय कहती है ऐसा मानना मिथ्यात्व है। अपने कारण से पर में कुछ हो, शरीर चले, वाणी बोले, कर्म बँधे, अपने कारण से, इस कारण से पर में कार्य हो ऐसा व्यवहारनय कहती है ऐसा माने तो मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अनुभव में वही आता है कि घड़ा अपने से बनता है। आचार्य कहते हैं, हम तो देखते हैं कि मिट्टी से घड़ा बना प्रतिभासता है। कुम्हार ने बनाया ऐसा

हम को तो प्रतिभासता नहीं। तेरी दृष्टि में शल्य है तो भासता है। समझ में आया? रोटी बिना स्त्री बिना पकती नहीं, किसको भासता है? आचार्य कहते हैं, हमको तो ऐसा भासित नहीं होता। रोटी रोटी से पकती है ऐसा हमको भासता है। बड़ी बात भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु :-- कुम्हार घड़ा बनाता है ऐसा तो दुनिया कहती है।

उत्तर :-- वह तो लोगों की बात है। बराबर है। यह तो अलौकिक बात बतानी है। और कुम्हार घड़े का बनाता है वह नयाभास है, नय ही नहीं है। पंचाध्यायी कहता है कि वह नय नहीं है। व्यवहारनय भी नहीं, वह तो नयाभास है। वह समझाना है वीतराग को? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा जिसने अपूर्व बात अपूर्व सर्वज्ञपद (प्रगट किया, उनको) ऐसी बात बतानी है कि कुम्हार घड़ा करता है, स्त्री रोटी बनाती है। ऐसा तो बालक से लेकर सब मानते हैं। कुम्हार जैसा मानते हैं। कुम्हार माने तो कुम्हार जैसा माने कि हमारे बिना पर में होता नहीं। ऐसा कारण-कार्य को लगाना (मिथ्यात्व है)। समझ में आया?

**'किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है..'** लो, सब में लेना। **'सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है,...'** ऐसी श्रद्धान करने से मिथ्यात्व है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का, दूसरा द्रव्य इस द्रव्य का, एक भाव दूसरे में, वह भाव यहाँ, इस कारण से यहाँ कार्य (हुआ), यह कार्य इस कारण से (हुआ), कर्म का निमित्त से विकार हुआ और कर्म मार्ग दे तो क्षायिकभाव हो। आता है, पंचास्तिकाय में आता है। कर्मजन्य चार भाव है--उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, लो। कर्म बिना नहीं होता। वह तो व्यवहारनय का कथन है। अपनी पर्याय से होता है तब निमित्त कौन था उसका ज्ञान कराया है। ऐसे कर्म से मान ले तो मिथ्यात्व है। विशेष कहेंगे... (श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**सोमवार, दि. २०-८-१९५४,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १२**

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, उसका सातवाँ अध्याय चलता है। उसमें यहाँ आया, देखो! व्यवहारनय और निश्चयनय को समझे बिना या तो एकान्त निश्चय का अवलम्बन करते

हैं अथवा एकान्त व्यवहार का अवलम्बन करते हैं। निश्चय का क्या स्वरूप और व्यवहार का क्या स्वरूप (यह) जाने बेना, हम दोनों नय का अवलम्बन करते हैं, लेकिन दोनों नय का स्वरूप जानता नहीं तो उसको भी मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आखिर में आया व्यवहारनय। आया न व्यवहारनय?

व्यवहारनय परद्रव्याश्रित कथन करनेवाली नय है। वह एक द्रव्य को अन्य द्रव्यरूप कहती है। अन्य द्रव्य को स्वद्रव्यरूप कहती है। यह आत्मा शरीररूप है, ऐसा व्यवहारनय कहती है। यह शरीर, कहते हैं न, यह मनुष्य का शरीर, देव का शरीर, यह शरीर जीव का शरीर ऐसा कहते हैं कि नहीं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- शरीर कहा न। जीव का शरीर, पाँच शरीर, उसकी छः पर्याप्ति। जीव की छः पर्याप्ति, जीव का मन, जीव की वाणी ऐसा कहते हैं कि नहीं? व्यवहारनय एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर कहती है। ऐसी मान्यता करना वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? और एक भाव को दूसरे भावरूप कहती है।

'**उनके भावों को...**' अपना विकार भाव या धर्म भाव पर का है, पर के कारण से प्रगट होता है। कर्म का नाश हो तो आत्मा को मोक्ष होता है। दर्शनमोह नाश हो तो आत्मा को सम्यग्दर्शन होता है। एक भाव के कारण दूसरा भाव में लगा देता है। वह मिथ्यादृष्टि है। जैसा व्यवहारनय कहती है ऐसी मान्यता करना मिथ्यात्व है। अब ऐसा क्यों कहा, वह प्रश्न करेगा। क्यों कहा? कथन पद्धति, व्यवहारनय की ऐसी कथनपद्धति चलती है। यह गड़बड़ है न वर्तमान में। ये शास्त्र में लिखा, देखो! ये शास्त्र में लिखा। कर्म आत्मा को ले जाते हैं। नर्क, स्वर्ग में कर्म ले जाते हैं। आता है कि नहीं? क्या कर्म की पर्याय परभाव आत्मा के भाव की पर्याय को ले जाये ऐसा कभी बने नहीं। लेकिन व्यवहारनय ऐसा कहती है कि कर्म के कारण से नर्क में जाना पड़े, कर्म के कारण स्वर्ग में जाना पड़े। व्यवहारनय एक भाव को दूसरे भाव में (मिलाकर) कहती है। उसको ऐसे मानना मिथ्यादृष्टि है। उसको धर्म की खबर नहीं।

'**व कारणकार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है,...**' एक कारण से दूसरे में कार्य होता है, धर्मास्तिकाय के कारण आत्मा में गति होती है, अधर्मास्तिकाय के कारण आत्मा में स्थिरता होती है, धर्मास्ति नहीं है तो सिद्ध को मोक्ष में रुकना पड़ा है। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- यही कहते हैं।

उत्तर :-- यही कहते हैं, हाँ।

व्यवहारनय कहती है कि दूसरे द्रव्य के कारण से दूसरे द्रव्य में कार्य होता है, वह कथन व्यवहार का है। ऐसे मानना वह मिथ्यादृष्टि है। तो कहा क्यों? निमित्त का ज्ञान कराने की बात की है, दूसरा कोई हेतु है नहीं। उससे कार्य होता है ऐसा कहने में कारण है ही नहीं। समझ में आया? निमित्त बिना उपादान में कार्य नहीं होता, निमित्त का कारण बिना नैमित्तिक कार्य नहीं होता। वह भी व्यवहारनय का वचन है। ऐसा है नहीं। मात्र नैमित्तिक अपनी पर्याय, जड़ चैतन्य की पर्याय होती है तब निमित्त संयोग कौन था उसका ज्ञान कराने को कहने में आया, दूसरा कोई प्रयोजन है नहीं। समझ में आया?

'**ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है;...**' लोगों को ऐसा लगता है कि व्यवहारनय से शास्त्र में चला और ऐसी श्रद्धा से मिथ्यात्व है? तो कहा क्यों? टोडरमल ऐसा क्यों कहते हैं? शास्त्र में लिखा है कि ऐसा होता है। उसका कारण-कार्य दूसरे के कारण-कार्य से मानना मिथ्यात्व है। शास्त्र में तो बहुत चलता है। सुन तो सही। कोई भी द्रव्य की पर्याय का कार्य अपने से ही है, पर से होता नहीं। वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को दूसरे से होता है ऐसा व्यवहारनय, इतना छल देखकर, छल देखकर निमित्त की उपस्थिति का छल देखकर उससे हुआ ऐसा कहती है। ऐसे मानना वह मिथ्यात्व का भाव है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- छल है, पुरुषार्थसिद्धि में कहा है। व्यवहारनय थोड़ी-सी अपनी अपेक्षा जहाँ देखे तो घोड़ा हो जाये। घोड़ा हो जाये समझे? शेठी! क्या कहते हैं तुम्हारे में? मालिक हो जाये। घोड़ा हो जाये माने क्या?

एक द्रव्य की, दूसरे द्रव्य की पर्याय में कथंचित् यदि निमित्त का अधिकार चला इतना छल देखकर उससे कार्य होता है ऐसा व्यवहारनय पुकारती है। ऐसी श्रद्धा करना वह वीतराग के मार्ग से विरुद्ध है। कहा है वीतराग ने व्यवहारनय को, लेकिन व्यवहारनय का कथन सत्यार्थ नहीं, फक्त निमित्त देखकर ऐसा कथन करने में आता है। यह बड़ी गड़बड़ी उसमें चली है। क्यों देवीलालजी?

भगवान है तो आत्मा का शुभ भाव होता है, मूर्ति है तो शुभ भाव होता है, यात्रा करने को जाते हैं तो वहाँ बाहुबलीजी देखने से यहाँ शुभ भाव आह्लाद आता है, उसके भाव से यहाँ राग आया। उस कारण से यहाँ कार्य हुआ।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- घर बैठे-बैठे परिणाम (ऐसे) रहे? शेठी! जयपुर में घर में बैठे मकान बनाने में ध्यान रखे, वहाँ वह परिणाम होता है? ऐसा कहते थे, एक श्वेतांबर आये

थे अन्दर। बहुत साल पहले की बात है। आपने यह नया कहाँ-से निकाला? हमारा जैसा चलता था, चलता था। एक लोहे का सलिया मार सके ऐसा चलता था, आप कहते हो, मार सके नहीं। ऐसा कहाँ-से.. समझे न? निकाला। क्या कहते हैं? विरमगाम में था न? कस्टम, कस्टम खाते का एक अधिकारी थे, श्वेतांबर। फिर यहाँ आये थे। व्याख्यान सुना, व्याख्यान अच्छा लगा, लेकिन अन्दर आकर दूसरी बात कहने लगे कि, लकड़ी से मारना, आप कहते हो कि मार सकता नहीं। चलते हुए पंथ में ऐसा कहाँ-से निकाला आपने? लक्ष्मीचंदजी! कौन निकाले? है ऐसा है। निकाले कौन और छोड़े कौन? ऐसा कहाँ-से निकाला? नहीं मार सकते? प्रत्यक्ष है। भगवान का दर्शन (करने को) सिद्धगिरी जाते हैं, हमारे परिणाम कितने उज्ज्वल होते हैं। यहाँ बैठकर उज्ज्वल होते हैं? शेठी! अरे.. भगवान! वहाँ भी परिणाम का--पर्याय का काल है और करते हो तो होता है, कहीं भगवान की मूर्ति से, बाहुबलीजी से होता है, ऐसा है नहीं। लेकिन कथन व्यवहारनय का ऐसा (आता है कि) ओहो..! भगवान को देखकर, उपशांतरस देखकर अपना भी भाव ऐसा होता है, ऐसा कथन में आवे। समयसार में आया न? समयसार में जयचंद्र पंडित ने लिखा है, भगवान की मूर्ति देखकर, भगवान शांत (हैं), अपना भी भाव शांत हो जाता है। लेकिन उससे होता है? वह तो व्यवहारनय का कथन है। अपनी पर्याय अपने से हुई, निमित्त का आरोप करके उससे हुआ ऐसा कहने में आता है। ऐसा मान ले कि उससे हुआ तो मिथ्याश्रद्धा है, श्रद्धा में बड़ी विपरीतता है। कहो, समझ में आया?

'**निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है,...**' लो, निश्चयनय उन्हीं को अर्थात् स्वद्रव्य और परद्रव्य में, एक भाव को दूसरे भाव में, एक कारण को दूसरे कारण में (जोड़ता नहीं), '**निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है,...**' जैसा है वैसा कहती है। '**किसी को किसी में नहीं मिलाता है...**' किसी को किसी में, उससे वह होता है और उससे वह होता है, ऐसा न किया तो ऐसा होता है और ऐसा किया तो ऐसा हुआ, यह निश्चयनय कहती नहीं। यथावत् अपनी पर्याय अपने से होती है, पर की पर्याय पर से होती है। जैसा वस्तु का स्वरूप है ऐसा निश्चयनय कथन करती है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- निश्चयनय उसे कहाँ था? उसे तो अन्दर आये और ऐसा किया। भगवान को देखकर, सिद्धगिरी के दर्शन करके हमारे परिणाम कैसे होते हैं! कहा, वहाँ परिणाम करनेवाला कौन है? परिणाम कनरेवाला कौन? क्या सिद्धगिरी से हुआ है? शेत्रुंजय से हुआ है परिणाम? क्या है? शेठी!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, थोड़ा बोलो तो सही, मालूम तो पड़े। असर-फसर कैसी? वह तो परवस्तु है। उसकी असर वहाँ। वस्तु के स्वरूप में है नहीं।

मुमुक्षु :-- हमारी कमज़ोरी है।

उत्तर :-- कमज़ोरी तो अपनी पर्याय का कारण है, अपने कारण से है, पर के कारण से है नहीं। जयपुर में परिणाम होता है और बाहुबलीजी के (समीप) परिणाम होता है वह तो अपना परिणाम अपने कारण से हुआ है। क्या पर के कारण से हुआ है? बाहुबलीजी से हुआ है, ऐसा नहीं। ओहो..! समवसरण में जाते हैं तो कोई सम्यग्दर्शन पाता है, कोई मिथ्यादृष्टि रहता है, भगवान तो है निमित्त। क्या किया? निमित्त से क्या हुआ? बोलने में ऐसा आवे।

मुमुक्षु :-- अंतरंग कारण।

उत्तर :-- अंतरंग कारण। एक ने ऐसा कहा कि, उसे अंतरंग कारण दर्शनमोह का विघ्न था। दर्शनमोह का कारण था इसलिये भगवान के पास सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया। दर्शनमोह तो परवस्तु है। परवस्तु के कारण में अपने कार्य की मिथ्याश्रद्धा कार्य ऐसा वस्तु का स्वरूप है नहीं। मिथ्याश्रद्धा अपनी अपने से की है तो उसको कर्म को निमित्त कहने में आया। दूसरे से कार्य होता है (ऐसा) तीन काल तीन लोक में होता नहीं। बोलने में ऐसा आवे कि अहो..! तीर्थंकर भगवान का पुण्य... समझ में आया? समझ में आया?

निश्चयनय है वह जैसा स्वरूप है वैसा कहती है। जैसे कि परजीव का बचना हुआ, परजीव का संयोग, जीवसंयोग से छूटा नहीं और बचना हुआ तो जिसकी दया का भाव था उससे बचाया ऐसा कहने में आता है। ऐसा है नहीं। क्योंकि परद्रव्य की पर्याय का बचना और जीना उसके कारण से है। और दूसरे ने बचाया, दूसरे ने मार डाला ऐसा कहना वह व्यवहारनय का कथन है, ऐसा मान ले तो मिथ्यादृष्टि है, मूढ है, उसको तत्त्व की दृष्टि से बड़ी विपरीतता मान्यता में है। देवीलालजी! कहते हैं कि, देखो! हमने पाँच हज़ार दिये तो इन सब का निर्वाह हो गया। लो, बोलने में ऐसा आता है। प्राणभाई! ये दुष्काल में गरीब आदमी को मैंने पचास हज़ार दिये, ... गरीब आदमी किसान भी सेठ को ऐसा कहे कि सेठ! बड़ा दुष्काल था, आपने मदद की तो हमारे छः, आठ महिने निकल गये। क्या पर से निकलता है? शेठी! सब पर शून्य रख दो। परद्रव्य के कारण से हमारी दुष्काल की पर्याय बीती और निर्वाह हुआ वह व्यवहारनय पर के कारण से पर में कार्य कहती है। वैसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। बड़ा पाप है, क़साईखाना करनेवाले से भी उसका बड़ा पाप है। ओहोहो..!

जगत को यह पाप, मिथ्यात्व का पाप (का) जोर है, इस बात की गिनती नहीं है और राग और द्वेष, हिंसा और झूठ का ऐसा भाव किया, वह तो साधारण पत्ते है, सुन तो सही। समझ में आया?

विपरीत मान्यता, वास्तविक तत्त्व सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर देवाधिदेव, जिसने एक सेकण्ड के असंख्य भाग में तीन काल तीन लोक देखा। उसकी वाणी में आया कि कोई पदार्थ की दशा कोई दूसरा पदार्थ करे, तीन काल तीन लोक में हो सकता नहीं। समझ में आया? हमने यह बनाया, पुस्तक बनाया, जीवों की रक्षा की, उसकी मैंने मदद की, हमारा उस पर प्रभाव पड़ा, उसका हम पर प्रभाव पड़ा, वह सब व्यवहारनय निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में एकदूसरे का कारण-कार्य को आरोप करके कथन करती है, ऐसा मान ले कि उसका प्रभाव उसमें और उसका प्रभाव उसमें, मिथ्या पापदृष्टि है, असत्यदृष्टि है, झूठदृष्टि है, अधर्मदृष्टि है, भविष्य में क़साईखाना चलायेगा ऐसी दृष्टि है। कठिन बात, भाई! जगत को यह बात...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अनर्थ। जो त्रिकाल द्रव्य वस्तु स्वभाव सर्वज्ञ ने जानी, वस्तु ऐसी है, वाणी में ऐसा आया। तीनों से विरोध मानने वाला (ऐसा मानता है कि), देखो! हम था तो ऐसा हुआ, वहाँ हम था तो ऐसी व्यवस्था परद्रव्य में हुई। व्यवहार से कहने में आता है, ऐसा होता नहीं। समझ में आया?

'**किसी को किसी में नहीं मिलाता है;...**' निश्चय तो जैसी चीज है, द्रव्य अपना अपने से है, अपनी शक्ति अपने से है, अपनी पर्याय विकारी-अविकारी अपने से है, ऐसा निश्चयनय कथन करती है। ऐसे मानना वह सम्यग्दर्शन है। कहो, बाबुभाई! यह गड़बड़। शेठी! क्या है? असर-फसर किसी की पड़ती है कि नहीं? भगवान के पास अनंत बैर गये, साक्षात् समवसरण में। क्या करे भगवान? क्या दूसरे द्रव्य का पर्याय करनेवाला भगवान है? दूसरे में जैसे ईश्वर कर्ता-हर्ता है ऐसी कोई चीज है? समझ में आया? ऐसा है नहीं। कोई कर्ता-हर्ता है नहीं। स्वयं भगवान आत्मा अपनी पर्याय करने में वर्तमान काल में जो होनेवाली है उसको करने में ताकात रखती है। किसी के कारण से हो, दूसरे के कारण से हो वह बात वस्तु में है नहीं। समझ में आया?

देखो! '**सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है;...**' सम्यग्दर्शन जो अनंत काल में एक सेकण्डमात्र का भान न हुआ। अनंत बार नौंवी ग्रैवेयक (गया ऐसा) दिगंबर जैन साधु हुआ, दूसरे की बात तो कहाँ कहनी? वह तो व्यवहार भी सच्चा नहीं है। परन्तु जिसको दिगंबर साधु (कहें), अट्ठाईस मूलगुण पाले, हज़ारों रानियों का

त्याग और वैराग्य इतना कि दूसरे को ऐसा लगे कि मानो तृण की तूँबडी हो। तूँबडी समझते हो? तुँबी होती है न तुँबी? वह तैरती है और मानों दूसरे को तारेगी ऐसा लगे। अरे.. भगवान! तुझे वस्तु की स्थिति की खबर नहीं। दिगंबर साधु ऐसा नग्न मुनि जंगल में रहनेवाला, परन्तु ऊँडे-ऊँडे उसको देह की क्रिया मेरे से होती है और मैं पर का कुछ करनेवाला हूँ, कोई अपेक्षा से, व्यवहारनय से तो हूँ न, और अपने में दया, दान, व्रत का भाव आता है वह मेरा धर्म है और उससे मुझे धर्म होगा, ऐसी मान्यता रखी तो एक भव कम हुआ नहीं और मिथ्यादृष्टि रहा। समझ में आया? लोगों को अंतर मिथ्यात्व क्या है और सम्यक्त्व क्या है, क़िमत ही नहीं। अनंत-अनंत काल हुआ, 'अनंत काळथी आथड्यो विना भान भगवान,' वह आता है, किस में? मालूम नहीं? आत्मसिद्धि। श्रीमद् ने २९ वें वर्ष में गाया न?

अनंत काळ से आथड्यो विना भान भगवान,
सेव्या नहीं गुरु संत ने मूक्युं नहीं अभिमान।

जैनधर्म की कला अनंत काल में एक सेकण्ड भी प्रगट हुई नहीं और वह कला कैसे प्रगटे उसकी रीत और पंथ की भी खबर रही नहीं। अपनी कल्पना से और प्ररूपक जैसा मिला ऐसी मान्यता से अनादि से चला है। समझ में आया? जेठीमलजी!

निश्चय, ओहो..! अपने धर्म की निर्दोष पर्याय अपने से होती है। विकार दया, दान अपने से होती है। पर का कार्य पर से होता है, मेरे से नहीं। जैसा निश्चय का स्वरूप जैसा यथार्थ है ऐसा निश्चय(नय) कहती है। ऐसा श्रद्धान करने से अनंत काल में नहीं हुआ ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के बाद व्रत, तप और चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन नहीं वहाँ बिना अंक का शून्य है। कोरे कागज़ पर एक क्रोड़ शून्य। पहला एक अंक न मिले। पहले को क्या कहते हैं? पहले कहते हैं न? शुरू में, शुरू में एक नहीं, बिंदू का पार नहीं। क्रोड़ो शून्य में कोई एक एक अंक आता नहीं। बराबर है? और एक अंक आया, सम्यग्दर्शन वस्तुस्थिति, देव-गुरु-शास्त्र क्या और मेरी चीज क्या, ऐसा अंतर में पीछान हुई (तो) एक का अंक लग गया। बाद में स्वरूप की स्थिरता का एक शून्य लग जाये, एक में शून्य लगा तो दस हो गया। एक हो तो शून्य दस हो जाये, नव (बढ़) गया। और एक के बिना क्रोड़ शून्य हो, नरभेरामभाई! कुछ नहीं?

मुमुक्षु :-- बिना एक के कुछ काम का नहीं।

उत्तर :-- बिना एक के व्यर्थ ही है। ऐसे सम्यग्दर्शन, सत्यदर्शन सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं वह क्या चीज है, वह समझे और प्रतीत, अनुभव बिना सब थोथेथाथा है। उसका त्याग और उसके व्रत और उसका नियम और उसके उपवास अरण्य रूदन,

रण में रूदन करने जैसा है, उसका रूदन कोई सुने नहीं और उसका रूदन मिटे नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि निश्चयनय... '**ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना।**'

'**यहाँ प्रश्न है कि यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है,...**' भाई! शास्त्र में तो दोनों नयों का ग्रहण कहा है। आप, एक नय के कथन को सम्यग्दर्शन और दूसरे नय के कथन को माने तो मिथ्यादर्शन (कहते हो)। शिष्य ने प्रश्न किया। बड़ी मार्मिक बात है। टोडरमलजी ने गृहस्थाश्रम में रहकर हज़ारों शास्त्रों का निचोड़ निकालकर आचार्यों और सर्वज्ञ का पेट (--रहस्य) क्या था वह खुल्ला कर दिया है। कहते हैं कि जिनमार्ग में निश्चय और व्यवहार (दोनों कहे हैं)। भाई! निश्चय और व्यवहार दोनों सुनते हैं, हम दोनों सुनते हैं कि निश्चय और व्यवहार दो होते हैं। दो नय का कथन तो है, है नहीं ऐसा नहीं।

'**जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण...**' यहाँ ग्रहण पर वज़न है। शास्त्र में तो दोनों नयों को आदरणीय कहा, ग्रहण कहा। ग्रहण करो, ग्रहण करो, ग्रहण करो। निश्चय को भी ग्रहण करो और व्यवहार को भी ग्रहण करो, ऐसा शास्त्र में आता है और तुम कहते हो कि निश्चय को ग्रहण करो और व्यवहार को छोड़ दो। ऐसा क्यों कहा? सुन तो सही। '**सो कैसे?**'

'**समाधान :-- जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है,...**' सर्वज्ञ भगवान के मुख से निकला, संतों आचार्यों जंगल में बसनेवाले धर्मात्मा उन्होंने जो कोई.... '**निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'...**' स्वद्रव्य आश्रय, स्वगुण आश्रय, स्वपर्याय आश्रय, स्वविकार आश्रय जो कथन 'उसका यह है' ऐसा कहा वह सत्यार्थ है। समझ में आया? '**मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'...**' सत्य ऐसा ही है। लेकिन अभी निश्चयनय क्या, व्यवहारनय क्या खबर भी नहीं है। तुंबडी में कंकर। तुंबडी होती है कि नहीं? वह सूखी हो तो अन्दर का बीज होता है न बीज? आवाज़ बहुत करती है, मानों अन्दर पैसा होगा। तुंबडीमें से अलग हो जाये न? बीज बड़े-बड़े होते हैं, इतने। लौकी इतनी (बड़ी)। अलग हो जाये, और वह पोला पतला हो, (ऐसा लगे) इसमें रूपया होगा? रूपया समझे? उसमें रूपया पड़ा होगा। छिद्र तो है नहीं, पूरी तुंबडी है, छिद्र है नहीं। आवाज़ बहुत आती है, भैया! तुंबडी में कँकर, वह तो बीज है। रूपया-बुपया कहाँ-से आया? आवाज़ ऐसी लगे, रूपया जैसी आवाज़, नीचे पटकते हैं न रूपया? क्या कहते हैं? छीपड़ी पर पहले करते थे न? अब तो

कहाँ आप का रूपया रहा, अब तो (नोट हो गयी)। पाँच-पाँच हज़ार, दस हज़ार, बीस हज़ार रोकड़े कहाँ गिनने बैठे? नोट, पाँच लाख की, दस लाचख की। पहले तो छीपड़ी पर खटखटाते थे, छीपड़ी समझते हो? काले पत्थर की एक रखते थे, काला पत्थर का एक टूकड़ा बरामदा में रखते थे, बाकी सब गारा। यह तो पहले की बात है सब। समझ में आया?

वैसे यहाँ तुंबड़ी में बीज है या कँकर है या पैसा--रूपया है, खबर भी नहीं। ऐसे निश्चय क्या है? व्यवहार क्या है? कहाँ निश्चय का कथन शास्त्र में चला? और कहाँ व्यवहार का किस अपेक्षा से चला? खबर नहीं, बस! पढ़ते रहो, कहते रहो और गप्प मारते रहो। समझ में आया?

कहते हैं, वीतरागमार्ग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा सीमंधर प्रभु महाविदेह क्षेत्र में विराजते हैं। समझ में आया? यहाँ से कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये और आठ दिन रहे थे। आठ दिन वहाँ भगवान के पास रहे थे और साक्षात् दो हज़ार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य आये, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र था, लेकिन आचार्य भरतक्षेत्र में थे, बहुत निर्मलता भगवाके पास से लाये, यहाँ आकर शास्त्र बनाये। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, समझ में आया? कहा था कि नहीं वह? पोन्नुर हील, मद्रास से अस्सी माईल पोन्नुर हिल छोटी पहाड़ी है। गये थे तुम? आये थे? हैं? गये थे, धीरे-धीरे बोलते है। पंद्रह मिनिट का रास्ता है ऐसा, उसमें गुफा है। वहाँ पंडित लोगों ने भाषण किया था कि कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ ध्यान में विराजते थे। उसमें विकल्प आया और भगवान के पास वहाँ से गया, साक्षात् त्रिलोकनाथ के पास। वहाँ से आठ दिन रहकर यहाँ आये और यहाँ समयसार शास्त्र आदि पोन्नुर हिल में बनाये हैं। लक्ष्मीचंदजी! खबर भी नहीं होगी आप को तो वह। शेठी!

मुमुक्षु :-- पुजारी ने कहा था।

उत्तर :-- पुजारी कहता था न? वह आदमी कहता था, पंडित लोगों ने भाषण किया था।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- इतिहास नहीं, वहाँ अन्यमति का एक साधु है, उसमें से वह निकला। यहाँ एक महान पुरुष संत रहते थे और बड़ी लब्धि थी, बड़ी ताकात थी, ध्यान करते थे। अन्यमति में भी निकला। ये तो अपना जैन का पंडित है न मद्रासवाला, वह कहते थे। यहाँ ऐसा चलता है, ऐसी बात चलती है, बहुत प्रभावना वहाँ है। भगवान कुन्दुकुन्दाचार्य का चरण है, नया बनाया है, पुराना तो कहाँ है। और ऊपर वहाँ चंपा का वृक्ष है। चंपा के पाँच वृक्ष के फूल... पवन हो तो उसके ऊपर पड़े

न, लेकिन लोगों को ऐसी महिमा है कि कुदरती चंपा के पाँच वृक्ष के फूल चरण पर गिरते हैं। समझ में आया? लो, यह बहुत होता है, रविवार-रविवार को अमुक लोग आते हैं, बारह महिने में एक दिन है कोई, मुझे मालूम नहीं है। बहुत लोग आते हैं। हम तो पहली बार गये थे, ऐसा लगा कि बात तो सच्ची लगती है यहाँ। समझे? भगवान के पास गये थे यह बात तो सच्ची है, यह लोग, यहाँ से गये हैं, ऐसा कहा, तो कहीं-से तो गये थे के नहीं? साक्षात् भगवान के पास जाकर, मुनि भावलिंगी दिगंबर संत थे, दो हजार वर्ष पहले संवत ४९ में। वहाँ जाकर आठ दिन बहुत सुना।

वहाँ के चक्रवर्ती थे, उसने पूछा, प्रभु! यह कौन (है)? क्योंकि वहाँ तो पाँचसौ धनुष का देह, दो हजार हाथ, ये चार हाथ के, तीड़ जैसा लगे, तीड़। तीड़ तीड़ समझे? पतंगा, पतंगा। नरभेरामभाई! दो हजार हाथ और ये चार हाथ। कितने भाग हुए? पाँचसौ गुना, भगवान की सभा। अभी परमात्मा विराजते हैं, चक्रवर्ती भी वहाँ है। यह दो हज़ार वर्ष पहले की बात है। वहाँ तो आयुष्य क्रोड़ पूर्व का है। भगवान तीर्थंकरदेव का क्रोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में सीत्तेर लाख क्रोड़ छप्पन हज़ार वर्ष चला जाता है। एक पूर्व में सीत्तेर लाख क्या है? बड़ी चीज नहीं है। यहाँ तो आहाहा.. बड़ी लगती है। अनादि से चला है इसमें इतना...

एक पूर्व में सत्तर लाख क्रोड़ वर्ष और छप्पन हज़ार क्रोड़ वर्ष एक पूर्व में जाते हैं, ऐसा क्रोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य वर्तमान में विराजते हैं उनका है। भगवान की वाणी निकलती है समवसरण में अभी। इन्द्र जाते हैं, समवसरण में दिव्यध्वनि होती है। वहाँ भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन वहाँ रहे और फिर यहाँ आकर समयसार, प्रवचनसार (की रचना की)। ओहो..! सर्वज्ञ का पंथ तो यह है, मार्ग वीतराग का यह है, ऐसा समझे बिना अनंत काल से अपनी कल्पना से मान रखा है, मिथ्यादृष्टि (है)। समयसार, प्रवचनसार आदि में बहुत-बहुत लेख लिखे।

मिथ्यादृष्टि की क्या क़िमत है, खबर नहीं। मिथ्यादृष्टि है, भले मिथ्या है जाओ। अरे..! मिथ्यादृष्टि का पाप निगोद में ले जायेगा। समझ में आया? निगोद--एक बटाटा, शक्करकंद (में) एक शरीर में अनंत जीव, उसमें चला जायेगा परंपरा करके। आत्मा क्या चीज है? निर्मल सम्यग्दर्शन क्या है? मिथ्यात्व क्या है उसका विवेक नहीं, उसका परिणाम तो आचार्य महाराज निगोद कहते हैं। क्या करे? उसकी क़िमत नहीं। मिथ्यात्व में कितना पाप है और सम्यग्दर्शन में कितना धर्म है।

कहते हैं कि निश्चय का कथन यथार्थ है। देखो! **'ऐसा जानना। तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे 'ऐसे है नहीं,..'** गोम्मटसार

में आया, ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुका, दर्शनावरणीय से दर्शन रुका ऐसा कथन आया। तो व्यवहारनय की मुख्यता से कथन है। समझ में आया? तो कैसे मानना? ओहोहो..! देखो! घातिकर्म से ज्ञान, दर्शन, आनंद का घात हुआ। व्यवहार की मुख्यता से कथन है, वस्तु ऐसी है नहीं। कथन की खबर नहीं, किस नय का कथन है। यह लिखा है, ये लिखा है, सब तकरार करते हैं। लिखा है सब, सुन तो सही। किस नय के आश्रय से कथन चलता है, उसका तुझे भान नहीं और मान ले कि वह भी सच्चा और वह भी सच्चा। व्यवहारनय का कथन भी सच्चा और निश्चय का कथन भी सच्चा। दोनों सच्चा हो सकता नहीं।

कहते हैं, '**ऐसे है नहीं,...**' आहाहा..! यह बात। व्यवहारनय का कथन परद्रव्य के आश्रय से पर में कुछ होता है, ऐसा जहाँ-जहाँ कथन--उपदेश चले उसका ऐसा अर्थ करना। वह व्यवहारनय कहती है ऐसा है नहीं। शास्त्र में लिखा है व्यवहारनय से तो ऐसा भी है नहीं। ओहोहो..! वह कहाँ निठल्ला है। शेठी! निवृत्त है? अभी तक निवृत्त हुआ नहीं। समझने की चीज है। महेन्द्रभाई निवृत्त हुए, नहीं तो कहाँ निवृत्त है। जौहरी, लेना और देना, आना, जाना...।

मुमुक्षु :-- जिंदगीभर तो...

उत्तर :-- ऐसा कहते हैं, जिंदगीभर तो कुछ करना नहीं है। नवराश नहीं समझते? फूरसत लेना, आप की भाषा में। आप की सब भाषा तो आती नहीं, ये तो आप बहुत हिन्दुस्तानी है तो थोड़ी-थोड़ी हिन्दी होती है, सब नहीं आती है हम को। समझ में आया? काम चले साधारणजन को, ऐसी हिन्दी है। क्या कहते हैं?

ओहो..! '**ऐसे है नहीं,...**' वैद्यराज! क्या कहा? ऐसा है नहीं। रुचता है उनको। समझ में आया? जहाँ-जहाँ व्यवहारनय से कथन चला हो, उसके कारण उसमें प्रभाव पड़ा, उसके कारण से असर आया, कर्म का अनुभाग का प्रभाव जीव में आया, कर्म का अनुभाग तीव्र था तो आत्मा में तीव्र परिणाम विकार का करना पड़ा या हुआ। ऐसा है नहीं, ऐसा है नहीं। है क्या? '**निमित्तादिकी अपेक्षा...**' निमित्तादि अथवा... समझे? व्यवहार, संयोग। निमित्तादि यानी निमित्त और संयोग की अपेक्षा उपचार किया है ऐसा जानना। वह तो उपचार कथन है। कथनी में वर्तमान में बड़ा विरोध। पंडित लोग और कुछ त्यागी लोगों के साथ में यह विरोध है। समझ में आया? क्यों पंडितजी?

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- यह बात अनंत काल से सुनी नहीं। अनंत काल। त्यागी अनंत बार हुआ, मर गया संथारा करके। दो-दो महिने का संथारा। संथारा समझते हो? दो मास,

साठ दिन। साठ दिन कैसा? जैसे वृक्ष की डाल पड़े। अंतर तत्त्व की क्या चीज है उसका भान नहीं, पता नहीं।

ज्ञानमूर्ति प्रभु, राग से निराला और राग होता है दया, दान का वह भी पुण्यबन्ध का कारण, मेरी पर्याय में मेरे कारण से होता है, पर के कारण से नहीं। समझ में भेदज्ञान कभी एक समय में भेद किया नहीं और भेदज्ञान बिना कभी आत्मा का कल्याण होता नहीं। देखो! व्यवहारनय भेद नहीं कराती है ऐसा कहते हैं। व्यवहारनय तो दोनों को अभेद कथन करती है। ऐसा नहीं है ऐसा जानना। आहाहा..! '**ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है**'। उपचार--आरोप किया है। चावल कहा था न? बोरी होती है न? चावल की बोरी। कहाँ गये हमारे कुंवरजीभाई? ये चावल की बोरी, चार मण और अढाई शेर। एक बार कहा था न? तोलते हैं, तोलते हैं। चार मण और अढ़ाई शेर। हमारी दुकान के पास दुकान थी, लोटिया बोहरा की। तो वह बोले, कोळी तौलता था, एक कोळी था। बड़ा था उस दिन, दारू बहुत पीता था। चार मण और अढ़ाई शेर। चार मण चावल और अढाई शेर तो बारदान है। चावल के साथ बारदान तौलने में आया। उसे निकाल देना चाहिये। वहाँ (चावल) खत्म हो जाये तो कहीं बारदान की रसोई नहीं होती। चार मण चावल (खत्म हो गये)। अढ़ाई शेर कम हुए, चावल तो चार मण अढ़ाई शेर था।

मुमुक्षु :-- उसके पैसे तो...

उत्तर :-- वह तो उस वक्त ऐसा होता था, पैसा चावल का देना पड़ता है। क्या कहते हैं? सिंगापुर के चावल आते थे न, इतने लंबे? हरा पट्टा नहीं? पाँच-पाँच मण की बोरी। वह बोरी चावल के साथ तौली जाती है। पैसा देना पड़े, लेकिन उसे खाया नहीं जाता। देवीदासजी! आता है वह, वह चावल आता था, सिंगापुर के। बड़ी पाँच मण की बोरी, बीच में हरा पट्टा, हरा पट्टा। सिंगापुर से चावल (आते थे)। हमने तो सब देखा है न। हम तो कुल्फा देखा है, हमारे घर पर कुल्फा के चावल खाते थे। कुल्फा, कुल्फा। अब कुल्फा-बुल्फा भूल गये, कुंवरजीभाई भूल गये होंगे। कुल्फा के पतले चावल होते थे, ये बांसावड़ अब होते हैं। समझ में आता है? उस वक्त पतले कुल्फा होते थे, उसकी बड़ी बोरी आती थी। वह सब तो (लोभी) थे न, उस ही में बहुत घुस जाये, इसलिये कुछ मालूम नहीं होता। समझ में आया? क्या कहते हैं?

व्यवहारनय से कथन किया हो, मुख्यता से हाँ! व्यवहार की मुख्यता से। देखो भैया! भगवान का दर्शन हुआ (तो) श्रेणिक राजा ने नर्क का आयुष्य तोड़ दिया, सम्यग्दर्शन पा लिया, भगवान के समीप में पाया, भगवान न होतो पाते नहीं। ऐसी

कथनी व्यवहार से मुख्यता से कहने में आयी है। वह तो अपने पुरुषार्थ की क्रिया से क्षायिक सम्यग्दर्शन पाया है। समझ में आया? इसप्रकार जहाँ-जहाँ...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- क्या? लेकिन क्या? करनेवाला कौन? हो चुका। अपनी पर्याय का कर्ता, अपनी पर्याय का काम आत्मा का है, नहीं कि भगवान से हुआ है। भगवान के समवसरण में तो बहुत सिंह, बाघ, क्रोड़ो इन्द्र आते हैं, क्या सब समझते हैं? यूँ ही समझे बिना चले जाते हैं। अनंत काल ऐसा हुआ। क्या कहने में आता है? क्या मर्म आया है? वह बात पकड़ में न आवे तो मिथ्यादृष्टि लेकर चला जाये। क्या करे कोई? समझ में आया?

कहते हैं कि, जहाँ-जहाँ व्यवहार का कथन चला हो, वहाँ वह निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है ऐसा जानना। '**इसप्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।**' देखो! प्रश्न किया था न उसने? कि शास्त्र में दो नयों का ग्रहण करने का कहा है, ग्रहण करने को कहा है, ग्रहण करने को कहा है। तो तुम कहते हो कि निश्चय को ग्रहण करो और व्यवहार की श्रद्धा करके छोड़ दो। निश्चय एक उपादेय, व्यवहार की श्रद्धा इतना मानो, छोड़ दो, श्रद्धा छोड़ दो कि ऐसी बात है। हमने तो इतना सुना है कि दो नय का ग्रहण है। धन्नालालजी! ग्रहण का अर्थ दोनों को अंगीकार करना? नहीं, नहीं। ग्रहण का ऐसा अर्थ हुआ, निश्चय से कहा हो ऐसा सत्यार्थ मानकर मानना सच्चा। व्यवहार का कथन मुख्यता से कहा, उपचार से कहा ऐसा जानना। उसको जानने का नाम ग्रहण किया है। आदरना है ऐसा कहने में आया नहीं। ये जानना और आदरना, यह सब क्या होगा? समझ में आया?

अनंत काल में कभी सुना नहीं। ओहो..! अपूर्व धर्म एक सेकण्ड, एक सेकण्ड (का) सम्यग्दर्शन जन्म-मरण का अंत (कर दे)। ऐसी बात कभी सुनी नहीं, रुचि नहीं, अन्दर में परिणमी नहीं।

मुमुक्षु :-- नय निश्चय एकांत नहीं, बन्ने साथ रहेल।

उत्तर :-- बन्ने साथ रहेला, दूसरी है। वह तो कहा नहीं? दूसरा है, जानना कि दूसरा है। आदरने को कहाँ कहा है? उसमें तो सिद्धांत यह निकला कि पहले व्यवहार बाद में निश्चय ऐसा तो है नहीं। ऐसा आत्मसिद्धि में निकला। वह तो वहाँ अगास में कहा था, देखो! क्या कहते हैं श्रीमद्?

नय निश्चय एकांतथी एमां नहीं कहेल,
एकांते व्यवहार नहीं बन्ने साथ रहेला।

मुमुक्षु :-- दोनों साथ-साथ?

उत्तर :-- हाँ, दोनों साथ। अपने आया न? द्रव्यसंग्रह में ४७वीं गाथा। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथा है। एकसाथ निश्चय-व्यवहार ध्यान में आता है। समझ में आया? यहाँ भी कहा, एकसाथ दो है। पहले व्यवहार करो फिर निश्चय होता है (ऐसा) वस्तु में है नहीं। श्रीमद् स्वयं कहे, उसका अर्थ करनेवाले को समझ में आये नहीं। समझ में आया? वह थोड़ा बोल गये था, हाँ! एक जन बोला था वहाँ, बात तो बड़ी सूक्ष्म है, यहाँ तो स्थूल चलती है। भाई! श्रीमद् कहते हैं यह भी तुम को मालूम नहीं।

निश्चय यानी आत्मा का स्वभाव का भान। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञाता और उसमें रह न सके इसलिये दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, पूजा, यात्रा का भाव आता है उसको जानना उसका नाम व्यवहार, है उसका नाम व्यवहार। आदरणीय उसका नाम व्यवहार ऐसा कहने में आया नहीं। एकसाथ दोनों रहते हैं। निश्चय बिना व्यवहार कैसा? और व्यवहार बिना निश्चय कैसा? समझ में आया? दो नय का साथ में ज्ञान करना है न। व्यवहार बिना निश्चय कैसा का अर्थ कहीं व्यवहार से निश्चय है ऐसा नहीं और निश्चय से व्यवहार है ऐसा भी नहीं। साथ में दोनों है। स्वरूप का भान भी है और अन्दर दया आदि, भक्ति, पूजा का भाव भी है, दो नय साथ में रहती है। क्यों माणिकलालजी! समझ में आया?

'**इसप्रकार जानने का नाम ही...**' देखो! वज़न दिया। '**जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।**' हाँ! जानना, दो नय जानना। आदरना एक और जानना दोनों। आदरना एक निश्चय और जानना दोनों। एक नय जाने नहीं तो... वह तो पहले आ गया, व्यवहार को न माने तो एकांत मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार को आदरणीय माने तो मिथ्यादृष्टि है। धर्म का मूल की उसको खबर नहीं। समझ में आया? '**तथा दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है' - इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।**' भगवान संतों ने और भगवानों ने, तीर्थंकरों ने दोनों नय का कथन समान, निश्चय भी समान, व्यवहार भी समान, दो कक्ष... क्या कहते हैं? समानकक्षी, दोनों समकक्षी। निश्चय भी नय है और व्यवहार भी नय है। दोनों समकक्षी है। दोनों का पलड़ा समान है। समझ में आया? नहीं, ऐसा है नहीं। वह कहते हैं कि दोनों पलडु है, एक में भले माल हो, एक में तोल हो। ऐसा यहाँ दृष्टान्त लागू पड़ता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, ऐसा हो गया। ऐसा है नहीं।

अंतर भगवान आत्मा, जिसको शास्त्र में निश्चय सत्य स्वरूप, स्वतंत्र स्वरूप से कथन कहा हो वही सत्यार्थ है। और जहाँ निमित्तादि पराधीन व्यवहारादि से उपचार किया हो वह सत्यार्थ नहीं, सच्चा नहीं। दोनों को सच्चा मानना भ्रम है, तेरी मिथ्यादृष्टि है। ओहोहो..! समझ में आया? हाँ कही थी कि नहीं तुमने? डालचंदजी! तुम्हारे पास पत्ता आया था न। भोपाल से आया था। यहाँ भी आप के नाम से विशेष छपा था। भावनगर में विशेष छपा था। देखो, यहाँ भोपाल से आया है और है तो टोडरमलजी का, किसी का है नहीं। आहाहा..!

तो कहते हैं, निश्चय का कथन चला हो उसकी खबर न हो, वह भी सच्चा। व्यवहार से कथन किया हो वह भी सच्चा। '**दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ...**' समान यानी सरीखा और '**सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है, ऐसे भी है'--इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से...**' यह तो तेरी भ्रमणा है। व्यवहार तो एक निमित्त का ज्ञान कराने को कहा था, उसमें घुस गया तुम, उससे होता है और उससे होता है। पालो, संयम, व्रत पालो उससे कभी कल्याण होगा। मर जायेगा तो भी कल्याण नहीं होगा, सुन न। मर जाते हैं, निगोद में जाते हैं क्रम-क्रम से। समझ में आया? दृष्टि की खबर नहीं, सम्यग्दर्शन की क्या चीज है? निश्चय की चीज क्या है उसकी प्रतीति, पहिचान, भान नहीं, कहाँ-से आया? भवभ्रमण में, चौरासी के पंथ में चला जायेगा। एक भव भी घटेगा नहीं। समझ में आया? धरमचंदजी! '**दोनों नयों को ग्रहण करना नहीं कहा है।**' '**इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।**'

'**फिर प्रश्न है...**' दोनों नयों को ग्रहण करने का अर्थ है कि व्यवहार है ऐसा जानना। निमित्त की अपेक्षा कथन किया है ऐसा जानना। निश्चय की यथार्थ वस्तु है उसको जानकर आदरना। समझ में आया? आदरना तो आत्मा की बात है। पर में है निश्चय का कथन तो यथार्थ है और व्यवहार का कथन पर में हो वह उपचार से है, ऐसा पर को भी जानना। समझ में आया? ... सामनेवाले का निश्चय है वह तो अपने को आदरना है नहीं। ज्ञेय की यथार्थ स्वतंत्र बात कही हो उसकी पर्याय, उसका द्रव्य-गुण से हुआ, वह सत्यार्थ उसका है ऐसा तुझे जानना। और व्यवहार से कथन किया हो उसको उपचार है, निमित्त की अपेक्षा कथन किया ऐसा तुझे जानना। समझ में आया? दोनों नयों को समान और सत्यार्थ (नहीं मानना)। व्यवहार भी सच्चा है कि नहीं? नहीं, व्यवहार तो निमित्त की अपेक्षा कथन करनेवाला है, सच्चा है नहीं।

बनारसीदास के वखत में वह चर्चा हुई थी। बनारसीदास ने निकाला कि व्यवहार

की रुचि करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। इतना .. हुआ सामने दूसरे संप्रदाय में, कोई एक नाम था, नाम की खबर है हमको, उसने फिर एक बनाया कि नहीं, बनारसीदास कहते हैं कि निश्चय एक आदरणीय है और व्यवहार आदरणीय नहीं है। दोनों नय समकक्षी है। फिर पुस्तक बनाया युक्ति से। समझ में आया? ऐसा है नहीं। अभी भी ऐसा निकाला था थोड़े वर्ष पहले, (संवत) १९९९ की साल में। निश्चय, निश्चय सत्यार्थ है और व्यवहार सत्यार्थ नहीं (ऐसा नहीं), दोनों नय समकक्षी है। दोनों पलड़े को समान मानना।

मुमुक्षु :-- व्यवहार व्यवहार की जगह सच्चा है न?

उत्तर :-- व्यवहार सच्चा है इतना, आदरणीय है वह किसने कहा? है इसको जानना वह सच्चा। यहाँ आदरणीय की बात है। सच्चा नहीं है?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अरे..! उसके पास अपने से हुआ।

मुमुक्षु :-- क्षायिक सम्यक्त्व केवली के ...

उत्तर :-- लेकिन वह अपनी पर्याय से हुआ कि पर से हुआ? भगवान के पास तो बहुत लोग विराजते हैं समवसरण में। भगवान के पास समवसरण में तो तिर्यंच, पशु, देव, क्रोड़ो लोग हैं, सब को क्यों धर्म नहीं होता? भगवान से होता हो तो। अपनी पर्याय से हुआ अपने कारण से पुरुषार्थ से, तब उसको निमित्त कहने में आया। क्या करे? सुना नहीं। एक मश्करी.. मश्करी न? एक साधु हुआ था, मश्करी साधु, पार्श्वनाथ का साधु था। भगवान के समवसरण में गया, गया तो उसे ऐसा था कि मुझे गणधरपद मिलेगा। मैं पुराना साधु हूँ, पुराना साधु हूँ तो मुझे गणधरपद मिला नहीं। गौतम ब्राह्मण था। वेद में बड़ा प्रवीण। सारये, वारये, धारये, पारये। समझ में आया? वेदांत में सब धारणा में... वारे, कोई भूल करे तो वारे, नहीं ऐसा नहीं। इतनी बुद्धि, बहुत उघाड़, ... शास्त्र का। वह आया, ऐसे भगवान को देखा.. आहा..! सम्यग्दर्शन (हो गया)। बिना वाणी सुने। किसने किया? भगवान के कारण से हुआ? लेकिन आये बिना रहे कहाँ-से? वह तो प्रश्न हुआ था।

ऐसा प्रश्न है धवल में, कि गणधर तो होनेवाली योग्यता को उस काल में क्यों लाया? पहले क्यों नहीं लाया? इन्द्र पहले क्यों नहीं लाया? इन्द्र है ऊपर, शक्रेन्द्र वर्तमान। बत्तीस हजार विमान का स्वामी--नायक। एकावतारी उसकी स्त्री और स्वयं एक भव करनेवाले हैं। एक मनुष्य करके मोक्ष जानेवाले हैं दोनों। विराजते हैं, पहले स्वर्ग में। शक्रेन्द्र और शची। समझे? क्यों नहीं लाये भगवान के पास पहले? यहाँ है न, राजगृही? कौन-सा .. कहलाता है? विपुलाचल पर्वत है न? हम लोग गये

थे न यात्रा में? विपुलाचल पर्वत पर भगवान आये, ६६ दिन तक वाणी बन्द रही। दो मास और छः दिन। इन्द्र ने विचार किया कि अरे..! भगवान की वाणी क्यों नहीं निकलती है? वह तो केवली है, उसको कहा नहीं कि, महाराज! वाणी निकालो। वह तो केवली वीतराग है। एक समय में तीन काल, तीन लोक जानते हैं। क्या हुआ? भगवान को केवलज्ञान हुआ, वाणी न निकली। उपयोग रखा अवधिज्ञान का। कोई पात्र जीव नहीं दिखता है, इसलिये वाणी निकलती नहीं है। वह निमित्त से कथन है।

गणधर को ले आये, गौतम को ले आये। जहाँ आये, सम्यग्दर्शन हो गया। चार ज्ञान, चौदह पूर्व एक अंतर्मुहूर्त में रचे। बाहर निकला, वह मश्करी साधु, मैं पुराना साधु मेरे को गणधरपद नहीं दिया और उसको गणधरपद मिला, नक्की वह सर्वज्ञ नहीं है। जाओ उडाओ। क्या करे? अपनी वृत्ति को पोषण नहीं मिला, सर्वज्ञ नहीं है। हैं? वह सर्वज्ञ नहीं है। अरे.. सुन तो सही। तेरी पदवी के लायक तू हो तो गणधरपद मिले बिना रहे नहीं। उसकी पात्रता थी, भले अन्यमति था, उसकी योग्यता ऐसी थी। ऐसे जहाँ देखा.. ओहोहो..! ये! उनका बाह्य वैभव तो इन्द्र के पास नहीं, इतना तो बाह्य समवसरण का, अन्दर का वैभव देखो तो स्थिर बिंब हो गये हैं ये तो। स्थिर बिंब परमात्मा भगवान को देखा। विपुलाचल पर्वत राजगृही नगरी में इस ओर जो पहला पर्वत है वह। है न इस ओर? समझे न? हम सब ठिकाने गये हैं न, सब देखा है न। वहाँ रहे थे। समझ में आया? वाणी निकली। चौदह पूर्व और बारह अंग की रचना गौतम ने की। वह मश्करी न कर सका। मिथ्यादृष्टि बाहर आकर.... अन्दर बोल न सके। अन्दर में इतनी नरमाई होती है न, भगवान का अतिशय है, भगवान पूर्ण स्वरूप (हैं)। बाहर निकलकर कहता है, यह भगवान सर्वज्ञ नहीं लगते हैं। क्यों? तेरी वृत्ति को ठीक नहीं पड़ा इसलिये? अच्छा। शेठी! सुना है कि नहीं? वह मश्करी साधु पार्श्वनाथ का था। तेईस तीर्थंकरमें से पुराना था। वह कहे, मैं पुराना हूँ तो हम को गणधरपद मिलेगा। न मिला, गौतम को मिला। ये केवली नहीं लगते हैं। तेरे घर में तुझे रुचा नहीं, इसलिये केवली नहीं है? ऐसा अनादि काल से अज्ञानी ने अपना स्वच्छंद छोड़ा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- देशनालब्धि पूर्व में हो गयी होगी। हुए बिना हो नहीं। गणधर होने की लायकात है न। समझ में आया?

**'दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर....'** **'व्ययहारनय असत्यार्थ है...'** अब, शिष्य का प्रश्न। व्यवहारनय से कथन शास्त्र में चले, यदि वह झूठा है तो **'उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया?'** तो वीतराग की वाणी और

मुनियों के मुखमें से व्यवहार का उपदेश क्यों आया? तुम तो कहते हो कि व्यवहार असत्यार्थ है, तो शास्त्र के मुख में उपदेश क्यों आया, वीतराग की वाणी में? शिष्य ने प्रश्न किया है। प्रश्न बराबर है। वह तो स्वयं ने बनाया है न। '**तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया? एक निश्चयनय ही का निरूपण करना था।**' सच्ची बात, आत्मा आत्मा की पर्याय अपने से है, अपने से धर्म, अपने से अधर्म, पर का पर के कारण से ऐसा निश्चय का ही कथन करना था। व्यवहार असत्यार्थ है तो व्यवहार का कथन क्यों किया? जिनमार्ग में यह कथन किया तो हमें भ्रमणा हो गयी। समझ में आया? दो नय में भरमाया तो दो नय से भरमाया है? तेरी दृष्टि भरमाया है। दो नय से भरमाया हो तो ज्ञानी की दो नय की भ्रमणा होती नहीं। निश्चय को निश्चय जानकर आदर करते हैं, व्यवहार को व्यवहार जानकर जानते हैं, भ्रमणा होती नहीं। उसका उत्तर।

'**समाधान :-- ऐसा ही तर्क समयसार में किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है :--**'

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं।।८।।

समयसार की ८वीं गाथा। दृष्टान्त देकर उस बात को प्रसिद्ध करते हैं। सुन!

'**अर्थ :-- जिस प्रकार अनार्य अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है,...**' समझ में आया? म्लेच्छ हो उसे उसकी भाषा में समझाना पड़े न। एक गोरा आया गोरा। दृष्टान्त। उसे कपड़ा चाहिये था। वहाँ बैठा हो और सामने मोहत्तु पड़ा हो, मोहत्तु। ऐसा बोला मोहत्ता लाना। मोहत्त क्या कहता है? मोहत्ता समझते हो? रसोई करते समय हाथ बिगड़ते हैं, कपड़ा मैला होता है उसको मोहत्तु कहते हैं। हाथ मैला हो, तावड़ी का काला हो, ऐसा होता है न? काला कपड़ा। मोहत्तु कहे तो वह क्या समझे? मोहत्तु यह क्या कहता है? उसे मोहत्तु का अर्थ करना पड़े। साहब! रसोईघर में हाथ बिगड़ते हैं तो एक कपड़ा साफ करने को रखते हैं उसको मोहत्तु कहते हैं। लंबी-लंबी बात कहो तब समझ में आये। और अपना आठ वर्ष का बालक हो तो समझे, मोहत्तु लाना। समझ में आया?

इसप्रकार म्लेच्छ मनुष्य को इस भाषा से (समझ में न आये) तो उसकी भाषा में समझाते हैं। '**म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है,...**' एक बार कहा था न? यहाँ एक गोरा था। पालीताणा में दरबार चल बसे तब था न? मानसिंहजी। फिर बहादुरसिंहजी अभी छोटे थे। एक गोरा था, उसके ऊपर मेनेजर

था। वह बराबर गारियाधार आया था। गारियाधार बड़ा है न? ये सब बोले न, बाजरा, बाजरा, बाजरा। तो वह भी बोलने लगा, भाषा नहीं आती थी। बा..ज..रो.. कितना? बा..ज..रा.. तीन अक्षर तोड़ दिये। अपने यहाँ लड़का बोले, बाजरा। यह बाजरा होता है कि नहीं? वह कहे, बा..ज..रो कितना पका है? कोई हिन्दी होगा। उसकी भाषा नहीं, उसकी अंग्रेजी (भाषा है)।

इसप्रकार यहाँ कहते हैं, व्यवहार से समझाने में आता है। व्यवहार बिना समझाया नहीं जाता। '**व्यवहार बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है; इसलिये व्यवहार का उपदेश है।**' लो, उपदेश में करना क्या? उसको समझाना हो तो क्या समझाये? आत्मा ज्ञान है, दर्शन है, आनंद है। तो क्या आत्मा में भेद है? आत्मा तो अखंड वस्तु है। उसमें से एक गुण जुदा करके बताना कि देखो भैया! जानता है सो आत्मा, श्रद्धा करता है वह आत्मा, स्थिर रहता है वह आत्मा। ... वह आत्मा है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। वह तो भेद होकर बताया। आत्मा तीनरूप नहीं है। आत्मा तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र का एकरूप है। लेकिन तीन का भेद किये बिना निश्चय समझाने में आता नहीं। आहाहा...! समझ में आया? '**इसलिये व्यवहार का उपदेश है।**'

'**तथा इसी सूत्र की व्याख्या में ऐसा कहा है...**' देखो! वह ८वीं गाथा में कहा, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। '**व्यवहारनयो नानुसत्तव्य**'। व्यवहार से कथन कहने में आता है कि आत्मा शरीरवाला है, आत्मा वाणीवाला है, आत्मा भेदवाला है, ऐसा कथन करने में आता है, उसको समझाने को। परन्तु व्यवहारनय अंगीकार करना नहीं। कहाँ गये देवीलालजी? सुननेवाले को भी व्यवहारनय अंगीकार नहीं करना ऐसा कहते हैं। समझाने में आये। रात्रि में प्रश्न था न तुम्हारा कि ऐसा.. ऐसा। लेकिन समझाये व्यवहार से, लेकिन समझानेवाले को व्यवहार का अनुसरण नहीं करना, समझनेवाले को भी व्यवहार का अनुसरण नहीं करना। आहाहा..!

मुमुक्षु :-- परमार्थ पकड़ने को...

उत्तर :-- परमार्थ पकड़ने को व्यवहार से कथन है। व्यवहार से व्यवहार में भटक जाने को व्यवहार का कथन नहीं है। भैया! तेरी चीज ज्ञाता-दृष्टा है, ज्ञानप्रकाशमय है। तो क्या अकेला ज्ञानमय आत्मा है? आत्मा में तो अनंत गुण है, अनंत गुण है। लेकिन क्या करे? भेद किये बिना समझाया जाता नहीं, परन्तु भेद को अंगीकार करना नहीं। यह बात बड़ी कठिन, कभी सुनी न हो। दया पालनी, व्रत पालना, उपवास किया, जाओ जिंदगी पूरी।

यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है। '**इस निश्चय को अंगीकार**

**करने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं;...'** निश्चय का भान कराने के लिये व्यवहार का उपदेश है। व्यवहार आदरणीय है नहीं। समझ में आया? तेरा आत्मा शरीर से भिन्न है। ये शरीर नहीं है? यह गाय का जीव, मनुष्य का जीव। तो क्या गाय का जीव है? जीव तो जीव का है। मनुष्य जीव, पर्याप्त जीव, अपर्याप्त जीव, काला, काली गाय का जीव, सफेद गाय का जीव। तो काली गाय का जीव है? जीव तो जीव है। परन्तु उसे समझाने को जीव को समझाने को शरीर की अपेक्षा लेकर समझाया है। परन्तु शरीर की अपेक्षा लेकर अन्दर समझ में आता है ऐसा नहीं। व्यवहार से समझाया कि तेरा आत्मा यह है। उसको व्यवहार अंगीकार नहीं करना, निश्चय को अंगीकार करना। वह उपदेश व्यवहार का, निश्चय अंगीकार करने को दिया है। व्यवहार को अंगीकार करने को दिया नहीं।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**वीर सं.-२४८८, श्रावण वद-६, मंगलवार, दि. २१-८-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १३**

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। शिष्य का प्रश्न है। व्यवहार और निश्चय का कथन चला। शास्त्र में जो निश्चय से स्वद्रव्य आश्रय बात कही है वह सत्यार्थ है, वह उपादेय है। और शास्त्र में जो व्यवहारनय की मुख्यता से बात कही है वह असत्यार्थ है और हेय है। देखो, शिष्य का प्रश्न। तो एक निश्चयनय का ही उपदेश करना था। यदि व्यवहारनय हेय और असत्यार्थ है तो एक ही नय का उपदेश करना था, दो नय का उपदेश शास्त्र में क्यों कहा? बराबर है? शेठी! एक ही नय का करना था, जो उपादेय है वही करना था। असत्यार्थ कहो, हेय कहो, छोड़नेयोग्य कहो, और उसका उपदेश करना, उसका क्या कारण है? तुम कहते हो ऐसा प्रश्न समयसार में ८वीं गाथा में हुआ है और उसका उत्तर भी दिया है।

अनार्य मनुष्य उसकी भाषा बिना समझ सकता नहीं। अनार्य को उसकी भाषा से समझावे तो वह समझ सकता है। स्वस्ति ऐसा कहा, स्वस्ति। स्वस्ति क्या अनार्य मनुष्य को स्वस्ति की खबर नहीं। क्या है यह? क्या कहते हैं? टगटग मेंढे की भाँति

देखता है कि कहते हैं क्या? स्वस्ति। तब दूसरा कोई उसका अर्थ करता है कि तेरा अविनाशी कल्याण हो, स्व-सु अस्ति। कल्याण हो ऐसा स्वस्ति का अर्थ होता है। तब उसे आनंद-आनंद हो जाता है। ओहो..! इसमें तो मेरे आनंद का आशिर्वाद है। स्वस्ति का (अर्थ) समझ पाता है।

ऐसे व्यवहारनय से उपदेश निश्चय को समझाने को देने में आया है। लेकिन आया है, फिर भी व्यवहारनय अंगीकार करनेलायक नहीं (है)। बहुत गड़बड़ भाई! समझे? एक सोलिसीटर थे, वह ८वीं गाथा में से निकालते थे। है अभी। देखो! यहाँ ८वीं गाथा है, उसमें कहा है व्यवहार बिना परमार्थ हो सकता नहीं। ऐसा कहाँ कहा है? कहा। व्यवहार बिना परमार्थ का उपदेश नहीं हो सकता। व्यवहार से परमार्थ समझा जाता है। लेकिन व्यवहार से व्यवहार समझा जाता है तो व्यवहार श्रोता को औरौ वक्ता को दोनों को अंगीकार करने लायक नहीं। शेठी! वह चला देखो!

'**निश्चय को अंगीकार करने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं;...**' समझे? व्यवहारनयो नानुसर्तव्य। निश्चय से आत्मा का वास्तविक स्वरूप समझाने को व्यवहार से उपदेश देते हैं। '**परन्तु व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।**' लेकिन फिर भी वह व्यवहारनय आदरणीय नहीं। यह कठिन, व्यवहार आदरणीय नहीं, जगत को कठिन (पड़ता है)। व्यवहार आदरणीय नहीं? तो कहा क्यों? सुन तो सही। उसको समझाने में दूसरा कोई उपाय नहीं, रीति नहीं। समझाने में व्यवहार आता है। परन्तु व्यवहार समझाता है परमार्थ को। अंतर चैतन्यमूर्ति क्या वस्तु है उसको समझाते हैं।

'**प्रश्न :-- व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता?**' व्यवहार बिना निश्चय सत्य का उपदेश, असत्यार्थ बिना सत्य का उपदेश क्यों न हो? समझ में आया? असत्यार्थ, हेय व्यवहार उसके बिना उपादेय, अंगीकार करने लायक ऐसी आत्मा की चीज उसको अंगीकार करने योग्य नहीं है? व्यवहार कहता है, परमार्थ समझाता है तो क्यों अंगीकार नहीं करना? '**व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता? और व्यवहारनय कैसे...**' यहाँ थोड़ा शब्द में फ़र्क़ है। व्यवहार कैसे अंगीकार नहीं करना, ऐसा चाहिये।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं करना चाहिये। वह नहीं, उपदेश कैसे न हो, वह तो बराबर है। '**व्यवहारनय कैसे अंगीकार नहीं करना?**'

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वहाँ 'न' चाहिये। पुरानी प्रत में 'न' है। व्यवहारनय कैसे अगींकार नहीं

करना? इसमें ऐसा है कि व्यवहारनय कैसे अंगीकार करना? अंगीकार करने की तो ना कही है। उसके लिये तो शिष्य का प्रश्न है। व्यवहार कहे परमार्थ को और व्यवहार कैसे अंगीकार नहीं करना? क्यों न करना उसको? '**सो कहिये।**' उसका समाधान। समझ में आता है? प्राणभाई! यह पढ़ा है कि नहीं कभी अच्छे से? अच्छे से हाँ! ऊपर-ऊपर से कहो ऐसे नहीं। ना कहते हैं, आपके बदले दूसरे ना कहते हैं। सुन, कहते हैं।

'**समाधान :-- निश्चय से तो आत्मा परद्रव्यों से भिन्न,...**' भगवान आत्मा शरीर, वाणी, कर्म सब से भिन्न--जुदी चीज है। और '**स्वभाव से अभिन्न...**' अपना स्वभाव गुण-पर्याय आदि से वह वस्तु अभिन्न है। समझ में आया? परद्रव्य से आत्मा भिन्न है, परन्तु अपना स्वभाव गुण-पर्याय से अभिन्न है। '**स्वयंसिद्ध वस्तु है;...**' स्वयंसिद्ध अपने से है अनादि से स्वयंसिद्ध है। उसका बनानेवाला कोई नहीं है। द्रव्य का नहीं, गुण का नहीं और पर्याय का भी कोई बनानेवाला, रचनेवाला है नहीं। स्वयंसिद्ध वस्तु है।

'**उसे जो नहीं पहिचानते...**' उसे जो नहीं पहिचानते, किसको? कि परद्रव्य से भिन्न और अपना स्वभाव--शक्ति आदि से अभिन्न, इसको जो कोई नहीं पहिचानते '**उनसे इसी प्रकार कहते रहें तब तो वे समझ नहीं पाये।**' पर से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, पर से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न (ऐसा कहते रहें) तो वह समझे नहीं। समझ में आया? '**इसलिये उनको व्यवहारनय से...**' जो हेय है, उपादेय नहीं है, असत्यार्थ है, झूठी है। समझ में आया? '**व्यवहारनय से शरीरादिक परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा...**' यह शरीर, देखो! नारकी का शरीर वह जीव, मनुष्य का शरीर वह मनुष्यजीव, देवजीव, ऐकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव, वनस्पति जीव, पृथ्वी जीव--इसप्रकार शरीर की और वाणी की, देखो, यह छह पर्याप्ति बाँधी वह जीव, यह चार बाँधी वह जीव, यह भाषा बोले सो जीव। हैं? कहते हैं कि... आदि शब्द पड़ा है न? '**शरीरादिक परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा नर-नारक...**' नर मनुष्यजीव, नारकी जीव, देव जीव, तिर्यंच जीव, पृथ्वी जीव, पानी जीव, अग्नि जीव, वायु जीव, वनस्पति जीव, साधारण जीव, असाधारण जीव। साधारण, असधाराण समझते हैं न? धरमचंदजी! साधारण, असाधारण कौन? भगवान जाने। वनस्पति का दो भेद है न? साधारण और असाधारण। निगोद का जीव साधारण है। एक शरीर में अनंत हैं। और प्रत्येक शरीर नीम, पीपल आदि है, उसमें प्रत्येक असाधारण है। असाधारण नाम एक शरीर में दूसरा जीव नहीं। एक शरीर में एक उसको असाधारण अर्थात् प्रत्येक अथवा पृथक् और एक शरीर में अनंत उसको साधारण कहते हैं। लेकिन वह साधारण जीव,

असाधारण जीव यह तो व्यवहार से समझाने में आया। उस पर्याय की शरीर की सापेक्षता लेकर, वाणी की सापेक्षता लेकर, मन की सापेक्षता लेकर, लो न। संज्ञी लो, मनवाला जीव। यह मन बिना का जीव। शेठी! मनवाला जीव है? जीव तो जीव है। वह तो परद्रव्य से भिन्न और अपनी शक्ति से अभिन्न है, परन्तु व्यवहार से समझाये बिना परमार्थ समझा जाता नहीं।

'**जीव के विशेष किये...**' देखो, जीव के विशेष किये। '**तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है, इत्यादि प्रकार सहित उन्हें जीव की पहिचान हुई।**' ठीक, जीव है अन्दर में, वह जीव है, वह जीव है। शरीर नहीं, नारकी का शरीर नहीं, मनुष्य नहीं, देव नहीं, पृथ्वी-पानी का शरीर नहीं। '**अथवा...**' एक बात वह हुई। शरीर, वाणी, मन की सापेक्षता द्वारा जीव की पहिचान कराने में व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं। इस कारण से व्यवहार से उपदेश किया है। समझाना है परमार्थ, जीव, पर शरीर से भिन्न यह समझाना है। इस कारण से व्यवहार हेय होने के बावजूद, असत्यार्थ होने के बावजूद, आदरणीय नहीं होने पर भी उपदेश में आये बिना रहता नहीं। दूसरा कोई उपाय नहीं, लोगों को समझना कैसे? एक बोल आया।

'**अथवा अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके...**' देखो! भगवान आत्मा अभेद वस्तु, उसमें भेद नहीं है कोई कि ज्ञान कहीं रहता हो, दर्शन की रहता हो, चारित्र कहीं रहता हो, वीर्य कहीं रहता हो। असंख्य प्रदेश में अनंत गुण एकसाथ अभेद है। समझ में आया? अभेद वस्तु है, अखंड वस्तु है। शरीर, वाणी, मन, कर्म से भिन्न वस्तु अभेद (है)। उसमें '**भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुणरूप जीव के विशेष किये,...**' बताया कि देखो भैया! जाननेवाला जीव, देखनेवाला जीव, शांति उसमें श्रद्धा--आस्तिक्य करता है न? आस्था किसको है? वह आस्था करनेवाला जीव, शांतिवाला जीव, समझे? ऐसा अभेद चीज में गुण का भेद और पर्याय का पृथक् भेद करके, मतिज्ञानी जीव, श्रुतज्ञानी जीव, केवलज्ञानी जीव, अवधिज्ञानी जीव (बताया है)। समझ में आया? शेठी सुनते हैं बराबर।

'**अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि...**' गुण और पर्यायरूप '**जीव के विशेष किये,...**' देखो! अचक्षुदर्शन की पर्याय वह जीव, चक्षुदर्शन की पर्यायवाला जीव, अवधिदर्शन की पर्यायवाला जीव (ऐसा) भेद करके बताया। समझ में आया? '**तब जाननेवाला जीव है, देखनेवाला जीव है;--इत्यादि प्रकार सहित...**' प्रकार लिये, लिये माने क्या कहते हैं? इत्यादि प्रकार लिये, हमारी गुजराती भाषा में क्या? '**इत्यादि प्रकार सहित उनको जीव की पहिचान हुई।**' उसको पहिचान हुई कि हाँ, वह आत्मा, वह आत्मा। समझ में आया?

तीसरी बात। दो बातु हुई। व्यवहारनय असत्यार्थ होने पर भी समझाने में आता है परमार्थ, इस कारण व्यवहार आये बिना रहता नहीं। परन्तु अंगीकार करने लायक नहीं है। तीसरी बात, '**तथा निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है,...**' निश्चय नाम सत्यार्थ से देखो तो वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है। राग, पुण्य, विकल्प, व्रत, नियम का विकल्प या शरीर की क्रिया कोई मोक्षमार्ग है नहीं। '**निश्चय से वीतरागभाव...**' शुद्ध चैतन्यप्रभु समस्वभावी अविकारी ऐसी दृष्टि, ज्ञान और रमणता वही एक वीतरागभाव ही एक मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं, तीन काल तीन लोक में।

'**उसे जो नहीं पहिचानते...**' वीतरागभाव मोक्षमार्ग, वीतरागभाव मोक्षमार्ग, वीतरागभाव मोक्षमार्ग इसमें न समझे, '**उनको ऐसे ही कहते रहें तो वे समझ नहीं पाये।**' समझ में आया? यह चीज बहुत ऊँची है! व्यवहार और निश्चयावलम्बी की बात पंडितजी ने ऐसी निकाली है कि मिथ्यादृष्टि दो को समझते नहीं, निर्धार करते नहीं और हमें दोनों समान सत्यार्थ है। दोनों समान और सत्यार्थ है। दो शब्द लिये हैं, कल आया न? वह कहते हैं, दूसरे लोग कहते हैं अभी, नहीं, दोनों नय समकक्षी है, दोनों समान है, दोनों बराबर है। दोनों में एक हिन या एक अधिक ऐसा कोई नहीं है। समझ में आया? उपादान निमित्त में कोई उपादान अधिक है और निमित्त कोई कम है ऐसी बात न लेना। आता है?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसमें लेना, लेकिन ये तो भाग पाड़ते हैं कि नहीं, निमित्त भी बराबर पूर्ण है और उपादान भी पूर्ण है। दोनों में उपादान अधिक और निमित्त कम... भाई! आता है न? टेप रेकोर्डिंग में। उसमें वह आया है कि, नहीं, दोनों बराबर लेना। समझ में आया? नहीं, निश्चय-व्यवहार बराबर लेना कहो कि उपादान-निमित्त बराबर लेना एक ही बात है। हेमराजजी! वह उसमें आता है। समझ में आया? कहते हैं कि नहीं, दो समान नहीं, दो सत्यार्थ नहीं, दो अंगीकार करने लायक नहीं, दो मार्ग नहीं। समझ में आया? उपादान-निमित्त कार्य में भी दो समतोल रखना। उसका प्रतिशत ऐसा और इसका प्रतिशत हिन ऐसा नहीं रखना। कौन रखे? सुन तो सही। अपनी पर्याय का कार्यकाल में अपनी पर्याय होती है तो निमित्त है, उसमें प्रतिशत कहाँ-से आया कि निमित्त है तो कार्य होता है? ऐसे व्यवहार है तो निश्चय होता है ऐसा है नहीं। जैसे निमित्त हो तो उपादान है, व्यवहार हो तो निश्चय है, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? कहते हैं...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हो, दूसरी बात है, हो तो होता ही है। निमित्त है, व्यवहार विकल्प

व्रतादि शरीर की क्रिया भी हो, हो उसमें क्या है? लेकिन वह कोई आदरणीय है और वह है तो उससे अन्दर निश्चयमोक्षमार्ग होता है ऐसा नहीं है। एक जीव है तो दूसरा जीव है ऐसा है? एक जीव है तो दूसरा जीव है ऐसा है? ऐसे व्यवहार है तो निश्चय है ऐसा है? दोनों एक ही बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि '**वीतरागभाव मोक्षमार्ग है, उसे जो नहीं पहिचानते उनको ऐसे ही कहते रहें तो वे समझ नहीं पायें। तब उनको व्यवहारनय से, तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक...**' व्यवहारनय से। समझ में आया? क्या व्यवहारनय से? तत्त्वश्रद्धान और ज्ञानपूर्वक। व्यवहारनय से श्रद्धा तत्त्वार्थ और व्यवहारनय से तत्त्वज्ञान ऐसा है उसमें अर्थ? पढ़ो तो सही क्या है? ऐसा कहते हैं,.. यहाँ तो व्यवहार के व्रतादि की व्याख्या करनी है न। तो व्यवहारनय से, बस इतना। '**तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक...**' निश्चय तत्त्वश्रद्धान और ज्ञानपूर्वक। 'व्यवहारनय से' (कहा वह) तो वहाँ रखना। बाद में निश्चयनय से तत्त्वश्रद्धान और ज्ञानपूर्वक। निश्चय से सम्यग्दर्शन हुआ हो, निश्चय से सम्यक्ज्ञान हुआ उसको, अब कहते हैं, व्यवहारनय से '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' व्यवहारनय यहाँ लगाना।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- व्यवहारनय... फिर तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान वह निश्चय है। सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान हुआ, उस पूर्वक व्यवहारनय से उसको व्रत कैसा है और ऐसी क्रिया से निश्चय समझाना है। समझ में आया? व्यवहारनय से तत्त्वश्रद्धान ऐसे नहीं।

यहाँ तो मोक्षमार्ग के तीसरे बोल की बात चलती है न। तो मोक्षमार्ग में जब व्रतादि को कहना वह व्यवहार आया। लेकिन कहते हैं कि, कहना किसको? कि जिसको तत्त्वश्रद्धान सम्यग्दर्शन हुआ है। मेरी चीज रागरहित शुद्ध पूर्णानंद है ऐसी दृष्टि हुई है और तत्त्वज्ञान हुआ है। सम्यक्ज्ञान--ज्ञान का वेदन में ज्ञान हूँ, ऐसा भान हुआ है। उसको व्यवहारनय से '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' व्रत में इतना-इतना लक्ष्य छूटता है न पर का? वह तो व्यवहार है, हाँ! परद्रव्य की क्रिया का त्याग, अत्याग आत्मा में है नहीं। परन्तु परद्रव्य का निमित्त... अव्रत में परद्रव्य का लक्ष्य बहुत है। व्रत होता है तो परद्रव्य से लक्ष्य हटता है, इतना देखकर '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्रत, शील, संयमादिरूप वीतरागभाव के विशेष बतलाये;...**' वास्तव में उसका विशेष है नहीं, लेकिन उसका भेद करके वीतराग मोक्षमार्ग है उसको दिखाया कि भैया! ऐसा व्रत, ऐसी क्रिया, ऐसा हो वहाँ वीतरागमार्ग होता है। वीतरागमार्ग है, लेकिन उससे नहीं। समझ में आया? '**तब उन्हें वीतरागभाव की पहिचान हुई।**' हाँ, ओहो..! ऐसी चीज हो, जहाँ संयम हो, व्यवहार हो, व्रत

हो वहाँ अन्दर वीतरागभाव हुआ तो उसको व्यवहार कहने में आता है और वह व्यवहार है वह निश्चय को समझाता है। अंतर वस्तु निश्चय निर्विकल्प वीतराग श्रद्धा, ज्ञान और रमणता। समझ में आया?

'**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना...**' यहाँ दृष्टान्त दिये, तीन। इसके सिवा जहाँ-जहाँ शास्त्र में चला हो.. समझ में आया? '**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना।**' कहो। गुरु का उपदेश सुनो तो ज्ञान होगा, वीतराग की वाणी सुनो तो ज्ञान होगा। समझ में आया? शास्त्र का वाँचन किये बिना ज्ञान नहीं होगा। समझ में आया? ऐसी व्यवहार की कथनी आती है। अंतर में उसका ज्ञान प्रगट हो, वह समझाने को यह बात कहने में आती है। समझ में आया? दिव्यध्वनि से ज्ञान हुआ, भगवान की दिव्यध्वनि निकली और गणधर ने बारह अंग की रचना की, वह सब व्यवहार से परमार्थ समझाने की बात है। गणधर की लब्धि तो अपने से प्रगट हुई है। अंतर्मुहूर्त में बारह अंग, चौदह पूर्व की रचना (करते हैं)। समझ में आया?

शास्त्र में ऐसा उपदेश आवे, लो। भक्ति में आता है न? भक्ति में। 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां' आता है कि नहीं?

उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां,
करकमलमां कृपा अनंत उभराय जो।

करकमल में, हृदयकमल में अनंत कृपा उभरती है। करकमल। 'प्रभु त्यां ऊपजे लब्धि अनंत जो।' लो, भक्ति में ऐसा आता है। सुनी है भक्ति कभी? भगवान का हाथ जिसके सर पर पड़े (उसे) लब्धि उत्पन्न हो जाय। धन्नालालजी! वह आता है। वह तो सब व्यवहार से समझाते हैं। लब्धि भगवान से ऊपजे तो भगवान के समवसरण में सब केवलज्ञान प्राप्त कर ले और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले। परन्तु व्यवहार से, निमित्त से ऐसा कथन करके उसको जो लब्धि उत्पन्न हुई है उसको बताते हैं। समझ में आया? बहुत बोल, तीन-चार आते हैं न? हिंमतभाई! आते हैं कि नहीं? 'हृदयकमळमां दया अनंत उभराय जो।' करकमळमां, चरणकमळमां भक्तिरस हेले चडे, ऐसा आता है, सब थोड़ा ही याद रहता है। चरणकमल में इन्द्रों आकर भक्ति करते हैं। आहाहा..! लो, चरण कहाँ, चरण-पैर तो जड़ हैं। उसमें वह भाव आया तो समझ में आया (तो कहते हैं), भगवान के चरणकमल की भक्ति की तो बेड़ा पार हो गया। वह व्यवहार से परमार्थ समझाने का कथन है। समझ में आया?

'**तथा वहाँ व्यवहार से नर-नारकादि पर्यायही को जीव कहा,...**' नर के शरीर की पहिचान करवाई न कि यह मनुष्य का शरीर, यह देव का शरीर, यह जीव,

यह जीव, यह जीव, यह जीव। यह गाय निकलती है, यह गाय का जीव, यह घोड़े H$m Ord, H$/mm H$m Ord Eg m H$hZo '| A m/m h¡ Z? "**वहाँ व्यवहार से नर–नारकादि पर्यायही को जीव कहा,...**' पर्याय यानी शरीर। '**सो पर्यायही को जीव नहीं मान लेना।**' पर्याय को (जीव) न मानना, वह तो समझाने की बात की है। देखो! श्रोता को भी यह कहते हैं, दोनों को, हाँ! ऐसा नहीं कि वक्ता को व्यवहारनय अनुसरना और श्रोता को व्यवहारनय अनुसरना ऐसा नहीं।

'**पर्याय तो जीव–पुद्गल के संयोगरूप हैं।**' ये तो शरीर और आत्मा दोनों भिन्न चीज है। उसे ऐसा कहने में आये कि यह शरीरवाला आत्मा, वाणीवाला आत्मा, पर्याप्तिवाला आत्मा। पर्याप्तिवाला ऐसा कहते हैं न? हैं? '**वहाँ निश्चय से जीवद्रव्य भिन्न है,...**' देह में भगवान आत्मा बिलकुल जुदा, बिलकुल जुदा। उसको और इसे कोई सम्बन्ध है नहीं। निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध से उसकी पहिचान करायी परन्तु कोई सम्बन्ध नहीं है। कहाँ चैतन्य अपनी पर्याय में परिणमन करनेवाला, कहाँ परमाणु उसही क्षेत्र में अपनी पर्याय में परिणमन करनेवाला। एक समय में दो पर्याय भिन्न–भिन्न क्षेत्र में अपना काल से अपने में होती है। किसी के कारण से कोई कभी होता नहीं। शरीर चलता है तो आत्मा की पर्याय अपने से चलती है और शरीर की पर्याय उससे चलती है। दोनों का भिन्न–भिन्न कार्य समय–समय में हो रहा है। शरीर से भिन्न आत्मा बिलकुल है। '**भिन्न है, उसही को जीव मानना।**' एक बात।

'**जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा,...**' जीव का सम्बन्ध है न, शरीर को जीव का सम्बन्ध। शरीर, वाणी, मन को भी जीव कहा। '**सो कथन मात्र ही है,...**' कहने मात्र ही है। समझ में आया? एक बात। '**परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं––ऐसा ही श्रद्धान करना।**' परमार्थ से शरीर जीव होता नहीं ऐसा श्रद्धान करना। एक बात हुई। तीन बातमें से एक शरीर सापेक्ष से बात कही। अब गुणभेद से बात करते हैं।

'**तथा अभेद आत्मा में ज्ञान–दर्शनादि भेद किये,...**' यह ज्ञान, यह दर्शन आत्मा ऐसा भेद किया। '**सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना,...**' भेदरूप कहाँ है? लो, यह सुखड़ की लकड़ी है। उसमें सुगंध, मुलायमता, वज़न उसमें भिन्न–भिन्न है? वह तो साथ में ही है, अभेद है। मुलायमता, वज़न, समझे? सुगंध सब एकसाथ है, लेकिन समझाने को (कहते हैं), देखो भैया! सुगंध है सो सुखड़। अभेद में भेद करके बताया। ऐसे भगवान आत्मा (में) अनंत ज्ञान, दर्शन (आदि) गुण एकसाथ अविनाभाव आत्मा में रहे हैं। उसको भेदरूप करके ज्ञान, दर्शन, आनंद पर्याय बताया। उनको भेदरूप ही नहीं जान लेना। आत्मा में कोई गुण और पर्याय जुदा नहीं है। अभेद वस्तु अखंड

वस्तु है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह दूसरी बात है। उसमें क्या? द्रव्याश्रित गुण है, गुण द्रव्य के आश्रय से (रहते हैं) ऐसा कहा। कोई गुण जुदा और द्रव्य जुदा ऐसा है? अभेद ही है वस्तु। वह तो गुण का लक्षण बताया कि गुण कहाँ रहते हैं? द्रव्य के आश्रय से। गुण भिन्न है, द्रव्य भिन्न है, गुण भिन्न है, पर्याय भिन्न है ऐसा नहीं। गुण से देखो तो पूरा द्रव्य, पर्याय से देखो तो वही द्रव्य, द्रव्य से देखो तो वही द्रव्य है। समझ में आया? भेद तो समझाने के लिये हैं। ज्ञान, दर्शन, आनंद समझाने के लिये है। द्रव्य से जुदा नहीं है। द्रव्याश्रय गुण, वह भी भेद से कथन करके समझाया है। समझ में आया? आधार-आधेय भेद पाड़ना भी व्यवहार है।

'**निश्चय से आत्मा अभेद ही है;...**' निश्चय से अभेद, वह क्या? अभेद का अर्थ क्या? गुण और पर्याय से अभेद है। कोई गुण भिन्न-भिन्न है नहीं। गांधी की दुकान में होता है न? क्या कहते हैं? धनिया, जीरा मसाला रखते हैं कि नहीं, लकड़ी में खाना (--विभाग) करके? जुदा-जुदा विभाग करके (रखते हैं), ऐसे आत्मा में विभाग है? एक विभाग में ज्ञान और दूसरे विभाग में दर्शन और तीसरे विभाग में चारित्र। हैं? उसमें तो भिन्न है। अखंड है। असंख्य प्रदेशी अनंत गुणव्यापक, एक प्रदेश में अनंत गुण, ऐसे सर्व प्रदेश में अनंत गुण व्यापक अभेद वस्तु है। वह तो भेद करके नहीं समझता है तो समझाने को कहा है।

'**उसही को जीववस्तु मानना।**' अभेद को। '**संज्ञा-संख्यादि से भेद कहे...**' संख्या कही न? जीवद्रव्य एक, गुण अनंत, पर्याय अनंत ऐसा संख्या से (भेद कहा)। संज्ञा--नाम जुदा पड़ा। जीव का द्रव्य का नाम जीव, गुण का नाम गुण, पर्याय का नाम पर्याय। ऐसे '**भेद कहे सो कथन मात्र ही है;...**' भेद-बेद अन्दर है नहीं। संज्ञा, संख्या समझे? संज्ञा, संख्या किसे कहते हैं? संज्ञा नाम नाम। जैसे जीव नाम, ज्ञान नाम, पर्याय नाम, ऐसे नाम से भेद से कहा, वस्तु में तो भेद है नहीं। '**संख्यादि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से भिन्न-भिन्न है नहीं,--ऐसी ही श्रद्धान करना।**' भिन्न-भिन्न नहीं है ऐसा श्रद्धान करना।

'**तथा परद्रव्य का निमित्त मिटाने की अपेक्षा से व्रत-शील-संयमादिक को मोक्षमार्ग कहा,...**' जितना-जितना परद्रव्य छूटे उतना-उतना मोक्षमार्ग व्यवहार से कथन निमित्त से कहने में आया। '**सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना;...**' स्त्री, कुटुम्ब छूटा, ऐसा छूटा, धंधा छूटा, फलाना छूटा ऐसा कहते हैं न? इतनी तो निवृत्ति मिली। कहाँ है निवृत्ति? उसमें कहाँ निवृत्ति थी? वह तो निमित्त से समझाया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- निमित्त पर लक्ष्य जाता है। मिटाना माने मिटाना। भाषा व्यवहार से क्या आये? निमित्त को कहाँ मिटाना है? परन्तु इतना-इतना अव्रत में परद्रव्य पर बहुत लक्ष्य जाता है, व्रर में अल्प द्रव्य पर कम में जाता है, उतना परद्रव्य का लक्ष्य छूटा, इस अपेक्षा से शरीर की क्रिया भी ऐसी हुई। समझ में आया? विषयकषाय, पैसा रखना, हाथ से ऐसा लेना वह सब छूट गया। समझ में आया? छूरी से सब्जी काटता था, ऐसा करता था, फलाना करता था, बोलता था कि लाओ सब्जी, दो काम, वह सब अटक गया। वह निमित्त की मिटने की अपेक्षा से व्रतादि को... समझे न? मोक्षमार्ग नहीं मान लेना। कहा, लेकिन मान नहीं लेना।

'**क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये।**' देखो, महासिद्धांत। परद्रव्य एक रजकण को भी मैं ग्रहूँ और छोडुँ निमित्त की अपेक्षा से उसको लिया, आत्मा में है ही नहीं। परद्रव्य का ग्रहण करना और छोड़ना आत्मा में हो तो आत्मा पर को ग्रहण करे, छोड़े, ग्रहण करे और छोड़े, जड़ हो जाये, परद्रव्यमय हो जाये। पर का ग्रहण कर्ता और छोड़ना आत्मा में है ही नहीं। '**परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये।**' लो, पर की दया पाली, उसनें हिंसा छोड़ दी, धंधा छोड़ दिया, ऐसा छोड़ दिया, जौहरी का धंधा छोड़कर शेठी यहाँ बैठे, ऐसा सब व्यवहार कहने में आता है।

मुमुक्षु :-- लोच करते हैं।

उत्तर :-- लोच करते हैं, बोलता है, भाषा ऐसी है, फलाना है, लोच किया लोच, क्या लोच करे? कौन करे? वह तो जड़ की क्रिया है। वह क्या आत्मा से होती है? समझ में आया? ओहो..! बड़ा साधु हाँ! व्यवहार से समझाने में आता है। विहार किया इतना, ओहोहो..! पाँच उपवास, छः उपवास, पंद्रह उपवास किये फिर भी दस गाउ चलते हैं, सुबह दस गाउ, शाम को दस गाउ। वह तो सब चले कौन और रखे कौन? वह तो पर की क्रिया है। उसमें उग्रता पुरुषार्थ क्या है उसे समझाने के लिये बात करने में आयी। उस क्रियाकांड से धर्म है ऐसा मान लेना नहीं। समझ में आया?

'**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं;...**' देखो! एक परमाणु दूसरे परमाणु के आधीन नहीं, एक जीव दूसरे परमाणु के आधीन नहीं, एक जीव दूसरे जीव के आधीन नहीं, एक परमाणु दूसरे परमाणु के आधीन नहीं। स्वतंत्र है सब। इसे रखकर हर जगह अर्थ करना कि नहीं? वहाँ ऐसा आये, लो, यहाँ हुआ, नदी

के प्रवाह में बह गया, ऐसा हुआ, वैसा हुआ, फलाना हुआ.. लेकिन सुन तो सही, यह बात रखकर वहाँ (बात) है कि दूसरी बात है? समझ में आया? नदी के प्रवाह में चला गया, देखो जोर! ऐसे कर्म के जोर में चला गया, देखो कर्म का जोर।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- आया था न। लेकिन वह तो निमित्त-नैमित्तिक का कथन है। समझ में आया? वस्तुस्थिति नहीं। वह तो अपने पुरुषार्थ की कमी से वहाँ चला जाता है। और अपने पुरुषार्थ की कमी से रुकता है, नहीं कि पर के, कर्म के कारण से रुका है। सब बात झूठ है। समझ में आया? मतिज्ञान क्यों नहीं खिलता? कि हमारा ज्ञानावरणीय का जोर है, ऐसा कहे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, कहने में आता है। ऐसा है नहीं। अपनी पर्याय में हिनरूप परिणमता है ज्ञानावरणीय को निमित्तरूप से उदय कहने में आया है। दूसरी कोई बात है नहीं। ज्ञानावरणीय परद्रव्य अपने ज्ञानगुण की पर्याय को हरे, करे, लूटे, तीन काल में बने नहीं।

मुमुक्षु :-- कर्ता, हर्ता...

उत्तर :-- कर्ता, हर्ता.. देखो कहा न। वह कहता है, नहीं, ज्ञानावरणीय कर्म कुछ करता नहीं ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्यों है? नहीं, झूठ है, ऐसा नहीं है। ज्ञानावरणीय न हो तो हिनाधिक पर्याय अपने में होती नहीं। इसलिये कर्म के कारण से हिनाधिक पर्याय है। आया है कि नहीं? आहाहा..! अरे..! ये तो मार्ग की लूट चली है। समझ में आया? सोनगढ़वाले कहते हैं, नाम लिया था शरीर का, वे कहते हैं कि ज्ञानावरणीय कुछ करता नहीं, वह तो अपनी योग्यता से ज्ञान की हिनता और अधिकता होती है, क्या सत्य है? क्या ठीक है? क्या ठीक है, अंगधारी कहे तो भी ठीक नहीं है। आहाहा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि '**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं,...**' और कोई आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं। यह तो आत्मा से लिया तो परद्रव्य का कर्ता लिया। बाकी सामान्य सिद्धांत लिया। पहले आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता नहीं ऐसा लिया, बाद में सामान्य सिद्धांत लिया--कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं। अर्थात् कर्म के आधीन आत्मा नहीं, आत्मा के आधीन कर्म नहीं, शरीर के आधीन आत्मा नहीं, आत्मा के आधीन शरीर नहीं। सब अपनी-अपनी पर्याय के काल में स्वतंत्र है। कहो, समझ में आया?

'**इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक हैं...**' देखो! अपने में राग-द्वेष आदि

भाव है '**उन्हें छोड़कर...**' समझाना है न? '**वीतरागी होता है;...**' पर को क्या छोड़ना? ऐसा कहते हैं। स्त्री छोड़ी, कुटुम्ब छोड़ा, धंधा छोड़ा, व्यापार छोड़ा, ऐसा छोड़ा, आहार छोड़ा, पानी छोड़ा, दूध छोड़ा, रस छोड़ा। समझ में आया? क्या छोड़े? वह तो निमत्त का कथन से समझाया कि जितनी चीज छूटी उतना राग घट गया है, उतना बताने को बात कही। परन्तु पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है नहीं। समझ में आया? तो आत्मा करता है क्या?

'**इसलिये आत्मा अपने भाव रागादिक हैं उन्हें छोड़कर...**' वह भी व्यवहारनय से बात है। समझे? वह छूटती नहीं है और यह छूटती है इतनी अपेक्षा। इतना भेद बताने को। परवस्तु कहीं छूट नहीं जाती, और यह छूटता है, स्वभाव की एकाग्रता से छूटता है, उस अपेक्षा से छोड़ता है और वीतरागभाव करता है ऐसा कहने में आया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो कथनशैली तो कहे न। पर का ग्रहण-त्याग नहीं है इतना बताना है और राग का त्याग और राग का ग्रहण करता है अथवा स्वभाव का ग्रहण और राग का त्याग इतना करता है। पर का ग्रहण-त्याग करे ऐसा तीन काल तीन लोक में इन्द्र में भी ताकात है नहीं। इन्द्र की ताकात नहीं कि दुनिया का कोई रजकण बदल दे। समझ में आया?

'**रागादिक है उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है; इसलिये निश्चय से वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है।**' निश्चय से तो... लो, वापस आया, वीतरागभाव ही, ही मोक्षमार्ग है। राग, पुण्य विकल्प आता है वह मोक्षमार्ग नहीं। इतनी स्पष्ट बात पंडितजी भी शास्त्रमें से निकालकर बताते हैं, तो कहते हैं, नहीं, वह नहीं। वह निश्चय की बात करते हैं, व्यवहार दूसरा रह जाता है। अभी देवी, देव को मानना, इसको मानना, पद्मावती और क्या कहते हैं...? कालिका, कालिका है न? अरे..! कालका-फालका क्या? मुनि है क्या? ख्याल है। समझ में आया? अरे..! देवी तो तेरी सरस्वती ज्ञानदेवी अन्दर पड़ी है। सब शक्तियाँ आत्मा की देवी है। पर में देवी-फेवी है नहीं। जैन होकर ऐसे देव-देवी को मानना, बड़ी भ्रमणा, भ्रमणा, भ्रमणा। समझे? क्षेत्रपाल और क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :-- ...आहवानन होता है।

उत्तर :-- आह्वानन होता है, वह तो हम भक्ति करते हैं, तुम भी आओ, इतना है। हमारे साथ तुम भक्ति करो, ऐसा है। हम भगवान की भक्ति करते हैं तो हमारा सब समाज आकर भक्ति करो। वह बात है, उसमें क्या है?

मुमुक्षु :-- बुलाते हैं...

उत्तर :-- बुलाते हैं उसका अर्थ यह। भावना विशाल हो गयी है तो हम भक्ति करते हैं तो सब देवलोक भी भक्ति करो। उसमें देव की प्रतीति आयी और देव भी साथ में तो सब परमात्मा की भक्ति करें, वह बात बताते हैं। क्या देव का आदर करना है? समझ में आया? ऐसी बात है नहीं। देवी-देव, क्षेत्रपाल और पद्मावती.. कौन जाने ऐसी विपरीतता घुस गयी है न। पद्मावती सपने में आये, ऐसा कह जाये। अरे..! तेरा आत्मा है कि नहीं पद्मावती?

मुमुक्षु :-- ऐसे दिल्ही में बुलाते हैं तो..

उत्तर :-- जपे, जप.. औरतें भी ऐसी है। कौन निठल्ली है वहाँ? और हो तो भी देवी है अमुक जात की, उसमें आत्मा को क्या? उसमें आदर करने का क्या है? समझ में आया? ये तो देरासर में उसको धराना, घाघरा बराबर पहनाना, घाघरा पहिनाते हैं न? कपड़ा, बड़ा कपड़ा। एक गाँव में गये थे, भगवान तो कहीं छीप गये थे, चारों ओर देवियों का घाघरा दिखे। घाघरा कहते हैं न? क्या कहते हैं? बहुत वह दिखे। अरे..! आप जैन होकर, दिगंबर होकर ये क्या करते हो? भगवान तो एक ओर पड़े रहे। चारों ओर कपड़ा, कपड़ा, देवियाँ, देवियाँ कितनी जाति की देवियाँ। अरेरे..! उसे यह मोक्षमार्ग कहाँ समझ में आये? उसे शरीर से भिन्न आत्मा, कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं, देवी क्या करे? आत्मा का पुण्य बिना कोई आ सकता है? और पाप बिना कोई विघ्न कर सकता है? तीन काल में नहीं। अरे..! बाहर में विघ्न हो वह विघ्न कहाँ है? अंतर में विघ्न करने की किसी की ताकात नहीं है। बाहर में तो कोई पाप का उदय हो तो प्रतिकूल हो, आ जाओ तो उसमें आत्मा को क्या है? सातवीँ नर्क में इतनी प्रतिकूलता है तो भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। सातवीँ नर्क में सम्यग्दर्शन नया अनंत काल में नहीं पाया ऐसा पाते हैं। प्रतिकूलता क्या करे? और अनुकूलता भगवान के समवसरण में मिथ्यादृष्टि होकर बाहर निकल जाती है। वह अनुकूलता और सातवीं नर्क की प्रतिकूलता। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं। समझ में आया?

'**वीतरागभावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना है,...**' कदाचित्। पूर्ण वीतराग केवली हो गये उनको तो कदाचित् कार्य-कारणपना उसमें नहीं है। नीचे की दशा में व्रत का विकल्प है और निमित्त शरीरादिक क्रिया (हो), उसमें कार्य-कारणपना निमित्त से है। कदाचित् कहा है, हाँ! पूर्ण को होता नहीं। समझ में आया? व्रतादिक को कदाचित् किसे? वीतरागभावों के और व्रतादिक के, कहाँ तक? साधक है तब तक। परन्तु वीतरागभाव पूर्ण हो गया तो व्रतादिक का निमित्त भी है नहीं।

व्रतादिक के और वीतराग भावों के कदाचित्, जब तक साधक है तो वहाँ ऐसा विकल्प उठता है, देह की क्रिया भी हो जाती है।

'**इसलिये व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है,...**' कहने मात्र है, व्रतादिक या शीलादिक क्रिया कथनमात्र है। जैसे शरीर को आत्मा को कथन मात्र कहा, वैसे यह व्यवहार को मोक्षमार्ग कहना कथन मात्र है। सर्वत्र यह अर्थ करना। तीनों जगह तीनों कथन मात्र (कहा)। एक शरीर को आत्मा कहा वह कथन मात्र, एक ज्ञान, दर्शन से भेद करना वह कथन मात्र, वैसे वीतरागभाव में यह विकल्प आदि जो निमित्त है उसको कहा वह कथन मात्र है, वस्तु स्वरूप ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- कहा, दो बार कहा न। आप का ख्याल न रहा। वीतरागभाव सर्वज्ञ को हो उनको तो निमित्त-नैमित्तिक कारण-कार्य है नहीं। परन्तु कदाचित् कहा (है)। (अर्थात्) नीचे की दशा में निश्चय भी वीतराग भाव का श्रद्धा-ज्ञान है और कहीं व्रतादिक का विकल्प और शरीर की क्रिया भी नीचे है। ऊपर नहीं, वीतराग हो वहाँ व्रतादि होते हैं ऐसा नहीं। समझे? इसलिये 'कदाचित्' शब्द पड़ा है न।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, नीचे चौथे, पाँचवे, छठवें आदि में हो, तो उसको राग है उतनी क्रिया निमित्त में (होती है) और वीतराग भाव, जितनी दृष्टि आदि हो वह वीतराग भाव है, उसको तो कारण-कार्य व्यवहार से कहने में आता है कि यह व्यवहार कारण और यह कार्य। ऊपर अकेला वीतरागभाव हो वहाँ तो व्रत है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो सवाल ही कहाँ है पहले का।

'**इसलिये व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है, परमार्थ से बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग नहीं है...**' बाह्यक्रिया मोक्षमार्ग तीन काल में नहीं है, लो। '**ऐसा ही श्रद्धान करना।**' ऐसा ही श्रद्धान करना। तीनों में ऐसा लिया है--ऐसा ही श्रद्धान करना। शरीर सापेक्ष बात कही परन्तु शरीर से भिन्न है ऐसा श्रद्धान करना, ज्ञान-दर्शन भेद से समझाया परन्तु भेद नहीं है ऐसा श्रद्धान करना, व्रतादि की क्रिया मोक्षमार्ग नहीं ऐसा श्रद्धान करना। कितनी बात कही है। '**इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना ऐसा जान लेना।**' '**इसीप्रकार अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना ऐसा जान लेना।**' कोई ठिकाने व्यवहार अंगीकार करना नहीं। 'न' शब्द चाहिये। पुरानी (आवृत्ति में) नहीं है। मूल पाठ में है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसमें भी आता है। '**अन्यत्र भी व्यवहारनय का अंगीकार नहीं करना ऐसा जान लेना।**' अर्थात् व्यवहारनय आदरणीय है नहीं, ऐसा जान लेना। वह तो पहले ऐसा अर्थ करते थे, यहाँ नहीं था इसलिये। फिर 'न' (शब्द) निकला उसके बाद... मूल प्रत में निकला, मूल में है, टोडरमल की मूल प्रत है न, हस्ताक्षर की प्रत में 'न' पड़ा है। उसका फोटो ले लिया है, पूरे मोक्षमार्गप्रकाशक का मुंबई में फोटो ले लिया है, अपनी ओर से। तीन प्रत ली है। एक प्रत यहाँ रखी है, एक मुंबई, एक यहाँ रखी है, एक जयपुर दे दी, रक्षा के लिये। तीन बनाया। अक्षरशः फोटो ले लिया है, मुंबई में। अक्षर सुरक्षित रहे। उसका पाठ है न? वह सुरक्षित रहे। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत संक्षेप में सब का खुलासा सादी भाषा में (किया है)। ऐसा तो श्वेतांबर में एक शास्त्र भी ऐसा नहीं है कि जिसमें से ऐसी बात निकले।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- साधु ने बनाया उसमें एक भी ऐसा शास्त्र नहीं है। दृष्टि फेर...

'**यहाँ प्रश्न है कि व्यवहारनय पर को उपदेश में ही कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है?**' दूसरा प्रश्न। जब व्यवहारनय पर को उपदेश देने में ही कार्यकारी है न? उपदेश देना इतना ही न? अपना भी प्रयोजन साधता है कि नहीं? व्यवहार से अपना प्रयोजन साधना उससे कुछ होता है कि नहीं?

'**समाधान :-- आप भी जब तक निश्चय से प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने...**' न पहिचाने, हाँ! वहाँ वज़न है। '**तब तक व्यवहारमार्ग से वस्तु का निश्चय करे,...**' निश्चय पाले ऐसी बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो जब तक वस्तु स्वरूप जो निश्चय है, शरीर से भिन्न, अभेद गुण अभेद शक्ति, वीतरागमार्ग इत्यादि ऐसा न पहिचाने तब तक व्यवहारमार्ग से विकल्प द्वारा उसक--वस्तु का निश्चय करना। निर्विकल्प वस्तु एकदम समझ में न आये तो उसे विकल्प द्वारा निर्णय करना।

मुमुक्षु :-- आदरना नहीं।

उत्तर :-- आदरणीय नहीं है। वह तो कहते हैं, यहाँ अभी कहेंगे।

'**इसलिये निचली दशा में अपने को भी व्यवहारनय कार्यकारी है;...**' किसमें कार्यकारी? नक्की करने में, पहिचानने में ऐसा कहते हैं। '**प्ररूपित वस्तु को न पहिचाने तब तक व्यवहारमार्ग से वस्तु का निश्चय करे,...**' वस्तु को पहिचाने ऐसी '**निचली दशा में अपने को भी...**' अपना विकल्प से निश्चय करे, ऐसी अपेक्षा से व्यवहार से कार्यकारी कहने में आया है। '**परन्तु व्यवहार को उपचारमात्र मानकर...**'

देखो! विकल्प से निर्णय किया वह तो उपचारमात्र है, शास्त्र से निर्णय किया और पर से निर्णय किया वह सब तो उपचार से है। समझ में आया? '**व्यवहार को उपचारमात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार...**' उसके द्वारा निश्चय जैसी चीज है ऐसा निश्चय करे तो व्यवहार से कार्यकारी कहने में आता है।

'**परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर...**' वह भी निश्चयवत् व्यवहार सच्चा, व्यवहार सच्चा, राग भी सच्चा, राग से भी काम होता है, समझे? निर्णय करने में राग भी काम करे, इस प्रकार राग पर सर्वस्व लगा दे, विकल्प पर... '**निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर 'वस्तु इस प्रकार ही है'...**' ऐसी ही है, व्यवहार से भी निश्चय का भान होता है ऐसा मान ले '**ऐसा श्रद्धान करे तो उलटा अकार्यकारी हो जाये।**' वहीं रुक जाये। राग, राग, राग, राग, निमित्त, राग निमित्त, बस गुरु के समागम से मिलेगा, शास्त्र के वाँचन से मिलेगा, भगवान के समवसरणमें से मिलेगा, यहाँ से महाविदेह में जायेंगे तो मिलेगा। समझ में आया? वहीं रुक जायेगा। आगे बढ़ेगा नहीं। '**उलटा अकार्यकारी हो जाये।**'

'**यही पुरुषार्थसिद्धियुपाय में कहा है:––**' देखो! बोलो!

**अबुधस्य बोधनार्थ मुनिश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।**
**व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।**
**माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।**
**व्यवहार एव ही तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य।।७।।**

देखो! कहाँ से कहाँ गाथाएँ लेकर मिलान किया है। पुरुषार्थसिद्धियुपाय, अमृतचंद्राचार्य महाराज, जो समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय के टीकाकार उन्होंने पुरुषार्थसिद्धियुपाय बनाया है, तत्त्वार्थसार बनाया। पुरुषार्थसिद्धियुपाय में.. वह चरणानुयोग का ग्रंथ है पुरुषार्थसिद्धियुपाय तो, उसमें ऐसा कहा,

'**अर्थ :–– मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं।**' यह दूसरी शैली (है)। ११ और १२वीं गाथा में बात चली है वह दूसरी बात है। यह तो पर को समझाने के लिये व्यवहार से समझाते हैं, अज्ञानी को व्यवहार से समझाते हैं। समझ में आया? और समयसार में १२वीं गाथा में जो चला, वह तो सम्यग्दर्शन–ज्ञान हुआ बाद में जो रागादि रहे उसको जानने लायक है ऐसा वहाँ कहा है। वहाँ सम्यग्दृष्टि लेना, ११–१२ में। व्यवहार का जाननेवाला कहा वह। यह तो अज्ञानी को समझाने को मुनि व्यवहार से कथन करते हैं। समझ में आया? वहाँ कोई ऐसा लगाता है, १२वीं गाथा में, देखो! अज्ञानी को समझाने का वह व्यवहार है। ऐसा अर्थ किया है। वह एक है न? क्षीरसागर, क्षीरसागर है न?

उन्होंने ऐसा अर्थ किया है समयसार में १२वीं गाथा का। अज्ञानी को समझाने को व्यवहार (कहा है)। वहाँ अज्ञानी को समझाने की बात कहाँ है। वहाँ तो सम्यग्दर्शन निश्चय से अपना स्वरूप राग से पृथक् का भान हुआ, अभी अल्प पर्याय, रागादि है, उसको बराबर जानना। जाना हुआ, उस काल में, उस-उस प्रकार की जो पर्याय प्रगट हो, ऐसा जानने का कार्य वहाँ रह जाता है, बस इतना।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वहा ऊपर से निकाला है। वह बात हुई है, ... मूल गाथा में तो सम्यग्दर्शन सहित की बात है, परन्तु पहले से ऐसा जिसके पास से ऐसा जिनउपदेश मिले, जिनउपदेश मिले न? जिसके पास से वीतरागता का उपदेश मिले, उसके पास सुनना। वह तो आया न? यथार्थ उपदेश वीतरागमार्ग का। यथार्थ उपदेश। उतनी तो परीक्षा उसको होनी चाहिये कि नहीं? समझ में आया?

कहते हैं, '**मुनिराज अज्ञानी को समझाने के लिये असत्यार्थ...**' अभूतार्थ '**जो व्यवहारनय उसका उपदेश देते हैं। जो केवल व्यवहारही को जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' व्यवहार से उपदेश दिया और व्यवहार को ही पकड़ ले, वह उपदेश देने के लायक नहीं है, उपदेश समझने के लायक नहीं है। कहो, ठीक! क्यों कहा आपने व्यवहार से? लेकिन सुन न, तुझे समझाने के लिये कहा था। समझ में आया? '**केवल व्यवहारही को जानता है,...**' हाँ, देखो आया कि नहीं व्यवहार? है कि नहीं व्यवहार? क्या व्यवहार बिना निश्चय होता है? आप कहते हो न कि व्यवहार से समझाना पड़ता है। तो व्यवहार ने इतना तो लाभ किया न कि समझाने कार्य हुआ। ना, व्यवहार से समझाया और व्यवहार का अनुसरण छोड़कर निश्चय समझा तब व्यवहार से समझाया ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? '**केवल व्यवहारही को जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**' कुछ लोग कहते हैं, ओहो..! आचार्य की इतनी संकुचित दृष्टि? वह तो लायकात कहते हैं। भैया! अरे..! तुम व्यवहार से...

हम तो दृष्टान्त देते हैं, वचनगुप्ति का क्या फल है? ऐसा मुनिराज बोलते हो। वचनगुप्ति से ऐसा लाभ है, मौन रहे तो ऐसा लाभ है, इसमें एकाग्रता होती है, फलाना होता है इत्यादि। तब वह सुननेवाला कहता है, महाराज! आप क्यों वचनगुप्ति नहीं करते हो? आप क्यों बोलते हो? तू नालायक है। समझ में आया? आप तो वचनगुप्ति का लाभ बताते हो और वचनगुप्ति तो करते नहीं। सुन न। तो आचार्यों को ऐसा कहेगा। विकल्प को छोड़ो। तो आप शास्त्र लिखने का विकल्प क्यों करते हो? अरे.. सुन न।

मुमुक्षु :-- उस वक्त उसका निषेध वर्तता है।

उत्तर :-- निषेध वर्तता है। वह तो आता है... आप क्यों... दूसरे कुछ राग करे तो आप को खेद होता है और आप को यह विकल्प आता है उसका कोई खेद नहीं? अरे.. सुन न, सुन तो सही। वह राग आता है उसके काल में, जाननेवाला जानता है, आदर है नहीं। वचनगुप्ति का लाभ बताया। वह नालायक है, कहते हैं।

वैसे व्यवहार को पकड़े और व्यवहार से उपदेश करने में आया वहाँ व्यवहार को पकड़ ले, '**व्यवहारमेव केवलमवैति**' आया न वह? व्यवहार को ही सब जान ले तो उसको व्यवहार ही निश्चय हो गया, वह तो उपदेश के लायक है नहीं। समझ में आया? '**जो केवल व्यवहारही को जानता है, उसे उपदेश ही देना योग्य नहीं है।**'

'**तथा जैसे कोई सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है...**' बिल्ली चली जाती थी, (तो कहा), देखो भैया, ऐसा सिंह होता है। तो उसको बिल्ली ही सिंह हो जाये (तो वह) समझने लायक नहीं है। वह तो बिल्ली से सिंह पर द-दृष्टि लेनी है कि सिंह ऐसा है, ऐसा है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह हो गयी। वह तो उसे यथार्थ क्या है खबर नहीं और व्यवहार से उपदेश कहने में (तो उसे) पकड़ लिया। व्यवहार आदरणीय है नहीं, समझाने को आता है, लेकिन आदरणीय है नहीं।

'**सच्चे सिंह को न जाने उसे बिलाव ही सिंह है; उसी प्रकार जो निश्चय को नहीं जाने उसके व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।**' व्यवहार को जाने, निश्चय को जाने नहीं। निश्चय को तो न जाने (कि) क्या चीज पर से भिन्न है क्या? और '**व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है।**' लो, उसको तो व्यवहार ही निश्चयपना हो गया। कितना स्पष्ट किया है।

'**यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे...**' आया, आप जब इतना कहते हो तो हम व्रत-ब्रत छोड़ देंगे। सुन न। '**यहाँ कोई निर्विचारी पुरुष ऐसा कहे...**' अज्ञानी मूढ (कहता है), '**तुम व्यवहार को असत्यार्थ-हेय कहते हो;...**' दो बोल लिये। व्यवहार को असत्यार्थ--झूठा और हेय कहते हो '**तो हम व्रत, शील, संयमादि व्यवहारकार्य किसलिये करें?**' आप कहते हो, हेय और असत्यार्थ है। तो अब हम व्रत, शील, संयम का राग क्यों करें? वाह! तो स्थिर हो जाना, कौन ना कहता है? स्थिर हो जा तो बहुत अच्छी बात है, परन्तु निचली भूमिका में स्थिरता होती नहीं। '**किसलिये करें?--सबको छोड़ देंगे।**' हम तो सब छोड़ने बैठेंगे। क्या छोड़े?

**'उससे कहते हैं कि कुछ व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है;...'** व्रत, शील, संयमादि कोई व्यवहार नहीं है। **'इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है,...'** वह पहले आया था प्रवृत्ति। प्रवृत्ति कोई व्यवहार नहीं है, उसको मानना कि यह व्यवहार मोक्षमार्ग है, व्यवहार है। नहीं है उसको मानना उसका ना व्यवहार है। कोई प्रवृत्ति **'व्रत, शील, संयमादिक का नाम व्यवहार नहीं है;...'** वह तो अपनी परिणति है। निश्चय से अपनी परिणति है। **'इनको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, उसे छोड़ दे;...'** मान्यता छोड़ दे व्यवहार की, ये व्रत, नियम, शील, पूजा, भक्ति मोक्षमार्ग है ऐसी मान्यता छोड़ दे। क्या छोड़ेगा तू? वस्तु को छोड़ देगा? छोड़कर कहाँ जायेगा? समझ में आया?

**'और ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...'** व्यवहार छोड़ने योग्य है, निश्चय आदरणीय है ऐसा हुआ, **'ऐसा श्रद्धान कर कि इनको तो बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...'** देखो! कैसी? इस श्रद्धान से। क्या श्रद्धान से? व्यवहार छोड़ने लायक है, व्यवहार हेय है, व्यवहार असत्यार्थ है, ऐसे श्रद्धान से, ऐसा श्रद्धान करके **'इनको तो बाह्य...'** ऐसा श्रद्धान हो तो व्रत, शिल, संयमादिक को **'बाह्य सहकारी जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है,...'** वह तो उपचार से कहा है। है नहीं, **'यह तो परद्रव्याश्रित है;...'** वह तो परद्रव्याश्रित रागादि है वह कहीं मोक्षमार्ग है नहीं। इसलिये उसको मोक्षमार्ग मानना छोड़ दे। व्रत छोड़कर कहाँ जायेगा? शुभ परिणाम को छोड़कर कहाँ जायेगा? ... तो बराबर है। नहीं तो पाप में नीचे गिर जायेगा। वह बात विशेष करेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## बुधवार, दि. २२-८-१९६२,
## सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १४

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। यहाँ तक आया,... **'यह तो परद्रव्याश्रित है;...'** क्या? शिष्य ने प्रश्न किया कि तुम व्रत, शील, संयम को तो असत्यार्थ, झूठा और हेय कहते हो, तो हम छोड़ देंगे व्रत, संयम। झूठा कहो तो हम किसलिये करें?

व्रत, शील, अदंतधोवन आदि मुनि की क्रिया है न? बाह्य, लोंच करना, खड़े-खड़े आहार करना, एक बार आहार करना, लो, इत्यादि क्रिया तो... और अन्दर राग, उसको तो तुम असत्यार्थ कहते हो, झूठ कहते हो, हेय कहते हो। हम नहीं कार्य करेंगे। ऐसा प्रश्न हुआ। भैया! वह कार्य न करे क्या? उसको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है। समझ में आया? व्रत, नियम का परिणाम व्यवहार नहीं, उसको मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है। छोड़ दे, श्रद्धा छोड़ दे कि यह मोक्षमार्ग नहीं है। क्यों? कि वह '**यह तो परद्रव्याश्रित है।**' वह तो, श्रद्धा सम्यग्दर्शन आदि हो और व्रत, शील आदि हो (तो) बाह्य सहकारी कारण देखकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। वह मोक्षमार्ग है नहीं, क्योंकि वह तो परद्रव्याश्रित है। देह की क्रिया और राग सब परद्रव्याश्रित है।

'**तथा सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है,...**' उसमें बहुरी, बहुरी किया है? नयी प्रत में? नयी प्रत में बहुरी किया है? कि और (लिखा है)? क्यों बोलते नहीं हो, क्या है? और। छपी है उसमें तो बहुरी है, ये तो अपनी नयी में। और? ठीक। बहुरी अर्थात् '**सच्चा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है,...**' शुद्ध आत्मा राग रहित, पुण्य रहित, विकल्प रहित अपनी चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता वही एक सच्चा मोक्षमार्ग है। उसको तो निमित्त देखकर व्यवहार कहा था। '**वह स्वद्रव्याश्रित है।**' मोक्षमार्ग जो अपना है वह तो स्वद्रव्याश्रित है। आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है। वही स्वद्रव्याश्रित मार्ग को मोक्षमार्ग कहते हैं। परद्रव्याश्रित मार्ग को मोक्षमार्ग कहते नहीं, व्यवहार से कहते हैं। '**इसप्रकार व्यवहार को असत्यार्थ-हेय जानना।**' इसप्रकार व्यवहार को। ऐसा भी न मानना, कर्म ही का मानना, वह भ्रम है। शेठी!

... राग-द्वेष हमारे नहीं, हमारे नहीं, हमारे नहीं, हमें क्या है? बात नहीं करना, राग-द्वेष की बात नहीं करना। शुभ-अशुभ बात ही नहीं करना। हमारे में है ही नहीं। भ्रमणा है तुझे, मिथ्यात्व है। '**संसारी के भी रागादिक न मानना, उन्हें कर्मही का मानना...**' देखो! कर्मही का पहले निमित्त से कहा, लेकिन निमित्त का है ऐसा मानना भ्रमणा है। कर्म ही का मानना पहले कहा, व्यवहार से। लेकिन ऐसा मानना कि उसका है (वह) मिथ्यात्व है। वह तो तेरे से है, वह तो निमित्त से कथन चला है। समझ में आया? कर्म की बड़ी झंझट गड़बड़ी चलती है, जहाँ-तहाँ लगा दे। ऐसा कर्म में लिखा है, देखो! घनघाति कर्म है, देखो! आत्मा की पर्याय को घनघातं-नाश करता है। जैसे भारी हथौड़ा पड़े न हथौड़ा (वैसे)। देखो, नाम पड़ा है, अनादि नाम है कि नया है? घनघाति कर्म, चार घनघाति कर्म, चार अघनघाति कर्म। सुन तो सही प्रभु! वह तो निमित्त का कथन है। कर्म किसका घात करे? एक द्रव्य की पर्याय दूसरे में कोई घात कर सकती है? समझ में आया? ऐसा कभी बनता नहीं।

मानता है, मानो। इससे कहीं वस्तु पलट जाती है?

'**कर्मही का मानना वह भी भ्रम है।**' जब तक हमारे कर्म का उदय है तब तक हमारे में विकार रहेगा, कर्म छूट जायेगा तो विकार नहीं रहेगा। ऐसा मानना भ्रमणा है। तेरे में कमज़ोरी है तो विकार तेरे से होता है, कमज़ोरी छूट जायेगी तो विकार नहीं रहेगा, तेरे कारण से, पर के कारण से है नहीं। देखो, यहाँ भी कुछ लोग कहते हैं कि, वह लोग तो कहते हैं, ऐसा है। विकार-फिकार आत्मा का नहीं। कौन कहता है? सुन तो सही। कहते हैं कि नहीं? कहते हैं। वह तो सिद्ध समान की बात करते हैं, सिद्ध समान की बात करते हैं। विकार आत्मा का नहीं। विकार नहीं माने तो विकार टालने का प्रयत्न क्यों करें? ऐसा कहकर आक्षेप करते हैं। अरे.. सुन तो सही। पर्याय में विकार अपने से यह पुकार तो पहले से करते हैं। समझ में आया? अपने से विकार अपने में है, कर्म से नहीं, कर्म तो निमित्त मात्र है। अपना विपरीत पुरुषार्थ से, उलटा पुरुषार्थ से विकार होता है, सुलटा पुरुषार्थ से विकार का नाश होता है। पर के कारण कुछ है नहीं। निमित्त है तो ज्ञान करने की चीज है। समझ में आया?

'**इस प्रकार नयों द्वारा एक ही वस्तु को...**' एक ही वस्तु को, '**एक भाव अपेक्षा, 'ऐसा भी मानना और ऐसा भी मानना**'...' राग सहित भी मानना, राग रहित भी मानना। केवलज्ञान सहित भी मानना, मतिज्ञान सहित भी मानना ऐसा न हो। समझे? '**एक भाव अपेक्षा...**' भाव नाम पर्याय, हाँ! शक्ति--गुण की यहाँ बात नहीं है। एक पर्याय की अपेक्षा '**ऐसा भी मानना और ऐसा भी मानना**', **वह तो मिथ्याबुद्धि है।**' धीरे से बात की मिथ्याबुद्धि है। मिथ्यादृष्टि है ऐसा कहते हैं मूल में तो। '**परन्तु भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा नयों की प्ररूपणा है...**' समझे? भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा। पर्याय की अपेक्षा हो, द्रव्य की अपेक्षा से केवलज्ञान। द्रव्य अपेक्षा से केवलज्ञान, पर्याय अपेक्षा से मतिज्ञान, द्रव्य अपेक्षा से सिद्ध समान, पर्याय अपेक्षा से संसारी।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, जुदा भाव। त्रिकाली भाव और वर्तमान। दोनों को साथ मिलाओ तो बात होती है। एक पर्याय में दो कहाँ-से आया? समझ में आया?

'**भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा नयों की प्ररूपणा है--ऐसा मानकर यथासम्भव वस्तु को मानना...**' केवलज्ञान, वह शक्ति है आत्मा की, वह निश्चयनय की बात है। और प्रगट में तो मतिज्ञान है। वह भाव एक ही है, दो नय भिन्न पड़ गयी। समझ में आया? बिलकुल परम शुद्धनिश्चय से केवलज्ञान शक्ति है। और निश्चयनय से

अपनी पर्याय में मतिज्ञान है। उसको एक न्याय से पर्याय को व्यवहारनय भी कहने में आता है। यहाँ तो उसको निश्चय कहा है। पर का सम्बन्ध रहित अपनी पर्याय होती है उस अपेक्षा से। समझ में आया? **'भिन्न-भिन्न भावों की अपेक्षा नयों की प्ररूपणा है--ऐसा मानकर यथासम्भव...'** यथासम्भव, पर्याय में हो ऐसा, शक्ति में हो ऐसा, **'वस्तु को मानना सो सच्चा श्रद्धान है।'**

**'इसलिये मिथ्यादृष्टि अनेकान्तरूप वस्तु को मानता है परन्तु यथार्थ भाव को पहिचानकर नहीं मान सकता...'** यथार्थ भाव का ख्याल आकर मान सकता नहीं। अनेकान्त लगा दे, हम तो दोनों मानते हैं, व्यवहार भी मानते हैं, निश्चय भी मानते हैं, उपादान मानते हैं।

मुमुक्षु :-- यह गड़बड़ चल रही है।

उत्तर :-- हाँ, वह चली। हम तो उपादान भी मानते हैं, निमित्त भी मानते हैं। निमित्त की नियामकता क्या? निमित्त हो तो कार्य होता है, नहीं तो नहीं होता है, ऐसा हम तो दोनों मानते हैं। ऐसे निश्चय और व्यवहार दोनों है। व्यवहार है तो निश्चय का कार्य है, ऐसा हम तो दोनों मानते हैं। ऐसे अनेकान्त कहने में आता नहीं। वह अनेकान्त ही नहीं है, मिथ्या एकान्त है।

**'तथा इस जीव को व्रत, शील, संयमादिक का अंगीकार पाया जाता है,...'** देखो अब थोड़ा। व्रत, शील, संयम, इन्द्रियदमन **'इत्यादि अंगीकार पाया जाता है, सो व्यवहार से 'ये भी मोक्ष के कारण हैं'--ऐसा मानकर...'** व्यवहार से ये भी मोक्ष का कारण है ऐसा मानकर **'उन्हें उपादेय मानता है;...'** किसको? ये शील, संयम, व्रत को उपादेय मानता है। एक बात तो ऐसी करी है, अभी इसमें से थोड़ा नया लेना है, अब थोड़ा नया लेना है। इसलिये बात शुरू की है। वह सब बातें तो आ गयी है। ऐसा मानकर उन्हें मानता है, वह बात भी आ गयी है। परन्तु अब उसका अधिक स्पष्टीकरण करते हैं। वहाँ तक तो बात आ गयी है। **'सो जैसे पहले केवल व्यवहारावलम्बी जीव के अयथार्थपना कहा था वैसे ही इसके भी अयथार्थपना जानना।'**

**'तथा यह ऐसा भी मानता है...'** यहाँ से आया, यहाँ से नवीन बताना है। **'यथायोग्य व्रतादि क्रिया तो करने योग्य है;...'** यथायोग्य व्रत, नियम, संयम सब क्रिया तो करनी, क्रिया तो करने योग्य है, व्यवहार तो करने योग्य है। **'परन्तु इसमें ममत्व नहीं करना।'** लेकिन करने योग्य है (ऐसा मान लिया) फिर ममत्व नहीं करना कहाँ रहा? शरीरादिक की क्रिया ऐसी करना, आहार निर्दोष लेना, ऐसा लेना, फलाना करना, ऐसी जड़ की क्रिया **'व्रतादि क्रिया तो करने योग्य है; परन्तु इसमें ममत्व**

**नहीं करना। सो जिसका आप कर्ता हो, उसमें ममत्व कैसे नहीं किया जाय?**' यह आया। क्रिया तो करने योग्य है और ममता नहीं करना, दो कहाँ-से आया? कर्ता तो है और ममता नहीं करनी कहाँ-से आया? कर्ता तो मानता है कि हम सब शरीर की क्रिया, आहार की क्रिया, अदंतधोवनी क्रिया, केशलोंच की क्रिया ये सब हम करते हैं। एक आसन बैठना, ऐसा करना, फैसा करना, भूमिशयन करना, ऐसा करना, क्रिया तो बराबर वह करनी, ममता नहीं करनी। पुद्गल का कर्ता होकर ममता नहीं करनी, दो कहाँ-से आया?

'**जिसका आप कर्ता हो, उसमें ममत्व कैसे नहीं किया जाय?**' बराबर देखकर ऐसा करना, ऐसा बैठना, कपड़ा, मोरपींछी ऐसे करके बैठना, यह सब क्रिया करनी तो बराबर, ममता नहीं करना। '**आप कर्ता नहीं है तो 'मुझ को करने योग्य है' ऐसा भाव कैसे किया?**' यदि तुम जड़ की क्रिया का कर्ता न हो तो, ये मुझे करने योग्य है ऐसा कैसे माना? कैसे माना तूने? नहीं, बराबर करना चाहिये, भैया! मोरपींछी से पोंछना, ऐसे बैठना, ऐसे करना ये सब क्रिया बराबर करनी। दो ... लोंच करना। दो-दो बार कररते हैं न? जघन्य, जघन्य। समझ में आया? ऐसा करना, ये क्रिया तो जरूर करनी। क्या, वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया?

'**और यदि कर्ता है तो वह अपना कर्म हुआ,...**' कर्ता हुआ तो वह तेरा कार्य हुआ। जड़ का कार्य तेरा और कर्ता तू हुआ। '**तब कर्ता-कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही हुआ;...**' देखो! कर्ता-कर्म सम्बन्ध जड़ का। जड़ मेरा कार्य और मैं उसका कर्ता। वह तो मिथ्यादृष्टि है। पर का कर्ता-फर्ता कहाँ-से आया? समझ में आया? '**सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है।**' क्या? करनी तो योग्य है, ममता नहीं करना। अपना कार्य है, अपना कर्तव्य है, इतना काम करना (चाहिये)। मूलगुण आदि भावना, देह की क्रिया करना वह तो हमारा काम है। '**तब कर्ता-कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही हुआ; सो ऐसी मान्यता तो भ्रम है।**' वह तेरी भ्रमणा है, जड़ की क्रिया आत्मा से कभी होती नहीं।

'**तो कैसे है? बाह्य व्रतादिक है वे तो शरीरादिक परद्रव्य के आश्रित है,...**' बाह्य व्रत, इन्द्रियदमन, ..., समझे? लोंच आदि। ऐसा आये न कि ये छोड़ दिया, वस्त्र छोड़ दिया, नग्नपना अंगीकार किया, वस्त्र छोड़ दिया, लेप छोड़ दिया, स्नान छोड़ दिया, स्नान छोड़ दिया, अस्नान की क्रिया ली। वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया? '**बाह्य व्रतादिक है वे तो शरीरादिक परद्रव्य के आश्रित है, परद्रव्य का आप कर्ता है नहीं;...**' मैंने स्नान छोड़ दिया हाँ भैया, मैंने आहार छोड़ दिया, इतना दिन छोड़ दिया। क्या छोड़े? जड़ का छोड़ना और जड़ का

ग्रहण करना मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु :-- इसका मोह तो छोड़ा नहीं।

उत्तर :-- मोह नहीं छोड़ा है। मिथ्यात्वभाव किया है। जड़ का कर्ता और जड़ मेरा काम, मिथ्यात्व का मोह अंगीकार किया है। छोड़ा नहीं परन्तु अंगीकार किया है। विपरीत मान्यता का मोह अंगीकार किया है। शेठी! तुम्हारे दोस्त कहते हैं कि इतना तो किया न। आप करते नहीं, दुकान पर बैठते हो, खाओ, पीओ और हलवा खाओ। वह इतनी जड़ की क्रिया छोड़कर बैठे हैं कि नहीं? कपड़ा छोड़ा है, नग्नपना अंगीकार किया है, हजामत छोड़कर लोंच किया है, ऐक को छोड़ना और अनेक को ग्रहण करना। है कि नहीं? आहार छोड़कर उपवास ग्रहण किया है। सुन तो सही, वह तो जड़ की क्रिया है। उसका मैं कर्ता और वह मेरा कार्य, मिथ्यादृष्टिपना अंगीकार किया है। मोह अंगीकार किया है, मोह छोड़ा नहीं। समझ में आया?

'**इसलिये उसमें कर्तृत्वबुद्धि भी नहीं करना...**' शरीरादि क्रिया, लोंच मैं करता हूँ, हजामत छोड़ दी है, तेल लगाना छोड़ दिया है, ऐसा करता है, रूखा शरीर रखता है, वह सब तो जड़ की क्रिया है, तेरी क्रिया नहीं। समझ में आया? '**उसमें कर्तृत्वबुद्धि नहीं करना और वहाँ ममत्व भी नहीं करना। तथा व्रतादिक में ग्रहण-त्यागरूप अपना शुभोपयोग हो,...**' देखो! थोड़ा राग आवे उसको जानना कि वह राग मेरे में है। '**वह अपने आश्रित है,...**' लोंच किया, छोड़ा, फलाना किया उसमें जो शुभ राग आया वह अपने आश्रित है। '**उसका आप कर्ता है;...**' परिणमन है न उसका, उस अपेक्षा से कर्ता है। कर्म का वह कार्य नहीं। कर्ता अर्थात् मैं करूँ ऐसा नहीं, परन्तु परिणमन उसका है कि नहीं? कि जड़ का है? शुभउपयोग है वह जड़ का काम नहीं। जीव की परिणति का काम है।

'**उसका आप कर्ता है, इसलिये उसमें कर्तृत्वबुद्धि भी मानना...**' देखो! मेरी परिणति है ऐसा जानना, मानना। श्रद्धा में रखना (कि) मेरी परिणति विकार है, शुभभाव, वह कहीं जड़ की परिणति नहीं। कुछ लोग कहते हैं न कि, वे कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र का मानना मिथ्यात्व है। अरे.. भगवान! कौन कहता है? सुन तो सही। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना तो राग है। समझ में आया? और राग में धर्म मानना मिथ्यात्व है। परद्रव्य की दया पाले उसको मिथ्यात्व कहते हैं। आया था न तुम्हारे उदयपुर में? चौपतिया छपवाया था। भैया! पालना, पाल क्या सकते हैं? भाव आता है दया का, लेकिन वह शुभभाव है, मिथ्यात्व नहीं। परन्तु पर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, यह मिथ्यात्व है। और दयाभाव है वह आत्मा का संवर, निर्जरा का भाव है ऐसा मानना मिथ्यात्व है। समझ में आया? बहुत गड़बड़ भाई! पुरानी रूढ़ि

के लोगों को ऐसी पकड़ हो गयी पकड़ अन्दर से, छूटती नहीं। चोर कोतवाल को दंडता है। समझ में आया? तुम्हारे में ऐसी कहावत है? उलटा चोर कोतवाल को दंडे। अरे.. भगवान! यहाँ ऐसा कहते हैं कि पर की दया पालना मिथ्यात्व है? पर को बचाने का भाव है वह तो पुण्य है, परन्तु मैं पर की क्रिया--बचा सकता हूँ, वह मिथ्यात्व है। दया का भाव तो मुनि को नहीं होता है? पंच महाव्रत का, अहिंसा, सत्य का, वह क्या मिथ्यात्व है? राग है, शुभ है, पुण्य है। परन्तु उसमें मैं पर की अहिंसा कर सका, मुझे भाव है तो कर सका, वह मिथ्यात्वभाव है। और अहिंसा का शुभभाव मुझे संवर का कारण है ऐसा मानना मिथ्यात्व है। समझ में आया? देखो, आयेगा।

'**वहाँ ममत्व भी करना।**' देखो! ममत्व भी करना, हाँ! ममत्व का अर्थ मेरी परिणति में है, ऐसा। विकारी परिणाम मेरी परिणति में है न, कहीं जड़ की परिणति है? इतनी अपेक्षा, बस। दूसरा कुछ नहीं। फिर निश्चय की स्वभावदृष्टि में तो कोई मेरा है ही नहीं। परिणति मेरी है इतना। ममत्व नाम परिणति मेरी है, नहीं कि कर्म की परिणति है। इतना बताना है। फिर स्वभाव की दृष्टि में तो सब छोड़ दिया है। '**परन्तु इस शुभोपयोग को बन्ध का ही कारण जानना,...**' देखो! वह ग्रहण-त्याग में आया न शुभभाव? किया नहीं, जीव बचे-मरे वह नहीं। बचे-मरे, लोंच थाय, हजामत छोड़े वह नहीं। भाव जो आया शुभपरिणाम, उसको बन्ध का ही कारण मानना, '**मोक्ष का कारण नहीं जानना,...**' लो, अस्ति-नास्ति करी। अनेकान्त किया। यह अनेकान्त देखो! बन्ध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण नहीं जानना, इसका नाम अनेकान्त है। शुभोपयोग कथंचित् बन्ध का कारण, कथंचित् धर्म का कारण? समझ में आया? आ गया है। ऐसा है नहीं। कथंचित् बन्ध कहाँ से आया? सर्वथा बन्ध का कारण, सर्वथा बन्ध का कारण, हाँ! वह उसमें लिया है। कलश, कलश, कलश है न? आखिर की गाथा कल हमने पढ़ी न? कल की गाथा पढ़ी उसमें। अलम-अलम, अलम-अलम आया था न कल? अलम-अलम, पूर्ण हो, पूर्ण हो। उसमें लिखा है, देखो! द्रव्यक्रिया, सिद्धान्त को पढ़ना, लिखना किंचित् न अस्ति, अर्थात् शुद्ध जीवस्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग... नहीं है। स्वरूप अनुभव सर्वथा मोक्षमार्ग है, परन्तु पढ़ना, लिखना (नहीं)। देखो! अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा नहीं है। राजमल की टीका। सर्वथा, हाँ! कथंचित् की बात नहीं है। द्रव्यक्रिया, सिद्धान्त को पढ़ना, लिखना इत्यादि ये सब किंचित् न अस्ति, मेरा मोक्षमार्ग नहीं, शुद्ध जीवस्वरूप अनुभव सर्वथा मोक्षमार्ग है, अन्य समस्त मोक्षमार्ग सर्वथा नहीं है। लो, अस्ति-नास्ति की। शुभोपयोग सर्वथा बन्ध का कारण है और शुभोपयोग सर्वथा मोक्ष का कारण नहीं है। अनेकान्त ऐसा

ठराना है लोगों को, सब में अनेकान्त लगाओ। शुभ में थोड़ी संवर, निर्जरा है और थोड़ा राग है। लेकिन वह शुभोपयोग पूरा पूर्ण राग है। पूर्ण राग में किंचित् संवर, निर्जरा नहीं है। क्यों, विमलप्रसादजी! शुभोपयोग में थोड़ी संवर, निर्जरा है? नहीं है।

मुमुक्षु :-- ..

उत्तर :-- यह धर्मी के शुभराग की बात चलती है। अलम-अलम किसका आया? सम्यग्दृष्टि और मुनि का.. वह भी आया है उसमें, कि क्या सम्यग्दृष्टि, क्या मिथ्यादृष्टि, शुभक्रिया सब बन्ध का कारण है। वह पुण्य-पाप अधिकार लिया है। सम्यग्दृष्टि का कोई ऐसा माने कि उसके शुभभाव में कोई संवर है, बिलकुल झूठ है। उसका भी सर्वथा बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? ऐसा छपा है कि नहीं, शुभोपयोग में सर्वथा बन्ध है ऐसा नहीं। उसमें कुछ अबंध परिणाम है। धूल में भी नहीं है। समझ में आया?

'**बन्ध का ही कारण जानना, मोक्ष का कारण नहीं जानना, क्योंकि बन्ध और मोक्ष के तो प्रतिपक्षीपना है;...**' बन्ध और मोक्ष के तो विरोधपना है, वैरीपना है। '**इसलिये एक ही भाव पुण्यबन्ध का भी कारण हो और मोक्ष का भी कारण हो--ऐसा मानना भ्रम है।**' देखो! शुभराग मोक्ष का भी कारण, पुण्य का भी कारण। देखो! वर्तमान में बड़े-बड़े नामवाले लगाते हैं ऐसा कि चौथे, पाँचवे, छठवें में शुभभाव में संवर है। सम्यग्दृष्टि का अशुभ भाव निर्जरा का हेतु है? भोग निर्जरा का हेतु है? तो शुभभाव निर्जरा का हेतु नहीं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- निर्जरा में लिखा है। सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का हेतु। तो अशुभभाव निर्जरा का हेतु? अरे.. चल, चल। अशुभभाव निर्जरा का हेतु किसने कहा? वहाँ कहा ही नहीं है। वह तो दृष्टि की शुद्धता की धारा चली, उसकी प्रधानता का जोर देने से निर्जरा होती है, अशुभ आया वह भी खिर जाता है, ऐसा कहने में आता है। रस थोड़ा है, खिर जाता है। क्योंकि जोर है स्वभाव पर। लेकिन अशुभभाव जो आया भोग का कारण, वह निर्जरा है? बिलकुल नहीं। बन्ध का ही कारण मुनि को भी है। शुभभाव आया तो बन्ध का कारण है तो अशुभ बन्ध का ही कारण है।

मुमुक्षु :-- अनंतानुबंधी...

उत्तर :-- वह दूसरी बात है। अनंतानुबंधी की बात कहाँ है? वह कहाँ कहते हैं? नहीं। वह तो बन्ध है, उसमें थोड़ा मोक्ष है।

'**एक ही भाव पुण्यबन्ध का भी कारण हो और मोक्ष का भी कारण हो--ऐसा मानना भ्रम है। इसलिये व्रत-अव्रत दोनों विकल्परहित...**' देखो! व्रत

का विकल्प और अव्रत का विकल्प। अव्रत का अशुभ और व्रत का शुभ। '**जहाँ परद्रव्य के ग्रहण–त्याग का कुछ प्रयोजन नहीं है...**' जहाँ परद्रव्य का ग्रहण–त्याग का कुछ प्रयोजन नहीं है--'**ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग वही मोक्षमार्ग है।**' देखो! अकेला उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग। तीन तो विशेषण लगाया। उदासीन, वीतराग '**वही मोक्षमार्ग है।**' बीच में रागादि समकिती को आता है, मुनि को भी पंच महाव्रत आता है, बन्ध का ही कारण है, सर्वथा बन्ध का ही कारण है। किंचित् संवर का कारण (नहीं है)। चारित्रवंत को भी शुभराग तो (संवर का कारण) है नहीं। देखो!

'**तथा निचली दशा में कितने ही जीवों के शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना पाया जाता है;...**' निचली दशा में शुद्धोपयोग भी होता है और शुभ भी होता है। शुद्ध तो सातमें जाये तो होता है, नीचे हो तो शुभ होता है। युक्तपना कहा है लेकिन वह अपेक्षा से। समझ में आया? '**निचली दशा में कितने ही जीवों को शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तपना...**' यानी क्षण में शुभ आये ओर क्षण में शुद्ध में आते हैं। '**इसलिये उपचार से व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है;...**' इसलिये उपचार से, व्यवहार से शुद्धोपयोग की भूमिका आती है उसके पहले थोड़ा आया तो उपचार से उसको मोक्षमार्ग कहा। '**वस्तु का विचार करनेपर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है;...**' कितना स्पष्ट किया है। '**वस्तु का विचार करनेपर शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है;...**' व्यवहार मोक्ष का कारण कहा वह भी मोक्ष का घातक। देखो! व्यवहार मोक्ष का कारण कहा वह भी मोक्ष का घातक। पहले कहा न, मोक्ष का कारण कहा था न पहले? व्यवहार। व्यवहार मोक्ष का कारण वही निश्चय से मोक्ष का घातक है। '**ऐसा श्रद्धान करना।**' बहुत स्पष्ट किया है। (बन्ध का) कारण है वही मोक्ष का घातक है। देखो! समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बन्ध का कारण लिखा है? इसमें ऐसा लिखा है। ठीक!

मुमुक्षु :-- बन्ध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है।

उत्तर :-- बराबर है, वही बराबर है। पहले व्यवहार से कहा था न? इसमें वह है। अपने वह लिखा है? नये में क्या है? इसमें तो मोक्ष का कारण लिखा है। अर्थात् व्यवहार जो मोक्ष का कारण कहा था, वह बन्ध का ही कारण है और विचार करनेपर वह मोक्ष का घातक है। बन्ध है वह मोक्ष का साधक कहाँ से हो? ऐसा श्रद्धान करना। इसमें यह है, हाँ! मोक्ष का कारण है वही मोक्ष का घातक है, ऐसा शब्द है। लेकिन वास्तव में शब्द वह चाहिये, मेलवाला है। क्योंकि मोक्ष का कारण

यहाँ नहीं लेना है। इसलिये '**बन्ध का कारण वह ही मोक्ष का घातक है–ऐसा श्रद्धान करना।**'

'**इसप्रकार शुद्धोपयोग को ही उपादेय मानकर उसका उपाय करना,...**' लो, एक शुद्धोपयोग को ही उपादेय जानकर उसका उपाय करना। '**और शुभोपयोग–अशुभोपयोग को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना।**' दोनों। शुद्धोपयोग का आदर करना, अंगीकार करना और शुभ–अशुभ दोनों को हेय करना। चौथे, पाँचवे, छठवें। किसको यह हेय है? चौथे गुणस्थान से शुभोपयोग हेय? सात बोल आये न तुम्हारे? अरे..! चौथे से हेय। अरे..! पहले राग हेय माने बिना सम्यग्दर्शन तरफ दृष्टि होगी नहीं। राग का लक्ष्य छोड़े बिना, लक्ष्य छोड़ो कि हेय कहो, स्वभाव पर दृष्टि होगी नहीं। कहो, कितनी बात करते हैं, तो वह मान्य नहीं। टोडरमल नहीं, टोडरमल नहीं, आर्षवाक्य लाओ। यह आर्षवाक्य क्या कहता है? बन्ध का कारण है, पुण्य बन्ध का कारण है। मुनि का शुभभाव चारित्र में होता है, वह महाव्रत का ज़हर है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु :-- गोम्मटसार में यही है।

उत्तर :-- गोम्मटसार में भी यही है। तत्त्व तो एक ही बात है। मोहजोग संभवा, गुणस्थान है न? मोहजोग संभवा। व्याख्या है, मूल पाठ में है, गोम्मटसार में।

'**शुभोपयोग–अशुभपोयगो को हेय जानकर उनके त्याग का उपाय करना।**' अब थोड़ी दूसरी एक बात करेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**वीर सं.–२४८८, चैत्र सुद–८, गुरुवार, दि. १२–४–१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १५**

... पराश्रित व्यवहार सब छुड़ाया है ऐसा मैं मानता हूँ। समझ में आया? परद्रव्य के आश्रय से जितने विकल्प हो, भेद पड़े वह सब भगवान ने छुड़ाया है। ..भाई! बड़ी गड़बड़ी करते हैं। विपरीत श्रद्धा रखे, त्यागी नाम धारे वह भी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। ..भाई! आहाहा..! लोगों को बाह्य त्याग और बाह्य क्रियाकांड का

इतना पोषण और मीठास है कि उसमें सत्य की श्रद्धा कितनी लूटती है उसकी उसको खबर नहीं है।

कहते हैं, भगवान अमृतचंद्राचार्य मुनि, कुन्दकुन्दाचार्य के पुस्तकों के टीकाकार, महा भावलिंगी संत थे। धर्मधुरंधर, धर्म के स्तंभ दिगंबर मुनि थे, भावलिंगी संत थे। वे कहते हैं कि भगवान ने जब पर तरफ की हिंसा, झूठ, चोरी, असत्य का भाव छुड़ाया है तो मैं मानता हूँ कि आत्मा के सिवा जितना परद्रव्य के आश्रय से भाव हो उन सब व्यवहार को भगवान ने छुड़ाया है। कहो, बराबर है? क्या है? शुकनचंदजी! व्यवहार छुड़ाया है। छोड़ देना न?

मुमुक्षु :-- व्यवहार आता तो है।

उत्तर :-- वह ही कहते हैं, आता है, लेकिन दृष्टि में हेय उसको समझना। क्या कहते हैं देखो। आवे उसको ना कहे न, नहीं आवे उसको कौन ना कहे? जो मनुष्य नहीं आया उसको कहे कि यहाँ मत आना? भाव अन्दर व्यवहार आवे तो सही, दया, अहिंसा, सत्य, दत्त भाव होता तो है, परन्तु हेय है। श्रद्धा में आदरणीय नहीं है। श्रद्धा में आदरणीय माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया?

इसलिये पराश्रित व्यवहार है वह समस्त छुड़ाया है। भाषा यह है, समस्त छुड़ाया है। व्यवहार का कोई भी कण पराश्रित हो, उसको भगवान ने आदरणीय नहीं कहा है। यह गोटा है न, वह कहते हैं, व्यवहार धर्म का कारण है, व्यवहार से धर्म होता है, व्यवहार करते-करते होता है, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। अरे..! व्यवहार साधन तो व्यवहारनय से कहा है। व्यवहारनय से व्यवहार साधन कहा है, वह हेय है, आदरणीय नहीं है। ... निश्चय क्या उसकी भी व्याख्या बाद में करेंगे। समझ में आया?

एक निश्चय को ही भले प्रकार से निश्चयपने अंगीकार करके, निश्चय को... समझ में आया? है न? 'सम्यक् निश्चय एकमेव सद्दहिं निष्कम्प...' निश्चय को भले प्रकार से। भले प्रकार से, कहने का आशय क्या है? सिर्फ कथनशैली में उसकी बात न रहे। उसका खुलासा करेंगे, निश्चय यानी क्या? नीचे कहते हैं, देखो! ज्ञानघन कहेंगे, शुद्ध ज्ञानघन, शुद्ध ज्ञानघन। जिस ज्ञायकभाव को छठवीं गाथा में शुद्ध कहा है। फिर उसके साथ मिलाया, कल दूसरा अर्थ हो गया था न, स्वभाव से अभिन्न। फिर रात्रि को कहा, ऐसा है। हाँ, बात सच्ची है, बात तो हुई थी। लेकिन फिर ज्ञायक के साथ मिलान किया, छठवीं गाथा के साथ, शुद्ध तो ज्ञायकभाव को ही कहते हैं। छठवीं गाथा में प्रश्न पूछा है न? शुद्ध किसे कहना कि जिसका हम सेवन करे? शिष्य ने प्रश्न किया कि आप शुद्ध किसको कहते हो कि जिसका हमें सेवन करना?

'**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' ज्ञायक जो भाव '**एवं भणंति सुद्धं**' जाणकस्वभाव ज्ञायक त्रिकाल भाव उसको हम शुद्ध कहते हैं। उस शुद्ध का फिर यह अर्थ किया है। समझ में आया?

कहते हैं, एक निश्चय को ही भले प्रकार से निश्चयतया। दो शब्द निकाले, एकमेव में से? दो निश्चय कहाँ-से निकाला? '**सम्यङ्निश्चयमेकमेव**' एक को ही, ऐसा समझकर निश्चय निकाला है? निष्कम्प, ऐसा न? ठीक, निष्कम्प का अर्थ ... समझ में आया? निश्चल चाहिये। उसमें लिखा है? लो, इतना सुधारना पड़ेगा। मुझे लगा, दो निश्चय क्यों आये? उसमें ऐसा कहा न, '**सम्यङ्निश्चयमेकमेव**', एकम् को दूसरा निश्चय कहा? इसमें तो ऐसा है कि, '**निष्कम्पम् आक्रम्य**'। निश्चलपने ऐसा होना चाहिये, निश्चलपने चाहिये। लो, नये प्रकाशन में यह सुधारना, ए.. देवानुप्रिया! नवनीतभाई की ओर से यह सब छप रहा है न, उसमें डालना। क्या कहा समझ में आया?

बड़ी अच्छी गाथा आयी है यह, मक्खन है मक्खन! समझ में आया यह? अरे..! धर्मी जीव, कहते हैं कि अरे..! अभिलाषी, सत्यकामी! भगवान ने व्यवहार.. जितनी परवस्तु हैं, भले देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा का भाव श्रद्धामें से तो छुड़ाया है। समझ में आया? समझ में आता है? छुड़ाया तो अब कहाँ जाना? एक को छोड़कर जाना कहाँ? कोई शरण है? हाँ, एक निश्चय को सम्यक् प्रकार से '**निश्चलतया अंगीकार करके...**' इतना सुधरा अब की बार। देखो न। धीरे-धीरे.. शब्द का अर्थ बराबर न हो तो... निश्चलतया--अब, यह निश्चय क्या, उसका खुलासा करते हैं '**शुद्धज्ञानघनस्वरूप...**' यह निश्चय। समझे? जो ज्ञायकभाव छठवीं गाथा में कहा था, एक ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव चैतन्यस्वभाव एकरूप भाव, अभिन्न भाव, आत्मा के साथ ज्ञायकभाव का अभिन्न भाव, ऐसा एक आत्मा शुद्धज्ञानघन, उसका आश्रय करके निश्चलतया अंगीकार करके '**निज महिमा में (--आत्मस्वरूप में) स्थिरता क्यों धारण नहीं करते?**' इसमें और भी न्याय डाला है। व्यवहार की महिमा क्यों करते हैं? और निश्चय की महिमा क्यों नहीं करते हैं? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पोपटभाई!

ये तकरार करते हैं न? केशवलालभाई! सोनगढ़वाले, व्यवहार आदरणीय नहीं है, व्यवहार में धर्म नहीं है (ऐसा कहते हैं)। लेकिन ये क्या कहते हैं? सुवर्ण को ज़ंग नहीं लगता। सुवर्ण को ज़ंग लगे? ऐसे सोनगढ़ में भाव को ज़ंग नहीं लगता, ऐसा कहते हैं मूल में तो। सत्य बात को ज़ंग लग सकता नहीं। त्रिकाल ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञान शुद्ध, ऐसे निश्चय को, ऐसी वस्तु को अंगीकार करके निष्कम्पपने, निश्चलपने उसमें चलायमान न हो उस तरह अंगीकार करके, और निज महिमा में, वह स्वरूप पूर्णानंद अभेद अखंड है उसकी महिमा में स्थिति--टिकना क्यों नहीं करते?

दूसरी रीति से कहें तो व्यवहार छुड़ाया है उसकी महिमा क्यों नहीं छोड़ते? भाई! नवनीतभाई! देखो, यह मोक्षमार्गप्रकाशक। है कि नहीं? धरमचंदजी! क्या कहते हैं? तकरार, तकरार लोग करते हैं।

मुमुक्षु :-- जानते नहीं तो..

उत्तर :-- पहले दृष्टिमें से छोड़ना, श्रद्धामें से पहले छोड़ना। बाद में स्वरूप की स्थिरता होगी तो सब छूट जायेगा। पहले श्रद्धामें से हर समय छूटना, छूटना, छूटना अर्थात् उसका आश्रय करना नहीं और निश्चय का आश्रय करना। बाद में स्वरूप की स्थिरता होगी तो व्यवहार सहज छूट जायेगा, सहज छूट जायेगा। परन्तु पहले श्रद्धा में ही छूटने का अभिप्राय नहीं और लाभदायक है, लाभदायक है, करते-करते निश्चय होगा, व्यवहारसाधन करते-करते (होगा), व्यवहार तो करते हैं, तो निश्चय का कुछ लाभ होगा। शून्य का लाभ होगा, चार गति में रुलने का। समझ में आया?

कहते हैं, अरे..! सत्पुरुषो! पुनः बात क्या की है? सन्त शब्द पड़ा है न? सन्त। भाई! सन्त का अर्थ सम्यग्दृष्टि, सत्पुरुष, सन्तः। सन्तो! सन्त यानी समकिती, हे धर्मीजीव! व्यवहार का दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का जितना भाव हो वह सब धर्म नहीं है, इसप्रकार श्रद्धा में छोड़ने लायक है। वाँचन नहीं करते हैं और समझते नहीं है और (चिल्लाते हैं), वहाँ त्यागी को मानते नहीं, फलाने को मानते नहीं। अरे.. भगवान! काहे के त्यागी? धर्म के त्यागी को माने कि अधर्म के त्यागी को माने? शुभभाव को अंगीकार करना (ऐसा माननेवाला) तो धर्म का त्यागी है। नवनीतभाई! आहाहा..!

कहते हैं, देखो! यह श्लोक है, यह वस्तु। बहिन! है कि नहीं मोक्षमार्ग प्रकाशक? नवनीतभाई की घरवाली से कहता हूँ। है साथ में? लो तो सही, पढ़ो तो सही। यहाँ यह कहीं घर का नहीं कहते हैं। नवनीतभाई! यहाँ घर का कुछ नहीं कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि ये घर का कहते होंगे। इसमें देखो, लिखा है उस अनुसार बात तो घर की है। लेकिन यहाँ लिखा है उस अनुसार उसका भाव चलता है। कहो, समझ में आया? कहो, समझ में आया? कितनी बात कही है एक श्लोक में!

'**शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो घृतिम्**'। अरे.. धीर पुरुषो! स्थिति कर। घृति का अर्थ स्थिति कर। अरे..! धर्मात्मा सत्पुरुष! व्यवहार की जितनी लेखनी शास्त्र में आवे जैन में, जैन की आज्ञा का व्यवहार, हाँ! द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, कथानुयोग में व्यवहार की आज्ञा के आये, वह सब व्यवहार के भाव सत्पुरुषों को श्रद्धा में छोड़ने जैसा है। ये लिखा, सब ऐसा कहते हैं, ये लिखा शास्त्र में। लिखा है उसकी तो बात चलती है। व्यवहारनय से जितनी भी लेखनी शास्त्र में परद्रव्याश्रित की आये

कि पर जीव की दया पालनी, देव-गुरु की भक्ति करनी, वह सब परद्रव्याश्रित भाव है। उस भाव को, शास्त्र में व्यवहार-आज्ञा का कथन आये, वह अभूतार्थदृष्टि से कथन है। वास्तविकपने वह आदरणीय धर्मी जीव को होता नहीं। तकरार करे कि, यह आज्ञा मान्य है कि नहीं? लेकिन वह आज्ञा व्यवहार की है इसलिये मान्य है कि वह है, लेकिन आदरणीय नहीं है। समझ में आया?

अरे..! '**निश्चयही को भले प्रकार निष्कम्परूप से अंगीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते?**' इसमें वह आता है, निश्चल को निश्चलपने... कलशटीका में। मैं तो कलशटीका का कहता हूँ, इसमें तो तुम्हारे जैसा होगा न। मूल अनुसार होगा न, हिंमतभाई ने किया है न। निश्चय को ही निष्कम्पने अंगीकार करके, देखो! समझ में आया? महा दो सिद्धांत जैन दर्शन के। जैन परमेश्वर ने परद्रव्याश्रित कथन, दया उठे, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादि का भाव वह सब परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न हुए भाव, पराश्रय से हुए भाव, उसकी व्यवहार से शास्त्र में कथंचित् आज्ञा की हो, फिर भी उस आज्ञा को, उसका फल संसार बन्ध है, इसलिये वह छोड़ने योग्य है। ऐसी श्रद्धा दृढ़ करनी। उस श्रद्धा में फेरफार करेगा तो उसकी कभी मुक्ति होगी नहीं।

'**शुद्धज्ञानघनरूप निजमहिमा में...**' निजमहिमा देखो! वह पराश्रित है। पराश्रित भाव है उसकी महिमा छोड़। उसकी महिमा और माहात्म्य आता हो कि आहाहा..! व्यवहार से माहात्म्य हो, भक्ति भगवान की, पूजा, दानादि व्रत के भाव में व्यवहार से माहात्म्य कहने में आये, निश्चय से वास्तविक माहात्म्य नहीं है। निजमहिमा में स्थिति, पर की महिमा छोड़ी और अपनी महिमा में शुद्धज्ञानस्वरूप को अंगीकार करके उसमें स्थिति क्यों नहीं करते? क्योंकि उसके आश्रय से ही आत्मा का मोक्षमार्ग है, अन्य के आश्रय से मोक्षमार्ग है नहीं। नेमचंदभाई!

'**भावार्थ :-- यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है,...**' ठीक! व्यवहार का तो त्याग कराया है। भगवान ने कहा, व्यवहार का त्याग कराया है। अमृतचंद्राचार्य कहते हैं, हम कहते हैं और भगवान कहते हैं कि त्यागने योग्य है। होता है सही, हाँ! श्रावक को होता है, मुनि को होता है, भावलिंगी संत को होता है, व्यवहार होता है सही, परन्तु श्रद्धा में आदरने लायक और उससे धर्म होता है ऐसा मानने लायक नहीं है। क्या हो? '**यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है, इसलिये निश्चय को अंगीकार करके...**' देखो! निश्चय अर्थात् यह शुद्धज्ञानघन। '**निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है।**' शुद्धज्ञानघन यानी ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव ऐसा आत्मा। वह तो वही अर्थ हुआ। समझ में आया?

'**निश्चय को अंगीकार करके निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है।**' देखो! अपनी महिमा ज्ञानानंद चिदानंद शुद्ध परमात्मस्वभाव, उसकी महिमा में महिमारूप प्रवर्तना युक्त है। लो, बराबर है? वह, अमृतचंद्राचार्य का आधार देकर बात को (सिद्ध की है)। व्यवहार छोड़ने योग्य है, निश्चय अंगीकार करने योग्य है। दोनों नयों में दोनों आदरणीय है ऐसा है नहीं। भगवान ने दो नय कही है, तो दोनों नय अंगीकार करनी चाहिये। दो नयों में विरोध है। दो नयों में विरोध है, विरोध दोनों प्रकार से अंगीकार कर सके ऐसा बनता नहीं। समझ में आया?

अब, टोडरमलजी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का दृष्टान्त देते हैं कि देखो भाई! अमृतचंद्राचार्यमें से तो निकाला परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भी व्यवहार को हेय बताते हैं। मोक्षपाहुड़ की ३१वीं गाथा है। वह आती है, मोक्षपाहुड़ की ३१वीं गाथा।

**जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।**
**जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।३१।। (मोक्षपाहुड़)**

ये सब मक्खन गाथाएँ हैं। नवनीतभाई! मौके पर यह गाथा बराबर ऐसी आ गयी है। यहाँ मानस्तंभ का महोत्सव है और यहाँ मान का त्याग करने की बात है। अभिमान छोड़, व्यवहार का अभिमान छोड़ एक बार, छोड़। कहते हैं, महिमा छोड़। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़.. मोक्ष है न? वहाँ व्यवहार से मोक्ष होता नहीं है इसलिये यह गाथा उसमें आयी है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, अष्टपाहुड़ है उसमें ३१वीं गाथा में मोक्षसार तो व्यवहार से मोक्ष होता नहीं। भगवान की आज्ञावाला जो व्यवहार उससे भी मोक्ष होता नहीं। ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़ की ३१वीं गाथा में फरमाते हैं। टोडरमलजी उसकी बात का दृष्टान्त देकर बात को--सत्य को सिद्ध करते हैं।

'**अर्थ :-- जो व्यवहार में सोता है...**' अर्थात् व्यवहार के कार्य छोड़कर वह निज कार्य में जागते हैं, व्यवहार की सावधानी छोड़कर निश्चय की सावधानी करता है, वह व्यवहार में सोये हैं और निश्चय में जागते हैं। समझ में आया? व्यवहार में सोये हैं अर्थात् जितनी व्यवहार की आज्ञा वीतराग की (है), दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति, पूजा... भीखाभाई! जैसा राग आये उसमें वे सोते हैं, यानी कि उसकी सावधानी छोड़ देते हैं। उसका आश्रय छोड़ देते हैं और '**अपने कार्य में जागता है।**' दो बात कही। व्यवहार में जागे वह निज कार्य नहीं कर सकता, ऐसा सिद्ध किया। समझ में आया?

व्यवहार चौथे गुणस्थान योग्य राग आये, पाँचवें योग्य राग भक्ति आदि हो, छठवें योग्य पंच महाव्रत आदि हो, लेकिन उस कार्य में जो जागा है, वह निज कार्य में सो गया है। और उस कार्य में सावधानी छोड़ी है, वह अपने कार्य में जागता है।

उसका अर्थ यह है कि व्यवहार में अपना कार्य सिद्ध होता नहीं। ऐसा हुआ न उसका अर्थ? आहा..! ऐसी स्पष्ट बात है। उसे उसके ज्ञान में इस बात को बराबर सम्मत करनी चाहिये। सम्मत करके, इस बात के अलावा दूसरी बात जैनदर्शन में तीन काल में हो सकती नहीं। यह तो जहाँ-तहाँ वह पाले, यह क्रिया की, यह किया, वह किया, उतना तो पालता है, वह तो अच्छा है। अरे..! श्रद्धा में बड़ा गड्ढ़ा है। मिथ्यात्व का श्रद्धा का गड्ढा है, वहाँ मक्खी के टाँग जैसी क्रिया तौलने में आती नहीं। समझ में आया? केशवलालभाई! व्यवहार में सोया है... क्योंकि मोक्षपाहुड़ अधिकार है न? व्यवहार का परिणाम आवे, उसमें से हटकर स्थिर होते हैं, स्वरूप में स्थिर होते हैं उसका कार्य होता है। व्यवहार में रहे उसका स्वकार्य होता नहीं। आये फिर भी उसमें स्वकार्य होता नहीं। अच्छी बात है, भाई!

'**अपने कार्य में...**' 'योगी' शब्द है न? ... '**सो जोई**'। जोई यानी जुड़ान करना। व्यवहार में जिसका जुड़ान छूटा है, उसका निश्चय में स्वकार्य में जागृत स्व में जुड़ान किया है। दृष्टि और स्थिरता, ज्ञायकमूर्ति भगवान आत्मा.. बस! वह शुद्ध, उसका आश्रय लेकर उसमें श्रद्धा (कर) और स्थिर हो, यह एक भगवान की आज्ञा है। अनुभूति करने की भगवान की आज्ञा है। आहाहा..! कहो, छोटाभाई! ये बराबर है? ये सब विरोध करते हैं न? करने दो? वह उसमें करे, उसमें, उसके घर में। सत्य में कुछ चलता नहीं। देखो! एक तो लिया। '**जो व्यवहार में सोता है...**' अर्थात् व्यवहार से हट गये हैं। '**वह योगी...**' अर्थात् स्वरूप में योग करनेवाला '**अपने कार्य में जागता है।**' ऐसा शब्द उसमें भी आता है न? वह आता है। यह तो दूसरी बात है, वह दूसरी बात है।

'**तथा जो व्यवहार में जागता है...**' जागने की व्याख्या यह दूसरी है। व्यवहार के परिणाम में एकाकार होकर उसमें सर्वस्व महिमा मानकर बैठा है, '**वह अपने कार्य में सोता है।**' समझ में आया? ... शुभभाव की क्रिया के परिणाम जितने प्रकार के कहे, उसमें एकाकार हो जाता है, जागता है यानी ज्ञान को उसमें ही झुकाया है, वह अपने कार्य में सोया है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञायकभाव चैतन्य, उसकी दशा का आश्रय लेकर दशा प्रगट हो, उस कार्य में सो गया है। वह कार्य नहीं करते। व्यवहारकार्य में जागृत है, वह निश्चय के कार्य को करता नहीं। निश्चयकार्य में जागृत है, व्यवहार आये उसका आदर करता नहीं। स्पष्ट है, कितनी बात स्पष्ट है? कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचंद्राचार्य का आधार देकर (बात सिद्ध करते हैं)। दो बड़े स्तंभ, धर्म का स्तंभ। कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचंद्राचार्य। उसने लिखा है, मुमुक्षुओं को कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचंद्राचार्य की बहुत श्रद्धा है, इसलिये उनका आधार देकर हम स्थापेंगे कि

व्यवहार और निमित्त से कार्य होता है। अरे.. भगवान! व्यवहार है ऐसा कहा है अमृतचंद्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य, दोनों ने और अनंत मुनियों ने कहा है, कोई मुनि में अंतर नहीं है। कोई मुनि के कथन में अंतर नहीं होता, सच्चे मुनि जो हैं, पूज्यपादस्वामी हुए, अकलंकदेव हुए, द्रव्यसंग्रह के (रचयिता) नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती हुए, महान समंतभद्र हुए, सब मुनियों भावलिंगी संत सब का कथन एक ही प्रकार का है, किसी में कोई अंतर है ही नहीं। सत्य का डंका सबने बजाया है। किसी ने कोई अपेक्षा से व्यवहार की प्रधानता से कथन किया हो, निश्चय को गौण रखा हो, लेकिन निश्चय का आश्रय करने का तो किसीने गौण नहीं किया है।

'**इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर...**' लो, लो आया। व्यवहारनय का कथन जैनदर्शन में चार अनुयोग में बहुत चले, उसका श्रद्धान छोड़कर '**निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' देखो! शास्त्र में जितना निश्चय से सच्चा अनुपचारी कथन हो वह बात सत्य है, ऐसा उसे मानना चाहिये। जितना व्यवहारनय का पराश्रित कथन हो वह उपचारिक अन्यथा व्यवहारनय का कथन है ऐसा जानकर उसकी श्रद्धा छोड़ने योग्य है। कहो, समझ में आया? धरमचंदजी! क्या व्यवहार-व्यवहार? कितना लाभदायक उसमें आता है?

मुमुक्षु :-- आता तो है।

उत्तर :-- आता है, न आवे तो वीतराग हो जाये। आता है उसकी तो बात है। सम्यग्दृष्टि को निश्चय का आश्रय ज्ञानघन का होने के बावजूद, ज्ञानघन में पूरी स्थिरता जब तक न हो, तब तक बराबर देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, दान, दया ऐसा शुभ भाव आये बिना रहता नहीं। आये, लेकिन उससे धर्म होता है ऐसा वह मानता नहीं। कहो, समझ में आया? पाप से बचने को अथवा उस काल में वह भाव ही होता है। कहो, समझ में आया?

सब समझने जैसी बात यह सब तो। ऐसी है कि क्या हो? कथन कोई दूसरे प्रकार का और भाव अभिप्राय में संतों का दूसरा था। अंतर का अकेला ज्ञानघन चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसका ही आश्रय कराने का लक्ष्य बदलकर कराने का आशय है सब शास्त्रों में, बारह अंग और चौदह पूर्व का। कथनपद्धति दो प्रकार से चले, परन्तु वस्तु एक प्रकार से सच्ची और एक प्रकार से उपचार के कथन हैं।

'**इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर...**' जितना, जैन शास्त्र में चार अनुयोग में व्यवहार की आज्ञा के पराश्रित का कथन आवे, जिसमें परद्रव्य का लक्ष्य आवे, वह सब भाव धर्म नहीं है, ऐसा श्रद्धान करने योग्य है। वह भी व्यवहारधर्म है न? ऐसा कहते थे। लेकिन व्यवहारधर्म यानी धर्म नहीं है। निश्चय से धर्म वह सत्य है,

व्यवहारधर्म असत्य है अर्थात् धर्म है नहीं। परन्तु निमित्त देखकर, सहचर देखकर निश्चय की दृष्टि की स्थिरता की भूमिका में उस जात की कषाय की मंदता की योग्यता व्यवहार से मैत्री गिनकर उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहने में आया है। लेकिन वह श्रद्धान छोड़ने योग्य है। व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा मानने जैसा है। समझ में आया?

अब कहते हैं, '**निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' ऊपर आया था, ऊपर देखो, श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं, प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं, इसप्रकार दो नय हम अंगीकार करते हैं। तब कहते हैं, नहीं, ऐसा नहीं बनता। क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है। एक ही नय का श्रद्धान करे तो एकान्त मिथ्यात्व होता है। है पाटनीजी ऊपर? यहाँ ना कहते हैं, वहाँ कहा कि एकान्त मिथ्यात्व होता है। व्यवहार से व्यवहार जिस प्रकार से है, उस प्रकार से है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये, परन्तु श्रद्धा में आदरणीय करना चाहिये नहीं। व्यवहार को व्यवहार के रूप में भूमिका प्रमाण में आवे, वह आता ही नहीं और होता ही नहीं (ऐसा माने) तो निश्चयनय की एकान्त मिथ्यादृष्टि होती है। और व्यवहार से धर्म होता है ऐसा अंगीकार करे तो निश्चय और व्यवहार दोनों नय नहीं रहते। समझ में आया? कितना, एक सादी हिन्दी भाषा में टोडरमलजी ने गृहस्थाश्रम में रहकर कितना काम सत्य को डंके चोट पर बात प्रसिद्ध की है। दुनिया की कोई दरकार नहीं रखी है। यह कहने से, बाहर प्रसिद्ध करने से समाज की प्रतिक्रिया होगी, मुझे मानेंगे कि नहीं? मेरी निंदा करेंगे? हेलना करेंगे? सत्य का रहस्य खोलने में जगत की प्रतिक्रिया क्या होगी, यह ज्ञानी को देखना नहीं रहता। समझ में आया? लोग क्या बोलेंगे? कैसे होगा? लोग उनके घर रहे, तुझे क्या काम है? सत्य को सत्यरूप से अनंत तीर्थंकरों ने कहा है, गणधरों ने शास्त्र में गुँथा है, आचार्यों ने डंके की चोट पर ग्रंथ, टीका और शास्त्र लिखे। व्यवहार जहाँ-जहाँ हमने कहा हो, कथन करना और मुनि कहते हैं कि हमने जहाँ-जहाँ परद्रव्याश्रित व्यवहार कहा हो, उसकी श्रद्धा छोड़ना। लेकिन आपने कहा है न, प्रभु! हमने कहा है वह बन्ध का कारण है, लेकिन बीच में आता है उसका ज्ञान कराने को कहा है। और उसकी श्रद्धा न कर कि आये ही नहीं, निश्चय एकान्त मिथ्यात्व होता है और आता है इसलिये धर्म के लिये आदरणीय है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? क्यों नरेशचंद्रजी! समझ में आता है? गुजराती नहीं चलता है।

अब कहते हैं, क्यों? वह तो बात की। व्यवहार की श्रद्धा छोड़ने योग्य है उसका कारण क्या? कारण देना पड़े न? व्यवहारनय से भगवान कहे, शास्त्र कहे और आप कहते हो कि वह श्रद्धा छोड़ने योग्य है, वह आदरणीय नहीं है, कोई कारण है?

हाँ, '**व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को... किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है,...**' आखिर का शब्द लेना। है? व्यवहारनय का ऐसा कथन है कि स्वद्रव्य को परद्रव्य कहे और परद्रव्य को स्वद्रव्य कहे। ऐसा व्यवहारनय परद्रव्याश्रित कथन एकदूसरे के आश्रय में मिलाकर, '**किसी को किसी में मिलाकर निरूपण...**' मिलाकर वहाँ से लेना। स्वद्रव्य-परद्रव्य, उनके भाव और कारण-कार्य, तीन बोल हैं। तीनों में सब में किसी का किासी में मिलाकर, ऐसा लेना।

व्यवहारनय, एक द्रव्य का कथन चलता हो, वहाँ दूसरे द्रव्य में डाल दे। जैसे कि आत्मा को विकार हो तो व्यवहारनय कहे कि कर्म के कारण हुआ। समझ में आया? वह कर्म का द्रव्य है, कर्म का कार्य है। ऐसा व्यवहारनय कहे। ऐसी श्रद्धा छोड़ने योग्य है। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में.. समझ में आया? आत्मा जड़ की क्रिया कर सके या जड़ को हिला सके, ऐसा मानना चाहिये,.. ऐसा कथन आता है, जयधवल, देखो! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ऐसा श्रद्धान करना। ऐसी टीका है, हाँ! रोग आवे तो दवाई से रोग मिट जाता है, फलाना होता है, इच्छा होती है और शरीर हिलता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है ऐसी श्रद्धा बराबर करनी। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, पृथक्-पृथक् होता है ऐसी श्रद्धा करनी। लेकिन वह श्रद्धा करके वह सम्बन्ध छोड़ने के लिये व्यवहार की श्रद्धा छोड़ने योग्य है। ओहोहो...! समझ में आया?

व्यवहारनय यानी पराश्रय कथन करनेवाला। कर्म का नाश हो तो जीव को मुक्ति हो, वज्रवृषभनाराच संहनन हो तो जीवद्रव्य में केवलज्ञान प्राप्त करने समय आये। वह, परद्रव्य के कारण स्वद्रव्य में कुछ हो ऐसा कहे वह व्यवहारनय है। वह किसी का किसी में मिलाकर निरूपण करता है। '**सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है;...**' है? मणिभाई! ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। वज्रनाराच संहनन से जीव को लाभ होता है, मनुष्यदेह से जीव को लाभ, परद्रव्य से जीव को लाभ होता है ऐसा कथन शास्त्र में आवे वह, व्यवहारनय एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर बात करता है। ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है, शांतिभाई! जगत को साथ मिलाना चाहे तो कहीं मेल खाये ऐसा नहीं है।

व्यवहारनय यानी क्या? बात कही कि पराश्रित व्यवहार। कहा न, पराश्रित व्यवहार, ऊपर कहा था। उतना अध्यवसाय छुड़ाया तो मैं तो ऐसा ही मानता हूँ कि यह भगवान ज्ञायकभाव ज्ञानघन उसका आश्रय छोड़कर पराश्रित जितना भाव हो, वह सब छोड़नेयोग्य है। क्योंकि एक द्रव्य के अलावा परद्रव्य का आश्रय (करे), त्रिलाकनाथ तीर्थंकर का आश्रय होकर भाव हो, वह भी छोड़ने योग्य है। पोपटभाई! ये समेदशीखर की यात्रा करने का पराश्रित भाव हो, वह भाव शुभ है। श्रद्धा में धर्म है, ऐसा छोड़ने योग्य

है। समेदशीखर की यात्रा से जन्म-मरण मिट जाये। केशवलालभाई! आता है कि नहीं उसमें? 'एक वार वंदे जो कोई, नर्क-पशु न होई'। वह तो एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के आश्रय का कथन व्यवहारनय का है। एक द्रव्य दूसरा द्रव्य को (कुछ करता नहीं)। समेदशिखर तो परद्रव्य है। परद्रव्य के आश्रय से आत्मा का संसार टूटे तीन काल तीन लोक में? तीन काल तीन लोक में नहीं। समझ में आया? परन्तु धर्मी को भगवान का साक्षात् दर्शन नहीं है ऐसे काल में उसे प्रतिमा का और समेदशिखर आदि का दर्शन का भाव समकिती--धर्मी को आये बिना रहे नहीं। उसे समझता है कि यह कषाय की मंदता पुण्यबन्ध का कारण है। व्यवहार से, जिसे निश्चय की दृष्टि हो उसे व्यवहार से उसे धर्म भी कहने में आता है। परन्तु वह श्रद्धा में आदरणीय नहीं है। समझ में आया?

एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में। ऐसा कहे, शरीर अच्छा हो, विचार अच्छे आये, फलाना हो अथवा शास्त्र में कथन आये, देखो! मुनि का आता है न? मुनि आत्मधर्म का साधन करते हो, आत्मज्ञान साधन, चारित्र आनंद, उसके शरीर के पोषणार्थ श्रावक आहार दे। आहार दिया उसने मोक्ष दिया, ऐसा पद्मनंदी पंचविंशति में पद्मनंदी निर्ग्रंथ भावलिंगी संत कहे। कहो, ज्ञानचंदजी! वह लिखान है पद्मनंदीं पंचविंशति में। क्या? जो कोई भावलिंगी संत आत्मज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित है, बाह्य में नग्न दशा सहज हो गयी है, उसको कोई आहार दे तो कहते हैं, पद्मनंदी आचार्य भावलिंगी संत १००० वर्ष पहले, ९०० वर्ष पहले जंगल में थे, पद्मनंदी पंचविंशति बनाया। अपने यहाँ पर्युषण में कुछ अधिकार पढ़ने में आता है। कहते हैं कि उसने मोक्ष दिया। क्यों? मुनि मोक्षमार्ग साधते हैं, उनको शरीर साधन है। शरीर को आहार साधन है, आहार को देनेवाले श्रावक साधन है, इसलिये श्रावक ने उन्हें मोक्ष दिया। आता है, हाँ पद्मनंदी पंचविंशति में। आता है? व्यवहारनय स्वद्रव्य, परद्रव्य को किसी का किसी में मिलाकर निरूपण करता है। समझ में आया?

उसमें भी बहुत लिखा है, पद्मनंदी पंचविंशति में, यह सब गाथाएँ वहाँ है। '**ववहारो अभूदत्थो**', '**सुदपरिचिदाणुभूदा**' सब गाथाएँ हैं। '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' वह सब गाथाएँ पद्मनंदी में हैं। मुनियों तो.. जो कोई दिगंबर संत भावलिंगी मुनि हुए उनकी एक ही प्रकार की धारा थी। फिर साधारण मुनि हो तो विशेष... सब की मूल बात में कहीं अंतर नहीं है। किसी को कोई विकल्प की स्थिति उत्पन्न हुई कथन होने की, किसी को कोई। समझ में आया? व्यवहारनय स्वद्रव्य और परद्रव्य को मिलाकर, किसी का किसी में (निरूपण करता है)। आहार दिया वहाँ मोक्ष हुआ। नवनीतभाई! पद्मनंदी का ... अन्दर, व्यवहार सो अभूतार्थ है। जितने व्यवहार के कथन

इसमें मैंने भी कहे, वह सब अभूतार्थ है और श्रद्धामें से छोड़ने योग्य है। यह कैसे समझना?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- व्यवहार पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य नहीं है? भगवान की भक्ति, देव-गुरु... व्यवहार से व्यवहार पूज्य है, निश्चय से पूज्य नहीं है। उपचार से पूज्य है। समझ में आया? निश्चय से स्वद्रव्य ज्ञायकभाव पूज्य है। समझ में आया इसमें? आहाहा..! उसका ज्ञान भी यथार्थ करे नहीं, श्रद्धा में बराबर बात को रुचिगत करके मिलाये नहीं, और बाह्य अकेली प्रवृत्ति और क्रियाकांड करे वहाँ कहे, ओहो..! धर्म हुआ, इसने धर्म किया। वह सब तो परेशान होने का चौरासी के अवतार में डूबने के लक्षण हैं। व्यवहारनय.. समझ में आया?

एक गाथा कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आती है, पुद्गल की शक्ति तो देखो, ऐसा आता है भाई! कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है न? पंडितजी के साथ बात हो गयी थी, बंसधीरजी के साथ। पुद्गल की शक्ति तो देखो, भगवान आत्मा का केवलज्ञान तीन काल तीन लोक को जाने, उसे केवलज्ञानावरणीय पुद्गल की शक्ति ने रोक दिया। वह एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य को मिलाकर बात कही है। समझ में आया? घात-बात कौन (करे)? तीन काल तीन लोक में कर्म आत्मा की पर्याय का घात करे, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। देखो, भगवान ने घातिकर्म कहे हैं, घातिकर्म कहे हैं। घाति तो घात करे इसलिये कहा है कि नहीं? वह असत्य व्यवहार से कहा। घातिकर्म आत्मा का घात (करे), परद्रव्य स्वद्रव्य का घात करे ऐसा तीन काल में बनता नहीं। कितनी लिखावट आती है ऐसी। वह कहते हैं, लो आधार देते हैं। ऐसे तो हम भी अनंत दे सकते हैं। माल क्या है? वह सब तो व्यवहार के कथन उपचार का निमित्तपना कौन था, उसको बताने के लिये वह सब कथन है।

संघयण ऐसा हो तो ऐसा हो, लाओ एक (भी जीव) वज्रनाराच संहनन बिना केवलज्ञान प्राप्त किया हो। लाओ एक। वज्रनाराच समझ में आता है? आओ, आओ, मूलचंदजी! कितने आये हैं? आठ, अच्छा। समझ में आया? पंडितजी! समझ में आता है कि नहीं? क्या देखो? यह तो शास्त्र पुकारता है। व्यवहारनय का ऐसा कथन शास्त्र में है कि एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर बात करे। समझ में आया? केवलज्ञान की आत्मा की शक्ति वह, केवलज्ञानावरणीय जड़ कर्म, (उसका) घात कर दे। ऐसा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में बारह भावना के अधिकार में अधिकार है। वह एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में (मिलाकर) कथन की बात है। ऐसा ही मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि है।

ज्ञानावरणीय ने ज्ञान का घात किया। ज्ञानावरणीय पर जड़ चीज है। वह आत्मा

की गुण की पर्याय का घात करे ऐसा मानना वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। आहाहा..! ये शास्त्र में लिखा है। ज्ञानावरणीय, ज्ञानावरणीय उसको कहा। क्या कहा? ज्ञान को आवरण करनेवाला है। ज्ञानावरणीय परद्रव्य ज्ञान को आवरण करनेवाला है, ऐसा लिखा है। लिखा है वह निमित्त का कथन है। उसे ऐसा मान ले, व्यवहारनय से स्वद्रव्य परद्रव्य को मिलाकर कथन किया है, वह व्यवहारनय अनुसार मान ले कि उसने घात किया तो (वह) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को... पीछे का लेना, हाँ! '**किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है;...**' अर्थात् किसी को किसी में मिलाकर मान्यता करता है। वह मान्यता सच्ची नहीं है। समझ में आया? ऐसे तो बहुत दृष्टान्त है। जितने अभी तकरार में उतरते हैं.. आत्मा में, वह भाव में ले लेना।

और '**उनके भावों को...**' उनके भावों को। किसके? एक द्रव्य के भाव को दूसरे द्रव्य का भाव और दूसरे द्रव्य के भाव को स्वद्रव्य का भाव व्यवहारनय कहे। राग को मोक्षमार्ग कहे। व्यवहारनय राग को मोक्षमार्ग कहे। मोक्षमार्ग तो वीतरागी आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान निर्विकल्प, उसको मोक्षमार्ग कहने में आता है। व्यवहारनय एक भाव को दूसरे भाव में मिलाकर कहता है। उस व्यवहारनय को वह-वह निश्चय मिला ऐसा व्यवहारनय कथन करती है। पंचास्तिकाय में ऐसा लेख आवे कि व्यवहारनय से धीरे-धीरे शुद्धता बढ़ती जाये। अमृतचंद्राचार्य का कथन टीका में। धोबी कपड़े को शीला पर पटकता हुआ, क्या कहा? शीला पर... कपड़े को पानी में भीगोकर पटकता हुआ और अन्दर साबून लगाकर मैल निकालता है। ऐसे व्यवहाररत्नत्रय द्वारा धर्मी जीव धीरे-धीरे शुद्धि बढ़ाता हुआ, ऐसा लेख है अमृतचंद्राचार्य की टीका में। आचार्य कहते हैं कि वह सब हमारे व्यवहारनय के कथन हैं। व्यवहार से निश्चय और धीरे-धीरे शुद्धता होती है ऐसा मान तो मिथ्यादृष्टि है। क्या हो? समझ में आया?

आचार्य स्वयं कहते हैं, हमने वहाँ लिखा है वह व्यवहार से है। परद्रव्य के आश्रय के जितने... मोक्षमार्ग स्वद्रव्याश्रित है और राग है वह परद्रव्याश्रित है। परद्रव्याश्रित राग से स्वद्रव्य को लाभ हो, स्वद्रव्य के भाव को निर्मल को लाभ हो, वह बात तीन काल तीन लोक में सच्ची नहीं है। समझ में आया? कहो, मूललचंदजी! ऐसा व्यवहार-निश्चय का चलता है। डॉक्टर आये हैं? डॉक्टर आओ आओ यहाँ, वहाँ क्यों बैठे हो? समझ में आया?

व्यवहारनय एक स्व चैतन्य विज्ञानघन के अवलम्बन के सिवा, व्यवहारनय पर के अवलम्बन के भाव से, पर के अवलम्बन के भाव से लाभ होता है (ऐसा कहती है)। आत्मा की निर्मल पर्याय में व्यवहार, राग और पुण्य से लाभ होता है, ऐसा

व्यवहारनय निरूपण करता है। ऐसा माने उसको मिथ्यात्व लगता है। पुस्तक है कि नहीं? देखो, उसमें लिखा है। सोनगढ़ का कहाँ है? ये तो टोडरमल का है। कहो, यह तो टोडरमल का हिन्दी है उसका गुजराती अक्षरशः है। और टोडरमल ने घर का कहाँ कहा है? शास्त्र का आधार देकर (बात करते हैं)। ववहारो अभूदत्थो, जो ११वीं गाथा है, उसके आधार से यह सब बात करते हैं।

शास्त्र में भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य ने संग्रह कर के कथा हुआ, व्यवहार अभूतार्थ है। ११वीं गाथा समयसार की जैनशासन का स्तंभ। जैनशासन की मौलिक चीज। व्यवहार असत्यार्थ (है)। उस व्यवहार से, व्यवहार की पर्याय से, राग से, पुण्य से जीव को मोक्षमार्ग हो ऐसा व्यवहारनय कहे। क्यों कि किसी द्रव्य का किसी द्रव्य में मिलाकर और उसके भाव को, कोई द्रव्य की पर्याय को, कोई द्रव्य की पर्याय व्यवहार ... कहे, ऐसी मान्यता, ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है। मूलचंदजी! निःशंक, निःशंक। कहाँ गये डॉक्टर? क्या कहा?

अंजन चोर निःशंक हुआ, निःशंक हुआ तो सम्यग्दर्शन हुआ। वह व्यवहारनय का कथन एक में दूसरे को मिलाकर किया है। वह तो बहुत लंबा व्यवहार है। समझ में आया? देखो! रत्नकरंड श्रावकाचार, उसमें जो आठों निःशंक, निःकांश के दृष्टान्त दिये हैं, वह सब भविष्य में निश्चय प्राप्त किया है, उसका व्यवहार में आरोप और व्यवहार का आरोप एक अंश में किया है। वह माने कि इसके कारण निश्चय प्राप्त किया, ऐसा व्यवहार का कथन एक पर्याय में दूसरी पर्याय का कथन करे, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। रत्नकरंड श्रावकाचार में आठ बोल आते हैं। आते हैं कि नहीं? व्यवहारनय का कथन अलग जाति का होता है, इसलिये उससे लाभ होता है, ऐसा तीन काल तीन लोक में नहीं है।

इसलिये यहाँ टोडरमलजी कहते हैं, व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को किसी का किसी में मिलाकर, उनके भावों को किसी का किसी में मिलाकर निरूपण करता है। इसलिये ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। ऐसी श्रद्धा रखे तो मिथ्यात्व टलता नहीं। लो, कहा है न? आता है न? कोई .. प्रभावना की, ... आती है न आठ कथा? हरिषेण चक्रवर्ती की माता। वह सब व्यवहार के कथन हैं। वह शुभ राग आया वह होता है, लेकिन उस शुभ राग के कारण सम्यग्दर्शन हो, या शुभ राग के कारण मोक्षमार्ग हो, ऐसा जो व्यवहारनय का कथन है ऐसा माने तो मिथ्यात्व लगता है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक चलता है, टोडरमलजी की बात चलती है। टोडरमलजी की भगवानमल की बात चलती है। समझ में आया? दो बात हुई।

अब एक आया, कारण और कार्य की बड़ी तकरार। तीसरा बोल कारण-कार्य। कारण-कार्य तीसरा बोल है। निमित्त कारण से यहाँ कार्य हो, ऐसा व्यवहारनय के कथन आये, ऐसा ही माने तो मिथ्यात्व है। है उसमें, देखो। तीन बोल में तो पूरी व्यवहारनय की जितनी कथनपद्धति है, सब को समाविष्ट कर दिया है। व्यवहारनय '**कारणकार्यादिक को....**' आदि में आ गया न? स्वद्रव्य-परद्रव्य, उनके भाव आदि। कारण व्यवहार और निश्चय कार्य, निमित्त कारण और शुद्ध उपादान में लाभ हो, ऐसा व्यवहारनय का कथन कारण कोई और कार्य कहीं और जगह, मिलाकर बात करती है। ऐसा माने तो उसे मिथ्यात्व लगता है। है न भाई? ये कारण-कार्य की तकरार।

यहाँ टोडरमलजी कहते हैं, '**कारणकार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है;...**' भगवान की प्रतिमा के दर्शन से शुभ परिणाम होते हैं। वह कारण और यहाँ कार्य, व्यवहारनय कथन करती है। ऐसा माने, उससे हुआ माने तो मिथ्यात्व लगता है। समझ में आया? अथवा सम्यग्दर्शन के जो कारण वेदना कही, देवऋद्धि कही, श्रवण कहा, वह था तो यहाँ सम्यग्दर्शन उसके कारण, उस कारण के कारण यहाँ कार्य हुआ, ऐसा व्यवहारनय का कथन शास्त्रों में आवे, उसे जानना चाहिये। लेकिन माने कि वह कहा सो बराबर है, तो कारण-कार्य का बड़ा विपरीतता उत्पन्न होकर उसे मिथ्यात्व लगता है। उसको धर्म होता नहीं। विशेष कहेंगे....

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**वीर सं.-२४८८, चैत्र सुद-९, शुक्रवार, दि. १३-४-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १६**

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, उसका सातवाँ अध्याय है। उसमें अधिकार मुद्दे की, मूल रकम की बात कही है। मूल रकम कहते हैं न? मूल रकम। जैन में यानी दिगंबर संप्रदाय में जन्म हुआ होनेपर भी, अन्य संप्रदाय में जन्म हुआ हो उसको तो सत्य बात की परंपरा उसके शास्त्र में, गुरु में होती नहीं। लेकिन जो जैन संप्रदाय दिगंबर के नाम से जाना जाता है, उसमें जन्म होनेपर भी निश्चय क्या, व्यवहार क्या, उसके

भान बिना व्यवहार के जितने कथन शास्त्र में आये उनको सच्चे मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि हैं, जैन में दिगंबर श्रावक और मुनि नाम धराते हो तो भी। वह अधिकार चलता है। समझ में आया?

पहला तो वह दृष्टान्त दिया टोडरमलजी ने, कुन्दकुन्दचार्य महाराज का, कि देख भाई! शास्त्र में दो प्रकार के कथन चले हैं। एक निश्चय का अर्थात् सच्चा अर्थात् स्वद्रव्याश्रित कथन, वह सच्चा। और एक, परद्रव्य के आश्रय से स्व में कुछ होता है, कर्म के कारण विकार होता है, शरीर को जीव कहना, मतिज्ञान को रूपी कहना इत्यादि जो उपचार से शास्त्र में जो कथन आये हैं, उनको ऐसे ही मान ले कि वह बराबर है, तो वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? क्योंकि व्यवहार सत्य बात कहता नहीं, परन्तु व्यवहार कोई अपेक्षा से निमित्त का ज्ञान कराने को, संयोग का ज्ञान कराने को उपचार से आरोप से अनेरा प्रकार से व्यवहार की कथनी चलती है। इसलिये कुन्दकुन्दाचार्य का (समयसार की) ११वीं गाथा का आधार दिया कि व्यवहार है सो असत्य निरूपण करता है। व्यवहार के वचन चार अनुयोग में द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, कथानुयोग आदि में आवे तो वह सब व्यवहार परद्रव्याश्रित जितने कथन आत्मा के आये, ऐसे कथन को ऐसा है, ऐसा मान नहीं लेना। समझ में आया?

और सत्य निश्चय बात हो तो, आत्मा आत्मा से है, उसकी पर्याय आत्मा से है, उसका धर्म यानी अपनी शांति अपने में अपने कारण से है। ऐसे जो कथन निश्चय के सच्चे हो, उसकी सच्ची उस प्रकार से श्रद्धा करे तो उसको सम्यग्दर्शन हो। लेकिन व्यवहार की श्रद्धा करे कि शास्त्र में ऐसा कहा है, ऐसा कहे है, उसको उस तरह सच्चा मान ले तो उसकी श्रद्धा मिथ्यात्व होकर परिभ्रमण जीव करे। एक वह दिया।

दूसरा दृष्टान्त अमृतचंद्राचार्य का दिया। सर्वत्र अध्यवसाय अखिलं, व्यवहार का। भवगान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने पर की हिंसा करुँ, असत्य बोलुँ, चोरी कर सकुँ, हाथ से ले सकुँ, शरीर से विषयसेवन कर सकुँ, ऐसी मान्यता को भगवान ने मिथ्यात्व कहा है। समझ में आया? शरीर से परिग्रह ले सकुँ, परिग्रह छोड़ सकुँ, अथवा दया के भाव, पर की दया पाल सकुँ, मैं सत्य वाणी द्वारा बोल सकुँ, मैं असत्य अथवा अदत्त को ले नहीं सकता. मैं शरीर से ब्रह्मचर्य पाल सकता हूँ, शरीर से मैं नग्नदशा कर सकता हूँ, ऐसे अभिप्राय को व्यवहार गिनकर उसे मिथ्यात्व कहा है। क्योंकि पराश्रित सब कथन हैं। समझ में आया? बाबुभाई! यह तो इसमें व्यवहार-निश्चय का निचोड़ आता है। ये सब तकरार करतें है न? हैं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- कहा न यह? व्यवहार के कथन वह अन्यथा कथन हैं, ऐसा जानकर

उसकी श्रद्धा छोड़ देनी। व्यवहार के कथन शास्त्रों में, सर्वज्ञ के व्यवहारआज्ञा के कथन शास्त्रों में हो उसकी भी श्रद्धा छोड़ देनी कि वह बात वैसे नहीं है। समझ में आया? व्यवहार से निश्चयआत्मा ज्ञानानंद शुद्ध पर द्रव्य की कोई भी क्रिया का कर्ता, धर्ता आत्मा तीन काल तीन लोक में नहीं है। व्यवहार से कहने में आया हो कि जीव सो शरीर है, जीव पर की दया पाल सकता है, ऐसे कथनों को उस प्रकार मान ले तो उसको मिथ्यादृष्टि कहने में आता है। समझ में आया?

एक दृष्टान्त कुन्दकुन्दाचार्य की ११वीं गाथा का दिया, एक अमृतचंद्राचार्य के कलश का दिया। अब आता है, कुन्दकुन्दाचार्य की मोक्षपाहुड़ की ३१वीं गाथा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है कि जो व्यवहार में सोया है वह योगी निजकार्य में जागता है। अर्थात्? जो, पर का कार्य कर सकता हूँ, मैं राग का कार्य करूँ तो मुझे लाभ हो, व्यवहार का काम दया, दान, व्रत का विकल्प करूँ तो मुझे लाभ हो, ऐसा माननेवाला व्यवहार में जागता है। व्यवहार में जागता है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान में सो गया है। समझ में आया?

और व्यवहार में सोया है अर्थात् पर का शरीर, वाणी, परदेश का काम, कुटुम्ब का कोई भी काम मैं कर नहीं सकता और मेरे में रागादि आये वह भी मेरी मूल चीज नहीं है। उसमें सोया है अर्थात् उसकी जागृत दशा अर्थात् उसकी रुचि जिसने छोड़ी है और अपने कार्य में जागता है। मैं ज्ञान हूँ, आनंद हूँ, शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ ऐसा आत्मा का त्रिकाली परमानंद ज्ञायकभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में अपने कार्य में जागता है, वह मुनि को सच्चा और उस धर्मी को सच्चा कहने में आता है।

तथा जो व्यवहार में जागता है, परन्तु व्यवहार की क्रिया कर्तव्य करके मेरा कार्य है, दया मैं पाल सकता हूँ, दया के भाव से मुझे धर्म होता है। कठिन कथन, जगत की बात, जगत की बात। मैं पर की दया पाल सकूँ, परद्रव्य की क्रिया कर सकूँ, शरीर द्वारा आचरण कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता में व्यवहार में जो जागता है, व्यवहार में ज्ञान को जोड़ा है, उसमें एकाकार होता है, वह अपने कार्य में सोया है। मैं एक ज्ञाता-दृष्टा हूँ, जानने-देखनेवाला हूँ, ऐसी जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान की क्रिया, व्यवहार में जागनेवाले निश्चय में सोये हैं। समझ में आया? सुनाई देता है कि नहीं बराबर? आप से कुछ कम होगा। है न? कहो, समझ में आया इसमें? सोभागचंदभाई! उसमें लिखा है, हाँ! शांतिभाई! क्या कहते हैं देखो।

आत्मा भाषा बोल सकता है, आत्मा वाणी कर सकता है, आत्मा दूसरे को समझा सकता है, वह समझे तो मेरे से समझ सकता है--ऐसे जो व्यवहार के कथन,

दिव्यध्वनि से अनंत आत्मा तिर गये, भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, ऐसे जितने व्यवहार के कथन हैं उसको सच्चा माने तो वह व्यवहार में जागता है और आत्मा के धर्मकार्य में वह सो गये हैं। समझ में आया? नवनीतभाई!

मुमुक्षु :-- सच्ची बात है।

उत्तर :-- सच्ची बात तो खुल्ली यह है। छाछ लेने जाये और दोहनी छिपाये ऐसा चलता है? हमारे काठियावाड़ में ऐसी कहावत है, घर में महेमान आये हो। छाछ समझते हो, मठ्ठा। छाछ दस शेर चाहिये, हंमेशा तो दो शेर आती हो, लेकिन दस शेर छाछ चाहिये तो बड़ी दोहनी होती है न? दोहनी तो पहले होती थी, अब तो पतीला हो गया। चौड़े मुँहवाला बरतन आगे रखे, देखो! दस शेर का बरतन है, दस शेर छाछ लेने आया हूँ आज, दस शेर डालना। रोज तो दो शेर चाहिये थी, क्योंकि मात्र रोटी के साथ खाने जितनी। लेकिन यह तो दस शेर चाहिये, कढ़ी करनी है, फलाना करना है, ढीकना करना है। छाछ लेने जाये वहाँ दोहनी अर्थात् बरतन छिपाये नहीं, आगे करके रखे कि लो, इतना चाहिये।

ऐसे भगवान द्वारा कहे गये निश्चय और व्यवहार के कथन, उनके व्यवहार की कथन की जितनी पद्धति शास्त्र में आवे, उन सब को ऐसा मान ले कि वह भी सत्य है, तो वह मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म का सम्यग्दर्शन होता नहीं। कहो, समझ में आया? ये कहा व्यवहार, ये कहा व्यवहार। कौन ना कहते हैं? सुन न। भगवान की स्तुति से मुझे धर्म होता है, ऐसा कथन शास्त्र में आवे। भगवान की शास्त्र करते हुए, पर भगवान की हाँ! देहादि की क्रिया आत्मा करे और भगवान की स्तुति का राग करे उससे आत्मा को लाभ हो, ऐसा कथन कहीं आया हो तो उसे मानना कि वह ऐसा है नहीं। समझ में आया?

तो व्यवहार में जागता है, शास्त्र में जितनी व्यवहार-कथनी, दया, दान, व्रत के परिणाम की और देह और वाणी की क्रिया चली हो, उसको जो सच्चा माने कि आत्मा कर सकता है और उससे लाभ होता है, वह निश्चय में अपने कार्य में सोये हैं। वह अपना कार्य कर नहीं सकते। मैं जानने-देखनेवाला हूँ। राग, देह और वाणी की क्रिया मेरी क्रिया नहीं है ऐसा मानता नहीं है वह निश्चय में सोया है और व्यवहार में जागता है। मूलचंदजी! बड़ी बात है यह। समझ में आया? आहाहा..! रतनचंदजी! सभा में रतनचंदजी की आवाज़ कितनी निकलती है! वह रतनचंदजी की आवाज़ है, यह रूपचंदजी की आवाज़ है, ऐसा बोलना व्यवहार का कथन है। ऐसा माने लेना कि उसका कथन है, वह मिथ्यादृष्टि है। सोभागचंदभाई! अपने मंडली में ऊतारते हैं, न्याय ऊतरे तो उसे मालूम पड़े कि कैसे है। समझ में आया?

इस आदमी की भाषा ऐसी सुंदर है कि जगत धर्म प्राप्त कर ले। ऐसे कथन शास्त्र में चले हो, उसे ऐसा ही मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि है। पर के कारण धर्म प्राप्त हो, वह कथन व्यवहार के सच्चे नहीं है। अन्यथा कथन, वह धर्म समझता है उसके कारण, उस वक्त निमित्त कौन था उसका ज्ञान कराने को ऐसा कथन चला है। लेकिन ऐसा ही मान ले कि उससे प्राप्त होता है, ऐसा माननेवाला मित्यादृष्टि और अज्ञानी है। मूलचंदभाई! समझ में आया? हिन्दुस्तान में बहुत फ़र्क़ है।

कहते हैं, '**इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर...**' इसलिये आत्मार्थी को, सत्यकामी को चार अनुयोग--शास्त्र चलते हैं, उसमें आत्मा के अलावा जितना परद्रव्य के आश्रय से कथन चले उन सब की श्रद्धा छोड़ देनी चाहिये कि वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं। '**निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' निश्चय नाम स्व तत्त्व स्वतंत्र आत्मा है, अपने से ज्ञान, दर्शन और आनंद प्राप्त कर सकता है, पर से नहीं, राग से नहीं, सम्यग्दर्शन देव-गुरु और शास्त्र के निमित्त से नहीं, भगवान के दर्शन से समकित पाता नहीं, ऐसा जो निश्चय का कथन उस अनुसार माने तो उसकी श्रद्धा सच्ची होती है। बड़ी कठिन बात। समझ में आया? नरेशचंदजी! ऐसी बात है, भैया! आहाहा..!

सोनगढ़ में तो व्यवहार का लोप हो जाता है, ऐसा लोग कहते हैं। लेकिन व्यवहार है उसका लोप करते हैं कि नहीं हो उसका? है, रागादि आता है तो पर की क्रिया पर के कारण से (होती है)। भगवान की पूजा में ऐसा हाथ पड़े तो आत्मा कर सकता है ऐसा हाथ? तीन काल तीन लोक में नहीं। यह तो जड़ मिट्टी है। उसकी पर्याय का होना जड़ के कारण से है। आत्मा व्यवहार से तो करता है न? क्या व्यवहार से करता है? व्यवहार और निश्चय तो दो विरोध है। निश्चय कहता है कि कर सकता नहीं और व्यवहार कहता है कर सकता है। वह व्यवहार का कथन अन्यथा है। शास्त्र में भी अन्यथा चला है। ऐसे मान ले तो मिथ्यादृष्टि होती है। समझ में आया?

११वीं में आता है न? ११वीं गाथा है न? देखो! इसमें नहीं आता है? किसने यह कहा? जयचंद्र पंडित। देखो ११वीं गाथा में, समयसार। '**प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...**' राग से धर्म होगा और गुण-गुणी भेद करके आत्मा समझा जायेगा, ऐसा भेद का पक्ष अनादि काल से अज्ञानी का चला आया है। एक बात। '**और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।**' व्यवहार से लाभ होता है, निश्चय एक ओर पड़ा रहे, निमित्त के कारण लाभ होता है, उपादान से लाभ होता है वह बत छूट गयी है। ऐसे उपदेश को बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। दो बात। 'और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश...' चार

अनुयोग में... जयचंद्र पंडित इसका अर्थ करते हैं। जयपुर के जयचंद्र पंडित थे। कहते हैं, **'जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का...'** निश्चयनय का निमित्त देखकर, **'हस्तावलम्ब (सहायक) जानकर बहुत किया है;...'** शास्त्र में ऐसा व्यवहार का उपदेश बहुत चला है। **'किन्तु उसका फल संसार ही है।'** समझ में आया? जैन शास्त्र में कहे हुए (कथन), परद्रव्य का आत्मा करे, आत्मा का परद्रव्य करे, गुरु से ज्ञान होता है, ज्ञान था तो ज्ञेय.... यहाँ मेरा ज्ञान हो तो परवस्तु को आना ही पड़े, ऐसी पराधीनता की बात जो हो उसको माने उसको यहाँ मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझ में आया? लो।

लोगों को अनादि से राग से धर्म होता है, दया, दान से होता है, और गुण-गुणी का भेद समझाने के लिये तब भेद के कारण अभेदता प्रगट होती है ऐसा पक्ष अज्ञानी को अनादि से है। दूसरी बात, परस्पर उस ही बात की प्ररूपणा चलती है। व्यवहार चाहिये, व्यवहार चाहिये, व्यवहार हो तो निश्चय हो, ऐसा उपदेश परस्पर जैन के एकान्ती मिथ्यादृष्टि निश्चय को नहीं समझनेवाले ऐसी बातें किया करते हैं। दो (बात हुई)। जैनशास्त्र को खोजे तो भी व्यवहार का निमित्तपना देखकर बहुत उपदेश आया है। किन्तु तीनों का फल संसार है। समझ में आया? संसार यानी बन्धन है, उसमें सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? देखो, ११वीं गाथा, यहाँ **'ववहारोऽभूदत्थो'** लिया है न? वह आधार दिया है।

यहाँ टोडरमलजी कहते हैं, **'इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।'** **'व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को...'** जीव अपना स्वरूप भिन्न है, फिर भी शरीर को जीव व्यवहारनय कहती है। ऐकेन्द्रिय जीव, दो इन्द्रिय जीव, तीन इन्द्रिय जीव, चौ इन्द्रिय जीव, पंचेन्द्रिय जीव, मनुष्य जीव, देव जीव, पर्याप्त जीव, स्त्री जीव, पुरुष जीव, पर शरीर को जीव कहने का व्यवहारनय का कथन है। उसे ऐसा ही मान ले तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पहले तो ऐकेन्द्रिय जीव कहा, फिर कहते हैं, माने तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

व्यवहार का कथन ऐसी पद्धति का है, हाथी के दाँत बाहर के अलग और चबाने के अलग। मालूम है? हाथी होता है न हाथी? चबाने का दाँत अन्दर हो और बड़े बाहर हो उससे चबाया नहीं जाता, वह तो सोने की चूड़ियाँ पहनने में आये। सोने की चूड़ियाँ पहनकर शोभा दिखे। ऐसे व्यवहारनय के कथन सोन की चूड़ियाँ पहनने जैसा है। वह खाने के काम के नहीं। ऐसे व्यवहारनय के कथन निमित्त का ज्ञान कराने को है, किन्तु आत्मा का अनुभव करने में, आत्मानंद का भोजन करने में व्यवहार के कथन--दाँत कुछ काम के नहीं। समझ में आया? समझ में आता है?

'**व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को...**' लो। वह जड़ को चैतन्य कहे, जड़ को जीव कहे, सचेत शरीर ऐसा कहे, लो। आता है कि नहीं? सचेत शरीर आता है न? शरीर को सचेत कहा? कोई कहे कि यह मुरदा है? मुरदा है, सुन न। यह तो मुरदा है, मिट्टी है। भगवान आत्मा भिन्न है। दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न है। फिर भी व्यवहारनय शरीर को सचेत कहे, जीववाला कहे, वह ऐसे है नहीं परन्तु शरीर में जीव का निमित्त देखकर सचेत है ऐसा आरोप करने में आया है। इसलिये वह मान्यता छोड़ देनी चाहिये। समझ में आया?

'**उनके भावों को...**' एक द्रव्य का भाव--गुण को, अन्य द्रव्य के गुण की व्याख्या करे। समझ में आया? ये जीव और अजीव दो का ज्ञान हो, इसलिये वह जीव अजीव को ही ज्ञान कहे। क्या कहा समझ में आया? आत्मा के ज्ञान में जीव-अजीव निमित्त हैं, जीव-अजीव निमित्त हैं, उस अजीव को ज्ञान कहना, गुण यहाँ का और गुण कहना वहाँ का, वह कथन व्यवहार का है। ऐसा ही मान ले तो उसको मिथ्यादृष्टिपना लगता है। फिर भले महाव्रत पालता हो, दया पालता हो और भक्ति, पूजा और यात्रा समेदशिखर की करता हो, परन्तु जो परद्रव्य का गुण, अपने गुण में खताता है (वह मिथ्यादृष्टि है)।

शास्त्र में कहा है ऐसा आरोपित कथन से, सर्वगत। आत्मा का ज्ञान सर्वव्यापक हो गया। उस अपेक्षा से सब ज्ञानरूप हैं, सब जड़ और चैतन्य इस ज्ञानरूप है। ऐसा कहने में अपने ज्ञान में वह चीज निमित्त थी, इसलिये दूसरे जीव को और दूसरे जड़ को भी ज्ञान कहने में आया। लेकिन वैसा ही मान तो वह मिथ्यादृष्टि है।

'**उनके भावों को व कारणकार्यादिक को...**' जड़ के कारण जीव में लाभ हो, जीव के कारण जड़ चले, आत्मा के कारण वाणी बोलने में आये और वाणी के कारण दूसरे को ज्ञान हो, ऐसा जो कारण-कार्य का, दूसरा कारण और दूसरे में कार्य, ऐसा कथन किसी का किसी में मिलाकर व्यवहारनय कथन करती है। आप के चावल में नहीं होता है? क्या कहते हैं उसे? कनकी मिलाते हैं न? चावल में कनकी डाले, मिरची में बीज डाले, क्या कहते हैं? आता है न? कँकरी डाले। यहाँ तो मुझे कँकरी कहना है। बीज डालते हैं। चोरी में नहीं आता है? अतिचार। भाषा भूल गये। वह आता है न अदत्त में? मिलाकर दे। मेल मिलावट वह आप की भाषा है। हमारी भाषा याद नहीं आ रही है। कहो, समझ में आया? एकदूसरे में मिलावट करे। चावल में (कनकी मिलाये)। ये अभी देखो न, धोखा (करते हैं)। ओहोहो..! मिरची में लाल लकड़ी का चूरा डालकर मिरची बेचे। हलदी में... ऐसा धोखा (करते हैं)।

इस प्रकार कहते हैं, शास्त्र में जितने व्यवहारनय के कथन (आये कि) इस कारण से यहाँ हो, देव से आत्मा को समकित हो, गुरु से आत्मा को ज्ञान हो, शास्त्र से आत्मा को अन्दर ज्ञान हो, शास्त्र कारण और ज्ञान कार्य ऐसे कथन व्यवहार एकदूसरे को मिलावट करके करता है। ऐसा ही माने तो मिथ्यात्व है। है उसमें? है कि नहीं? .. भाई! देखो उसमें लिखा है, हाँ! उसका अर्थ चलता है। सोभागभाई डॉक्टर बनाते हैं ... अन्दर लिखा है उसका अर्थ चलता है। कहो, समझ में आया? आहाहा..! यह टूकड़ा बराबर मेल में आ गया, भाई! यहाँ आ गया, कुदरत देखो न। आज रामनवमी है, कल का बड़ा महोत्सव का दिन है और आज के दिन यह अधिकार आया है, हाँ! चलते-चलते आ गया है यह। महान अधिकार, जैन सिद्धांत के रहस्य का बीज है। आहाहा..! निश्चय-निश्चय, व्यवहार और निश्चय दोनों सच्चे, दोनों उपादेय, दोनों अंगीकार करने लायक, मूढ है, मिथ्यादृष्टि भ्रम में पडा है, उसको सत्य की खबर नहीं है। नेमचंदभाई! व्यवहार, व्यवहार की बातें चलती है न? आप के यहाँ बहुत चलती है। नमः समयसाराय--अर्थ किया तो भड़क गये। बाबुभाई मालूम है कि नहीं? नमः समयसाराय। कहा, आत्मा को नमन करे उसका नाम नमः समयसार है। भगवान को नमन करे वह तो विकल्प और व्यवहार है। हाय.. हाय..! ये तो व्यवहार को मानते नहीं। सुन न।

व्यवहार के जितने कथन पराश्रय परभक्ति, परपूजा, परदया, परदान वह आत्मा कर सके और उससे लाभ होता है, ऐसे कथन व्यवहारनय कोई कारण को किसी के कार्य में मिलाकर बात करती है, इसलिये ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। सोभागचंदभाई! है उसमें? मिथ्यात्व है। कहाँ गया वह निःशंकपना? कितने साल हुए? बारह हुए, बारह। पहली बार आये थे न? बारह वर्ष हुए। बारह पूरे हो गये। अरे.. भगवान! तू कौन है? और परवस्तु कहाँ है? उसकी कोई भी पर्याय हो, वह तेरे से हो ऐसा कहीं लिखा हो (तो) ऐसा मत मानना। ऐसा मानना कि वह होते वक्त इस राग की उपस्थिति देखकर उससे होता है ऐसा कहने में आया है, लेकिन वह बात सच्ची नहीं है। समझ में आया?

सत्य और असत्य में वर्तमान में बहुत फेरफार (हो गया), पूरी बात बदल गयी है। आकाश फटा हो उसको पैवंद कैसे करें? इसप्रकार वर्तमान में प्ररूपणा (ऐसी चलती है कि), व्यवहार से होता है, व्यवहार से कर सकते हैं, व्यवहार से उपचार से तो कर (सकते हैं), क्या उपचार व्यर्थ है? सुन न अब, वह तो ज्ञान कराने को (कहा है)। एक तो असद्भुत व्यवहारनय ही उपचार है और असद्भुत का उपचारनय। आहाहा..! क्या कहते हैं? वह तो असद्भुत व्यवहारनय से कथन शास्त्र में चला हो

कि कर्म से विकार होता है, इससे यह होता है, आत्मा को राग हुआ इसलिये कर्मबन्ध होता है, वह तो असद्भुत व्यवहार यानी उपचार के कथन हैं, सच्चे हैं नहीं। उसमें असद्भुत उपचार का उपचार आये। यह मेरा है, उससे यह हुआ और फलाने से यह (हुआ), ऐसे सब व्यवहार के कथन कहे, वह मिलावट करके कहा है। चावल में कँकर डालकर बातें कही है। शास्त्र को ऐसा कहने का क्या कारण होगा? कहा न, निमित्त का ज्ञान कराने को। चावल में कँकर, शक्कर में... समझ में आया? क्या कहते हैं? चूरा, पत्थर का चूरा बहुत मुलायम होता है? चोरोडी होती है न? चिरोडी का प्लास्टर है। चिरोड़ी आती है न? पत्थर, टक-टक पत्थर आता है, बहुत टकटक काँच जैसा। चिरोड़ी है पत्थर। बारीक चूरा करे तो चमकता है, उसको शक्कर में डाले। व्यवहारनय, शक्कर में चिरोड़ी डाली हो ऐसा कथन करती है। ऐसा यहाँ कहते हैं। सत्य बात को निमित्त के कथन द्वारा असत्य बात करती है, उसको ऐसी ही मान ले तो वह अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है, उसको जैन नहीं कहते हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है, भैया! यह बात कुदरती मोक्षमार्गप्रकाशक चलता है। ओहोहो..!

मुमुक्षु :-- मुद्दे की बात है।

उत्तर :-- मुद्दे की बात है, समस्त जैनशास्त्र का निचोड़ निश्चय और व्यवहार। वह क्या कहता है? देखो भाई! मक्खन निकालना हो न, मक्खन, तो डोरी तो एक है, दो सिरा लेना। कभी खीँचना, कभी यह खीँचना, कभी वह खीँचना। कभी व्यवहार से लाभ, कभी निश्चय से लाभ। ऐसा दृष्टान्त देकर पुरुषार्थसिद्धयुपाय का (आधार देते हैं)। ग्वालियन होती है न? ग्वालियन। ग्वालियन नहीं? डोरी का एक सिरा खीँचे, दूसरा ढीला छोड़े, मक्खन निकालते समय। इसप्रकार आप ऐसा करो कि जब निश्चय को मुख्य करते हो तो व्यवहार को गौण करके कथन करो और व्यवहार को मुख्य करो तब निश्चय को गौण करो। ऐसा है नहीं। वह तो ज्ञान करने की बात है। वस्तु का स्वआश्रय लेने में और पर आश्रय छोड़ने में उस कथन की बात वहाँ लगा दे, वह बात मिथ्यादृष्टि लगाते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, अरे..! व्यवहारनय ऐसी व्यभिचारिणी नय है। समझ में आया? एक परमाणु ने दूसरे परमाणु को परिणमित कर दिया, कर्म के उदय से आत्मा को विकाररूप परिणमित कर दिया और अच्छा निमित्त ऐसा पड़ा कि जिसके प्रभाव से सम्यग्दर्शन हो गया, ऐसा सब कथन (पढ़कर) ऐसा ही मान ले (वह) मिथ्यादृष्टि है। सोभागचंदभाई! कठिन बात आयी है, बराबर आयी है अब की बार। बहुत बात आते होंगे लेकिन अब की बार... कहाँ गये? ताराचंदजी नहीं आये? बुखार आया?

'**इसलिये उसका त्याग करना।**' देखो! व्यवहारनय का कथन, एक द्रव्य को

दूसरे द्रव्य के साथ मिलाकर एक पर्याय को--अवस्था--अपनी दशा (को), दूसरी पर्याय को मिलाकर कारण-कार्य बताकर जो कथन करे (ऐसी) श्रद्धा छोड़ देना। लेकिन ऋषि मुनियों ने कहा और श्रद्धा छोड़ देनी? लेकिन ऋषि मुनि यह क्या कहते हैं? यह ऋषि मुनि तो कहते हैं कि '**ववहारोऽभूदत्थो**'। जितने हमारे व्यवहार के कथन आये उसे अन्यथा निमित्त अपेक्षा करके, निमित्त अपेक्षा बताने को उपचार से अन्यथा कथन किया है। बड़ा विरोध वर्तमान में। बाबुभाई! आहाहा..!

किसका त्याग करना? शास्त्र में जो व्यवहार के कथन (आये), एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय अन्य द्रव्य, अन्य गुण और अन्य पर्याय को मिलाकर बात करी हो ऐसी श्रद्धा को छोड़ देना (कि) ऐसे है नहीं। उस श्रद्धा का त्याग करना। बात कठिन। मूलचंदजी! कठिन बहुत है, हाँ! सब ऐसा कहे, ओहो..! ऐसा ऐसा? अपने ऐसा करेंगे तो लोग धर्म प्राप्त करेंगे। वह तो अपना शुभ विकल्प ऐसा आता है, बस इतना। दूसरे की पर्याय हो कि न हो, अपने कारण से होती है ऐसा तीन काल तीन लोक में बनता नहीं। कथन व्यवहार का ऐसा, निमित्त कौन है, उसको पहिचानने में कथन ऐसा आता है। लो, यह टोडरमलजी, मोक्षमार्गप्रकाशक (बनाया), गृहस्थाश्रम में थे, हाँ! स्त्री, पुत्र था। लेकिन सिद्धांत का मर्म को पाकर, जगत सिद्धांत के नाम से व्यवहार की बात सच्ची मान लेते हैं, उसके लिये फैंसला कर दिया कि तुम कहते हो ऐसी बात है नहीं। क्या कहा?

व्यवहारनय अर्थात् एक आत्मा के अलावा, कोई भी परमाणु स्वद्रव्य के अलावा, कोई भी जीव के अलावा, अन्य द्रव्य को, अन्य गुण को, अन्य अवस्था से दूसरे में कुछ हो, ऐसे कथन कारण-कार्य के आये उसे मिलाकर कथन करे उसकी मान्यता रखनी सो मिथ्यात्व है, इसलिये उसका त्याग करना।

'**तथा निश्चयनय...**' सच्ची दृष्टि, निश्चय नाम सच्ची दृष्टि, सच्चा ज्ञान '**उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है,...**' देखो! उन्हीं को। जो व्यवहार कहता है उन्हीं को '**यथावत् निरूपण करता है,...**' व्यवहार कहे कि दिव्यध्वनि से ज्ञान होता है, निश्चय कहे कि होता नहीं। व्यवहार कहे कि नर्क में बहुत वेदना भोगे तो समकित होता है, निश्चय कहे कि होता नहीं। व्यवहार कहे कि भगवान के दर्शन से समकित होता है, निश्चय कहे कि आत्मा से होता है, पर सो होता नहीं। देखो, 'उन्हीं को' शब्दप्रयोग किया है न? उन्हीं को अर्थात् व्यवहार जितना कारण-कार्य एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में और एक पर्याय को दूसरी पर्याय में, एक गुण को दूसरे गुण में (मिलाकर कहे)। समझ में आया? जितने कथन किये, उपचार के बोल आये हैं, भाई! नव बोल आलापपद्धति में। आलापपद्धति में सब नव बोल (आये हैं)। द्रव्य में द्रव्य का उपचार, द्रव्य में

गुण का, द्रव्य में पर्याय का। गुण में द्रव्य का, गुण में गुण का, गुण में पर्याय का, पर्याय में द्रव्य का, पर्याय में गुण का, पर्याय में पर्याय का। ऐसे नव कथन आलापपद्धति में मूल पाठ में चले हैं। दृष्टान्त दिये हैं, यह स्त्री मेरी, यह मकान मेरा, यह देश मेरा, वह सब कथन झूठे हैं। समझ में आया? ये पैसे मेरा, इज्जत मेरी, धूल भी तेरी नहीं है, वह तो पर की वस्तु है। मात्र तेरे पास उस जाति का पुण्य का निमित्त और उसका संग देखकर, इसका पैसा, इसका पुत्र, इसकी पुत्री, इसका देश, इसका कपड़ा, इसका गहना, ऐसा व्यवहारनय कहती है, उसको ही यथावत् निश्चयनय प्ररूपण करती है कि कोई किसी का है नहीं। पुत्र का पिता नहीं, पिता का पुत्र नहीं, कपड़ा आत्मा का नहीं, आत्मा का कपड़ा नहीं। लुगडां समझते हो? कपड़ा।

गहना, चश्मा। यह चश्मा इसका है, व्यवहारनय कहे। निश्चयनय कहे कि, नहीं, उसका नहीं है, चश्मा चश्मा का है। व्यवहारनय कहे कि चश्मा पहनने पर ज्ञान का विकासित होता है देखने में, निश्चय कहे कि नहीं, अपने कारण आत्मा जानता है। चश्मा के कारण जानता नहीं। समझ में आया? बहुत फेर जगत में, भाई! शास्त्र के बहाने भी उलटे रास्ते पर चढ़ गये हैं, उसका यह कथन चलता है।

व्यवहारनय ऐसी बात करता है, एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में... जैसे कि शरीर को सचेत कहा। निश्चय कहता है कि नहीं। शरीर सचेत नहीं है। एक भाव को दूसरे का भाव (कहे)। कर्म के कारण विकार होता है, ऐसा व्यवहार कहे। निश्चय कहे कि नहीं। विकार अपने से होता है, कर्म के कारण नहीं होता। व्यवहार कहे कि कर्म के कारण अब तक रखड़ा, निश्चय कहे कि नहीं, अपनी भूल के कारण रखड़ा है। समझ में आया?

कल वह आती थी, रात्रि को चला था न? कर्म का बोझा भारी। तो हमारे दुर्गादासजी हँसते थे। मालूम है कि नहीं? मालूम है, बराबर मालूम है। वह आये थे न रात्रि को? कर्म का बोझ ऐसा है कि उतार दो। कहीं पर आया तो था, तुम्हारी भक्ति में आया था। कर्म के जोर से हमें ऐसा हुआ है। ऐसी कोई बात आयी थी, भक्ति में वह शब्द आया था। दुर्गादासजी ने थोड़ा मेरे सामने देखा था। मैंने कहा, वह चलता है, ऐसी बातें--कथन चले। समझ में आया? दोपहर को था? चार बजे कोई आया था। कर्म के कारण से ऐसा होता है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, कर्म का भारी बोझा, आया था न? रात्रि को आया था? कर्म का बोझ, ऐसा बोझ। कर्म का बोझ। वह आया था। दोपहर को आया था। रात्रि को था, हाँ, मुझे रात्रि का मालूम है। ... तुमने दूसरा कोई प्रश्न किया था, लक्ष्य

का। लेकिन वह भी व्यवहार का कथन है। आत्मा पर कर्म का बोजा है नहीं, परन्तु आत्मा में जड़ कर्म निमित्त देखकर, आत्मा में कर्म है नहीं, स्वचतुष्टय में है नहीं, अपना आत्मा द्रव्य है, क्षेत्र उसका... क्या कहते हैं? अवगाहन, चौड़ाई, चौड़ाई, अपनी चौड़ाई असंख्य प्रदेश है, अपनी पर्याय अनंत गुण की वर्तमान में है और गुण त्रिकाल है। अपने में आत्मा है, उसमें कर्म नहीं, दूसरा द्रव्य नहीं। व्यवहारनय कहती है कि आत्मा में कर्म है, निश्चय कहता है कि नहीं। व्यवहार कहता है कि ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, निश्चय कहता है कि नहीं। समझ में आया?

व्यवहारनय कहती है कि अंतराय कर्म से आत्मा का वीर्य रोका गया है, निश्चय कहता है कि नहीं, अपने कारण से रुका है, कर्म से रुका है वह व्यवहार का कथन है। आहाहा..! सुना नहीं, बात कभी सुनी नहीं। यूँ ही चलो, चलो धर्म.. धर्म.. धर्म। समझ में आया? व्यवहार कहता है कि पर की हिंसा कर सकता है। निश्चय कहता है कि पर की हिंसा कर सकता नहीं। निश्चय सत्य है, व्यवहार असत्य है। समझ में आया? व्यवहार कहता है कि पर की दया पालना, रक्षा करना, ऐसा व्यवहार का कथन आये शास्त्र में। निश्चय कहता है कि ऐसा है नहीं। पर की रक्षा तीन काल तीन लोक में आता कर सकता नहीं। मात्र पर की रक्षा के काल में जीव का दया का भाव निमित्त देखकर ऐसा आरोपित कथन आया है। ऐसा मान ले कि उसने दया पाली (तो) मिथ्यादृष्टि है।

सात व्यसन से, सात व्यसन के पाप से मिथ्यात्व का बड़ा पाप है। क्या कहा? सात व्यसन, उससे भी मिथ्यात्व (बड़ा पाप है)। उसमें है, देखो! छठवें अध्याय में देखो। नीचे है, नीचे। '**निन्दन्तु**' के ऊपर। पृष्ठ-१९८, है? '**निन्दन्तु**' के ऊपर बीच में। '**जिनधर्म में यह तो आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया है; इस मिथ्यात्व को सप्तव्यवसनादिक से भी बड़ा पाप जानकर...**' है शांतिभाई? भले .. है, शब्द तो यही है, पृष्ठ वही है, दूसरी कोई बात नहीं है। पृष्ठ वही है। मिथ्याश्रद्धा--व्यवहार कहता है ऐसा मानना मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व का पाप सात व्यसनादिक से, शिकार, मांस, वेश्या का लंपटपना उस पाप से भी महान पाप जानकर पहले छुड़ाया है। कहो, समझ में आया?

'**इसलिये जो पाप के फल से डरते हैं, अपने आत्मा को दुःखसमुद्र में नहीं डुबाना चाहते, वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ो;...**' पहली मिथ्याश्रद्धा जरूर छोड़ो। '**निंदा-प्रशंसादिक के विचार से शिथिल होना योग्य नहीं है।**' अरे..! ऐसा करेंगे तो दुनिया में गिनती नहीं होगी, हमें मानेंगे नहीं, अपने अकेले हो जायेंगे, अपनी इज्जत है वह चली जायेगी, निंदा-प्रशंसा की दरकार छोड़कर मिथ्यात्व का पाप

पहले छोड़ना। दुनिया की प्रतिक्रिया क्या होगी उसका लक्ष्य करना नहीं। सोभागचंदभाई! अच्छी बात है? देखो! क्या बोलेंगे? ऐसा करेंगे तो कोई सेठ नहीं मानेंगे, सेठ पैसा नहीं देंगे, नौकरी नहीं मिलेगी, सत्य बात (मानेंगे तो) पुत्र की शादी नहीं होगी, पुत्र-पुत्री की शादी नहीं होगी, दुनिया की दरकार छोड़कर भगवान ने कहा ऐसे व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर निश्चय की यथार्थ श्रद्धा करना। दुनिया की प्रतिक्रिया क्या होगी, मेरी इस बात से दुनिया क्या बोलेगी, मेरी कितनी इज्जत रहेगी, कितनी इज्जत चली जायेगी, इतनी इज्जत पचास साल से जमी है तो ऐसा सत्य कहने में... ए.. नाश हो गया, व्यवहार का लोप हो गया, ऐसा कहकर हमारी गिनती होगी नहीं। ऐसी दरकार नहीं करना। समझ में आया?

'**निश्चयनय...**' जो व्यवहारनय कहती है, २५६ पृष्ठ, '**उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है,...**' व्यवहार कहे कि आठ कर्म से रुका, निश्चय कहे कि, नहीं। यह तकरार हुई, (संवत) २००६ की साल में। अरे.. भगवान कहते हैं, परम उपकारी, अनंत तीर्थंकर (कहते हैं कि) आठ कर्म के कारण रखड़ा। कहा, झूठ बात है, अपनी भूल से रखड़ा है। अपनी भूल से रखड़ा, कर्म तो परद्रव्य है। पर द्रव्य पर को रखड़ाये ऐसी तीन काल में ताकात है नहीं। '**किसी को किसी में नहीं मिलाता है;...**' एक बात यह कही कि व्यवहार जो कहता है उसको निश्चय निषेध करके, यथावत् जैसी वस्तु की स्थिति है उसको कहते हैं। '**किसी को किसी में नहीं मिलाता है;...**' निश्चय कोई किसी का कारण--इस कारण से यहाँ कार्य होता है और इस कारण से यहाँ कार्य होता है, ऐसा निश्चयनय मिलाकर, मिलावट करके बात नहीं करती।

यह लकड़ी अँगूली से ऊँची हो ऐसी बात निश्चयनय नहीं करती। व्यवहारनय कहती है कि अँगूली तो ऊँची हुई, कुम्हार था तो घड़ा हुआ। व्यवहारनय कहती है। निश्चयनय कहती है, घड़ा मिट्टी से हुआ, कुम्हार से हुआ नहीं, ऐसा निश्चयनय कहती है। समझ में आया? ओहोहो..! बड़ी बात भाई इसमें। भीखाभाई! इसमें गुरु की कुछ कृपा हो, वह सब ऊड़ जाता है। इसमें क्या करना? व्यवहार के कथन विनय के हो, किन्तु ऐसा मान बैठे कि उससे ऐसा हुआ और मेरे से वहाँ प्रभाव पड़ा, एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का प्रभाव पड़े तो प्रभाव क्या चीज है? प्रभाव क्या चीज है कि उसमें गयी? किसका प्रभाव? रूपचंदजी! कहते हैं कि, महाराज का बहुत प्रभाव पड़ता है। लोग ऐसा कहते हैं। वह तो उसकी योग्यता है तो निमित्त कहने में आता है। प्रभाव-फ्रभाव की बात तो व्यवहार से कथन चलता है। आहाहा..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- प्रभावित हुआ, वह तो बोलने में कथन है। प्रभावित तो उसकी योग्यता

से हुआ है, उसकी लायकात से समझा है तब निमित्त से प्रभावित हुआ ऐसा कथन चलता है। उसे निश्चयनय यथावत् कहती है कि उससे प्रभावित नहीं हुआ है। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- सोनगढ़ की भूमि तो...

उत्तर :-- किसी को नहीं लगती, वह तो उसकी योग्यतावाले को लगता है। कहते हैं सही कि सोनगढ़ की गंध आ जाये, ऐसा होता है। आहाहा..! हीराभाई जब यहाँ आये थे न? आपके भाई, छोटे भाई हीराचंदजी आये थे न? यहाँ से थोड़ी बात ले गये थे तो पेपर में आया था, सोनगढ़ की गंध लेकर आये हैं। ऐसा पेपर में आया था। अरे.. भैया! वह तो उसकी बुद्धि में वह सत्य बात जची हो उसकी गंध है, पर की गंध किसी में आती नहीं। व्यवहार का कथन चले तो ऐसा मान ले।

व्यवहार जो झूठ कहता है, निश्चय उसको यथावत् कहता है। '**किसी को किसी में नहीं मिलाता है;...**' मिलावट नहीं करता। इस कारण से यहाँ कार्य होता है, ऐसे व्यवहार के कथन बहुत आये। समझ में आया? लेकिन वह बात, निश्चयनय कहती है कि ऐसा नहीं है, अपने ही कारण से कार्य हुआ है। द्रव्य के कारण कार्य होता है, पर्याय का कार्य पर्याय में होता है, पर्याय का कार्य पर्याय से होता है। ज्यादा से ज्यादा पर्याय का कार्य द्रव्य से होता है उतनी बात करे। परन्तु पर से पर्याय का कार्य होता है, ऐसा निश्चयनय नहीं कहती है। निश्चयनय तो यथावत् जैसी वस्तु की स्थिति स्वतंत्र है (ऐसा ही कहती है)।

व्यवहार कहे कि धर्मास्तिकाय के अभाव से सिद्ध ऊपर जा नहीं सकते। निश्चय यथावत् कहे कि अपनी योग्यता है तो वहाँ रहते हैं। बड़ी तकरार। धर्मास्तिकाय का अभाव है तो सिद्ध भगवान ऊपर जाते नहीं। सिद्ध भगवान को भी उसने रोका। और क्या बात करते हैं? दूसरी बात करते हैं कि इतनी शक्ति, मर्यादित ठराते हैं उसको। वहाँ तक रहना ऐसी मर्यादित (शक्ति है)। लेकिन मर्यादित शक्ति हो नहीं सकती, अनंत शक्ति अमर्यादित है। जितनी खिली हो उतनी अमर्यादित हो। इसलिये जाने की शक्ति तो है, परन्तु धर्मास्ति नहीं है इसलिये नहीं जाते हैं। ऐसा नहीं है। उसकी शक्ति की अपरिमितता की हद ही वहाँ तक रहने की है। उतनी शक्ति कम है ऐसा आरोप करना वह वस्तु की स्थिति में नहीं है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह कहते हैं, उसमें लिखा है, बहुत आया है। देखो! सिद्ध की पर्याय में अनंत महत्ता, अनंत बेहद शक्तियाँ द्रव्य की अनंत शक्तियाँ हैं, वह शक्ति आगे नहीं जा सकती है ऐसी योग्यता मानते हैं तो अनंत को मर्यादा में ले आये। आहाहा..!

बाबुभाई! भगवान! तुझे भूल निकालनी पड़ेगी, हाँ! नहीं तो भगवान नहीं भासेंगे।

क्या कहते हैं? निश्चयनय जो वस्तु का स्वरूप स्वयंसिद्ध स्वतंत्र है; द्रव्य यानी वस्तु, गुण यानी शक्ति, पर्याय यानी दशा अपने कारण से स्वतंत्र है, पर के कारण पर स्वतंत्र है, ऐसा यथावत् निश्चयनय कहती है। वह, किसी को किसी में मिलाकर इसके कारण यहाँ हुआ और इसके कारण यहाँ हुआ, ऐसी बात नहीं करती है। निश्चयनय नहीं करती है। '**सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है;...**' ऐसे ही श्रद्धान से समकित होता है। व्यवहार में कहा, ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है। व्यवहारनय की श्रद्धा करने से मिथ्यात्व होता है। निश्चयनय ने जो यथार्थ कहा, ऐसी श्रद्धा से उसे समकित होता है। कहो, नेमिचंदभाई! इतना तो स्पष्ट कथन पड़ा है, हिन्दी भाषा में है। अभी तो गुजराती हो गया। बहुत पुस्तक हो गये। अभी तीन हज़ार नये छापने हैं। आहाहा..! ऐसा सत्य एक बार सुनकर उसकी श्रद्धा, रुचि तो करो कि बात तो ऐसी है, दूसरी बात है नहीं। पर के कारण से पर में हो और पर के कारण से पर में कुछ फेरफार हो (ऐसा है नहीं)।

पानी में आईसक्रिम आया तो पानी ठंडा हुआ, व्यवहारनय कहती है। निश्चयनय कहती है, अपनी पर्याय ठंडी होने के कारण ठंडी हुई है। अग्नि से पानी उष्ण हुआ, व्यवहारनय कहती है। अन्यथा कारण-कार्य कहती है। निश्चयनय कहती है कि अपनी उष्णपर्याय को पलटकर ठंडीपर्याय अपने स्पर्शगुण की पर्याय के कारण पानी ठंडामें से उष्ण हुआ। ठंडी पर्याय का व्ययकर उष्ण हुआ। अग्नि से उष्ण हुआ वह व्यवहार का कथन ऐसा मान ले तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा..!

मुमुक्षु :-- अकाल मृत्यु...

उत्तर :-- अकाल मृत्यु निमित्त से कथन है। भगवान ने देखा है कि उस समय मृत्यु होगी, किन्तु निश्चय से वह परमाणु की जाति ऐसी थी कि संक्रमण होकर उस ही समय में छूटने की तैयारी है। उसको अकाल मृत्यु निमित्त से कहा है। निश्चय से अकाल मृत्यु है नहीं। भगवान के ज्ञान में देखा कि उस समय देह छूट जायेगा, कर्म छूट जायेगा, आत्मा (छूट जायेगी), वह सब देखा है ऐसा होता है। देखा उस कारण से होता है ऐसा नहीं। होता तो अपने कारण से है, परन्तु अपनी पर्याय में जब छूटने का काल है तब छूटेगा। १०० वर्ष का आयुष्य लाया हो और ४५ वर्ष में मर जाये, वह व्यवहार का कथन है। ऐसा मान ले तो दृष्टि मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- धूल भी असर नहीं करता। क्या कहते हैं? पैसा, आधा पैसा तो काम करे? एक पाव पाई नहीं। पर में पाव पाई भी असर करे ऐसा मानना मूढ मिथ्यादृष्टि

पागल हो गया है। जैन धर्म को समझनेवाला नहीं है, पागल है ऐसा कहते हैं। मूलचंदभाई! समझ में आया? आहाहा..!

'**इसलिये उसका श्रद्धान करना।**' जितना स्वद्रव्य का स्वतंत्र कथन हो, स्ववस्तु, स्वशक्ति, स्वपर्याय विकारी या अविकारी। परवस्तु, परगुण और पर की पर्याय स्वतंत्र है, ऐसे जो कथन किये हों, उसका वैसे श्रद्धान करना। और उससे समकित होता है, '**इसलिये उसका श्रद्धान करना।**' निश्चय का श्रद्धान करना और व्यवहार की श्रद्धा, 'है' ऐसा जानकर श्रद्धान छोड़ना। समझ में आया? तब प्रश्न हुआ, शिष्य को प्रश्न हुआ। आपने तो सब निकाल दिया। तो शास्त्र में दो नय चली है उसका क्या करना? देखो प्रश्न।

'**यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे?**' शास्त्र में दोनों नयों को ग्रहण करने योग्य कहा है। वह ग्रहण का अर्थ नहीं समझता। दोनों नयों को। व्यवहार ग्रहण करना, व्यवहार ग्रहण करना, निश्यय ग्रहण करना ऐसा शास्त्र में बहुत आता है, ऐसा शिष्य कहता है। '**जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है,...**' देखो! 'ग्रहण' पर यहाँ वज़न है। '**सो कैसे?**'

'**समाधान :-- जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता से व्याख्यान है,...**' सुन! जैनमार्ग में किसी जगह सत्य बात, द्रव्य-गुण-पर्याय अपने से होते हैं, ऐसा निश्चय का कथन मुख्यता से व्याख्यान है। '**उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'-ऐसा जानना।**' निश्चय का कथन हो कि आत्मा की पर्याय आत्मा से होती है, जड़ की पर्याय जड़ से होती है। इसके कारण से यहाँ होती है ऐसा नहीं है, ऐसा जहाँ निश्चय का कथन मुख्यता से किया उसने सत्यार्थ ऐसे ही है ऐसा जानना। निश्चय के कथन सच्चे हैं, ऐसा ही है ऐसा जानना।

'**तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है,...**' देखो! वह तो व्यवहारनय की मुख्यता सहित व्याख्यान है। ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुके, निमित्त से समकित होता है, वह तो व्यवहारनय की मुख्यता सहित व्याख्यान है। देखो, यहाँ मुख्यता तो ली। '**उसे 'ऐसे है नहीं,...**' व्यवहार कहता है ऐसा नहीं है। परन्तु '**निमित्तादिकी अपेक्षा उपचार किया है।**' निमित्त का ज्ञान कराने को, समकित के काल में निमित्त कौन था? श्रवण किसका था? मूर्ति कौन थी? उतना निमित्त का ज्ञान कराने को व्यवहार से बात कही है, व्यवहार की मुख्यता से। परन्तु उससे हुआ है ऐसा मानना नहीं। निमित्तादि, प्रयोजन साथ में होता है न, दिखे कि यही वस्तु थी और यहाँ कार्य हुआ। '**निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है।**' देखो! यहाँ तो उपचार किया, निमित्त को उपचार कहा। '**निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है--ऐसा**

**जानना**'। निश्चय का, एक-एक द्रव्य का, एक-एक पदार्थ का स्वयं स्वतंत्र शक्ति, अवस्था का जहाँ-जहाँ वर्णन हो वहाँ उसको सत्य जानना। परन्तु व्यवहार का कथन एकदूसरे में मिलावट करके किया हो (तो) वहाँ ऐसा नहीं है, वह झूठी बात है। समझ में आया? ऐसा नहीं है। व्यवहार कहता है ऐसा नहीं है। लो, निश्चय कहता है ऐसा है। शास्त्र का अर्थ करने की पद्धति को न जाने और तकरार करे, देखो! यह तो टोडरमल ने कहा है, आप्त के वाक्य में कहाँ है? ये आप्त का वाक्य क्या है? '**सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं यदुक्तं**' उस पर से तो यह सब बात चलती है। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- कुन्दकुन्दाचार्य की मूल गाथा है।

उत्तर :-- मूल गाथा दी है, मोक्षपाहुड़ की।

भाई! भगवान तो ऐसा कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य मोक्ष अधिकार में, जितना व्यवहार का (कथन हो), राग को मोक्षमार्ग कहा हो, दया, दान को मोक्षमार्ग कहा हो वह, मोक्षमार्ग की अंतर दशा निश्चय हो, उसमें निमित्त देखकर कहा है। परन्तु उससे होता है ऐसा कहा हो, वह ऐसे नहीं है। व्यवहार से निश्चय मोक्षमार्ग होता है ऐसा नहीं है। आहाहा..! समझ में आया? व्यवहार से मोक्षमार्ग होता है ऐसा नहीं है, ऐसा जानना।

मुमुक्षु :-- वहाँ 'है' ऐसा लिखा है।

उत्तर :-- वहाँ 'है' लिखा हो, वहाँ नहीं है ऐसा मानना। व्यवहारनय कहती है कि है, होता है। निश्चय कहता है ऐसा नहीं है। 'है' में 'नहीं है' लगा देना। जितने कथन शास्त्र में व्यवहार का आये, व्यवहार अर्थात्.. स्वआश्रय निश्चय, पराश्रित व्यवहार। एक तत्त्व का पर के आश्रय का कथन चले, इसने इसकी सेवा करी, इसने इसका ऐसा किया तो उसे अच्छा हुआ, दवाई की तो रोग मिटा, इसने बहुत उपचार (किया), वह सब कथन निमित्त के हैं। वह ऐसे नहीं है। उसकी पर्याय उस काल में उस प्रकार से होनेवाली थी और हुई वह सच्ची बात यथार्थ है। समझ में आया? जगत के साथ बड़ी (तकरार), भाई! इसमें जगत के साथ मिलान हो ऐसा नहीं है।

देखो, यह अधिकार महान मक्खन है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अधिकार मक्खन है, उसमें भी यह अधिकार सार में सार निश्चय-व्यवहार का विवेक क्या है, यह दर्शाते हैं। व्यवहार तो थोड़ा छल देखकर सीधा सर्वस्व हो जाता है। थोड़ा निमित्त देखा, यहाँ विकार हुआ और निमित्त देखा तो (कहने लगता है), हाँ, उससे हुआ। समझ में आया? शरीर और आत्मा का सम्बन्ध देखकर, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध देखकर कहने लगता है, हाँ, वह शरीर आत्मा का है, हाँ! शरीर जीव का है, हाँ! इस

प्रकार व्यवहार सर्वस्व हो जाता है।

मुमुक्षु :-- दिवार को शरीर होता है?

उत्तर :-- दिवार को भी शरीर है परमाणु, उसमें क्या है? उसके औदारिक शरीर के परमाणु अलग जातिरूप परिणमे हैं। समझ में आया? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध देखकर (कहता है)। शरीर की पर्याय शरीर के कारण, आत्मा की पर्याय आत्मा के कारण। मात्र दोनों का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध देखकर व्यवहारनय सर्वस्व हो जाता है कि आत्मा के कारण शरीर चलता है, शरीर चले इसलिये आत्मा को चलना पड़े। वह मान्यता बिलकुल झूठी है। समझ में आया?

'**निमित्तादि की अपेक्षा...**' निमित्त उपचार, व्यवहार '**उपचार किया है--ऐसा जानना। इसप्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों को ग्रहण है।**' जानने का नाम ग्रहण है। व्यवहार को अंगीकार करना, निश्चय को अंगीकार करना ऐसा 'ग्रहण' शब्द का अर्थ नहीं है। इसप्रकार जानना, इसप्रकार जानना माने क्या? निश्चयनय से मुख्यता से जहाँ निश्चय का कथन हो, वह यथावत् है ऐसा जानना। व्यवहार का कथन हो वहाँ, 'ऐसे नहीं है' ऐसा जानने का नाम ही, नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। दोनों नयों को जानना उसका नाम ग्रहण है। लेकिन निश्चय भी आदरणीय और व्यवहार भी आदरणीय है, यह बात इसप्रकार भगवान ने तीन काल तीन लोक में कही नहीं है।

लो, व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, वह बात सिद्ध की, सिद्ध की। समझ में आया? जाना हुआ प्रयोजनवान है। आत्मा अपने आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्व के आश्रय से प्राप्त करे उसमें, रागादि मंदता हो, भक्ति, पूजा, दान, दया हो तो उसे जानने लायक कहा है। उस व्यवहार को ग्रहण करना अर्थात् जानना कि व्यवहार है। जानना ऐसा कहा है। ग्रहण करना यानी आदरणीय है ऐसा भगवान ने व्यवहारनय को कहीं आदरणीय कही नहीं है। कथनशैली में ऐसा आवे, वस्तु के स्वरूप में ऐसा है नहीं। समझ में आया?

'**जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। तथा दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर...**' देखो! निश्चय का कथन, स्वतत्त्व आश्रय से हो वह सच्चा, और पर से कहा हो पर में, वह भी सच्चा, ऐसा समान जानकर, सत्यार्थ जानकर, इसप्रकार भी है और इसप्रकार भी है। कर्म से आत्मा अटके, विकार आत्मा से हो, दोनों बात लो। दो बात हो नहीं सकती।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- दो बात यानी कि यहाँ निमित्त है उसका ज्ञान करने से अनेकांत।

उससे हुआ नहीं है उसका नाम अनेकांत है। कर्म से विकार नहीं हुआ है, आत्मा से हुआ है उसका नाम अनेकांत है। अस्ति और नास्ति का नाम अनेकांत है। इससे भी हो और उससे भी हो, उसमें अनेकांत कहाँ रहा? वह तो फूदडीवाद हुआ। दो द्रव्य की एकता हुई। समझ में आया?

शास्त्र में दोनों नयों के व्याख्यान को समान और सत्यार्थ है, इसप्रकार से भी व्यवहार से है और व्यवहार से भी है ऐसे भ्रमरूप प्रवर्तने से तो दोनों नय जानने योग्य करना नहीं कहा है। इसप्रकार ग्रहण करने योग्य नहीं कहा है। देखो, यह बात वर्तमान में बहुत फेरफार चाहती है। लोग नय के नामपर और शास्त्र में लिखावट आये तो कहे, ये लिखा। किस नय का कथन है? व्यवहार या निश्चय? व्यवहार का कथन निमित्त का ज्ञान कराने को (किया है), परमार्थ बात वह व्यवहार नहीं करता है। ऐसा न जाने तो उसे दोनों सत्य, दोनों निश्चय और व्यवहार आदरणीय है (ऐसा माननेपर) वह मिथ्यादृष्टि होता है और भ्रमणा में जाता है।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर सं.–२४८८, चैत्र सुद–११, रविवार,
दि. १५–४–१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १७

यह, मोक्षमार्गप्रकाशक का सातवाँ अध्याय है। जैन मतानुयायी मिथ्यादृष्टि का स्वरूप। सूक्ष्म विषय है। अनादि काल का तकरार का विषय है। तकरार को टालने का विषय है। कोई कहता है, शास्त्र में सब कथन आये वह सब आदरणीय हैं। क्योंकि वह सब तो भगवान द्वारा कहे गये हैं। समझ में आया? शास्त्र में सब कथन आया वह सब आदरणीय है। व्यवहारनय से कथन आया हो वह भी आदरणीय है और निश्चय से आया हो वह भी आदरणीय है, ऐसा कहते हैं। उसका समाधान करते हैं, उसका समाधान करते हैं।

‘**जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है।**’ समझ में आया? वह पैरेग्राफ हो गया है, फिर से (लेते हैं)। प्रथम पंक्ति उत्तर की। ‘**जिनमार्ग**

**में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता लिये...**' स्व-आत्मा को पर-परमाणु को, स्वाश्रित जितने निश्चय के कथन आवे, उसकी मुख्यता सहित कथन हैं सो तो सत्य हैं। समझ में आया? यह बड़ी तकरार अभी निश्चय और व्यवहार की (चलती है)। समझ में आया?

देखो, प्रश्न ऐसा था कि, '**यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे?**' ऐसा शिष्य का प्रश्न है। आप तो ऐसा कहते हो कि जितने शास्त्र में, आत्माश्रित के अलावा, पराश्रित जितने कथन आत्मा में आये वह सब व्यवहार के कथन 'वह ऐसे नहीं है, वह ऐसे नहीं है' ऐसा आप कहना चाहते हो। जैसे, अंजन चोर को निःशंकता हुई और शास्त्र कहे कि वह समकिती है। ऐसा शास्त्र में आता है। तो उसको भी ग्रहण करना और इसे भी ग्रहण करना, दोनों वीतराग के वचन हैं। समझ में आया? कोई जैन प्रभावना रानी ने की। कौन? हरिषेण, हरिषेण चक्रवर्ती। उसने बड़ी प्रभावन करी, उसको भी समकिती गिनने में आया है। है तो वह सब व्यवहार, राग की क्रिया और शुभ की क्रिया है, फिर भी शास्त्रकार उसे समकिती, वैसे व्यवहार के कारण कहते हैं। ऐसे व्यवहार के कथन शास्त्र में बहुत आते हैं। तो शास्त्र में कहा है कि व्यवहार को भी ग्रहण करना और जो निश्चय आत्माश्रित लाभ होने की बात हो कि आत्मा का विकार आत्मा से होता है और विकार से, पुण्य से आत्मा को धर्म होता नहीं, ऐसी जो निश्चय की सच्ची बात हो, उसको बराबर माननी और व्यवहार की बात हो उसे बराबर माननी नहीं, ऐसा आप कहते हो। तो शास्त्र में तो दोनों नयों को ग्रहण करने की बात चलती है। उसका उत्तर। इसकी बड़ी तकरार है। समझ में आया?

'**जिनमार्ग में...**' वीतराग परमात्मा के पंथ में '**कहीं तो निश्चय...**' यानी स्व द्रव्य की स्वतंत्रता का द्रव्य, गुण और विकार या अविकारी पर्याय के कथन चले हो, वह व्याख्यान सत्यार्थ ऐसे ही ऐसा जानना। मुख्यता सहित जहाँ कथन हो, निश्चय का, स्वआश्रय, परमाणु को परमाणु का स्वआश्रय, परमाणु परमाणु के कारण गति कर रहे हैं, कर्म कर्म के कारण गति कर रहे हैं, आत्मा आत्मा के कारण गति और राग-द्वेष कर रहा है, ऐसा जो कथन निश्चय का आवे, उसके सहित जो व्याख्यान है वह सत्य है ऐसा जानना। समझ में आया?

आत्मा अपने ही भाव के कारण नर्क में जाता है, आत्मा अपने ही भाव के कारण स्वर्ग में जाता है, आत्मा अपने ही भाव के कारण पशु में और मनुष्य में जाता है। ऐसा कथन जहाँ हो उसे सत्य जानना। समझ में आया? कि बराबर, वह अपने कारण ही काम कर रहा है। और जहाँ अकेला आत्माश्रित निश्चय मोक्षमार्ग की व्याख्या हो कि वीतराग शुद्धोपयोग आत्मा को वह एक ही मोक्ष का मार्ग है।

मूलचंदजी! समझ में आता है?

निश्चय भगवान आत्मा, शरीर-वाणी की क्रिया से रहित, पुण्य और पाप के अशुद्धउपयोग के व्यापार से रहित और अकेला निजानंद प्रभु, अखंड आनंद अविकारी शांतरस से भरा हुआ है, उसको उपयोग उसमें लगकर जिसमें शुभ-अशुभोपयोग रहे नहीं और शुद्धोपयोग आत्मा में हो वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। अर्थात् आत्मा में जितनी शुद्ध श्रद्धा आत्मा की हो, आत्मा का शुद्ध ज्ञेय का ज्ञान हो, आत्मा को ज्ञेय करके उसमें स्थिर हो, ऐसा वीतरागभाव ही एक मोक्षमार्ग है, ऐसी जहाँ निश्चय से व्याख्या आयी, उस बात को वैसे ही मान लेना। वह बात ऐसे ही है, वह बात ऐसे ही है।

'**कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है,...**' शास्त्र में इतने कथन (आते हैं), व्यवहारनय अर्थात् एक तत्त्व को छोड़कर दूसरे तत्त्व के साथ मिलावट करके बात करता है। एक तत्त्व के कारण दूसरे तत्त्व में कार्य होता है, ऐसी बात करे। एक की दशा दूसरे के कारण दशा उत्पन्न होती है, ऐसा शास्त्र में व्यवहारनय की मुख्यता सहित कथन है। '**उसे 'ऐसे है नहीं,...**' ऐसा नहीं है ऐसा जानना। नवनीतभाई!

मुमुक्षु :-- फिर से।

उत्तर :-- फिर से, ए.. सोभागचंदभाई! हमारे मंडल के अग्रेसर हैं। समझ में आया? क्या कहा?

जहाँ-जहाँ व्यवहारनय का कथन अर्थात् आठ कर्म के कारण जीव रखड़ता है ऐसा कथन आया हो, वह व्यवहार की मुख्यता से कथन है। यानी कि ऐसे नहीं है। कर्म के कारण वह रखड़ता नहीं, परन्तु आत्मा स्वयं के अज्ञान अभिप्राय और विपरीत श्रद्धा से रखड़ता है, ऐसा उसमें अर्थ समझना। कहीं ऐसा कहा हो कि कर्म का उदय घटे, कर्म कुछ मंद पड़े, शिथिल हो तो आत्मा को अच्छे परिणाम कर्म का परिणाम करने का अवसर मिले। इसप्रकार शास्त्र में कहीं कथन व्यवहारनय नाम पर की अपेक्षा का निमित्तपने का ज्ञान कराने को ऐसे कथन आये हो, उसको समझना कि कर्म का उपशम हुआ इसलिये समकित हुआ, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। यहाँ अपने कारण से समकित हुआ है, उस वक्त वहाँ कर्म का उपशम था, वह निमित्त देखकर व्यवहारनय ऐसा कथन करती है।

कर्म का ज्ञानावरणीय के उघाड़ के कारण आत्मा में ज्ञान का विकास होता है, ऐसा कथन व्यवहारनय की मुख्यता से शास्त्र में आवे। ऐसे नहीं है। शास्त्र कहे ऐसे भी नहीं है? किसको ना कहनी? मगनभाई! मगनभाई एक बार लाये थे, टोडरमल कहते हैं, कर्म का उदय हो ऐसा हो। एक बार प्रश्न लाये थे न? उसमें लिखते हैं,

कर्म के कारण... वह तो पहले कह गये हैं कि एक द्रव्य अन्य द्रव्य के आधीन तीन काल तीन लोक में नहीं है। वह तो इसमें भी आता है, देखो! समझ में आया? यह है, २५७ पृष्ठ पर बीच में पंक्ति है। '**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं।**' बीच में है, पहले पैरेग्राफ की आखिर से छठवीं पंक्ति, नीचे से पहले पैरेग्राफ की। '**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं।**' २५७ पृष्ठ। है भाई? नेमचंदभाई! है? मगनभाई! है? नीचे से छठवीं पंक्ति। '**आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये।**' यदि पर को ग्रहण करने की और त्याग करने की शक्ति हो तो परद्रव्यरूप हो जाये। '**कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं। आत्मा अपने भाव रागादिक हैं उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है; इसलिये निश्चय से वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है।**' समझ में आया?

शास्त्र में व्यवहार का कथन ऐसा आये कि कर्म के क्षयोपशम के कारण आत्मा में ज्ञान की कमी-बेसी, कमी-बेसी समझते हो? कम-ज्यादापना। उसकी भाषा में। उसकी भाषा क्या होगी? ज्ञान में कमी-बेसी का जो विकास दिखे वह ज्ञानावरणीय कर्म के कारण है, ऐसा व्यवहारनय की मुख्यता से शास्त्र में कथन आवे। परन्तु ऐसे नहीं है। ऐसे नहीं है। किन्तु वहाँ आत्मा की योग्यता से ज्ञान का हिनाधिकता हुई, वहाँ निमित्त कौन था उसको देखकर निमित्त का कराने को ऐसे कथन किये गये हैं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- पढ़नेवाले की जिम्मेदारी है, उसे समझना पड़ेगा कि निश्चय और व्यवहार क्या है। कहो, समझ में आया? हाथी का दाँत बाहर के बड़े दिखे, अन्दर के अलग हैं, नक्की करना पड़ेगा कि चबाने के दाँत कौन-से हैं? इसलिये उसमें हाथी की गलती नहीं है कि तूने क्यों ऐसे दाँत रखे? समझ में आया? चंदुभाई! उसने बाहर के बड़े क्यों रखे और चबान के अन्दर क्यों रखे? आचार्यों की व्यवहारनय की पद्धति के कथन हाथी के बाहर के दाँत जैसे हैं। समझ में आया? और निश्चय यथार्थ बात- स्वद्रव्य अपनी पर्याय का स्वतंत्र कर्ता है और आत्मा अपने शुद्ध वीतरागभाव से आत्मा का साधन साधकर मोक्ष प्राप्त करता है और राग एवं निमित्त से तीन काल में प्राप्त नहीं करता। ऐसे कथन हो उसको सत्य जानना और सत्समागम से समकित हो, सत्समागम से ज्ञान हो, अच्छा संग हो तो चारित्र की शुद्धि हो, अच्छा संग हो तो अच्छे परिणाम हो, ऐसे कथन जहाँ शास्त्र में आवे उसको ऐसे समझना कि वह ऐसे नहीं है। है? देखो! है उसमें? देखो। इसमें लिखा है उसकी व्याख्या चलती है। पंडित और त्यागी के नामपर ऐसी गड़बड़ी करते हैं...

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- यह अनेकांत है। अनेकांत यानी क्या? परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना, वस्तु में वस्तुत्व की निष्पादक शक्तियाँ। वस्तु में वस्तुत्व की निष्पादक परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना उसको भगवान अनेकांत कहते हैं। अर्थात्.. यह तो सिद्धांत कहा, कहाँ गरज है जगत को? सोभागचंदभाई! पढ़ने की निवृत्ति कहाँ है? ऐसे ही भक्ति से धर्म हो जाता हो और मोक्ष हो जाता हो... समझे? बराबर है ताराचंदजी?

भगवान! शास्त्र में ऐसा आवे, हे नाथ! हम तो आप की भक्ति को मुक्ति से अधिक मानते हैं। समझ में आया? हमें तो आप की भक्ति हो तो हमें मुक्ति भी नहीं चाहिये। उसका अर्थ कि ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। परन्तु मुक्त होने का शुद्धोपयोग की वीतरागदशा साक्षात् मोक्ष का कारण है, उसमें भक्ति के ऐसे परिणाम आते हैं, वह निमित्त का ज्ञान कराने को, मुक्ति से हमें भक्ति अधिक है, ऐसा कहने में आता है। मूलचंदजी! देखो! अभी यहाँ बाज़ार में भक्ति जमेगी। अभी, रूपचंदजी की आवाज़.. और भाई कौन? रतनचंदजी, ताराचंदजी तीनों की आवाज़ की गुँज उठती है। भाई की आवाज़। कहो, समझ में आया? देखो अभी बोला गया, इनकी आवाज़। ऐसे नहीं है। वह व्यवहारनय के कथन हैं कि इनकी आवाज़, इनका कण्ठ, ऐसा बोलने में आये, ऐसे नहीं है। परन्तु उस काल में कण्ठ की क्रिया काल में जीव रागवाला कौन था, उसका निमित्त का ज्ञान कराने को, इसकी आवाज़ है ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? हमारे मूलचंदजी के लिये स्पष्ट करना चाहिये। बराबर आये हैं, डॉक्टर और मूलचंदजी अब बराबर जिज्ञासा करते हैं कि यह क्या है? इतने साल से साथ में आते हैं। (संवत) २००६ से, बारह वर्ष हुए। समझ में आया?

प्रवचनसार में ऐसा आता है, ओहो..! एक ठंडी छाछ हो, छाछ समझे? मठ्ठा, मठ्ठा। मठ्ठा हो वह ठंडे घर में रहे तो बहुत ठंटा रहे और उसमें आईसक्रिम डाले तो बहुत ठंडा हो जाये। शास्त्र में पाठ है, प्रवचनसार। समझे? वह ऐसे नहीं है, ऐसा समझना। वह छाछ की स्वयं की ठंडी अवस्था होने के लायक थी, तब निमित्त घर का ठंडा कोना और आईसक्रिम निमित्त था, उतना ज्ञान कराने को उससे ठंडा हुआ और रहा, ऐसा कहने में आता है। कोने में रहकर आईसक्रिमा डाला इसलिये वह छाछ ठंडी रही, वह बात ऐसे नहीं है। नवनीतभाई! समझ में आया?

अथवा उसका सिद्धांत उतारा है। कोई प्राणी धर्मात्मा, धर्मार्थी अपने जैसे गुणवाले के संग में रहे तो उसके गुण सुरक्षित रहे, और अपने गुण से अधिक गुणवाले के संग में रहे तो गुण अधिक हो। प्रवचनसार की यह व्याख्या है। शास्त्र की बात करते हैं, शास्त्र की भाषा कहकर बात होती है। समझ में आया? तो उसमें ऐसा समझना..

देखो! '**कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है,...**' व्यवहारनय की मुख्यता से उसमें कथन है। '**उसे 'ऐसे नहीं है**' ऐसा कहना नहीं चाहते हैं। कहनेवाले का वह आशय नहीं है। नरभेरामभाई! व्यवहारनय की मुख्यता सहित है वह ऐसे नहीं है, किन्तु '**निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है--ऐसा जानना।**' वह तो उस वक्त, ठंडी छाछ के समय कोना ठंडा था, आईसक्रिम ठंडा था, उसका ज्ञान कराने को (कहा)। अच्छे गुणी का संग था इसलिये गुण टिके, वह कौन गुणी था उसका ज्ञान कराने को वह बात थी। समझ में आया?

धर्म का आधार, आचार्य, उपाध्याय बड़े धर्म के, शासन के आधार हैं ऐसा शास्त्र में आये। समझ में आया? धर्म का आधार, धर्मी की पर्याय का आधार उसका द्रव्य है। लेकिन उसमें शासन के नायक आचार्य, उपाध्याय, धर्मी कौन मुख्य थे, उसका निमित्त का ज्ञान कराने को वह शासन भगवान ने कहा, भगवान के कारण शासन चला, भगवान ने स्थिर स्थापित किया और भगवान के कारण स्थिर चला। और आचार्य अच्छे हों तो बड़ा संघ अच्छा हो, आचार्य खराब हो तो संघ अच्छा न हो, ऐसा शास्त्र में कथन, भगवती आराधना में हज़ारों कथन आवे। किन्तु ऐसा नहीं है, ऐसा समझना। मगनभाई! उस जीव की धर्म की योग्यता अपने कारण से प्रगट करी वह सच्ची। उसमें निमित्त का ज्ञान कराने को उस काल में निमित्त कौन था उसका ज्ञान कराने को वह कथन चलता है। परन्तु उस कथन का अर्थ ऐसा नहीं है। व्यवहार कहता है ऐसा नहीं है।

आचार्य कहते हैं कि हमने व्यवहार से कहा उसको तू 'ऐसा नहीं है' ऐसा तू मानना। मगनभाई! ऐसा कहा कि नहीं? नेमचंदभाई! क्या कहा? हम व्यवहारनय से एक तत्त्व के द्रव्य-गुण-पर्याय की बात के सिवा परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय मिलाकर कहीं दूसरे में मिलावट करके बात कही हो तो तू समझना कि हमने कहा है ऐसा नहीं है। हमारा आशय ऐसा कहने का नहीं है। उस वक्त निमित्त का ज्ञान कराने को वह शैली शास्त्र में (आती है)। हज़ारों शास्त्र के ऐसे कथन, मूल दिगंबर सनातन संत द्वारा कहे गये शास्त्र, उसमें भी व्यवहार के कथन बहुत आते हैं। समझ में आया?

अंतराय कर्म मार्ग दे तो मैं दान सकूँ, दान का भाव, भाव कर सकूँ, वह सब निमित्त के कथन हैं। व्यवहारनय का कथन है वह, ऐसे नहीं है, परन्तु स्वयं जब राग मंद करके दान का भाव करता है, तब दानांतराय में उघाड़ की योग्यता उसमें उसके कारण से थी, इतना निमित्त कर्म बताने को ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

ब्रह्मचर्य। शास्त्र में ऐसा आये कि यदि नव वाड़ और स्त्री का संग न हो तो

ब्रह्मचर्य का अच्छा पालन हो। समझ में आया? बहुत भोजन न खाये, दूधापाक-पूड़ी आदि न ले, सादा भोजन हो, आदि हो और स्त्री का संग न करे, एकांतवास में रहे तो उसे ब्रह्मचर्य का पालन हो। ऐसा कथन किया हो वहाँ ऐसा समझना कि ऐसे नहीं है। अपनी लायकात के कारण जो ब्रह्मचर्य का भाव रहा है तब निमित्त की चीज साथ में कौन थी, उसका ज्ञान कराने को ऐसा कथन करने में आया है। समझ में आया? अनेकांत का चलता है, देखो न यह। उससे हो और दूसरे से न हो, उसका नाम अनेकांत कहने में आता है। समझ में आया इसमें?

जहाँ-जहाँ कहने में आया हो, अहो..! भगवान की दिव्यध्वनि सुने तो उसे सच्चा ज्ञान हो। तब व्यवहारनय ऐसा कहे, तब आचार्य कहते हैं कि हम कहते हैं कि ऐसा नहीं है। मात्र सच्चा ज्ञान होने के समय दिव्यध्वनि की उपस्थिति थी इसलिये वह कथन करने में आया है। अब अनेकानंत, उसका ज्ञान उससे हुआ है और दिव्यध्वनि से नहीं हुआ है। आहा..हा...! दो विरुद्ध शक्ति का प्रकाशित होना। अस्ति-उससे हुआ और इससे नहीं हुआ, ऐसा नास्ति धर्म उसमें है। समझ में आया?

एक द्रव्य अथवा आँख का ऐसा अधिकार आता है कि अन्य पदार्थ का यहाँ स्पर्श हो तो सुने, सूंघे, चखे और आँख को बिना स्पर्श ही आँख देखे। स्पर्श करने की बात ही झूठी है। 'पुट्ठं जाणइ सदं' ऐसा शब्द शास्त्र में आये। स्पर्श करने पर शब्द का ज्ञान आत्मा में हो। आँख के लिये ऐसा नहीं है। अग्नि और बर्फ दूर पड़ा हो तो ज्ञान हो, उसको स्पर्श नहीं करती और यह स्पर्श करता है। उसकी व्याख्या क्या? आत्मा को शब्द स्पर्श करता है, यह बात झूठी है। आत्मा को शब्द स्पर्श करता है, अरे..! कान को शब्द स्पर्श करता है, वह बात ऐसे नहीं है। परन्तु स्वयं के शब्द के ज्ञान के काल में स्वयं से ज्ञान हुआ, उसमें शब्द को निमित्त देखकर और समीप शब्दों को देखकर, स्पर्श करके ज्ञान होता है, शब्द को स्पर्श करे तो ज्ञान होता है, ऐसा व्यवहार करने में आया है। परन्तु ऐसा नहीं है। नरभेरामभाई! यह समझे बिना कितना समय यूँ ही व्यतीत किया। अभी भी निवृत्त भी नहीं होते हैं ... करने को।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- खुशी होती है, लेकिन यहाँ ... दो दिन से व्यवहार की बात करते हैं। बाहर जाते ही परिणाम में आकुलता, नटु और बटुक। कहो, समझ में आया? यहाँ कहते हैं,.. ये तो दृष्टान्त है, हाँ! वह कोई बात स्वलक्ष्य में नहीं लेते हैं, बहुत होशियार है।

यहाँ कहते हैं, अनेकांत उसे कहते हैं कि आत्मा को राग, आत्मा की कमजोरी

राग होता है और कर्म से नहीं होता है, उसका नाम अनेकांत है। कुछ लोग कहते हैं कि आत्मा को विकार होता है उसका कारण क्या है? वह कमजोरी स्वयं कारण है। कमजोरी का कारण क्या? कि आपना विपरीत पुरुषार्थ। विपरीत पुरुषार्थ का कारण क्या? कमजोरी। अरे..! वहीं के वहीं बात आ गयी। वहीं की वहीं बात आ गयी, लेकिन कुछ दूसरा तो कहो। मगनभाई! ऐसा कहते हैं चक्रम, क्या कहते हैं? चक्र, चक्र घुम घुमकर वहाँ आया तेरा। कमजोरी, कमजोरी का कारण? पुरुषार्थ की विपरीतता, पुरुषार्थ की विपरीतता का कारण उस वक्त का स्वयं का पुरुषार्थ विपरीत है इसलिये। वह तो वही बात हुई। अब, कर्म को अन्दर डाल कि कर्म के कारण विकार होता है, तो उसको अनेकांत कहने में आये, ऐसा मूढ जीव मानता है। किन्तु ऐसा है नहीं। विकार स्वयं की कमजोरी के कारण उस काल की विकार की पर्याय होने की, पर्याय के कारण पर्याय हुई है, निमित्त के कारण नहीं, द्रव्य-गुण के कारण भी नहीं। उस बात को यथार्थ और मुख्यपने कही हो तो वह सत्य है। समझ में आया?

दूसरे प्रकार से, आत्मा में धर्म की पर्याय प्रगट हो, सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय से (प्रगट हो), उसमें मिथ्यात्व की पर्याय का नाश हुआ इसलिये समकितपर्याय हुई वह भी व्यवहार का कथन है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय निज द्रव्य के आश्रय से स्वयंसिद्ध पूर्व पर्याय के व्यय की अपेक्षा रखे बिना स्वयंसिद्ध हुई है। आहाहा..! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! ये निश्चय और व्यवहार। शास्त्र में यह कहा है न? शास्त्र में व्यवहार की बातें बहुत कही है, बोल तुझे क्या कहना है? भाई! आप आओगे तो सुनने को मिलेगा और सुनोगे तो ज्ञान होगा, ऐसा बोलने में आये, लो। आप सुनो, आओ, देखो तो सही, ऐसा कहने में आये। उसका अर्थ क्या? क्या यहाँ आया और शब्द सुने इसलिये ज्ञान होता है?

मुमुक्षु :-- घर बैठे क्यों नहीं हुआ?

उत्तर :-- घर बैठा हो तब दूसरी पर्याय की योग्यता है। यहाँ उसकी पर्याय की वर्तमान योग्यता के कारण उसको ज्ञान होता है। शब्द से और बाहर से होता है, ऐसे व्यवहार के कथन ऐसे नहीं है, किन्तु ज्ञान के काल में शब्द का निमित्त था उतना ज्ञान कराने को वह कथन चले हैं। बहुत सूक्ष्म बात भाई! समझ में आया?

भगवान के समीप तीर्थंकरगोत्र का बन्ध होता है। लो, गोम्मटसार में कथन, गोम्मटसार में कथन है वह सब लाकर आगे करते हैं। लो यह गोम्मटसार, नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती (कहते हैं), समकिती जीव हो, आत्मज्ञानी हो, तो भी अकेला तीर्थंकरगोत्र नहीं बाँधेगा। उसको कोई तीर्थंकर या श्रुतकेवली और केवली के समीप बैठा होगा उसकी सभा में, तब तीर्थंकरगोत्र बाँधेगा। यानी कि ऐसे जो कथन कहे हो, वह ऐसा नहीं है,

परन्तु अपने भाव जब उस प्रकार के तीर्थंकरगोत्र बाँधने के थे, उस काल में यह निमित्त ऐसी चीज थी उसका ज्ञान कराने को कहा है। उसके कारण भाव आया है और नहीं तो नहीं आता, ऐसा है नहीं। धरमचंदजी! ओहो..!

'**व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है,...**' ऐसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, ऐसे अशाता के उदय के कारण शरीर में रोग आया, ऐसा शास्त्र में कथन आये। अशाता के उदय के कारण शरीर में रोग आये, आदि प्रतिकूलता, स्त्री मर जाये आदि हो ऐसे कथन शास्त्र में आये उसको उस वक्त अशाता का निमित्त और उस काल में वह कार्य होनेवाला था उसे अशाता का निमित्त देखकर बात कही है। परन्तु अशाता के कारण यह होता है, वह बात भी सच्ची नहीं है। ओहोहो..! यह पुण्य बाँधा था इसलिये पैसा आया, वर्तमान राग किया और पैसा मिला वह बात तीनों काल में झूठी है। परन्तु पूर्व का पुण्य था, शाता के रजकण बँधे थे इसलिये पैसा आया वह भी व्यवहारनय का कथन है। क्योंकि शाता के परमाणु भिन्न और पैसा आया उसके परमाणु भिन्न है। वह परमाणु पैसा आया उसको कहीं शाता खीँचकर नहीं लाये हैं। पैसा आने के काल में शाता का निमित्त देखकर ऐसा कहा, वहाँ ऐसा समझना कि शाता से आये हैं ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। परन्तु आने के काल में वह कर्म निमित्त था उसका ज्ञान कराने को ऐसे कथन चले हैं। समझ में आया? यह ऊँची बात है। क्या कहते हैं आप की? मास्टर की कुछ कहते हैं न? मास्टर की, सब को लगे।

निश्चय और व्यवहार। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग या कथानुयोग जहाँ-जहाँ परद्रव्य के आश्रय से अन्य द्रव्य के कारण-कार्य की बात करी हो, वहाँ समझना कि ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। वह तो उस वक्त का निमित्त की उपस्थिति यानी मौजूदगी देखकर बात कही है। और निमित्त को भी, इस उपादान में कार्य होता है इसलिये निमित्त को आना पड़ता है ऐसा भी नहीं है। वह तो उसके कारण वह और इसके कारण यह। इस प्रकार व्यवहारनय की मुख्यता सहित (व्याख्यान है)।

दूसरी बात, भगवान की वाणी गणधर आये इसलिये छूटी। सुना है कि नहीं? ६६ दिन बँध रही व्याख्या। महावीर परमात्मा को केवलज्ञान हुआ, ६६ दिन व्याख्यान बँध रही। गौतमस्वामी को जब इन्द्र ब्राह्म का रूप लेकर लाये, सभा में वाणी निकली, ऐसा कहने में आता है कि गणधर होने के लायक जीव आया इसलिये वाणी निकली। ऐसा नहीं है। परन्तु वाणी निकलने के काल में वाणी निकलनेवाली थी वह बराबर है, उसमें निमित्त गणधर का देखकर उसके कारण हुई ऐसा कहने में आता है। परन्तु ऐसा है नहीं। समझ में आया? शास्त्र बदल नहीं जाता, शास्त्र को जो कहना है वह

बात रह जाती है। शास्त्र का कहने का आशय है वह रह जाता है। कथन की पद्धति है व्यवहारनय की, उपचार से पर से सब कथन आये। समझ में आया? किन्तु वह बात ऐसे नहीं है ऐसा उसे जानना चाहिये। व्यवहारनय की मुख्यता सहित (व्याख्यान है)। समझ में आया?

उसका प्रश्न उठा था पहले, गणधर का। क्यों गणधर आये तब वाणी निकली? अरे.. सुन तो सही प्रभु! वहाँ ऐसा चला है कि भगवान! इन्द्र इस गणधर को पहले क्यों नहीं लाये? धवल में अधिकार चला है। गणधर को उस काल में क्यों लाये, इन्द्र पहले क्यों नहीं आये? कि गणधर की आने की काललब्धि नहीं थी। धवल में ऐसा आता है, हाँ! नेमचंदभाई! भगवान की वाणी उस वक्त ही क्यों निकली? वह आये इसलिये। पहले क्यों नहीं लाये? पहले आने की लायकात उनकी नहीं थी। उसकी लायकात से गणधर आये हैं। इन्द्र से आये वह निमित्त का कथन है। ऐसा है नहीं। समझ में आया? वह बड़ी चर्चा चली थी। नहीं, ऐसा आप्तवाक्य है कहीं? गणधर आये और वाणी नहीं छूटी अने अपने कारण छूटी, ऐसा आप्तवाक्य है? यह किसकी बात चलती है? गणधर आये और वाणी छूटी वह व्यवहार का कथन है। ऐसा नहीं है, परन्तु वाणी छूटने के काल में निमित्त कौन था उसका ज्ञान कराने को वह कथन चला है। आहाहा..! बहुत फेर। निश्चय-व्यवहार की ऐसी गड़बड़ी, व्यवहार की बात भी सच्ची और निश्चय की भी सच्ची। दोनों बात सच्ची माने वह बड़ा मूढ और भ्रमणा में पड़ा है। समझ में आया?

पर की दया पाल सकता है, आत्मा यदि भाव करे तो बराबर पाल सके ऐसा व्यवहार का कथन आये। तीन काल में पर की दया आत्मा पाल सकने की ताकात आत्मा रखता नहीं। आत्मा भाव करे दया का, परन्तु पर को बचा सके और सुख-दुःख दे सके, तीन काल में आत्मा की ताकात नहीं है।

मुमुक्षु :-- चरणानुयोग में..

उत्तर :-- चरणानुयोग में कहते हैं उसकी तो बात चलती है। चरणानुयोग में कहे कि इसने इसको मदद की, ऊपर आया, साधर्मी को साधर्मी की मदद करनी, उसके कारण धर्म टिके, वात्सल्यता करनी, प्रभावना करनी, पर का स्थितिकरण करना, धर्म से डिगते का स्थितिकरण करना ऐसा शास्त्र में आये। वह स्थितिकरण तो उसके कारण होता है तब करनेवाला कौन था उसका ज्ञान कराने को ऐसे कथन चले हैं। नेमचंदभाई! शास्त्र की बात बदल जाती है, ऐसा कहते हैं। शास्त्र की बात इस तरह रहती है। वह सब निमित्त के स्थान में रहता ही है। नवरंगभाई! क्या करना?

पानी छान के पीना, सात बार गालना, जाडुँ गरणु राखवुं। जाडुँ को क्या कहते

हैं? मोटा, घट, घट। कपड़ा घट रखना कि जिससे अन्दर बारीक मच्छर, मच्छी घुस न जाय। ऐसा रखना, वैसा रखना। वह आत्मा कर सकता है तीन काल में तीन लोक में? किन्तु उस क्रिया के काल में जिसका दया का शुभभाव था कि प्राणी न मरे, ऐसे भाव का निमित्त देखकर इसने छाना और छानकर पिया ऐसा कहने में आता है। नवनीतभाई! आहाहा..! ऐसे में धनी बन गया, हम ऐसा करते हैं, हम ऐसा करते हैं, हम ऐसा करते हैं। परद्रव्य का कर सके तीन काल तीन लोक में?

अँगूली हिलने की क्रिया तेरे से हो, ऐसा तीन काल तीन लोक में बनता नहीं। सत्‌शास्त्र में व्यवहार के कथन आये कि मुनि को चलते हुए नीचे चींटी दिखे तो पैर ऊपर कर लेना, पैर ऊपर कर लेना। दो पैर के बीच में आये तो एड़ी घुमा देनी, बीचमें से वह जीव चला जाये। ऐसे चरणानुयोग में कथन आये। कहा है वैसा नहीं है। पैर तो पैरे के कारण वैसा हुआ है, मात्र जीव को ऐसा राग आया कि अरे..! यह प्राणी न मरे, उतना निमित्त देखकर पैर की क्रिया उसने की ऐसा कहने में आया है, परन्तु वह बात सत्य नहीं है। समझ में आया?

जैसी चाल पड़े ऐसी आवाज़ आये। देखो, बहुत लगाते हैं, कितना लगाते हैं ताराचंदजी। पूरा शरीर डोलता है न। होता है कि नहीं उसमें? क्या है यह? अरे.. भगवान! वह क्रिया तो परमाणु की उस काल में ऐसी होनेवाली थी। आत्मा की इच्छा हुई इसलिये थप्पड से ऐसे पड़े, नहीं तो धीरे से ऐसे-ऐसे मारे, हराम बात है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा..!

तब ऐसे कथन क्यों आये? रामचंद्रजी जैसे महापुरुष जब बाहर से--वनवास से आये, शांतिनाथ भगवान के मंदिर में.. अपने यहाँ है न (चित्र)? देखो! शांतिनाथ भगवान। हाथ में .. लेकर, उस भव में तो मोक्ष जाना है। रामचंद्रजी वनवास भोगकर जब अयोघ्या में प्रवेश करते हैं, उसके पहले बाहर शांतिनाथ भगवान का मंदिर है उसमें प्रवेश करते हैं। सीताजी, लक्ष्मण और राम। ऐसी भक्ति करते हैं, ... ओहो..! त्रिलोकनाथ शांतिप्रभु! आप के कारण मुझे शांति हुई है। ऐसा कथन करने में आता है। ऐसा नहीं है, किन्तु अपनी निवृत्ति के शांतिकाल में निमित्त देखकर ऐसा कथन किया है। और करताल दो हाथ डालकर बजाते हैं न? करताल बजाते हैं न तुम्हारे? अँगूली भी आत्मा हिलाये ऐसा कहना वह व्यवहारनय का कथन है, यानी कि ऐसा नहीं है। आहाहा..! जगत को... 'निश्चय और व्यवहारनय में जगत भरमायो है।' समयसार नाटक में इस अधिकार में कहा है। सर्वत्र अध्यवसाय में। अरे.. जगत! निश्चय क्या और व्यवहार क्या? निश्चय सच्चा और व्यवहार आरोपित कथन है। नहीं, वह कहते हैं, आरोपित कथन भी सच्चा है, उपचार भी सच्चा है। अरे..! उपचार सत्य हो सकता

नहीं। सच्चा एक निश्चय का कथन है वह सच्चा है।

तब वह कहते हैं, व्यवहार की मुख्यता से क्यों कहा? निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है ऐसा जानना। और '**इसप्रकार जानने का नाम ही...**' देखो! '**जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।**' जानने का नाम ग्रहण है, आदरने का नाम नहीं। निश्चयनय का विषय आदरणीय और व्यवहार का आदरणीय, ऐसे नहीं। '**इसप्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। तथा दोनों नयों के व्याख्यान को...**' शास्त्र में दो नय का ज्ञान का कथन चले, उन '**दोनों नयों के व्याख्यान को समान...**' निश्चय भी बराबर समकक्षी।

४०० वर्ष पहले यह बात चली है, बनारसीदास के समय में। बनारसीदास ने जब यथार्थ बात को प्रकाशित की, अरे..! जितना व्यवहार शुभाशुभ परिणाम और देहादि की क्रिया बाहर की असद्भुत व्यवहार, उसमें से कुछ भी जीव को लाभ माने, जितना व्यवहार का भेद है उतना मिथ्यात्व का भेद है। समझ में आया? बनारसीदास ने कहा। सामने एक पक्ष खड़ा हुआ, नहीं, एक पक्ष खड़ा हुआ। वह कहे कि निश्चय। यह कहता है कि निश्चय और व्यवहार दोनों समकक्षी। समकक्षी समझे? दोनों पहलू समान है न? समकक्षी। ऐसा नहीं है। समकक्षी नहीं है। अभी यह बात चलती है। अखबार में सब आ गयी है। कहो, समझ में आया?

निश्चय का कथन है उसे सत्य मानना और व्यवहार के कथन को झूठा कहकर ऊडा देना, तो फिर नारकी जीव, मनुष्य जीव, देव जीव, पर्याप्त जीव वह सब नहीं रहेगा। लेकिन कहाँ है? सुन न, वह तो निमित्त का ज्ञान (कराने को कहा है)। नारकी का जीव, मनुष्य का जीव,.. जीव नारकी का है? जीव तो जीव का है। वह तो शरीर देखकर कथन किया है। ऐसा ही मान ले कि यह घोड़े का जीव, गाय का जीव, स्त्री का जीव, पुरुष का जीव (तो मिथ्यात्व है)। नहीं, वह तो शरीर शरीर में हो, उस शरीर के बहाने जीव की पहिचान करायी। उसको, चैतन्य जीव कह दे, और ब्रह्म और अद्वैत मान न ले इसलिये कहा कि ये शरीर में रहा वह जीव, ये शरीर में रहा वह जीव, एकेन्द्रिय में रहा वह जीव, पंचेन्द्रिय में रहा वह जीव। ऐसा कहकर आत्मा की निमित्त से पहिचान करवायी है। किन्तु शरीर है वह जीव नहीं है।

दोनों को '**समान सत्यार्थ...**' देखो! वज़न यहाँ है, वज़न यहाँ है। समान और सत्यार्थ। निश्चय का कथन भी सच्चा और व्यवहार का उसके जैसा। और व्यवहार का कथन भी सच्चा और निश्चय का कथन भी सच्चा। '**ऐसे भी है,...**' निश्चय है वह ऐसे है और व्यवहार है वह भी सच्चा है। '**इसप्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों**

**नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।**' व्यवहार के कथन भी सच्चे और निश्चय के भी सच्चे, ऐसा भगवान ने दो नयों का ग्रहण करना इस प्रकार तो नहीं कहा है। बाबुभाई! देखो, ये बड़े महोत्सव के समय में यह वस्तु बहुत अच्छी आ गयी है। जल्दी पकड़ में नहीं आये। जिसे अभ्यास न हो, अभी निश्चय-व्यवहार क्या (यह मालूम नहीं हो), वह तो ओघेओघे अँध होकर संप्रदाय में पड़े हो, और माने कि कुछ धर्म होता है। कुछ दया पालेंगे, कुछ दान करेंगे, कुछ व्रत पालेंगे तो धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं है, सुन न। ऐसा तो अज्ञानरूपी भैंसा अनंत बार खा गया तेरा पोळा। पोळा समझते हो? घास का पोळा होता है न? अज्ञानरूपी भैंसा, तेरी क्रिया राग की, पुण्य की, दया की, दान की ऐसी क्रिया अज्ञानरूपी भैंसा निगल गया है अनंत बार। उससे आत्मा को कोई लाभ नहीं हुआ। समझ में आया?

इसलिये कहते हैं कि दोनों नयों के व्याख्यान को समान जानना, वह झूठा है, समान नहीं है। फेरफार हो दोनों में, दोनों नयों का विरोध है। सच्चा है ऐसा नहीं है। एक निश्चय का कथन सच्चा, व्यवहार का कथन झूठा। इसप्रकार '**दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।**' अब प्रश्न उठा।

'**यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है...**' आप तो व्यवहारनय असत्य और झूठी साबित की, फूँक मारकर ऊडा दी। फूँक मारकर पर्वत ऊडाया। फू... लेकिन फूँक से पर्वत नहीं ऊड़ता। शिष्य प्रश्न करता है। आप तो व्यवहारनय को असत्यार्थ झूठी कहते हो। शास्त्र में जितने व्यवहार के कथन आये, निमित्त के, उपचार के, पर आरोपित, पर कारण और इसमें कार्य हुआ ऐसे, समझ में आया? भगवान मिले तो श्रेणिक राजा को तीर्थंकर गोत्र बँधा। भगवान मिले तो श्रेणिक राजा ने क्षायिक समकित प्राप्त किया। वह सब शास्त्र के कथन आप असत्य ठहराते हो, झूठे ठहराते हो। शिष्य कहता है। '**असत्यार्थ है, तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया?**' ऐसे कथन क्यों लिखे? जमुभाई! देखो, यह लिखा। अब हमें उसमें समझना पड़ता है। एक कह दिया होता तो...। किन्तु ऐसा नहीं चलता। संक्षिप्त व्याख्या करने को व्यवहारनय के कथन, लंबी व्याख्या करने को बहुत लंबा व्याख्यान चलता है। हिंमतभाई ने पंचास्तिकाय की नोट में बहुत लिखा है। समझ में आया?

'**यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिये दिया?**' असत्य का उपदेश क्यों दिया? प्रेमचंदजी! निमित्त से होता नहीं है तो निमित्त से हुआ, ऐसा कथन क्यों लिखा? कर्म के कारण रखड़ता नहीं, तो कर्म के कारण रखड़ता है ऐसा कसलिये लिखा? पर के कारण लाभ नहीं होता है तो, पर के कारण लाभ होता है, ऐसा किसलिये लिखा? शिष्य को प्रश्न तो हो न? '**उसका उपदेश**

**जिनमार्ग में किसलिये दिया? एक निश्चयनय ही का निरूपण करना था।**' आप तो व्यवहार को झूठी झहराते हो, निश्चय को सत्य ठहराते हो। तो झूठे का कथन ही किसलिये किया? कहो, प्रश्न बराबर है कि नहीं? सुन, सुन।

'**समाधान :-- ऐसा ही तर्क समयसार में किया है।**' तू कहता है ऐसा तर्क शास्त्र में चला है, वहाँ उत्तर दिया है :--

**जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।**
**तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं।।८।।**

'**अर्थ :-- जिस प्रकार अनार्य अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है;...**' एक म्लेच्छ हो, वहाँ कोई ब्राह्मण या साधु गये। स्वस्ति ऐसा कहा। वह स्वस्ति का अर्थ समझता नहीं है। स्वस्ति। क्या कहते हैं ये, स्वस्ति? टग-टग, टग-टग देखता रहता है, ये क्या कहते हैं? इतना जरूर है देखनेवाला,... शास्त्र में ऐसी शैली ली है कि ये कहनेवाला झूठा है ऐसा नहीं, क्या कहता है हमें कुछ समझ में नहीं आता है। ऐसी जिसकी जिज्ञासा है। ये क्या कहते हैं? फिर वही ब्राह्मण अथवा साधु कहते हैं, देख भाई! स्वस्ति का अर्थ सु-अस्ति, तेरा कल्याण होओ, ऐसा अर्थ होता है। स्वस्ति का अर्थ नहीं समझा तो उसका, चलती भाषा में वह समझे ऐसा अर्थ किया कि तेरा कल्याण होओ। हें! आहाहा..! नेत्रमें से हर्ष के आँसु बहने लगे। स्वस्ति शब्द सुनकर कुछ समझ में नहीं आता था। लेकिन, तेरा कल्याण होगा, ऐसा उसमें कहने में आता है। (ऐसा समझा तो) हर्ष होता है। आहा..!

ऐसे '**जिस प्रकार अनार्य अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है,...**' म्लेच्छभाषा बिना। उसकी भाषा ऐसी करनी पड़े, उसके जैसी करनी पड़े। समझ में आया? ये बच्चे लोग घोड़े से खेलते हैं न? लकड़ी का घोड़ा। लकड़ी का घोड़ा हाथ में रखकर चलता है न? उसका बाप दस शेर, आधा मण आम लेकर आये और वह चौखट में खेल रहा हो, तो उसका बाप क्या कहे? ए.. लड़के! घोड़ा दूर रख। क्योंकि उसको अन्दर घोड़े का रटन चल रहा है। तेरा घोड़ा दूर कर, चल आम खाने को। पोपटभाई! कहे कि नहीं? घोड़ा मानता है वह? उसका बाप लकड़ी को घोड़ा मानता है? पैर में बिच्छु काटा हो तो चलने में वह लकड़ी का घोड़ा काम आता होगा? इस प्रकार जैसे बालक को घोड़े का रटन चल रहा है, इसलिये उसका बाप भी कहता है कि घोड़ा दूर कर। ऐसे अज्ञानी म्लेच्छवाला, उसे व्यवहार की भाषा बिना समझाया नहीं जाता। नरभेरामभाई! आहाहा..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह समझे तब इसने समझाया ऐसे कहने में आया। वह सब बात दूसरी है।

'**जिस प्रकार अनार्य अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है;...**' भेद करके समझाना पड़े कि शरीर जीव है, यह जीव है। शरीर कहाँ जीव था? जीव तो जुदी वस्तु है। राग के कारण आत्मा को लाभ होता है। राग सूचक है कि ऐसा राग हो वहाँ निश्चयमोक्षमार्ग अन्दर वर्तता है। निश्चयमोक्षमार्ग जहाँ वर्तता हो वहाँ निमित्त राग ऐसा बताता है, नैमित्तिक की प्रसिद्धि करता है। समझ में आया?

जहाँ नव तत्त्व की व्यवहारु सच्ची श्रद्धा या सात तत्त्व की श्रद्धा, अरिहंत देव, गुरु निर्ग्रंथ चारित्रवंत और शास्त्र, उनकी श्रद्धा का प्रकार का राग वर्तता हो वह निमित्त ऐसा प्रसिद्ध करता है। अकेला निमित्त नहीं, निमित्त प्रसिद्ध करे तो दूसरी चीज है, उसके पीछे जिसे रागरहित आत्मा की निश्चय श्रद्धा, ज्ञान, रमणता हुई है, उसे वह राग प्रसिद्ध करता है। परन्तु राग स्वयं धर्म का कारण नहीं है। समझ में आया? व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्ग की प्रसिद्धि करता है कि यहाँ व्यवहार के पीछे निश्चय का परिणमन निरंतर चालू है। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

जहाँ सच्चे सर्वज्ञ के छः द्रव्य की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा, व्यवहार राग और पंच महाव्रत का पालन और सर्वज्ञ द्वारा निरूपित शास्त्रों का ज्ञान, ऐसे विकल्प का जहाँ रटन चल रहा है, उसके पीछे एक विकल्प रहित अन्दर निश्चय श्रद्धा, ज्ञान और रमणता चलती है उसको वह विकल्प प्रसिद्ध करता है कि यहाँ ऐसा है। लेकिन विकल्प द्वारा वह मोक्षमार्ग प्रगट होता है, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह झूठा नहीं, प्रसिद्ध करता है। झूठा प्रसिद्ध करता है कि जगत में दूसरा सच्चा है। ऐसा। क्या (कहा)? यह झूठ बोलनेवाला है ऐसा सिद्ध करनेपर साथ में दूसरा मनुष्य है वह झूठ बोलनेवाला नहीं है, ऐसा सिद्ध करता है।

मुमुक्षु :-- जरूरत तो पड़ी।

उत्तर :-- वह प्रसिद्ध करता है कि दूसरी चीज है। इस प्रकार निमित्त प्रसिद्ध करता है कि अन्दर दूसरी एक दशा है। व्यवहार प्रसिद्ध करता है कि निश्चय अन्दर है। इतना बताने को व्यवहार का उपदेश आचार्यों को भी करना पड़ा है। समझ में आया?

क्योंकि '**व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है;...**' क्या कहे उसको? आत्मा,

आत्मा करे तो क्या समझ में आये? आत्मा.. आत्मा.. क्या आत्मा लेकिन? कैसा आत्मा होगा? सर्वव्यापक होगा? एक गुणवाला होगा? अनंत शक्तिवान होगा? कितने में रहता होगा? इसलिये आत्मा को व्यवहार से उसे समझाना पड़े। देख भाई! जो जानता है न अन्दर, वह आत्मा। देखता है न, वह आत्मा। स्थिर होता है न, वह आत्मा। अन्दर ज्ञान की झलक प्रगट दिख रही है वह आत्मामें से आ रही है। समझ में आया? इस प्रकार उसको उसके द्वारा वह बताना है। भेद करके अभेद चीज बताने को व्यवहार आता है, लेकिन वह व्यवहार आदरणीय नहीं है। आहाहा...! ऐसा व्यवहार आदरणीय नहीं है? ऐसा ज्ञान कराये उसे कि देख भाई! आत्मा चैतन्यप्रभु है, हाँ! अल्प अंश जो बाहर दिखता है विकास का, वह पूर्ण अंश का एक भाग है। अल्प जो तुझे विश्वास आता है न? वह विश्वास का कण, अन्दर त्रिकाल श्रद्धागुण को धारण करनेवाला एक आत्मा, उसमें से आता है। अंश द्वारा या राग द्वारा, भेद द्वारा वस्तु को बतानी है, परन्तु वह भेद और राग और निमित्त आदरणीय नहीं है। समझ में आया इसमें कुछ? क्या हो? लोगों को ज्ञान कम हो गया, सर्वज्ञ की लक्ष्मी चली गयी, केवलज्ञान (रहा नहीं)। जैसे बाप जाये, पुंजी जाये तो लड़कों में तकरार हो। पैसा हो तब तक दिक्कत नहीं आती, दो-पाँच लाख इधर-ऊधर होते हैं। लेकिन पैसा जाये, बाप जाये, लड़के को छ-आठ, विखवाद।

इस प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की अनुपस्थिति और जगत के प्राणियों की वर्तमान पर्याय में बहुत की कम (हो गयी), इसलिये इन नयों के कथन का झघड़ा ऐसी खडा हुआ, झघड़ा। समझ में आया? पिता की मौजूदगी हो तो कहे, बड़े भाई! आप को मकान दिया था वह बात बराबर, लेकिन वह गहने पिताजी ने मेरे लिये दिये थे, हाँ! मकान आप को दिया था, लेकिन वह बड़ा अच्छा गहना पचास हज़ार का घर में है वह मुझे दिया था। किस की साक्षी? पिताजी चले गये। समझ में आया? छोटे का माने नहीं।

इस प्रकार सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट नयों का, निश्चय-व्यवहार, स्व और पर किस कहते हैं उसका ज्ञान, सर्वज्ञ चले गये, छद्मस्थ रहे, अल्प पात्र जीव रहे, उसको यह समझने के लिये नय का ... हो गयी। जो कथन व्यवहार से निश्चय को समझाने के लिये किये, वह गले का फँदा हो गया। उसने पकड़ा व्यवहार को। आचार्य कहते हैं, व्यवहार के बिना उपदेश अशक्य है। '**इसलिये व्यवहार का उपदेश है।**'

'**तथा इसी सूत्र की व्याख्या में ऐसा कहा है कि**' देखो! '**निश्चय को अंगीकार करने के लिये...**' भगवान आत्मा अभेद को समझाने के लिये। उसी प्रकार प्रत्येक परमाणु अभेद है उसको समझाने को पर्याय से बात करते हैं। '**व्यवहार द्वारा**

**उपदेश देते हैं;...**' निश्चय अंतर, अंगीकार अभेद चिदानंमूर्ति आत्मा एकरूप वस्तु है, उसका अंतर अनुभव कर, उसकी श्रद्धा कर, उसका भान कर और स्थिर हो। वह बताने को व्यवहारनय है, व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं। '**परन्तु व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।**' हैं? पुस्तक है कि नहीं? शांतिभाई देखो! यह समयसार की बात है।

कुन्दकुन्दाचार्य भगवान महाविदेह क्षेत्र में त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा विराजमान हैं उनके पास आठ दिन गये थे, आठ दिन। पंचम काल के मुनि, जिनको भगवान की भेंट यात्र इस भव में हुई। भगवान के पास आठ दिन रहे, यहाँ आकर यह समयसारादि शास्त्र बनाये। और बात को जगत के सामने बराबर जाहिर की। सुन! सर्वज्ञ परमात्मा व्यवहार के कथनों को झूठा कहते हैं, वह दूसरों को मात्र निश्चय का ज्ञान कराने के लिये कथन हैं, वह आदरणीय नहीं है। समझ में आया?

परन्तु वह '**व्यवहारनय है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है।**' कहो, समझ में आया? उपदेश दिया व्यवहार का, परन्तु अंगीकार करने योग्य नहीं है। तो बोलते क्यों हो? ऐसा कहे। लो, शास्त्र में ऐसा आये कि वचनगुप्ति से बड़ा लाभ होता है। उपदेशक बोले, वचनगुप्ति से बड़ा लाभ होता है। श्रोता ऐसा कहे, वचनगुप्ति से यदि लाभ होता है तो आप क्यों बोलते हो? आप को विरोध होता है। अरे.. सुन न, उलटा। तू कुछ समझा नहीं। उसका अभिप्राय क्या है वह तुझे सत्य ज्ञात करवाता है। विकल्प उठा है, वाणी के काल में वाणी है। परन्तु अभिप्राय में, वाणी में विकल्प उठता है वह न हो, और स्थिर होऊँ ऐसा उसका अभिप्राय है। वह अभिप्राय जगत समक्ष जाहिर करने में भाषा में तो ऐसा ही आये। ऐसा ले कि, वचनगुप्ति का वचन तो आप बोलते रहते हो। स्वरूपभाई! क्या करना? कहो। अरे.. भगवान! तत्त्वउपदेशक, तत्त्व के उपदेशक ज्ञानी कैसे होते हैं और किस प्रकार ज्ञात हो, यह तुझे मालूम नहीं है। उलटे से ही शुरूआत करे कि आप ऐसा क्यों करते हो? वाणी बन्द करने में लाभ है कि नहीं? तो आप वाणी बन्द कर दो न। अरे.. भगवान! वह तो निर्णय करवाना चाहते हैं। वाणी तो वाणी के कारण निकले, परन्तु वाणी के काल में वह विकल्प है शुभ बोलने का, उसको भी टालकर स्वरूप में स्थिर होना, ऐसा निर्णय करवाना चाहते हैं। ऐसा समझे नहीं और सामनेवाले का गला पकड़े। चंदुभाई! उसका गला ही पकड़े, लो।

व्यवहारनय उपदेश देने को, निश्चय को समझाने को कहते हैं, परन्तु व्यवहार है सो अंगीकार करने योग्य नहीं है। देखो, यह गाथा चलती थी तब एक वकील थे। वह कहते थे, देखो! इस गाथा में व्यवहार का कहा है। बड़े सोलिसीटर थे। इस

गाथा में कहा है। यह तो बहुत साल पहले की बात है। २१ वर्ष हुए। समझ में आया? २१ वर्ष पहले कहा, इस गाथा में तो व्यवहार को स्थापन किया है। लेकिन किस प्रकार स्थापन किया है? व्यवहार से आत्मा, ज्ञान-दर्शन-चारित्र का भेद करके समझाना, इतना व्यवहार है। लेकिन वह भेद आदरणीय नहीं है। सुननेवाले को भी भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद (अंगीकार) करने जैसा है। क्या हो लेकिन? वाणी का झघड़ा, सत्य को समझने की लायकात प्रगट करे नहीं तो तीर्थंकर जैसे समझाये तो कोई समझे, ऐसी ताकात है नहीं। समझ में आया?

तब उसका एक प्रश्न होता है कि '**व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता? और व्यवहारनय कैसे अंगीकार नहीं करना?**' जब कि आपने स्थापित किया, जरूरत तो स्थापित करी कि व्यवहार बिना निश्चय सच्ची वस्तु उसे समझायी नहीं जाती। इसलिये व्यवहार द्वारा समझाते हैं। समझाते हैं तो व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना? जिससे समझाया जात है उसको अंगीकार क्यों नहीं करना? इस प्रश्न का उत्तर आचार्य देंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**वीर सं.-२४८८, चैत्र सुद-१२, सोमवार,**
**दि. १६-४-१९६२,**
**सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १८**

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, पंडित टोडरमल ने हज़ारों शास्त्रों की संधि का, खातावही करके, जैसे आदमी खातावही करता है न? ऐसे सब मेल किया है। उसमें सातवाँ अध्याय चलता है। सातवेँ अध्याय में जैन में जन्म होने के बावजूद, निश्चय और व्यवहार के कथन शास्त्र में आवे, उसका मेल करे नहीं और निश्चय की बात भी सच्ची और व्यवहार की भी सच्ची, इस प्रकार दोनों में भ्रमणा करे तो वह भी सत्य मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता। समझ में आया?

अपने यहाँ आया है, देखो! व्यवहार, आत्मा के स्वभाव का निश्चय का भान होनेपर भी बीच में व्यवहार आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? मोक्षमार्ग में बीच में वह आता है। वचमां समझते हो? बीच में। आत्मा एक सेकण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण आनंद और शुद्ध स्वभाव का भण्डार है, ऐसी चैतन्यचमत्कार वस्तु पर दृष्टि पड़ने से, निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यक्ज्ञान और निश्चय स्वरूपाचरण की दशा प्रगट होती है। मूलचंदजी!

बाद में, बाद में उसे व्यवहार आता तो है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव (आता है), परन्तु वह सब बन्ध का कारण है, पुण्यबन्ध का कारण है। उसे व्यवहार से मोक्षमार्ग ऐसा व्यवहारनय के कथन से आरोप से कहने में आता है। निश्चय से वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। ऐसा बीच में आता है उसको कोई कहता है कि वह आदरणीय है। तब ज्ञानी यहाँ ऐसा कहते हैं, वह आता है वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। नवनीतभाई! आता है सही, बड़े गणधर जैसे को, चार ज्ञान और चौदह पूर्व का ज्ञान और क्षायिक समकित, जितनी छद्मस्थ को ऊँची लब्धि की ऋद्धि जितनी हो वह सब, गणधर को सब ऋद्धि और लब्धि होती है। ऐसे गणधर को भी, आत्मा का निर्विकल्प स्वभाव अनुभव में आया, अकेला मैं परमात्मा मात्र ज्ञान का पिंड, पुँज ही हूँ। ऐसा अंतर अनुभव सम्यक् हुआ। वस्तु स्वरूप में स्थिरता भी बहुत जमी--चारित्र, चारित्र यानी स्वरूप में चरना, फिर भी गणधरों को भी बारह अंग की रचना का विकल्प, भगवान की भक्ति का विकल्प राग, भगवान की वाणी श्रवण करने का राग, अट्ठाईस मूलगुण पालने का, अर्थात् आता है उसको व्यवहारनय से ऐसा कहने में आता है कि अट्ठाईस मूलगुण पालने में आते हैं। निश्चय से ऐसे भाव, मुनि सच्चे संत को अंतर अनुभव का प्याला चारित्र सहित का फटा, उनको भी बीच में दया, दान, भक्ति, पूजा, प्रभावना आदि का भाव आवे, परन्तु वह आदरणीय है, निश्चय से अंगीकार करने लायक है, ऐसा नहीं है। आहाहा..! शांतिभाई! समझ में आया इसमें? लेकिन वह नहीं आता है, व्यवहार होता ही नहीं सम्यग्दृष्टि को, वह तो अकेले वीतरागभाव में ही रहता है ऐसा बनता नहीं। बराबर है? सोभागचंदभाई! वह बात यहाँ निश्चय-व्यवहार की संधि की बात करते हैं।

अज्ञानी या निश्चयाभास को निश्चय मानते हैं। निश्चयाभास यानी व्यवहार राग, दया, दान आदि भाव आवे उसको समझे नहीं, लावे नहीं, पहिचाने नहीं, करे नहीं और अकेला आत्मा वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. वीतराग करता रहे, अकेला आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसे राग का कोई सम्बन्ध नहीं है। बात सच्ची है, परन्तु वह खिले बिना, अकेले राग की क्रिया शुभ की है वह भी यदि छोड़ दे, तो पुण्यबन्ध भी जाये और

धर्म तो है नहीं। समझ में आया?

और पुण्यबन्धवाले जीव, उसे करते-करते अपना कल्याण इसमें से होगा, मार्ग यह है। राग, दया, कषाय मंद ऐसा माननेवाले भी मूढ जीव व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अकेला निश्चयाभासवाले, अकेला व्यवहाराभासवाले और निश्चय सहित के व्यवहारवाले, इस प्रकार इसमें तीन बात चलती है। समझ में आया इसमें?

तब यहाँ प्रश्न हुआ कि व्यवहारनय अंगीकार करने योग्य नहीं है। ऐसा ऊपर कहा। व्यवहार बीच में आता तो है। शुभराग व्रत का सम्यग्दृष्टि को, मुनि को, श्रावक को उसकी भूमिका प्रमाण में परलक्ष्यी भक्ति आदि का राग आये बिना नहीं रहता। अंगीकार करने जैसा नहीं है ऐसा यहाँ कहा। उसे संवर नहीं मानना, उसे धर्म नहीं मानना, उसे आश्रय करने लायक है और आदरणीय है ऐसा नहीं मानना। तब शिष्य को प्रश्न हुआ। वह कौन-सा प्रश्न उठा? व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं, वह कहा। व्यवहार के बिना निश्चय का उपदेश हो नहीं सकता। व्यवहार बिना सच्चा स्वरूप समझाया नहीं जाता। तो व्यवहारनय को क्यों अंगीकार नहीं करनी? समझ में आया? व्यवहार बिना समझाया नहीं जाता, उसके सिवा उपदेश दिया नहीं जाता। तो शिष्य का प्रश्न है कि जो निश्चय को समझाये ऐसा व्यवहार क्यों आदरना नहीं? मगनभाई!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उपकार करता है। धूल भी नहीं है उपकार। वह तो भेद द्वारा उसको समझाते हैं, वहाँ से हटकर समझे तो भेद द्वारा समझाया ऐसा कहने में आये। बड़ी सूक्ष्म बात।

भगवान आत्मा पुँज, चैतन्य का पुँज गंज है। उसमें से केवलज्ञान की पर्यायें अनन्त प्रगट हो ऐसा वह दल है आत्मा। उसका भान होने के बाद भी व्यवहार आवे, अंगीकार करना नहीं। और व्यवहार से, विकल्प भी उठे निर्विकल्प होते समय, यह वस्तु यह है, यह वस्तु यह है, अभेद चैतन्य हूँ, (ऐसा) विकल्प शुभ राग उत्पन्न हो, ऐसा आये तो सही, लेकिन उसको छोड़कर स्थिर होना वह आदरणीय है। समझ में आया? भाई! यह तो सत्य परमेश्वर के मार्ग की रीति है। जगत ने मानी हुई बात उसके साथ इसका कोई मेल नहीं है।

... अकेला चावल तौला नहीं जाता। अकेला चावल तौलते हैं? चार-चार मण का कहाँ से लाना? क्या कहते हैं उसे? छबड़ा, चार मण का छबड़ा कहाँ से ल लाना? पाँचसौ-पाँचसौ बोरी को तौलना होता है, सुबह से शाम तक। वह छबड़ा में चावल को तौला जाता है? वह बोरी के साथ चावल को तौला जाता है। तब कहते हैं कि चावल को तौलने में बोरी का उतना उपकार तो है न? वैसे व्यवहार

का उतना तो उपकार है कि नहीं कि उसके उपदेश बिना निश्चय समझा नहीं जाता। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया? उसका उत्तर सुन।

निश्चयनय से भगवान आत्मा, यह वस्तु स्वरूप '**परद्रव्यों से भिन्न,...**' शरीर, वाणी, मन, कर्म से भिन्न वस्तु है। और '**स्वभाव से अभिन्न...**' और अपने भाव से एकमेक वस्तु है। परवस्तु से भिन्न और अपने भाव से अभिन्न, ऐसी '**स्वयंसिद्ध वस्तु है;...**' अनादि की स्वयंसिद्ध सत्स्वरूप वस्तु है। '**उसे जो नहीं पहिचानते...**' हो, उसे जो नहीं पहिचानते हो, '**उनसे इसी प्रकार समझाते रहें तब तो वे समझ नहीं पाये।**' क्या समझाते रहें? कि परद्रव्य से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, परद्रव्य से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, तो वह समझे नहीं। क्या कहते हैं यह? परद्रव्य से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, लेकिन आप क्या कहना चाहते हो? '**उसे जो नहीं पहिचानते...**' अभिन्न वस्तु को। '**उनसे इसी प्रकार समझाते रहें तब तो वे समझे नहीं पाये।**' इसलिये उसे समझाने को '**व्यवहारनय से...**' अर्थात् शरीर की अपेक्षा द्वारा, शरीरादि, वाणी आदि, मन आदि। शरीरादि, मन और वाणी आदि '**परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा...**' यह मनुष्य सो जीव है, ऐसी पहिचान करायी। कहीं मनुष्य जीव नहीं है, मनुष्य तो यह मिट्टी है, जीव तो भिन्न चीज है।

यह मनुष्य सो जीव है, नारकी सो जीव है, देव सो जीव है। पृथ्वीकाय के यह जीव है, वनस्पतिकाय के, ये हरितकाय दिखती है न? वह तो शरीर है। वह वनस्पति का जीव है, वनस्पति के शरीर द्वारा अन्दर आत्मा की पहिचान करवाते हैं। पृथ्वीकाय, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस, वह '**जीव के विशेष किये--तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है,...**' देव जीव है, पशु जीव है, पर्याप्त जीव है, वाणी बोलनेवाला वाणीवाला जीव है, मनवाला जीव है, संज्ञी मनवाला जीव है, असंज्ञी मन रहित जीव है। रतनलालजी! समझ में आया? वह समझाने को है। '**मनुष्य जीव है, नारकी जीव है, इत्यादि प्रकार सहित उन्हें जीव की पहिचान हुई।**' यह आत्मा, यह आत्मा, देखो, यह गाय का आत्मा, यह घोड़े का आत्मा ऐसे कहने में आये। यह बालक का आत्मा। बालक और गाय-घोड़े का आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो उससे बिलकुल भिन्न वस्तु है। परन्तु भिन्न न समझे और चैतन्य, चैतन्य, चैतन्य अभिन्न (समझाते रहें), कदाचित् कोई व्यापक समझ ले, कोई एक ही समझ ले, अतः उस आत्मा की पहिचान कराने को सर्वज्ञ वीतरागदेव एवं संतों ने उसको शरीर की सापेक्षता द्वारा, वाणी की अपेक्षा द्वारा, मन मिला उसकी अपेक्षा द्वारा, यह मनवाला संज्ञी, वाणीवाला यह पर्याप्त जीव इस प्रकार उसकी पहिचान करवाई। एक बात हुई। समझ में आया इसमें कुछ? लेकिन उस शरीर, वाणी, मन को आत्मा

जानना नहीं। वह तो जड़ चीज है। शरीर, वाणी, मन, पर्याप्त आदि तो जड़ मिट्टी की चीज है। वहा आत्मा-बात्मा नहीं है। लेकिन आत्मा नहीं समझता है उसे समझाया कि यह आत्मा है। ऐसा कहकर, उसे निकाल देने के बाद जो बचे सो जीव है। समझ में आया? एक बात हुई। **'उन्हें जीव की पहिचान हुई।'** इस प्रकार कहने से। मनुष्य जीव, नारकी जीव, पर्याप्त जीव। जीव यह। अन्दर पर्याप्त का विशेष करके समझाया, नारकी को अपेक्षित करके समझाया। ओहो..! जीव तो अन्दर भिन्न चीज है। स्वयं की शक्ति और स्वयं की दशा सहित का आत्मा, सो पर से त्रिकाल भिन्न है। पर के साथ उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उस व्यवहार द्वारा जीव को समझाने के लिये यह कथन आचार्यों ने किये हैं। लेकिन वह व्यवहार आदरणीय नहीं है, अंगीकार करने लायक नहीं है। शरीर को जीव मानना नहीं। वह आगे लेंगे।

**'अथवा...'** अब अन्दर आये। **'अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके...'** भगवान आत्मा एकरूप वस्तु है अन्दर, उसके प्रकार और भेद उत्पन्न करके--यह ज्ञान, दर्शन, आनंद, अस्तित्व, वस्तुत्व आदि **'गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये।'** उसे बताया कि देख, ये जाना सो आत्मा, देखे सो आत्मा, माने सो आत्मा, जिसमें वीर्य की स्फुरणा ज्ञान की रचना हो सो आत्मा, इस प्रकार आत्मा अभेद और एक वस्तु होने पर भी उसके विशेष करके कि ज्ञान, दर्शन आदि गुण-पर्यायरूप (जीव है)। जाननेवाला आत्मा। विश्वास कौन करता है? जानता है कौन? देखता है कौन? वीर्य की स्फुरणा करुँ वह कौन करता है? उसके द्वारा उसे, अभेद चीज को भेद करके समझायी। परन्तु वह भेद अंगीकार करने लायक नहीं है। भेद अंगीकार करने लायक नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

**'तब जाननेवाला जीव है,...'** ऐसा उसे निर्णय हुआ। नहीं तो, जाननेवाला जीव, वह तो भेद हुआ। लेकिन जाननेवाला जीव है, ज्ञान सो जीव, दर्शन सो जीव, जाननेवाला आत्मा, देखनेवाला भगवान, माननेवाला आत्मा **'इत्यादि प्रकार सहित उनको जीव की पहिचान हुई।'** भेद करके समझाया तब वह समझा। लेकिन भेद है वह अंगीकार करने लायक नहीं है। आहाहा..! भेद भी आदरणीय नहीं। इसके बदले, बाह्य के व्रत और तप की जड़क्रिया को आदरणीय माने और अन्दर का शुभराग, दया, दान, व्रत का शुभ भाव, व्रत पालो, उपवास करो, धर्म है। बड़ी मिथ्यादृष्टि का सेवन है। अनंत काल का जड़ निगोद, जड़ का सेवन करता है। समझ में आया? तब **'उनको जीव की पहिचान हुई।'**

दो बात करी। नारकी जीव, मनुष्य जीव ऐसा करके जीव जाना और विशेष करके समझाया कि देख, यह ज्ञान जाननेवाला जीव, देखनेवाला जीव तब जीव की पहिचान

हुई। दो बात तो वस्तु की करी, अब मोक्षमार्ग की बात करते हैं।

'**तथा निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है;...**' अब मोक्षमार्ग की बात आयी, पर्याय की। पहले वस्तु की ली थी। निश्चय से आत्मा में जितना पुण्यभाव, शुभभाव उत्पन्न हो, व्रत, नियम, दया, दान का उससे रहित आत्मा अखंडानंद प्रभु पूर्ण शुद्ध चैतन्य उसके अंतर के स्वभाव में भरा है, जो राग में मिश्रित होता था, वह ज्ञान अंतर में मुड़ा, अंतर स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, वीतरागता की रचना, चारित्र की हो ऐसा वीतरागभाव ही एक मोक्षमार्ग है। समझ में आया? बीच में दया, दानादि (आते हैं), वह तो निमित्त देखकर बात करेंगे, लेकिन वह मोक्षमार्ग नहीं है।

बहुत कठिन जगत को। अवतार आया और बाहर से कुछ मानकर संतोष करवाया और संतोष हो गया, अपने कुछ करते हैं। किन्तु अवतार चला जायेगा और ऐसा अवतार फिर से. (मिलना दुर्लभ है)। सब अवसर आ गया है। टोडरमल ने लिखा है न? सब अवसर आ गया है। तेरे प्रमाद, अज्ञान के आलस्य से वस्तु छूट गयी है। उसको अन्दर स्वयं अपने आप को इस विधि से ग्रहण किया जाता है, वह बात अब तक उसे सुहाती नहीं है। व्यवहार के लेख आये न शास्त्र में? संयम, तप, नियम, व्यवहार के विकल्प अशुभ से बचने के, वह साधन है और वह भी मोक्षमार्ग है, वह भी धर्म का कार्य है, ऐसा माननेवाले बिलकुल रास्ता भूल गये हैं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- किन्तु कौन-सी क्रिया? वही बात कहते हैं। सच्ची बात है। वह बात (संवत) १९९० में संप्रदाय में एक जन के साथ हो गयी थी। समझ में आया? सब से पुराने थे, बहुत व्रत (पालते थे)। संप्रदाय में थे तब, हाँ! उन्होंने कहा, ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष कहा है न? १९९० की बात है। मैंने कहा, कौन-सा ज्ञान और कौन-सी क्रि/या? देह की क्रिया नहीं। यह तो जड़ है, मिट्टी है, यह हिले, चले और ऐसा-ऐसा हो वह तो उसकी क्रिया है, उसमें आत्मा को क्या है? आत्मा में राग हो अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य का वह भी क्रिया नहीं। आहाहा..!

भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु ज्ञान की चैतन्यज्योत है, उसका अंतर में भान होकर और उसमें ज्ञान में लीनता--एकाग्रता का आचरण, स्वरूपाचरण स्थिर हो, उसको क्रिया कही है। वह ज्ञान और वह क्रिया वह मोक्ष का कारण है। सोभागचंदभाई! ये (बाहर की क्रिया) नहीं। ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष। आत्मा का ज्ञान। अरे..! अनंत काल में स्वज्ञेय सन्मुख देखा नहीं है। अनंत-अनंत काल व्यतीत हुआ, जैन का दिगंबर साधु अनंत बार हुआ, बारह व्रत और पंच महाव्रत और छः-छः महिने के उपवास किये, परन्तु यह ज्ञानस्वरूपी एक द्रव्य पूर्ण वस्तु है उसके सन्मुख देखने का उसने कभी प्रयत्न

नहीं किया। समझ में आया? और इस प्रयत्न के बिना आत्मा की श्रद्धा और सम्यग्दर्शन हो, ऐसा तीन काल तीन लोक में बनता नहीं। समझ में आया?

इसलिये यहाँ कहते हैं, **'निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है।'** वह राग बीच में आये, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आवे, भक्ति आवे, पूजा आवे वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा..! है न उसमें? उसमें है? रतनलालजी! है उसमें? देखो! कभी वाँचन नहीं किया होगा। पूरा मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा है? नहीं पढ़ा। लो, ये भजनमंडली के अग्रेसर ने पढ़ा नहीं है। अभी तो बहुत बोलते हैं, आत्मानुभव बिना मोक्ष नहीं। नहीं आता है? ताराचंदजी! आत्मा का मैंने कभी अनुभव नहीं किया, मैंने आत्मा को जाना नहीं और आत्मा के अनुभव बिना मोक्षमार्ग तीन काल में नहीं है। राजपाट छोड़कर त्यागी हो, साधु हो और बालब्रह्मचारी हो, पंच महाव्रत पालता हो, सच्चे हाँ! अभी तो पंच महाव्रत सच्चे भी किसी के पास नहीं है, व्यवहार के। समझ में आया? रूपचंदजी! यह तो सत्य बात है, उसमें क्या है? माने न माने उसकी स्वतंत्रता है। अनादि काल से स्वच्छंद सेवता आया है।

यहाँ तो कहते हैं कि बाह्य आचरण से पार और आत्मा अल्पज्ञ की पर्याय में पूर्ण आत्मा नहीं है। भगवान अल्पज्ञ दशा वर्तमान वर्तती है, उसमें पूर्ण आत्मा नहीं है। परन्तु अल्पज्ञ द्वारा सर्वज्ञस्वभाव को पकड़ सकते हैं। समझ में आया? राग से नहीं, विकल्प से नहीं, पुण्य से नहीं, भक्ति-पूजा लाख-क्रोड़ समेदशिखर की भक्ति से, यात्रा से नहीं। समेदशिखर की यात्रा से नहीं। भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानंद प्रभु, एक समय में पूर्ण केवलज्ञान को .. में रखनेवाला ध्रुव, उसके वर्तमान ज्ञान की अल्पज्ञता को बहुमान करके अन्दर में ऊतरना, अल्पज्ञ का मान छोड़कर, विकल्प का छोड़कर, निमित्त का छोड़कर अल्प ज्ञान का मान छोड़कर अल्प ज्ञान द्वारा सर्वज्ञ (स्वभाव) तरफ ढलना, ऐसा प्रयत्न उसने अनंत काल में किया नहीं। और इसके बिना उसे सम्यग्दर्शन हो या सम्यक्ज्ञान हो, ऐसा तीन काल तीन लोक में नहीं बनता। समझ में आया?

लाख शास्त्र पढ़ा हो, क्रोड़ पढ़ा हो, भगवान की श्रद्धा के लिये सर कटवाता हो, भगवान तीर्थंकर की श्रद्धा के लिये, समवसरण ऐसा होता है, फलाना ऐसा होता है, पाँचसौ धनुष का देह होता है, महाविदेह है, सब आस्था रखता हो, फिर भी स्वज्ञेय को पकड़ने का प्रयत्न स्वज्ञान की पर्याय अंतर में होता है, उसको पकड़े बिना वह सब थोथा है। आहाहा..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- यह किसकी बात चलती है? सेठ दूसरे की बात करते हैं। दूसरे के

साथ चर्चा होती है न, ऐसे इस काल में ऐसा हो सकता है? तो यह किसकी बात करते हैं? इस काल में यह न हो तो, धर्म नहीं है ऐसा कहो। इस काल में धर्म नहीं है, और धर्म हो तो सम्यग्दर्शन से धर्म का प्रारंभ होता है। इसके सिवा तीन काल तीन लोक में धर्म की शुरूआत होती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा अरे..! निज चैतन्य का गट्ठा, चैतन्य की गाँठ, पूर्ण अनंत गुण का गट्ठा उसके सामने उसने कभी नज़र नहीं की। 'नयनने आळस रे मैं निरख्या न हरिने जरी।' समझ में आया? उसमें आता है न? वह सब तो नासमझ से बात कही है। 'मारा नयनने आळसे रे, मैं निरख्या न नयणे हरि' वह नानालाल कवि का है। कुठ ठिकाना नहीं, ऋषि को मारना, ऐसा करना... अरे..! जगत के प्राणी तुम्हारी चीज तुम्हारे अंतर में पड़ी है। उसको पहिचानने को, उसकी श्रद्धा और उसमें रमने के प्रयत्न बिना, जितना बाह्य शुभाशुभ राग का प्रयत्न, वह सब आत्मा की शांति के लिये निरर्थक हैं। समझ में आया?

ऐसा बताकर भगवान ने, निश्चय से तो वीतरागभाव को मोक्षमार्ग कहा है। समझ में आया? निश्चय से भगवान प्रभु जिसकी शांति का, जिसके बड़े कूप भरे हैं, जिसके स्वभाव में अकषाय शांति पूर्ण भरी है। उसको यह राग और विकल्प जो भक्ति, दया, दान का आये उससे पृथक् करके आत्मा की अंतर श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता करनी वह एक ही निश्चय से वीतरागभाव मुक्ति का राह और पंथ है। समझ में आया? कितना सुनाई देता है? आठ आना? थोड़ा-थोड़ा। क्या हो? वह अपनी लायकात के कारण है कि शरीर के कारण है? आहाहा..!

अरे.. प्रभु! कहते हैं कि त्रिलोकनाथ देवाधिदेव जैन परमेश्वर, जिनको एक समय में पूर्ण ज्ञान का प्रकाश असंख्य प्रदेश में सर्वप्रत्यक्ष हो गया है। भगवान कहते हैं कि मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव है। छूटने का पंथ राग से हो, व्यवहार का दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम सब राग है उससे, छूटने का भाव सम्यग्दर्शन हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। आहा..! बहुत सूक्ष्म। तभी तो मान में चढा दिया है न। और सेठ प्रसन्न हो। वह कहे, अपने तो कर सकते नहीं, बेचारे कुछ तो पालते हैं। अपने से तो अच्छे हैं। नरभेरामभाई! अपने से अच्छे हैं? ना, ना। बिगड़े हुए दूधमें से फ़िकी छाछ भी नहीं बनती। छाछ समझते हो? रतनलालजी! छाछ नाम मट्ठा। मट्ठा होता है न? पतला मट्ठा हो तो भी रोटी चले, लेकिन बिगड़ा हुआ पाँच मण दूध हो, बिगड़ा हुआ, रूपचंदजी? क्या करे? अरे..! दो शेर पीयेगा तो परेशान कर देगा। ठंडी रोटी खायी उतनें में ताराचंदजी को बुखार आ गया। पहले कहते थे। तो ऐसा खाये तो? दूध बिगड़ गया है। पाँच मन लाये थे, लेकिन अब फैंक देना चाहिये।

वर्तमान में दूध महँगा, दस रूपये का मण, पचास रूपये का पाँच मण। खाओ, थोड़ा-थोड़ा डालो कढी में। बिगड़ेगा, खाया हुआ बाहर निकाल देगा। समझ में आया? न खाने का हो तो ऐसा नहीं खाना अच्छा है। रोटी ज़हरवाली हो और अच्छी न मिले तो ज़हरवाली रोटी खाना अच्छा नहीं है। हैं? भूखे रहना अच्छा है, किन्तु ज़हरवाली रोटी तो है हाँ, मामा आज खीर दे गये हैं। लेकिन मामा के घर एक-दो सदस्य, ढ़ाई बजे खीर होगी। बच्चे तड़पे। ढेबरा (खाने की एक चीज) बनाकर दे, ढेबरा कर दे तो वहाँ कम खाये। इसलिये जल्दी करे तो पुसाता नहीं, दस बजे तो लगने लगा, कब होगा, कब होगा? फिर कहे कि यह रोटी पड़ी है, लेकिन इसमें .. जैसा लगता है, वह होती है न? क्या कहते हैं? छीका, छीका में रात को कोई सर्प बोलता था, डिग्गा बजाता था, डिग्गा। वह वहाँ आया हो तो मालूम नहीं। थोड़ा खा ले न। नहीं, नहीं, नहीं। अढ़ाई बजे तक भूखे रहना अच्छा है। लेकिन ज़हरवाली रोटी खाना अच्छा नहीं है। मर जायेगा वहीं के वहीं, भूखा मनुष्य ही नहीं रहेगा।

ऐसे आत्मा के वास्तविक स्वरूप के भान बिना अकेले व्यवहार का राग और पुण्य से धर्म मनानेवाले और माननेवाले, और अपने से तो अच्छे हैं, ऐसा माननेवाले ज़हरवाली रोटी .. डालकर खाते हैं। नेमचंदभाई! बात तो आये तब (आये)। अब तो २७ वर्ष पूरे होते हैं कल। परिवर्तन को २७ वर्ष पूरे होते हैं, कल २८वाँ शुरू होगा। फिर तो जो वस्तु हो वह आये न, दूसरी कहाँ-से आये? मनसुखभाई! क्या होगा यह? अपने महाराज जो भी है वह अच्छे हैं। कहते हैं कि ज़हर है। जिसका व्रत और नियम का भी ठिकाना नहीं है और कदाचित् कोई शुभ भाव अच्छा हो तो वह धर्म नहीं है और धर्म है और धर्म करते हैं, ऐसा मानता है, मनवाते हैं और मान्यता को अच्छी समझते हैं, वे धर्म के पक्के विरोधी शत्रु हैं।

एक जगह श्रीमद् तो कहते हैं एक पत्र में, कि जो कोई कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र है, जिसे तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं है और विरोध भाव का सेवन करनेवाले हैं, उसे साक्षात् धर्म का घातक जाने बिना तेरा कल्याण हो ऐसा नहीं है। एक पत्र में आता है। लालचंदभाई! पत्र में आता है, एक पत्र है, इस ओर है। समझ में आया? है कि नहीं? कहाँ गया पुस्तक? नहीं है यहाँ? नहीं होगा। इस ओर के पृष्ठ पर है। साक्षात् कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र। जो कोई शुभ दया, दान, व्रत से धर्म मानता हो, मनवाता हो, मानता हो उसे अच्छा जानता हो, दीक्षा को दीक्षा मानता हो ऐसे कुगुरु को, कुशास्त्र को या कुधर्म को साक्षात् धर्म का घातक जाने बिना उसका प्रेम और प्रीति हटेगी नहीं। नवनीतभाई! उनके समय में तो गृहस्थाश्रम था

इसलिये लोग जल्दी विश्वास नहीं कर पाये। लो, आप त्यागी की निंदा करते हो, और अपने घर पर स्त्री-पुत्र है। सुन न। स्त्री-पुत्र कहाँ है? अन्दर आत्मज्ञान की प्रजा उत्पन्न हुई है, तुझे क्या मालूम पड़े? समझ में आया? उसको स्त्री, पुत्र है। और वह बेचारे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करे। और उसे कहते हैं मूढ है और स्वयं ज्ञानी! सुन न। बाहर के त्याग में धर्म मानकर मनाया है, बड़ा जैनशासन का विरोधी और वैरी है। समझ में आया?

'जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत, बहु .. परवरियो, तेम तेम जैनशासननो वेरी, जो नवि निश्चय गरियो।' निश्चय तत्त्व क्या है उसके भान बिना व्यवहार क्रियाकांड में धर्म मानकर मनाता है, वह 'जेम जेम बहुश्रुत' बहुत सयाना हुआ, पंडित हो गया, बड़ा पंडित हुआ कि जैनशासन का ऐक वैरी जागा? आहाहा..! 'जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत,' और उसको माननेवाले लाखों और क्रोड़ों लोग निकले, वह जैनशासन का वैरी है। चींटी को पँख मिली, पानी में गिरने को। समझ में आया? वह है, हाँ! ठाणांग में छठवें ठाणांग में है।

यह बात की थी, संवत १९७८ में। कहाँ गये? १९७८में की थी। उस दिन कहा था, फिर गिरे। ७८ में कहा था, देखो, ठाणांग के छठवें ठाणांग में (ऐसा लिखा है)। लेकिन खुल्ला थोड़े ही कह सकते हैं, समाज में रहे हों? कहो, समझ में आया? फिर १९८० में... ७८ का चातुर्मास राणपुर में था। उस दिन यह गाथा और ठाणांग के छठवें ठाणांग में ये छः बोल है, ऐसा कहा था।

आत्मा का निश्चय स्वरूप क्या है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान बिना अकेला व्यवहार क्रियाकांड से साधु, साध्वी और मनाते हैं, और मानते हैं (तो) कहते हैं कि जैसे उसे जानपना ज्यादा हो उतना उसको वैरीपना बढ़ेगा। उसे माननेवाले बढ़ेंगे, उतना वैरीपना जैनशासन का बढ़ेगा। उसे बहुत पँख मिली। इतने मानते हैं, असत्य थोड़े ही होगा? 'जेम जेम बहुश्रुत बहुजन संमत, बहु शिष्ये परवरियो'। उसके शिष्य की परशाखा, शाखा, शाखा, दोसौ साधु (हुए)। इसने दोसौ साधु बनाये हैं। तो क्या है? कहते हैं कि निश्चय तत्त्व की श्रद्धा और ज्ञान के भान बिना वह शिष्य सहित दिखे वह, 'तेम तेम जैनशासननो वेरी'। एक जैनशानस वीतरागभाव (है)।

है न यहाँ, देखो, जैनशासन माने (क्या)? वीतरागभाव आत्मा का शासन है। उसे पहिचानता नहीं, उसे मानता नहीं है और बाह्य के व्रत, नियम और क्रियाकांड से धर्म मनाते हैं, वह जैनशासन में एक नया अंगारा जागता है। ऐसा वीतराग त्रिलोकनाथ फरमाते हैं। बड़ी कठिन बात भाई! जेठालालभाई! क्या है यह? उसे देखकर कहे, जय नारायण! नग्न देखे तो वह, वेष देखे तो वह, दंड देखे तो.... अरे.. सुन न।

बालं पश्यंति लिंगं। अज्ञानी भेख को माननेवाले हैं। मध्यम बुद्धिवाले कदाचित् कुछ क्रियाकांड करे उसको देखनेवाले हैं। किन्तु तत्त्वदृष्टि और तत्त्वज्ञान सच्चा क्या है, उसको देखनेवाला तो एक ज्ञानी और सच्चा अभिलाषा हो सकता है। अन्य उसका बहुमान नहीं कर सकता। समझ में आया? वह उसमें आता है, बालां पश्यंति, आता है न? आता है। बालां पश्यंति। मध्यमवाले क्रिया को (देखते हैं)। तत्त्वज्ञानी जीव, तत्त्वदृष्टि सत्य स्वरूप क्या है, उसको देखनेवाले, जाननेवाले और अनुभव करनेवाले हैं।

यहाँ कहते हैं, '**निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है।**' उसमें तो छः बोल कहे हैं, ये तो तीन कहे। श्रुत, बहुत माननेवाले, बहुत शिष्य, बहुत तपस्या करता हो, बहुत तपस्या करता हो, लोगों को ऐसा लगे, आहाहा..! छः छः महिने की तपस्या करे वह थोड़ा ही झूठ बोलेगा? उसका वचन पड़ते ही लोग उठा ले। और स्त्री, पुत्रवाला हो और सत्य बोलता हो, अंतर धर्म के भान सहित। स्त्री, पुत्र और क्रोड़ों का धंधा करता है, अभी तो कल उसकी स्त्री को पुत्र हुआ, लो। सुन न, तुझे तत्त्व क्या मालूम पड़े? समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि जीव, नहीं मानता उसकी स्त्री है, नहीं मानता वह राग को अपना स्वरूप। ऐसा जो राग से भेद हो गया है, उसको परखनेवाले उसके परीक्षक तो दूसरी जाति के होते हैं। समझ में आया? अज्ञानी तो कहे, कल तो उसकी स्त्री प्रसुति हुई है। और हम तो आजीवन, बीस वर्ष की वय से ब्रह्मचर्य पालते हैं और ये कहते हैं कि ज्ञानी है। सुन न। ज्ञानी माने क्या? तो क्या वह राग की क्रिया न हो तो ज्ञानी कहलाये? ९६ हज़ार स्त्रियों के साथ चक्रवर्ती का, तीर्थंकर का ब्याह होता है। क्षायिक समकिती और तीन ज्ञान के धनी हैं। समझ में आया? और आजीवन ब्रह्मचर्य पाले, स्त्री के सामने देखे नहीं, ऐसा जीव भी पुण्य और देह की क्रिया से आत्मलाभ होता है ऐसा माननेवाला बड़ा मूढ और मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? लेकिन श्रद्धा की शक्ति और श्रद्धा की शक्ति का लाभ कितना है, यह जिसको मालूम नहीं... नवनीतभाई! श्रद्धाशक्ति की कितनी क़िमत है और उसका कितना लाभ है। और कषायशक्ति पुण्य और पाप का भाव कषायशक्ति, उसमें कितना नुकसान है और उसका फल कितना नुकसानदायक है, इसके ज्ञान बिना के ज्ञानी का माप आचरण पर से निकाले और अज्ञानी के बाह्य त्याग माप से उसका धर्मीपना कहे, बिलकुल उलटे मार्ग पर चले हैं। समझ में आया?

उसमें आता है, हाँ! सोनगढ़वाले मुनि को मानते नहीं, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। सुन न, मुनि था कब? माने कैसे? आहाहा..! वेश पहनकर बैठे उसको मुनि माने। धीरुभाई! बात तो बहुत अलग है। दोनों धीरुभाई बैठे हैं। यह बात तो ऐसी

है प्रभु, यह किसी का मक्खन की और पक्ष की नहीं है। सत्य का ढिंढोरा यह है, बापू! तुझे ज़हर उतारना हो, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का ज़हर जब तक न ऊतरे, तब तक सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का बहुमान अंतर में आये नहीं। और उतना बहुमान आये फिर भी चैतन्य का बहुमान न आये तब तक उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया?

आचार्य भगवान वीतरागभाव को मोक्षमार्ग कहते हैं। वह कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग है। वीतरागभाव भी मोक्षमार्ग है और राग बीच में आये, व्रत, नियम वह भी एक मोक्षमार्ग है। उतना तो छूटा न, दुकान पर बैठता था और तराजु में तौलता था उससे तो वहाँ बैठा है, भेष बदलकर, अच्छा है न? वह बिगड़ा हुआ दूध है। हाय.. हाय..! मार डालेगा उसको और जो खायेगा उसको--मानेगा उसको। नवनीतभाई! ये वीतराग पुकार करते हैं। सर्वज्ञदेव अनंत, कुन्दकुन्दाचार्य आदि महा संत, भगवान के पास जाकर जो वस्तु (लाये), अंतर में तो बहुत थी, लेकिन कुछ स्पष्टता और निर्मलता भगवान समक्ष करके आये। अरे..! वीतराग वीतरागभाव को मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? बीच में राग दया, दानादि का भाव आये उसे भगवान मोक्षमार्ग नहीं कहते।?

अनंत काल में प्रगट नहीं हुआ ऐसे अपूर्व भाव बिना उसे मोक्षमार्ग किसी भी प्रकार से नहीं कह सकते। अपूर्व किसे कहें? आहाहा..! पूर्व में अनंत काल में व्यवहारस्वर्ग में गया, धूल की श्रीमंतता मिली, अरबोंपति अनंत बार हुआ, क्या हुआ उसमें? समझ में आया?

लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो।
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो।
वधवापणुं संसारनुं... पर की अपेक्षा लेकर भाव हो वह।
वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो।
एनो विचार नहीं अहोहो एक पळ तमने हवो।

यह १६ वर्ष की उम्र में कहते हैं। श्रीमद् राजचंद्र १६ वर्ष और ४ महिने की उम्र थी तब १०८ पाठ बनाये, १०८ पाठ। माला का १०८ मणका होता है न, इसलिये १०८। नाम दिया मोक्षमाळा। १६ वर्ष की उम्र में। उम्र तो देह की थी, आत्मा को कहाँ उम्र थी? वह तो अनादि का है। १६ वर्ष की आयु में जगत समक्ष पुकार की है, कहाँ बढ़ गया तू? हमको माननेवाले बहुत हैं। सब सुझन है। सोझा समझते हो? सुझन। सुझन को निरोगता कहते हैं? सुझन आती है सुझन, तो शरीर फूल गया। पुष्ट हुआ? मर जायेगा अभी, सुझन कम होते ही अन्दर जलन शुरू होगी।

ऐसे जगत का पुण्य-पाप का ठाठ, उसको माननेवाले ज्यादा और धर्मी को माननेवाले

कम, इस प्रकार माप करके धर्म की क़िमत करते हैं, वह सुझन को निरोगता मान बैठे हैं। समझ में आया?

भगवान आचार्य कहते हैं, निश्चय से, वास्तव में तो। तब वह कहते हैं, निश्चय से। लेकिन व्यवहार (क्या)? सुन न, व्यवहार। व्यवहार--बोरी बीच में आये। आये बिना रहे नहीं, हाँ! धर्मदृष्टि हुई और देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान न हो, और वात्सल्य एवं प्रेम न हो ऐसा तीन काल में बने नहीं। लेकिन वह वात्सल्य एवं प्रेम राग का भाग है, वह निश्चय से मोक्षमार्ग नहीं है।

मुमुक्षु :-- बोरी का भोजन नहीं पकाया जाता।

उत्तर :-- भोजन नहीं पकाया जाता। बोरी को साथ में नहीं पकाते। चावल कम हुए तो अढाई शेर की बोरी डाले। राग होता है, जिसके निमित्त से स्वयं को ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र हुआ ऐसे त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का उपकार व्यवहार से शुभ भाव उपकार का, वात्सल्य का आये बिना रहे नहीं। लेकिन उसे, भगवान कहते हैं, छूटने के मार्ग में वह आया तो सही, लेकिन वह छूटने का पंथ नहीं है। छूटने के मार्ग में... छूटने का समझते हो? मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग में आया सही। वह आता है न? समयसार में आता है। व्यवहारमोक्षमार्ग, निश्चयमोक्षमार्ग के अन्दर व्यवहार आता है सही, लेकिन उसको धर्म माने और मोक्षमार्ग माने तो मिथ्या एकांत मिथ्यादृष्टि है। जगत को मालूम नहीं। यूँ ही अवतार आया, चींटी, मकोड़ा, लट, पिल्लु, कूत्ते का बच्चा मरे वैसे ये मरेंगे। तत्त्व के भान बिना कलबल करते-करते कषाय में मरेंगे। फिर त्याग हो या भोगी हो। समझ में आया?

वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावै विश्राम
रस स्वादत सुख उपजे, अनुभव ताको नाम।

आता है न? बनारसीदास में आता है। बनारसीदास है न? समयसार नाटक (के रचयिता)।

वस्तु विचारत ध्यावतैं मन पावै विश्राम,
रसस्वाद सुख उपजे, अनुभव ताको नाम।

अनुभव मोक्ष का मार्ग (है)।

अनुभव रत्नचिंतामणि अनुभव है रसकूप
अनुभव मारग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप।

ये वीतरागभाव चलता है वह, हाँ! अनुभव कहो या वीतरागभाव कहो। आहाहा..! समझ में आया? पहले उसकी श्रद्धा करके दृढ़ होकर खड़ा रहे, फिर उसके अंतर भाव में वीर्य प्रगट करे तो काम कर सके, नहीं तो काम नहीं कर सकेगा। समझ

में आया? 'वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम।' मन विश्राम को प्राप्त हो। विकल्प (शांत हो जाये)। निभ्रत पुरुषों द्वारा अनुभव करने योग्य वह आत्मा है। निभ्रत नाम निश्चिंत पुरुषों द्वारा, जिन्हें चिंता के संकल्प-विकल्प की हारमाला व्याप्त हुयी है, उससे आत्मानुभव हो सके ऐसा तीन काल में बन सकता नहीं। पहली गाथा आ गयी है। निभ्रत, निभ्रत--निश्चिंत पुरुषों। हो, जो भी हो जगत का, मेरा और उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। शुभ और अशुभ भाव हो, उसमें मेरा हित और मेरी संपदा उसमें कुछ नहीं है। मेरी संपदा चैतन्यज्योत की बारंबार उस ओर नज़र करके स्थिर होवे, उसको अनुभव कहने में आता है और उसको वीतरागभाव कहने में आता है, उसे मोक्षमार्ग कहने में आता है। समझ में आया?

लेकिन '**उसे जो नहीं पहिचानते...**' अब कहते हैं, वीतरागभाव मोक्षमार्ग है, इतना कहने से वह न समझे तब '**उनको ऐसे ही कहते रहें तो वे समझ नहीं पायें। तब उनको...**' समझाने को, इसलिये उनको समझाने को '**व्यवहारनय से, तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक...**' माने क्या? व्यवहारनय से शब्द एक ओर रखो। '**तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक व्यवहारनय से परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' ऐसे लेना। क्या कहा, समझ में आया? व्यवहारनय द्वारा तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान ऐसे नहीं। जो वीतरागभाव को नहीं पहिचानता, चिदानंद निर्विकल्प अनुभव, राग का विकल्प नहीं ऐसी अंतर की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता वह मोक्षमार्ग, उसे न पहिचाने उसको व्यवहार से समझाये। कैसे? व्यवहारनय से, इतना। व्यवहारनय से तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक ऐसा नहीं। तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान तो सच्चा, निश्चय। सम्यक् तत्त्वश्रद्धान तो रागरहित निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय ज्ञान स्व का ज्ञान, स्व की श्रद्धा और स्व का ज्ञान, ऐसे तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक व्यवहारनय से '**परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' निमित्त मिटाने की। व्रतादि की क्रिया में, पर ऊपर का लक्ष्य थोड़ा कम हो और स्व में लक्ष्य आता है, इतना परद्रव्य के निमित्त का संग छूटने की अपेक्षा से, '**निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा...**' परद्रव्य का आलंबन छोड़ने की अपेक्षा द्वारा '**व्रत, शील, संयमादिरूप वीतरागभाव के विशेष...**' विशेष यानी है तो राग, विकल्प, लेकिन उसको पहिचान करवाते हैं कि देख, ऐसे व्रत, नियम जहाँ हो वहाँ अन्दर वीतरागभाव होता है। अव्रत भाव और पाप का सेवन करता हो और वहाँ वीतरागभाव चारित्र हो, ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया? क्या कहते हैं?

शिष्यने पूछा है कि व्यवहारनय यदि निश्चय को समझाता है तो उसको किसलिये अंगीकार न करना? उसका यह उत्तर देने में आता है। भाई! वीतरागपने मोक्षमार्ग आत्मा... वीतराग माने क्या? केवलज्ञानी? ऐसा कोई समझे। वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग

यानी केवलज्ञानी को मोक्षमार्ग होता है? ऐसा नहीं। वीतराग अंतर राग की रुचि पुण्य-पाप की छूटकर और स्वभाव की दृष्टि और रुचि और परिणति एवं स्थिरता जमी, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है, अन्य नहीं। उसको न समझे उसे व्रत, शील और निमित्तादि पहलू से वीतरागभाव का भेद यानी प्रकार अनेक, अनेक द्वारा उस वीतरागभाव के एकपने को समझाते हैं। समझाना है वह, अन्दर राग रहित स्थिरता होती है वह। बहुत सूक्ष्म भाई! उन्हों ने नव अध्याय में गृहस्थाश्रम में रहकर, हज़ारों आचार्यों के हृदय का मेल करके यह बनाया। उसे पढ़ने का भी समय नहीं है। ..भाई! बाप पैसा छोड़ गया हो, पचास लाख, मुरदा निकालने से पहले जाँच ले, किसी के हाथ में कुँची नहीं है न? मुरदा बाद में निकालो। पचास लाख रूपया रखा है, ऐसा सब सुनने में आता है, है कि नहीं? जीवित थे तब तक नहीं देते थे, यहाँ कुँची लगाकर रखते थे। मरने के बाद शीघ्र जाँच करने जाये कि पिताजी क्या छोड़कर गये हैं?

ऐसे सर्वज्ञदेव और महान संत तत्त्व की क्या बात छोड़ गये हैं उसे देखने का, वाँचन करने का भी अवसर मिले नहीं। हम धर्मी हैं। ना कह सकते हैं? धर्मी तो नाम निक्षेप से हो, स्थापना निक्षेप से हो, योग्यता से हो और वर्तमान प्रगट दशा से भी हो। नाम कहावे धर्मी, लक्ष्मीवंत कहे और लकड़ी बेचता हो। नाम क्या? लक्ष्मीवंत, लकड़ी बेचता है न दो आने की? नाम में क्या है? पैसा आ गया? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जो वीतरागभाव को नहीं जानता हो, उसे परद्रव्य का आलम्बन पर का लक्ष्य छुड़ाने की अपेक्षा से व्रत, शील, संयम आदि को वीतरागभाव के विशेष द्वारा बताने से उसे वीतरागभाव की पहिचान हुई। देख, वीतराग अन्दर हो तो उसे ऐसा होता है। व्रत होता है, नियम होता है, शील होता है, संयम होता है, इन्द्रियदमन होता है। ऐसे भाव से बताया। कहो, समझ में आया?

'**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना...**' बहुत जगह ऐसा ही लेते हैं, समझ में आया? इस प्रकार समझना, इस प्रकार समझना। '**इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना।**' किस तरह समझाना? उसे वीतरागभाव समझ में आये नहीं, जीव समझ में आये नहीं, इसलिये उसे व्यवहार से भेद करके समझाया है। नर्क और मनुष्य देह की अपेक्षा रखकर समझाया कि देख, यह देह सो आत्मा, यह घी का घड़ा, यह घी का घड़ा। यानी कि घी का घड़ा है वह मिट्टी का घड़ा है, परन्तु घी का नहीं है। इसी प्रकार शरीरवाला यह जीव, यानी कि शरीरवाला नहीं है, परन्तु जीव ज्ञानस्वरूप मूर्ति अन्दर भिन्न है, उसको पहिचानने के लिये सब व्यवहार से भेद किये हैं। कहो, समझ में आया? अब निषेध करते

हैं, देखो!

‘**तथा यहाँ व्यवहार से नर–नारकादि पर्याय ही को जीव कहा, सो पर्याय ही को जीव नहीं मान लेना।**’ शरीर से पहिचान करवायी कि यह मनुश्य है वह जीव है। मनुष्य तो धूल है, यह तो अजीव है। वहाँ कहाँ जीव है? जीव तो भिन्न वस्तु है। पर्याय को जीव (नहीं मानना), पर्याय यानी शरीर, उसको जीव नहीं मान लेना। क्योंकि शरीर तो ‘**जीव–पुद्‌गल के संयोगरूप है।**’ जीव और शरीर के पुद्‌गलरूप यह तो वस्तु है। उसे आत्मा नहीं कहते। किन्तु वह समझता नहीं है इसलिये उसे कहा कि देख, ये शरीर में रहा है वह आत्मा। रहा भी कहाँ है? शरीर में आत्मा नहीं है, आत्मा में आत्मा है। शरीर में रहा हुआ आत्मा, लो ऐसा बताये। वह व्यवहार से समझाया है। मिट्टी मिट्टी में है और आत्मा आत्मा में है, दोनों का क्षेत्र अन्दर बिलकुल भिन्न–भिन्न है।

‘**वहाँ निश्चय से जीवद्रव्य भिन्न है।**’ उससे––शरीर से भगवान को भिन्न जानना। वह तो समझाने के लिये बात थी। ‘**जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा,...**’ वाणी सचेत, शरीर सचेत, मन सचेत ऐसा कहने में आये। वह तो निमित्त से समझाया है, उसे जीव नहीं मानना। वाणी जीव नहीं है, जड़ है, शरीर जीव नहीं है, जड़ है, मन द्रव्यमन वह जीव नहीं है, वह जड़ है। समझ में आया? ‘**जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा,...**’ लो, उपचार से, यह उपचार आया––आरोप। ‘**सो कथनमात्र ही है, परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं...**’ निश्चय से शरीर, वाणी, मन को जीव–फिव है नहीं। जीव तो ज्ञानानंद मूर्ति अन्दर वाणी, मन और देह से भिन्न है। उसकी पहिचान करने को व्यवहार से बात कही थी। लेकिन उस व्यवहार को आदरणीय मान ले, पहिचान करायी इसलिये, तो बड़ी भूल में पड़ा है। निश्चय जैसे सत्य है, वैसे व्यवहार भी समझाता है इसलिये सत्य है ऐसा नहीं है। ‘**ऐसा ही श्रद्धान करना।**’ देखा! शरीर, वाणी, मन वह जीव नहीं है। समजाया भले व्यवहार से किन्तु जीव है नहीं।

‘**तथा अभेद आत्मा में ज्ञान–दर्शनादि भेद किये, सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना,...**’ ज्ञान सो आत्मा, दर्शन सो आत्मा। वहाँ कहाँ टूकड़े हैं अन्दर। यह सुखड़ की लकड़ी है देखो। सुगंध सो सुखड़, रंग सो सुखड़, वज़न सो सुखड़। वहाँ कहाँ तीन टूकड़े भिन्न–भिन्न पड़ते हैं। लेकिन यह समझा नहीं उसे उसके भेद द्वारा समझाने में आये। ऐसे आत्मा अखंड गुल्ली है अन्दर। अभेद एकरूप गुल्ली है। वह न समझे उसे, ज्ञान सो आत्मा, दर्शन सो आत्मा, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा ऐसा समझाया, किन्तु वह भेद तो कथन मात्र है। समझ में आया? आत्मा को भेदरूप

ही न मान लेना। आहाहा..! ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, ऐसा नहीं मान लेना। वह तो अभेद एक वस्तु है ऐसा कहते हैं। भेद तो समझाने के लिये हैं।

इसमें हज़ारों बोल डाले हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक, अभी तो देखो न, दो-दो रूपये में देने में आता है। है आप के हाथ में? दो रूपये में देने में आता है। देखो! चार रूपये की क़िमत का दो रूपये में देने में आता है। प्रचार के लिये। पहले दूसरे का था, अभी नवनीतभाई की ओर से तीन हज़ार छपवाये हैं। यह पुस्तक हिन्दी में आयेगा, हिन्दी में छपनेवाला है। वह हिन्दी दूसरा। उसका अर्थ ऐसा ही होनेवाला है। अन्य जगह दस रूपय में भी मिले नहीं। चार रूपये की लागत है और उसे दो रूपये में देने में आता है। एक रूपये का तो बाईन्डींग है। क्या कहते हैं उसे? पुट्ठा आदि है। वस्त्र सहित पुट्ठा। कोई भी रीति से लोग पढ़े, विचारे।

अनादि काल की गड़बड़ी चल रही है। निश्चय-व्यवहार की कथनी क्या है, लोग भरमाये हैं। व्यवहार भी है न, व्यवहार भी है न। लेकिन क्या व्यवहार है? व्यवहार एक जानने लायक चीज जगत में है, आदरणीय है नहीं। ऐसा न जाने और निश्चय एवं व्यवहार दोनों आदरणीय माने तो वीतराग की आज्ञा का वैरी है। वीतराग की आज्ञा को वह जानता नहीं। फिर वह त्यागी हो, साधु हो, योगी हुआ हो, नग्न मुनि हुआ हो, इस प्रकार न समझे तो उसे तो श्रद्धाभ्रष्ट कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

'**अभेद आत्मा में ज्ञान-दर्शनादि भेद किये, सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना,...**' एक आत्मा में गुण के भिन्न-भिन्न टूकड़े नहीं है। वस्तु एकरूप है, उसमें टूकड़े (नहीं है)। देखो, यह सुखड़ है, उसमें सुगंध यहाँ है, वज़न यहाँ है, भारीपन है वह यहाँ है, रस है वह यहाँ है, ऐसा है क्या? वह तो पूर्ण एकरूप वस्तु है। इस प्रकार भेद द्वारा उसे समझाने में आता है। भगवान आत्मा अरूपी ज्ञानघन अनंत गुण का पिण्ड है, उसे गुणभेद द्वारा बताया। लेकिन गुणभेद मानना नहीं। '**निश्चय से आत्मा अभेद ही है, उसही को जीववस्तु मानना।**' लो, निश्चय से आत्मा अभेद है, उसको जीववस्तु मानना।

'**संज्ञा-संख्यादि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है;...**' संज्ञा नाम पड़ता है न? आत्मा नाम और ज्ञान नाम, नामभेद हुआ लेकिन वस्तु कहीं भिन्न-भिन्न नहीं है। गुण अनंत और आत्मा एक, ऐसा भेद हुआ। लेकिन वस्तु अनंत नहीं है, वस्तु तो एक ही है। '**भेद कहे सो कथन मात्र ही है; परमार्थ से भिन्न-भिन्न हैं नहीं--ऐसा ही श्रद्धान करना।**' अब तीसरे बोल की बात करते हैं। व्रत, शील, संयम की तकरार है वह।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पाठको की नोंध के लिये

पाठको की नोंध के लिये

प्रकाशक

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ – ३६४२५०, सौराष्ट्र

सह–प्रकाशक

श्री कुंदकुंद–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ले, मुंबई – ४०००५६

info@vitragvani.com vitragvani.com /vitragvani /c/vitragvani